हमारे राष्ट्र-नायक

पं० जवाहरलाल नेहरू

वह देश सदा ही अमर है,
वह माता सदा निहाल है।
जिस भाग्यवतीकी गोदमें,
वीर जवाहर लाल है॥

[स्व० माधव शुक्ल]

प्रकाशककी ओरसे—

हमारे राष्ट्रनायक पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे महान पुरुषका ऐसा कोई भी जीवन चरित्र आज दिन किसी भाषामें नहीं है, जो up to date हो यानी जिसमें उनके अब तकके जीवनके महत्वपूर्ण कार्योंका उल्लेख हो। नेहरूजीने "मेरी कहानी" नामकी जो महत्वपूर्ण पुस्तक अपने ही शब्दोंमें लिखी है, वह भी अधूरी है, यानी उसमें भी उनके केवल सन् १९३४ के जीवनकी ही घटनाओंका उल्लेख है, बाकी उसके बादके उनके चौदह वर्षके जीवनका महत्वपूर्ण विषय पुस्तकके रूपमें नहीं है, जिसकी बडी आवश्यकता थी।

दूसरी बात "मेरी कहानी" जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकके होते हुए भी मुझे इस पुस्तकके निकालनेकी आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई, कारण कोई भी महान् पुरुष अपनी कलमसे अपनी महानताको कैसे लिख सकता है। नेहरूजीकी महानता और उनका उच्चस्थान संसारमें जो आज दिन दिखाई दे रहा है और दुनियाकी नज़रोंमें आज वो क्या हैं तथा उनके महान् और प्रभावशाली व्यक्तित्वका क्या मूल्य है, इसे तो दुनिया ही बता सकती है। उनकी महानताके विषयमें देश-विदेशके जिन महान् पुरुषोंने नेहरूजीकी महानताका बखान किया है, उसका एक सुन्दर संग्रह इस पुस्तकके आरम्भमें दे दिया गया है। आशा है जिस उद्देश्य और अभावकी पूर्तिका विचार करके इस पुस्तकका प्रकाशन किया गया है, पाठक उसको अपने हृदयमें उचित स्थान देंगे।

विनीत—

सुशीलकृष्ण शुक्ल

विषय-सूची

विषय-क्रम			पृष्ठ संख्या

विषय-क्रम			पृष्ठ संख्या

कौन क्या कहता है ?

जवाहरलाल साम्यवादी हैं—वे अपने देशके लिये उतनाही अधिकार आवश्यक समझते हैं जितनेका प्रबन्ध देश स्वय आसानीसे कर सके। वे प्रगतिशील राजनीतिज्ञ हैं और अपने आदर्शोंका निर्माण अपने चारो ओर की परिस्थितिके अनुकूल ही करते हैं। वे वस्तुनः आदर्शवादी हैं और सदा यह चेष्टा करते हैं कि उनके जीवन और आदर्शमें साम्य रहे, देशके नवयुवकों को अपने योग्य प्रतिनिधिपर गर्व होना स्वाभाविक है, और राष्ट्रके लिये भी यह हर्ष और सन्तोषकी बात है कि उसे जवाहरलाल जैसा सपूत मिला है।

—महात्मा गांधी

* * * *

राजनीतिमें जहां विश्वासघात और आत्मवचना उसके महत्वको कमकर देती है जवाहरलालने पवित्रताके आदर्शको बल प्रदान किया है। सत्यकी आड़मे खतरा देखते हुये भी उन्होने उसका तिरस्कार नहीं किया और न असत्यको सुख, समृद्धि या कष्ट निवारणका कारण मानकर उसे अपनाया। उनका परिष्कृत मस्तिष्क राजनीतिक चालबाजीके रास्तेपर जानेसे इन्कार करता है हालांकि इस रास्तेमें सफलता पड़ी हुई है पर साथ ही क्षुद्रता और हीनता भी कम नहीं है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

* * * *

जब विश्वके आधुनिक इतिहासके लिखनेका कार्य आरम्भ किया जायगा उस समय इतिहासज्ञ यह अनुभवकर पायेंगे कि पंडित जवाहरलाल नेहरू उन सभी महान व्यक्तियोंसे भी महान हैं जो कभी भी किसी देशने संसारको प्रदान किया है। वे परिष्कृत ज्ञानके अपूर्व भण्डार हैं। जब आप उन अनेक जटिल समस्याओं और कठिनाइयोंपर विचार करेगें जिनका नेहरूजीने सामना किया है तब उनके कार्य द्वारा अबतककी प्राप्तकी गई सफलताको देखते हुये आप उनकी महानताको स्वीकार करेगें।

—माउन्ट बैटन

* * * *

महात्मा गान्धीने नेहरूजीको अपना राजनीतिक उतराधिकारी चुना था और यह एक बड़े हर्षकी बात है कि उन्होंने एक ठीक ही व्यक्तिका चुनाव किया। नेहरूजी पूर्ण सच्चाईके साथ गान्धीजी द्वारा निर्धारित आदर्शोंपर चल रहे हैं और उन्होंने विश्वमें भारतका नाम चमका दिया है।

—सरदार पटेल

* * * *

मेरे मनमें यह कामना थी कि पूर्व और पश्चिमको मिलानेकी अभूतपूर्व योग्यता रखने वाले इस नेहरूको भारतका प्रथम प्रधान मन्त्री बनता देखूं वह पूरी हुई। मैं नेहरूजीको उन लोगोंमें मानता हूँ जो उन दीवालोंको तोड़नेमें यत्नवान रहते हैं जो मनुष्य व मनुष्यके बीच खड़ी है। उनमें रागद्वेश नहीं है, उन्हें असफलता हतोत्साहित नहीं कर सकती, न सफलतासे वे अत्याधिक फूल जाते हैं। अपने कर्तव्यपर दृढ़ होकर वे भारतकी मशाल ऊंचा उठाये हुये संसारको प्रकाश दिखला रहे हैं।

—पैथिक लारेन्स

* * * *

भारतके इतिहासमें पं० जवाहरलाल नेहरूने सबसे महान और उच्च स्थान प्राप्त किया है। उनकी विचारधारा, व्यक्तित्व और सच्चाईने उन्हें केवल भारतमें ही नहीं वरन् संसारमें लोकप्रिय बना दिया है।

—भूलाभाई देसाई

वे कौन सी चीजें हैं जिनके कारण पं० नेहरूजी नर रत्न हैं। उनकी ईमानदारी, उनका अदम्य साहस तथा उनका अपने को गरीबोंके साथ आत्म-सात ये हैं वे गुण जिनके कारण वे नर पुंगव हैं। पंडितजीका हृदय प्रति-शोधकी भावनासे एक दम रहित है, वे बुराईके बदले भलाई और घृणाके बदले प्रेम करने वाले व्यक्ति हैं।

—शेख अब्दुला

* * * *

पं० नेहरू आज दो दुनियाके बीचमें खड़े हैं। प्राच्य एवं पाश्चात्य देशोंके बीच संघर्षके समय उनके हाथमें एक महान एशियाई राष्ट्रकी वैदेशिक नीति है। वे गान्धीजीके उत्तराधिकारी हैं और जीवित भारतीय आत्मामें सबसे महान हैं, क्या इस पदसे मध्यस्तताका काम करके वे विश्वकी कोटि-कोटि मूक जनताकी आवाज़को शान्तिके लिये बुलन्द करेंगे ?

—एच० ब्रेल्स फोर्ड

* * * *

भारतीय इतिहासके इस कठिन समयमें जब कि उसके भविष्यसे सम्बन्ध रखने वाले अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये जा रहे हैं, भारतीय जनताको सही रास्तेपर ले जानेकी जिम्मेदारी पंडित नेहरू और उनके अनेक साथियोंपर आ पड़ी है। मुझे विश्वास है कि पंडित नेहरू अपने अकाट्य लगन, साहस

और दृढ़तासे भारतको एक महान राष्ट्र बना सकेगें। पं० नेहरूके नेतृत्व और उनके सिद्धान्तोंपर मेरा अटूट विश्वास है।

—च्यांग काई शेक

* * * *

यह भारतवर्षका सौभाग्य है कि इस कठिन युगमें उसे नेहरू जैसा महान नेता मिला है जो सैनिक शक्तिसे नहीं वल्कि आत्मिक शक्तिसे सारे एशिया महादेशका नेतृत्वकर सकता है। जवाहरलाल एशियामें ऐसी शक्तियोंका निर्माणकर रहे हैं जो उसे उन गलतियोंसे दूर करनेमें समर्थ हो सकेंगी। जिनका यूरोप शिकार हो चुका है।

—नोएल बेकर

* * * *

मुझे याद नहीं पड़ता कि मैं जवाहरलालको कबसे जानता हूँ। उनके प्रति मेरे हृदयमें जो भावना है उसने काल और समयके बन्धनको तोड़ दिया है। ऐसा मालूम होता है कि मैं उन्हें सदासे जानता हूँ और उन्हें कभी भूल नहीं सकूंगा। मैं आशा करता हूँ कि साम्यवादी सिद्धान्तपर भारत निर्माणका स्वप्न साकार करनेमें जवाहरलाल समर्थ हो सकेंगें।

—फेनर ब्राकवे

* * * *

अपने ही भाईके बारेमें कुछ लिखना बडा मुशकिल काम होता है और उस समय तो यह और भी कठिन मालूम होता है जब वह ऐसा कुछ लिखने वालेका आराध्य हो। जवाहरलाल मानवताके दुर्लभ रत्न है—वर्तमान युगके महान व्यक्तियोंमेंसे एक हैं। अखिल विश्वके दलित समुदायके सहायक हैं,

स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोंके पुजारी हैं, और एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें साहस अथाह और असीम है, और जिनकी आत्मा उस चमकदार तलवारकी तरह हैं, जो पैनी है. समर्थ है और सार्थक है।

—विजय लक्ष्मी पंडित

* * * *

नेहरूजी में जो चीज़ मुझे सबसे अधिक पसन्द है वह उनका मानव प्रेम है। वे छोटे व्यक्तियोंकी बहुत कदर करते हैं, और भारतके अधिकांश निवासी आज छोटेसे भी छोटे हैं। पं० नेहरू उन करोड़ो लोगोंकी व्यथासे व्यथित ररहते हैं जो किसी तरह ज़िन्दगीके दिन व्यतीतकर रहे हैं। मैंने ग़रीबोंका इतना ध्यान रखने वाला ऐसा व्यक्ति बहुत कम देखा है।

—हेराल्ड लास्की

* * * *

भारतकी स्वतन्त्रताके लिये नेहरूजी स्वतन्त्रता संग्राममें सबसे आगे रहे। नेहरूजीकी विदेश यात्राने यह सिद्धकर दिया है, कि दूसरे देशोंके लोगोंकी दृष्टिमें पंडितजीका स्थान कितना ऊंचा है। वे एशियाके सर्वमान्य नेता और दुनियाके एक महानतम व्यक्ति हैं।

—जयरामदास दौलतराम

* * * *

पं० जवाहरलाल नेहरू आदर्शवादके कट्टर अनुगामी हैं और वे बृहत्तर तथा शक्तिशाली भारत व एक अच्छी दुनियाके लिये हमारे प्रयत्नोंको प्रेरणा देते रहे हैं। वे दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हैं, अतएव उन्होंने जाति तथा धर्म से ऊपर उठकर भारतको असाम्प्रदायिक राज्य बनाने पर ज़ोर दिया है। वे

अन्तार्राष्ट्रीय जीवनकी एकता तथा विश्व शान्तिके समर्थक हैं। दुनियामें सबसे बड़े जीवित लोकतंत्रीके रूपमें उनका सम्मान किया जाता है। दुनिया की नजरोंमें उन्होंने भारतको ऊंचा उठाया है।

—के० एम० मुंशी

*　　*　　*　　*

मैं वे दो दिन, जो मैंने पं० जवाहरलालके साथ आनन्द भवनमें विताये थे कभी न भूल सकूंगा। वे कुछ समय निकालकर मुझे इलाहाबादके उस मेलेमें भी ले गये थे जहां जन समुदायको देखकर मैं बड़ा ही चकित हुआ। इससे भी अधिक आश्चर्य और प्रसन्नता मुझे यह देखकर हुई कि भारतीय जनताके हृदयमें पंडितजीके प्रति कितनी अधिक श्रद्धा और प्रेम है। वहां मैंने ऐसे सीधे साधे और सरल लोगोंको देखा जो जवाहरलालको देखकर पागल हो गये और खुशीसे चिल्ला पड़े। मैंने बराबर ऐसे लोगोंको उनके पास आते देखा जिनके चेहरे और शरीरसे दरिद्रता, दीनता और व्याकुलता टपकती थी, यह केवल अन्ध विश्वास ही नहीं था बल्कि यह उन लोगोंके हृदयमें जवाहरलालके प्रति असीम विश्वास और प्रेमकी अनुपम झलक थी। उनके मानव प्रेम और अद्भुत ज्ञानका अनुभव करनेका मुझे भी सौभाग्य मिला है। हम सबोंको भारतवर्षका कृतज्ञ होना चाहिये कि उसने मानव जातिको ऐसा सौम्य राजनीतिज्ञ और अजात शत्रु प्रदान किया।

—रेजिनाल्ड सोरेनसेन

*　　*　　*　　*

एक कलाकार जैसी भावुकताने जवाहरलालको मानवताकी पीड़ाको गंभी-रता पूर्वक समझनेकी शक्ति दी है। उनके जोरदार शब्द दलित हृदयोंमें

उत्साह भर देते हैं। उनकी आवाज़ अंधेरेमें गूंज उठती है। दलित और पीड़ित मानवताके प्रति जवाहरलालकी असीम सहानुभूति और करुणाने उन्हें सारे संसारका श्रद्धेय बना दिया है।

—हुमायूं कबीर

* * * *

नेहरूजी केवल एक राजनीतिज्ञ ही नहीं हैं बल्कि मानव समाजके एक महान नेता हैं। वे एक दूरदर्शी शासक तथा वैज्ञानिक हैं। नेहरूजीको राष्ट्र पिताका राजनीतिक उत्तराधिकारी कहा गया है सो ठीक ही है। उन्होंने राष्ट्रकी नौकाका जिस प्रकार संचालन किया है, उससे वे सबके प्रंशसाके भाजन बने हैं।

—गोविन्द वल्लभ पन्त

* * * *

जवाहरलालकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति इस सत्यकी द्योतक है कि भारतका प्रभाव विश्वमें कितना व्यापक हो चुका है। आज वे भारतीय जनसमुदायके आदर्श हैं। जवाहरलालका प्रभावशाली और सुन्दर व्यक्तित्व, उनका साहस-प्रेम, उनकी स्फूर्ति और कार्य दक्षता नौजवानों को बरबस अपनी ओर खींचती है, और यही कारण है कि आज जवाहरलाल एक सर्वजन प्रिय नेता हैं।

—नरेन्द्रदेव

* * * *

जवाहरलालका व्यक्तित्व अत्याधिक आकर्षक है। भारतके कोटि कोटि लोग उन्हें पूज्य मानते हैं और उन्होंने जवाहरलालको आसामके घने जंगलों और बम्बईके चहल पहल नगरके बीच समान-रूपसे गरजते सुना है।

भारतीय उन्हें भारतका हृदय सम्राट मानते हैं। वे बड़े साहसी हैं और आपद विपदसे वे कभी विचलित नहीं होते।

—जॉन गुन्थर

* * * *

जवाहरलालका जीवन सबोंके पढ़ने और समझनेके लिये एक खुली किताब है। आज जवाहरलाल इस युगके एक महान नेता हैं जिनके हृदयमें भारतीय स्वतन्त्रताके लिये उतना ही उत्कट प्रेम है जितनी विदेशी शासनके लिये असीम घृणा। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राममें हमें विजय मिल चुकी है, जिसमें नेहरूजीने वीरतापूर्वक हिस्सा लिया। उनकी विचारधारा बड़ी परिष्कृत है और मस्तिष्क अत्यधिक सांस्कृतिक है। उनका स्वभाव उदार है और विरोधियोंके प्रति भी उनके हृदयमें सदा सहानुभूति रहती है।

—मिर्ज़ा इस्माइल

* * * *

महात्मा गांधी व नेहरूजीका सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि भगवान कृष्ण व अर्जुनका था। जैसे अर्जुन भगवान कृष्णके उपदेशोंको मानकर कार्य करते थे, वैसे ही नेहरूजी भी महात्मा गांधी द्वारा दी गई शिक्षा पर चल रहे हैं। इस समय सारी दुनिया नेहरूजीकी महानताको समझती है।

—एस० के० पाटिल

भूमिका

प्रयागके आदर्श हिन्दी पुस्तकालयके अध्यक्ष पं० गिरिधर शुक्ल पं० जवाहरलाल नेहरूजीका हिन्दीमें जीवन-चरित्र निकाल रहे हैं, यह देख प्रसन्नता हुई। यह पुस्तक काफी बड़ी है और हिन्दीमें इस विषयकी इतनी बड़ी पुस्तक मेरे देखनेमें अब तक नहीं आयी है। इसमें हालमें मनायी गयी वर्ष-गांठ तक पंडित नेहरूजीके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी महत्वपूर्ण बातोंका समावेश है। वैसे तो पं० जवाहरलाल एक सच्चे कर्मयोगी हैं और भगवतगीताके शब्दोंमें दूसरोंके कल्याणके लिये सदैव कर्म करते रहना, कर्मफल अनासक्तिके साथ निष्काम करना और अपने सुख-दुःखका कुछ भी ध्यान न कर सदैव कर्म करते रहना ही जिन नेहरूजीके जीवनका मूलमंत्र बना हुआ है, उनका सम्पूर्ण जीवन-चरित्र लिखनेका साहस कर ही कौन सकता है, फिर भी शुक्लजीने अपनी इस पुस्तक द्वारा गागरमें सागर भरनेका जो प्रयत्न किया है, वह सराहनीय है। वैसे जवाहरलालजीने 'अपनी कहानी' स्वयं लिखी है, जिसकी प्रशंसा देश-विदेशोंमें खूब हो चुकी है, पर वह वर्षों पहले लिखी गयी थी, इसलिये उसमें तभी तक की बातें हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें अबतक की बातें पढ़नेको मिलेंगी, इससे मैं समझता हूं कि इसे हिन्दी भाषा-भाषी लोग पढ़कर सन्तुष्ट होंगे।

पं० जवाहरलाल आज स्वतंत्र भारतके प्रधान मंत्री हैं। अपने अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञानके कारण इन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेसके भीतर अबसे बहुत पहले अपने लिये एक विशेष स्थान बना लिया था। मेरा विश्वास है कि भारतमें तीन ही ऐसे महापुरुष हुए है, जिन्हें सारे संसारमें ख्याति प्राप्त हुई—महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टेगोर और जवाहरलाल। प्रथम दो तो अब इस संसारमें रहे नहीं हैं, इसलिये यह कहना शायद गलत नहीं होगा कि हमारे नेता जवाहरलालका विश्वपर आज एक खास प्रभाव है। जब राष्ट्रमंडलके प्रधान मंत्रियों की कानफरेंसमें भाग लेनेके लिये अभी हालमें नेहरूजी लन्दन गये थे, उसके ठीक पहले भारतके भूतपूर्व गवर्नर जेनरल लार्ड माउण्ट बैटनने जवाहरलालको सबसे बड़ा राजनीतिक बताया था। पीछे उस कानफरेंसमें तथा पेरिसमें संयुक्त राष्ट्रसंघकी असेम्बलीके अधिवेशनके लिये समवेत विश्वके राजनीतिज्ञ जब इनके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें आये, तब उन्हें भी नेहरूजीकी असाधारण राजनीतिज्ञताका प्रत्यक्ष अनुभव हो गया और उस असेम्बलीमें नेहरूजीका भाषण कराके उन लोगोंने किस तरह इनका सम्मान किया, ये सारी बातें इस पुस्तकमें पढ़नेको मिलेंगी।

गवर्नमेंट हाउस, कलकत्ता
११ दिसम्बर, १९४८ (गवर्नर पश्चिमी बंगाल)

राष्ट्र नायक
जवाहरलाल नेहरू

जन नायक जवाहरलाल

भारतमें आज जन-शक्ति सजीव है, और वह भी शेष संसारके साथ एक नवीन उन्नतिशील पथ और प्रगतिकी ओर अग्रसर है। अनेक साम्राज्योंके उत्थान-पतनकी यह भारतीय रंगभूमि, बड़ी-बड़ी लोमहर्षक घटनाओंसे कभी खाली नहीं रही, पर भूतकालके कोई भी राजनीतिक संघर्ष या परिवर्तन, जनताकी अमर-आत्माको कभी विचलित या स्पर्श न कर सके। वह आज भी वैसी ही सजीव और प्रबल है, जैसी सहस्र वर्ष पूर्व थी।

जनताके राष्ट्रीय आन्दोलनको प्रगतिशील बनानेमें जिन अनेक योग्य नेताओंने योग दिया, उनमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और महात्मा मोहनदास कर्मचन्द्र गांधी, ऐसे दिव्य सन्देश लेकर आये कि जनता स्वयं ही आतुरताके साथ उनकी ओर आकर्षित

हुई। एकने यदि "स्वराज्यको अपना हक" बताया, तो दूसरेने उस 'हक' को पूरा कर दिखाया। पर जनताका वास्तविक विराट आन्दोलन माहात्मा गांधीके समयमें बढ़ा, जब कि वे गांवोंमें जनताको "जनताके शासन" का महत्व सुनाने और समझाने लगे। उन्होंने जनताकी समस्याओं पर नया प्रकाश डाला, और उन्हें सुलझानेके लिये नये उपाय बताये। गांधीजीके इन समस्त कार्योंमें पंडित जवाहरलाल नेहरू, एक प्रमुख सहायक और जन-आन्दोलनके एक अग्रगामी नेता रहे हैं। वे गांधीजीके भक्त शिष्य थे, और उनके पद-चिन्हों पर इतना अधिक चलते थे कि गांधीजीके जीवनकालमें ही लोगोंने उन्हें गांधीजीका योग्य उतराधिकारी समझ लिया था।

महात्मा गांधीके सत्य और आत्मत्यागके साथ जवाहरलाल नेहरूका भी तप और त्याग देश-हितमें बढ़ने लगा। जनताकी दृष्टि अपने इस बीर साहसी नेता पर बराबर रही, जिसने निज सुखों और स्वार्थोंको त्याग जन-आन्दोलनमें ही अपनेको मिला दिया था। जनता उनमें अपने भावोंका प्रतिबिम्ब देखने लगी और महात्मा गांधीके समयसे ही वह उन्हें अपना विश्वस्त नेता और नायक मानने लगी। जनताके हितैषी जन-नायक जवाहरलाल उज्ज्वल कामनाओंके साथ एक आदर्श रूपमें इस तरह सामने आये कि जनता उनका अनुकरण करने और उनके पद-चिन्होंपर चलनेके लिये व्यग्र और उत्सुक हो उठी।

लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधीकी तरह जवाहरलाल

नेहरूकी भी विचारशैली मौलिक और कार्यपद्धति व्यापक रही है। उनकी वाणीमें एक विचित्र प्रभाव और जादू है, जिससे जनता उनके मुखसे अपने स्वार्थोंकी मार्मिक समीक्षा सुनकर सहज ही में वशमें हो जाती है। एक चीनी महानुभाव श्री लिन-युतांगने यह सच ही कहा है कि 'जनता नेहरूकी वाणी है, नेहरू गांधीकी, और गांधी केवल ईश्वरकी वाणी सुनते हैं।' इस तरह जनता और नेहरूजीने महात्मा गांधीसे जो कुछ सुना और सीखा, वह सब ईश्वरकी ही प्रेरणा और देन है।

एक प्रज्वलित नक्षत्रके निकट किसी अन्य तारेकी चमक मन्द पड़ जाती है, पर महात्मा गांधीके साथ नेहरूजीकी चमक दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती रही। गांधीजीके बाद नेहरूजीने उनका कार्य और उत्तराधिकार सफलता पूर्वक संभाला। वे जिस स्वतंत्रताके लिये गगनभेदी गर्जनामें जनताको प्रोत्साहित करते, उसे वे अपने ही जीवन-कालमें प्राप्त करके रहे। वे वास्तवमें देशकी आशा और महत्वाकांक्षाके प्रतीक हैं।

नेहरूजीका जन्म यद्यपि एक धनी काश्मीरी परिवारमें हुआ, पर वे मनसे साम्यवादी और चित्तसे गरीब श्रमजीवियोंके मित्र हैं। उनका आश्चर्यजनक सुन्दर मुखमंडल बहुत ही चित्ताकर्षक है, जो एक अपूर्व तेजसे सदा तमतमाया करता है। वे कुछ दुबले-पतले छरहरे बदनके स्वस्थ, कुछ लम्बे और बलिष्ट पुरुष हैं। उनके पतले बन्द ओंठ, विशुद्ध आर्योंकी-सी कुछ ऊंची नासिका और चमकते हुए स्थिर नेत्र विवेक और दृढ़ निश्चयके परिचायक हैं। उनकी

पैनी दृष्टि जैसे दूसरोंके दिलोंकी तलाशी लेती है। उनका उन्नत ललाट और लाल कमल-सा खल्वाट मस्तक विद्या, बुद्धि और विवेकका भंडार मालूम होता है। उनकी ध्यानावस्थित स्थिर मुद्रा और भृकुटिकी विकट तीव्र भावभंगी जैसे एक साथ ही शान्ति और क्रान्तिकी वर्षा करती है। उनके गहरे नेत्रोंकी अलौकिक कान्ति उनके शुद्ध अन्तःकरणकी स्पष्ट द्योतक है और उनकी मीठी सहानुभूति पूर्ण मुस्कुराहट सहस्त्रों दिलोंको अपनी ओर हठात खींच लेती है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने नेहरूकी तुलना अक्षय यौवनसे की है --ऐसा यौवन जो आयु और काल गणनाके वर्षों पर सदा मौसम बहारकी तरह लहलहाया करता है।

इस समय उनकी आयु लगभग ६० वर्षकी है, और प्रधान-मंत्रीका कार्यभार संभालते हुए वे कुछ अधिक चिन्ताग्रस्त रहते हैं, इसलिये वे कुछ दुबले भी हो गये हैं, पर उनकी सुन्दर मुखाकृतिमें अक्षय यौवन और भी देदीप्यमान होकर कल्लोल करता है। उनकी गणना संसारके सर्वश्रेष्ठ विद्वानों और राजनीतिज्ञोंमें है। वे उच्च कोटिके सांस्कृतिक गुणोंसे सम्पन्न अत्यन्त ही सभ्य और संयमी नर-पुंगव हैं। उन्हें पर्वतों, बादलों, नदियों और बच्चोंके मृदु हास्यसे प्रेम है। वे अनियमित कार्यों और अनुशासनहीनता से घृणा करते हैं। वे मानसिक शक्ति और शारीरिक तथा चरित्र बलके प्रशंसक हैं। अनाचार और अत्याचार किसी रूपमें कहीं भी हो, उससे उनका हृदय विदीर्ण हो जाता है। उन्हें क्रोध भी आता है, तब वे स्वयं निर्दयता पूर्वक अपना ही विश्लेषण करते हैं।

वे चाहते तो राजाओंकी तरह विलासिता और ऐश्वर्यका जीवन व्यतीत कर सकते थे, पर एक राजनीतिक विद्रोहीके रूपमें उन्होंने अधिकतर कारावास ही पसन्द किया है।

वे किसी धर्म या साम्प्रदायिक सिद्धान्तको नहीं मानते, पर तो भी उनके सब कार्योंमें कट्टर धार्मिक जोशकी तरह प्रबल उत्साह रहता है। उनके आसपास ऐसा अध्यात्मिक वातावरण नहीं रहता जैसा महात्मा गांधीके चारों ओर रहा करता था। तो भी वे एक ऊंचे अध्यात्मिक हैं, और कुछ गहरे रहस्यवादके परदेमें छिपे-छिपेसे रहते हैं। वे अपने पागल प्रेमियों और प्रशंसकोंको सदा गज भरकी दूरी पर रखते हैं। किसीके लिये भी उनकी मिथ्या चापलूसी या खुशामद करके उन्हें प्रसन्न करना असम्भव है। वे शब्दोंसे नहीं बल्कि कार्योंसे मनुष्यकी परख करते हैं। मिथ्या ढोंगी तो उनके पास तक पहुंच भी नहीं सकता।

नेहरूजी एक क्रान्तिकारी भारतके प्रतिनिधि ही नहीं, प्रतिबिम्ब हैं। गांधी और लेनिनकी तरह उन्होंने मूक जनतामें क्रान्तिकारी भावनाएं भरी हैं, और लेनिनकी ही तरह उन्होंने भी गरजकर कहा है, कि "पददलित जनताको विद्रोह करनेका हक है।" वे स्वतंत्रताके योद्धाओंमें केवल एक ही गुण देखते हैं, और वह यह कि उनमें कितना साहस है। वे उस साहससे काम लेना जानते हैं। उन्होंने वर्षों देशका तूफानी दौरा करके, गांवों तथा झोपड़ोंमें घूम-घूम करके दलित जनताके कष्टोंको देखा, उनकी महत्वाकांक्षाओंको समझा

और उन्हें साहसी बनाया। वे जनतासे मिलकर एक हो जाते हैं। जनता उनका दर्शन करनेके लिये दीवानी-सी रहती है।

जहाँ कहीं भी नेहरूजी जाते हैं वहीं जैसे एक राजधानी बन जाती है। असंख्य जन-समूह उन्हें देखनेके लिये अशान्त समुद्र की लहरोंकी तरह उमड़ पड़ता है। लोग छतों, छज्जों, पेड़ों और दीवारों पर चढ़कर उनकी एक आभा और झलक भर देखनेके लिये लालायित रहते हैं। पर वे जनताकी ऐसी अंधभक्ति पसन्द नहीं करते, जैसी जर्मन जनता हिटलरके प्रति किया करती थी।

नेहरूजी भारतके परम भक्त हैं, पर उन्हें संसारके सभी देशोंसे प्रेम है। वे अपनी अन्तर्राष्ट्रीय विचार-धाराके कारण विश्व-ख्याति के नेता हो गये हैं। वे अपनी व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय अनुभूति और सहानुभूतिके कारण अन्य नेताओंसे कुछ पृथक्-से लगते हैं। उन्होंने संसारकी स्थिति और राजनीतिको ध्यानमें रखकर अपने देशकी राजनीतिको एक नवीन और सुव्यवस्थित क्रान्तिके सांचेमें ढाला है। उन्होंने लोगोंको खतरोंसे खेलना सिखाया है, ऐसे खतरे जिनमें प्राणोंकी बाजी लगा देना भी तुच्छ है।

नेहरू परिवार

जवाहरलाल नेहरूका जन्म १४ नवम्बर १८८९ ई०, को प्रयागमें हुआ था। वे एक प्रतिष्ठित काश्मीरी ब्राह्मण वंशके हैं, और उनके पिता पण्डित मोतीलाल नेहरू प्रयागके एक सर्वश्रेष्ठ वकीलोंमें थे। लगभग दो शताब्दी पूर्व, १८ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें उनके पूर्वज श्री राजकौल बादशाह फरुखसियरके साथ दिल्ली आये थे। वे मुगल साम्राज्य के पतनके अन्तिम दिन थे, औरंगजेब मर चुका था और फरुखसियर दिल्लीका बादशाह था। श्री राजकौल संस्कृत और फारसीके एक अच्छे विद्वान् थे, और फरुखसियर जब काश्मीर गया तो उसकी दृष्टि श्री राजकौल पर पड़ी। वह उनकी विद्वत्तासे प्रभावित हुआ, और कदाचित उसीके कहनेसे लगभग सन् १७१६ में श्री राजकौल सपरिवार राजधानी दिल्ली चले आये। उन्हें बादशाहकी ओरसे एक घर और कुछ जागीर मिली। घर एक नहरके किनारे था, इसलिये उनका नाम नेहरू पड़ गया। कौल उनके वंशका उपनाम था, जो अब बदलकर कौल-नेहरू हो गया, और बादमें धीरे-धीरे कौल उड़ गया और केवल नेहरू रह गया।

वह एक राजनीतिक उथल-पुथलका युग था, जिसमें नेहरू का वैभव जाता रहा और जागीर भी नष्ट हो गई। जवाहरलालके परदादा पं० लक्ष्मीनारायण नेहरू दिल्ली-सम्राटके दरबारमें कम्पनी सरकारके पहले वकील नियुक्त हुए। लक्ष्मीनारायणके पुत्र गंगाधर नेहरू सन् १८५७ के विद्रोहके कुछ पहले दिल्लीके कोतवाल थे, और सन् १८६१ में ३४ वर्षकी आयुमें उनकी मृत्यु हुई थी। सन् १८५७ के विद्रोहके बाद मुगल साम्राज्य, अंग्रेजोंसे अन्तिम लड़ाई लड़नेके पश्चात नष्ट हो गया। जो लोग इस साम्राज्यसे चिढ़ते थे, उन्होंने अंग्रेजोंका साथ दिया, इस तरह अंग्रेजोंको अपना प्रभुत्व बढ़ानेमें आसानी हुई। उस उथलपुथलके समय बहुतेरोंका सब कुछ-माल, जायदाद, दर्जा आदि नष्ट हो गया, और नेहरू-वंशका भी दिल्लीसे सब सम्बन्ध टूट गया। वंशके जरूरी कागज पत्र और दस्तावेज नष्ट हो गये, और इस तरह सब कुछ खोकर नेहरू वंश दिल्ली छोड़ने और आगरा जाकर बसनेके लिये मजबूर हुआ।

उस समय मोतीलालजीका जन्म नहीं हुआ था, पर जवाहर-लालजीके दो चाचा जवान थे, और वे कुछ अंग्रेजी जानते थे। इस अंग्रेजी भाषाकी जानकारीके कारण उनके प्राण बच गये। वे कुछ लोगोंके साथ दिल्लीसे कहीं जा रहे थे, और उनके साथ उनकी एक छोटी बहन भी थी जो काश्मीरी बच्चोंकी तरह बड़ी गोरी और सुन्दरी थी। मार्गमें कुछ अंग्रेज सैनिक मिले, और उस गोरी लड़कीको उनके साथ देखकर उन्हें सन्देह हुआ कि यह

किसी अंग्रेजकी लड़की है, जिसे ये लोग अपने साथ भगाये लिये जाते हैं। उन दिनों मामूली तौर पर मुकदमा करके प्राणदण्ड दे देना एक सामान्य सी बात थी। पर चाचाके अंग्रेजी ज्ञानने सहायता दी, और संयोगसे उधरसे गुजरनेवाला कोई व्यक्ति उन लोगोंको जानता था, और उसने सबके प्राण बचाये।

नेहरू वंशके लोग कुछ वर्ष तक आगरामें रहे, और वहीं ६ मई, १८६१ में मोतीलालजीका जन्म हुआ। (महाकवि श्री रविन्द्रनाथ ठाकुरका भी उसी दिन, उसी महीने और उसी वर्षमें जन्म हुआ था) पर वह अपने पिताकी मृत्युके तीन महीने बाद पैदा हुए थे। जवाहरलालजीके दादा पण्डित गंगाधर नेहरूका एक छोटा चित्र नेहरू परिवारमें सुरक्षित है, जिसमें वह मुगलोंका दरबारी लिबास पहिने और हाथमें एक टेढ़ी तलवार लिये हुए हैं। उसमें वह एक मुगल सरदारकी तरह लगते हैं। परिवारके भरण-पोषणकी जिम्मेवारी जवाहरलालके दो चाचाओं पर आ गई थी, जिनके नाम वंशीधर नेहरू और नन्दलाल नेहरू थे। वंशीधर अंग्रेज सरकारके न्याय विभागमें नौकर थे, और नन्द-लाल राजपूतानामें खेतड़ी राज्यके दीवान थे। बादमें उन्होंने कानूनका अध्ययन किया और आगरामें वकालत करने लगे। उन्हींकी छत्रछायामें मोतीलालजीका लालन-पालन हुआ। नन्द-लाल नये हाईकोर्टमें वकालत करनेके लिये जाया करते थे, और जब हाईकोर्ट इलाहाबाद चला गया तो नेहरू परिवार भी इलाहा-बाद आकर बस गया। नन्दलालजी हाईकोर्टके एक सुप्रसिद्ध

वकील थे। मोतीलालको प्रारम्भमें फारसी और अरबीकी शिक्षा मिली थी, बादमें उन्होंने कालेजमें अंग्रेजी शिक्षा पाई थी।

इसके बाद मोतीलालजी हाईकोर्ट-वकालतकी परीक्षामें बैठे, और प्रथम श्रेणीमें वे सबसे पहले थे। इसके लिये उन्हें एक स्वर्ण पदक भी पारितोषिक में मिला था। उन्होंने पहले कानपुरकी जिला अदालतोंमें वकालत शुरू की, तीन वर्ष बाद वे इलाहाबाद हाईकोर्टमें आकर वकालत करने लगे। मोतीलालजीको इस समय कुश्ती और दंगल करानेका भी खास शौक था। इस बीचमें पं० नन्दलालका देहान्त हो गया, और अब एक परिवारका सारा बोझ मोतीलालजी पर आ गया। नन्दलालजीके प्रायः सब मुकदमे मोतीलालजीको मिले, और इसमें उन्हें इतनी सफलता मिली कि उन्हें आगे भी बराबर मुकदमे मिलने लगे। उनकी वकालत दिन-ब-दिन चलने लगी, और युवावस्थामें ही वे विख्यात वकील हो गये।

भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेस उन दिनों मध्यम श्रेणीके अंग्रेजी पढ़े लोगोंकी एक संस्था थी, जिसकी ओर मोतीलालजीका भी ध्यान आकृष्ट हुआ और वे उसकी कुछ बैठकोंमें सम्मिलित भी हुए थे। वे विचारोंमें कांग्रेसवादी भी रहे, पर उसके कार्योंमें कोई विशेष दिलचस्पी न लेते थे। उनका खयाल था कि कांग्रेसमें सरगरमी दिखाने वाले अपने पेशों या कार्यक्षेत्रोंमें विशेष सफल नहीं हुए हैं। मोतीलालजीका उस समय सारा ध्येय अपनी

वकालतके पेशेमें लिप्त रहना और खूब धन कमाना था। दौलत अंधी होकर उनके पास आती थी।

आमदनी बढ़नेके साथ साथ खर्च भी राजाओंकी तरह बेहिसाब बढ़ा हुआ था। उनका रहन-सहन भी सब प्रायः अंग्रेजी ढंगका था। अंग्रेजोंके तौर तरीकोंके प्रशंसक थे और उसी तरह रहते भी थे। उनके मित्रोंमें राजा, रईस, नवाब आदि सभी तरहके लोग थे, जिनकी दावतोंमें कीमती शराबें और नाना प्रकारके नये-नये खाद्य पदार्थ सजे रहते थे। कभी-कभी हजारों रुपये नित्य उन दावतोंमें खर्च होते थे। ऐसा राजसी ठाठबाट था उस महान पिताका, जिसने जवाहरलाल सरीखे महान पुत्रको जन्म देकर देशको कृतकृत्य किया और जो स्वयं देश-सेवाके लिये सब सुख त्यागकर फकीर हो गया था। उनका धनका कमाना और धनका त्याग करना दोनों ही शिक्षाप्रद हैं।

बाल जीवन और शिक्षा

जवाहरलाल अपने पिताके इकलौते पुत्र थे, इसलिये धनी सम्पन्न परिवारमें उनका काफी लाड़ दुलार होता था, उनकी दो बहिनें विजयलक्ष्मी और कृष्णा उनसे बहुत छोटी थीं। उनके चचेरे भाई आयुमें बहुत बड़े थे और वे हाईस्कूल या कालेजमें पढ़ते थे, इसलिये बालक जवाहरके साथ घरमें खेलने-कूदनेके लिये उनकी आयुका कोई साथी या हमजोली न था। वे किसी स्कूल या पाठशालामें पढ़नेके लिये भी नहीं भेजे गये, जो उन्हें वहा कोई साथी मिलता। उन्हें घरमें अंग्रेज दाइयां पालतीं और पढ़ातीं थीं, पर तो भी उनके भरे पूरे घरमें काफी चहल पहल रहती थी।

नित्य सायंकाल उनके यहां दावतें होतीं, और मोतीलालजीके अनेक मित्र आते थे। मोतीलालजी आरामसे लेट जाते, और बड़ी जोर जोरसे हँसते थे। बालक जवाहरके मनमें कौतूहल होता कि आखिर ये लोग क्या बातें करते हैं, इसलिये वह परदेकी आड़से झांककर देखते थे। कभी कभी वह इस तरह झांकते हुए पकड़ भी लिये जाते, और पिताकी गोदमें लाकर बैठाल दिये जाते थे। अबोध बालक अपने पिताका आदर करता पर साथ ही

बालक जवाहर

उनसे डरता भी बहुत था। मोतीलालजी क्रोधी स्वभावके मनुष्य थे। नौकरों चाकरों और दूसरे लोगोंपर भयङ्कर रूपसे उन्हें बिगड़ते हुए बालक जवाहरने देखा था, और नौकरोंके साथ दुर्व्यवहार होते देख क्रोधी पिताके क्रोधी पुत्रको भी कभी कभी पितापर बड़ा क्रोध आता था। पर मोतीलालजीमें हास्य विनोदकी मात्रा अधिक थी, इसलिये वे अपने क्रोधको उसी हास्यमें पचा भी लेते थे।

उनके उग्र स्वभावकी एक घटना बड़ी विचित्र है। बालक जवाहरकी आयु लगभग ५-६ वर्षकी रही होगी। एक दिन उसने अपने पिताकी टेबलपर दो फाउन्टनपेन देखे। बालकने सोचा कि पिताजी एक साथ दोनों पेनोंको क्या करेंगे? बालक कुछ साम्यवादी विचारोंका था, उसने चटसे एक फाउन्टनपेन उठाकर अपनी जेबमें डाल लिया। इसके बाद जब मोतीलालजीने एक पेन न देखा तो उसके लिये बड़ी जोरोंसे तालाश शुरू हुई। पर भयभीत बालकने न बताया। अन्तमें पेन मिल गया, और क्रोधी पिताने पुत्रको ऐसा पीटा कि उनकी माताने कई दिन तक नन्हेंसे कोमल शरीरपर क्रीम और मलहम लगाया। सभी बच्चोंकी तरह बालक जवाहरको अपनी माताका प्रेम और विश्वास अधिक प्राप्त था।

एक अन्य व्यक्ति भी थे, जिनका बालक जवाहरको अधिक भरोसा था और वह थे मोतीलालजीके मुंशी मुबारक अली। वह बदायूंके रहनेवाले एक अच्छे सम्पन्न पुरुष थे, और १८५७ के

विद्रोहमें उनके भी बंशज ब्रिटिश अत्याचारोंके शिकार हुए थे। बालक जवाहर उनके पास लेटे हुए घण्टों अलिफलैला या सन् ५७ के विद्रोहकी कहानियां सुना करते थे। बालककी एक चाची, पं० नन्दलालजीकी विधवा पत्नी, धार्मिक स्वभावकी विदुषी महिला थीं, जो पुराने हिन्दू धर्म ग्रन्थोंका अध्ययन करती और वह जवाहरको धार्मिक कहानियां अकसर सुनाया करती थीं। होली, दिवाली, जन्माष्टमी, दशहरा आदि त्योहारोंपर घरमें अच्छी चहल-पहल रहती थी। काश्मीरियोंके कुछ खास त्योहार भी होते हैं, जिन्हें अन्य हिन्दू नहीं मानते, और उनमें सबसे महत्वपूर्ण नौरोज याने वर्ष प्रतिपदाका त्यौहार है। उस दिन घरके बच्चे अच्छे-अच्छे कपड़े पहिनकर निकलते और उन्हें खरचनेके लिये पैसे मिलते थे।

पर इन सब उत्सवोंमें एक वार्षिक उत्सव ऐसा होता, जिससे बालक जवाहरकी विशेष दिलचस्पी रहती, और वह थी स्वयं उसकी वर्षगांठ। प्रातःकाल बालकको एक बड़से तराजूपर बैठाकर अनाजसे तौला जाता, और वह अनाज गरीबोंको बांट दिया जाता था। बालकको सुन्दर बढ़िया कपड़े पहिनाये जाते और उसे अच्छी अच्छी चीजें भेंट की जाती थीं। सायंकाल धूमधामसे दावत होती और सब लोग बालकको बहुत प्यार करते तथा उसे आशीर्वाद देते थे। उस दिन बालक एक दिनके लिये पूर्ण स्वतंत्र रहता, और बादमें वह सोचता कि यह वर्षगांठ वर्षमें एकही बार क्यों होती है? उस समय उस अबोध बालकको यह क्या मालूम कि यह वर्षगांठ बुढ़ापेके आनेकी याद दिलाती है।

जवाहरलाल दस वर्षके थे तो उस समय मोतीलालजीने एक नया बड़ा मकान बनवाया जिसका नाम उन्होंने 'आनन्द भवन' रखा। यह एक बहुत ही सुन्दर भव्य भवन है, जिसमें सुख आमोद प्रमोदके लिये सभी सामग्रियां प्रस्तुत थीं। मकानमें स्नान करनेके लिये एक बड़ा-सा हौज था, जिसमें सायंकाल मोतीलालजी और उनके कुछ मित्र तैरते थे। बालक जवाहरने भी उसमें तैरना सीख लिया था। अनेक वर्षों बाद जब महात्मा गांधीके नेतृत्वमें पं० मोतीलालजी असहयोग आंदोलनमें शरीक हुए, तो उन्होंने आनंद-भवनका एक भाग कांग्रेसके कार्योंके लिये राष्ट्रको दे दिया, और उसका नाम 'स्वराज्य भवन' रख दिया। इस स्वराज्य भवनमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका प्रधान कार्यालय अनेक वर्षों तक रहा। यह ऐसा सुन्दर भवन है कि इलाहाबादमें बाहरसे आनेवाले लोग इसे देखनेके लिये अवश्य आते हैं।

जवाहरलाल जब ग्यारह वर्षके हुए तो उनके लिये एक यूरोपियन अध्यापक रखा गया, जिसका नाम एफ० टी० ब्रूक्स था। वह एक कट्टर थियासिफिस्ट थे, और श्रीमती एनी बिसेन्टके कहनेसे ही मोतीलालजीने उन्हें रखा था। ब्रूक्स तीन वर्ष तक रहे और उनके साथ जवाहरने कुछ थियासफीका भी ज्ञान प्राप्त किया और अंग्रेजीकी कितनी ही अच्छी पुस्तकें पढ़ीं। जवाहरलालको हिन्दी और संस्कृत पढ़ानेके लिये एक वृद्ध पंडितजी भी रखे गये थे, पर कई वर्ष बीत जानेपर भी जवाहरने उनसे इतनी ही संस्कृत सीखी जिसकी तुलना वे अपने लेटिनके ज्ञानसे करते हैं। तेरह वर्षकी

आयुमें जवाहर थियासफिकल सोसायटीके सदस्य होगये थे। श्रीमती एनी बिसेन्टके भाषणोंका प्रभाव बालक जवाहरपर भी हुआ। श्रीमती एनी बिसेन्टने ही उन्हें थियासफीकी प्रारम्भिक शिक्षा दी और कुछ गूढ़ चिन्होंसे उनका परिचय कराया, जो कदाचित 'फ्री मेसनरी' के ढङ्गके थे।

ब्रूक्स साहबके अलग होते ही जवाहरका थियासफीसे बहुत ही कम सम्पर्क रह गया, और थियासफीसे उनकी रुचि भी कम हो गई। थियासफिस्टोंका आरामतलब जीवन उन्हें पसन्द न था।

बालक जवाहर लड़कपनसे ही देशभक्त था, और देशकी स्वतंत्रताके लिये तभीसे उसके मनमें तरंगें उठा करती थीं। वह ब्रिटिश शासकोंसे चिढ़ता था, और अंग्रेजोंके शत्रुओंको वह दिलचस्पीके साथ देखता था। बोअर युद्धके समय उसकी सहानुभूति बेअरोंसे थी, और युद्धके समाचार पढ़नेके लिये उसे समाचार पढ़नेका शौक हुआ। इसके बाद जब रूस-जापान युद्ध हुआ तो जापानियोंकी विजय पढ़ते हुए बालकका नन्हा-सा हृदय साहस और उत्साहसे भर जाता था। इतना ही नहीं, बालकने जापान के सम्बन्धमें कुछ पुस्तकें भी मंगवाई और जापानी इतिहासका भी अध्ययन किया। पुराने जापानी बीर सामन्तोंकी कहानियां बालकको बहुत उत्साहित करती थीं।

राष्ट्रीय भावनाओंसे भरा बालक केवल भारतकी ही परतंत्रणता पर नहीं, अपितु एशियापर यूरोपीय आधिपत्यके सम्बन्धमें भी विचार किया करता था। वह यूरोपके पंजेसे एशिया और

माताका प्यारा जवाहर

भारतको मुक्त करनेकी कामना रखता था। वह वीरताके भावोंसे भरा हुआ सोचा करता था कि किस तरह एक दिन हाथमें नंगी तलवार लिये मैं भारतका स्वातंत्र्य-संग्राम लड़ूंगा। भारतियोंके प्रति अंग्रेजोंके अपमानजनक व्यवहारसे वह तिलमिला उठता। उसने अपनी आत्मकथामें लिखा है कि ' विदेशी शासकोंका दुर्व्यवहार देखकर मैं क्रोधसे भर उठता था, और जब कोई हिन्दुस्तानी भी उनपर प्रहार करता तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी।"

विदेशमें शिक्षा

(हेरो और कैम्ब्रिजमें छात्रावास)

सन् १९०५ में पंडित मोतीलालजी अपने लाडले जवाहरके साथ इंग्लैण्डके लिये रवाना हुए। उनके साथ माता स्वरूपरानी और बहिन विजया लक्ष्मी भी थी। मईके अन्तमें वे लन्दन पहुंचे। उसी समय मार्गमें जवाहरने समाचारपत्रमें जापानी जल सेना द्वारा रूसके प्रसिद्ध जंगी बाल्टिक बेड़के पराजय का समाचार पढ़ा, जिससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे ही दिन डर्बीकी घोड़ दौड़ थी, जिसे देखनेके लिये मोतीलालजी सपरिवार गये। उन्हीं दिनोंमें युवा डाक्टर मुखतार अहमद अन्सारी लन्दनके अस्पतालमें हाउस-सर्जन थे, उन्होंने वहांके विद्यालयोंमें बहुत सफलता प्राप्त की थी। जवाहरने डाक्टर अन्सारीसे वहीं पहली बार भेंट की थी।

हेरोमें इंग्लैण्डका वह महान विद्यालय है, जहां राजघरानों और बड़े-बड़े ब्रिटिश लार्डोंके लड़के पढ़ते हैं। जवाहरकी आयु उस समय १५ वर्षकी थी जो हेरोमें प्रवेश करनेकी दृष्टिसे कुछ

विदेशमें विद्यार्थी-जीवनमें जवाहरलाल

अधिक थी। पर सौभाग्यसे जवाहरको वहां जगह मिल गई। इसके बाद मोतीलालजी सपरिवार अन्य यूरोपीय देशोंका भ्रमण करते हुए भारत लौट आये।

जवाहरको हेरोमें पहले अच्छा न लगा, और घरकी याद उन्हें सताने लगी। वे पहले कभी ऐसे अजनबी लोगोंमें नहीं रहे थे। पर यह दशा अधिक दिनों तक न रही और शीघ्र ही ब्रिटिश लार्डों के लड़कोंमें उनका दिल हिल मिल गया। वे वहांके कार्यों और खेल-कूदमें भाग लेने लगे। प्रारम्भमें उन्हें नीचेकी कक्षामें भर्ती किया गया, क्योंकि उन्हें लेटिन भाषा कम आती थी, पर उन्होंने शीघ्र ही उन्नति की, और आम बातोंकी जानकारीमें वे अपने हमजोलियों से आगे ही रहते थे। वे अन्य सहपाठियोंकी अपेक्षा पुस्तकें और समाचार पत्र अधिक पढ़ते थे। बालक जवाहरने एक बार कुछ गर्वके साथ अपने पिताको यह लिखा था, कि इंग्लिश लड़के खेलों आदिमें बड़े ही सुस्त और कुन्दजेहन होते हैं।

संसारकी महत्वपूर्ण घटनाएं वे नित्य समाचारपत्रोंमें पढ़ते थे। सन् १९०६ में इंग्लैण्डमें ब्रिटिश पार्लियामेन्टका आम चुनाव हुआ जिसमें लिबरलोंकी जीत हुई और उनके नेता मि० केम्पबेल बेनटमेन प्रधान मंत्री हुए थे। यह चुनाव सन् १९०५ के अन्तमें हुआ था, और सन् १९०६ के प्रारम्भमें दर्जेके अध्यापक ने नई ब्रिटिश सरकारके सम्बन्धमें विद्यार्थियोंसे कई प्रश्न किये, जिनके उत्तर जवाहरने ठीक ठीक दिये और बहुतसी बातें बताईं। अध्यापकको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि कक्षा

भरमें एक हिन्दुस्तानी लड़का ही ऐसा निकला जो केम्पबेल बेनरमेनके मंत्रिमंडलके सब सदस्योंके नाम बता सका। अध्यापकने इसके लिये जवाहरको शाबाशी दी और उनके पठन-पाठनमें दिलचस्पी दिखाई।

राजनीतिक विषयोंके अतिरिक्त उनकी दूसरी रुचि हवाई जहाजोंसे हुई। वे प्रायः विमानोंको उड़ते हुए देखते और फिर उनपर चढ़नेके लिये आतुर हुए। उन्होंने एक बार उत्साहमें अपने पिताको लिखा था कि अब मैं विमान द्वारा प्रति सप्ताह आपसे मिलने आया करूंगा। उन दिनोंमें चार या पाँच हिन्दुस्तानी लड़के वहां और थे। दूसरी जगह रहनेवाले लड़कोंसे मिलनेका जवाहरको कम अवसर मिलता था, लेकिन जिस हेडमास्टरके साथ वे घरमें रहते थे, वहीं महाराज बड़ौदाके एक पुत्र भी उनके साथ थे। वह जवाहरसे कुछ आगे थे, और क्रीकेटके अच्छे खेलाड़ी होनेकी वजहसे वह बहुत लोकप्रिय थे। जवाहरके वहां जानेके बाद वह शीघ्र ही वहांसे विदा हो गये थे।

सन् १६०६ - ०७ का जमाना था जब कि भारतमें राजनीतिक आन्दोलन आरम्भ हो गया था। जवाहरलालको संवाद पत्रोंसे ये समाचार मिलते थे कि बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्रमें बड़ी-बड़ी घटनाएं हो रही हैं। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय और सरदार अजीतसिंहजीको देश निकालेका दंड मिला था। बंगालमें हलचल मची थी। पूनामें लोकमान्य बालगंगाधर तिलकका कार्य और नाम बिजलीकी तरह चमक रहा था, और स्वदेशी तथा

ब्रिटिश मालके बहिष्कारका गगनभेदी नाद गूंज रहा था। इन सबका असर जवाहरके मन और मस्तिष्क पर हो रहा था, किन्तु हेरोमें एक भी व्यक्ति ऐसा न था जिससे वे दिल खोलकर इन विषयों पर विचार विनिमय करते। छुट्टियोंमें वे अपने कुछ चचेरे भाइयों और अन्य भारतीय मित्रोंसे मिले, और देश सम्बन्धी उनसे कुछ बातें करनेके बाद उनका जी हलका हुआ।

सन् १९०७ के अक्टूबरमें उन्होंने केम्ब्रिजके ट्रिन्टी कालेजमें प्रवेश किया। उस समय उनकी आयु लगभग १७-१८ वर्ष की थी।

केम्ब्रिजमें जवाहरलाल तीन वर्ष तक रहे। उनका मुख्य पाठ्य विषय प्राकृतिक विज्ञान था, और रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र तक बनस्पति शास्त्रका वे अध्ययन करते थे, पर उनकी दिलचस्पी इन शास्त्रोंके बहुत आगे बढ़ी हुई थी। वे साहित्य, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्रका भी अध्ययन तथा उनपर बहस करते थे। कभी-कभी वादविवादमें उनकी ध्वनि बहुत तेज हो जाती, और बहसकी गरमागरमीमें वे अपने मित्रोंके सामने जोशमें आ जाते थे।

केम्ब्रिजमें रहनेवाले भारतीयोंकी एक सभा या 'मजलिस' थी, जिसमें वे राजनीतिक विषयोंपर बहस किया करते थे। नेहरूजी भी उस 'मजलिस' में जाते पर तीन वर्षके भीतर उन्होंने वहां शायद ही कोई भाषण दिया हो। उन्हें भाषण देनेमें संकोच मालूम होता था, जैसा कि प्रायः नवयुवकोंको हुआ करता है।

श्री एडविन मान्टेगू, जो बादमें भारत मंत्री हुए थे, प्रायः उस सभा में जाया करते थे।

भारतके कुछ सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ अपनी इंग्लैंड यात्राके समय 'मजलिस' में भी जाते और वहाँ भाषण देते थे। उन राजनीतिज्ञोंमें श्री विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय और श्रीगोपालकृष्ण गोखलेके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। लाला लाजपत राय और श्री गोखलेके भाषणोंका नेहरूपर विशेष प्रभाव पड़ा था।

भारतके सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हरदयाल उस समय आक्सफोर्ड में थे। नेहरूने अपने हेरोके दिनोंमें उनसे दो एक बार लन्दनमें भेंट की थी। अन्य भारतीय नवयुवक भी उस समय वहाँ थे, जिन्होंने आगे चलकर भारतीय राजनीतिमें अच्छा भाग लिया था। श्री जतीन्द्र मोहन सेनगुप्त कुछ पहले वहाँसे बिदा हो गए थे, पर श्री सैफउद्दीन किचलू, श्री तसद्दुक हुसैन शेरवानी और श्री सैयद महमूद नेहरूके समकालीन थे। एस० एम० सुलेमान, जो बादमें इलाहाबाद हाईकोर्टके चीफ जस्टिस हुए, उस समय केम्ब्रिज में थे।

एक अन्य सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा भी लन्दनमें थे, और उनके इण्डिया-हाउसके सम्बन्धमें नेहरूने कुछ सुना था, पर नेहरूकी उनसे उस समय भेंट नहीं हुई। वर्माजीका "इंडिया सोशलोजिस्ट" नामका संवादपत्र कभी-कभी नेहरू देख

लेते थे। इसके बहुत दिनों बाद, सन् १९२६ में नेहरूने जेनोवामें उनसे फिर भेंट की थी।

उस समय लार्ड कर्जन भारतके वायसराय थे, और उन्होंने बंगालका विभाजन किया था। उनकी इस दुर्नीतिसे बंगाल के साथ शेष भारतमें भी राजनीतिक आन्दोलनकी लहर उठी थी। लार्ड कर्जन एक महाअहंकारी पुरुष थे, और मदांध ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी तरह उनका भी यही विश्वास था कि निर्बल देशोंपर ईश्वरने इंगलैंडको शासन करनेका हक दिया है, कर्जनकी दुर्नीति और स्वेच्छाचारिताके कारण देशमें जो भीषण आन्दोलनकी लहर उठी थी उसके समाचार नेहरू बराबर पढ़ा करते थे और उनका भी मन ब्रिटिश शासनके विरुद्ध भीतर ही भीतर विद्रोहाग्निसे सुलग रहा था।

उन्हीं दिनोंमें पं० मोतीलाल नेहरूने कुछ नरम विचारोंका एक लेख किसी अङ्गरेजी पत्रमें लिखा था। युवा पुत्रने जब वह लेख पढ़ा तो वह अपने पिता पर बड़ा असन्तुष्ट हुआ, और उसने अपने पिताको लिखा कि आपके इस लेखसे अंग्रेज सरकार निश्चय ही बहुत प्रसन्न हुई होगी। पुत्रकी इस ढिठाई पर मोती-लालजी कुछ नाराज हुए, उन्होंने सोचा कि जवाहरको अब वहाँ रखना उचित नहीं और उसे अब इंग्लैण्डसे वापस बुला लेना ही अच्छा है, ताकि धृष्ट पुत्रको पिताके साथ अधिक आदर और सद्व्यवहार करनेकी शिक्षा और ताड़ना मिल सके, पर मोती-

लालजीने अपने क्रोधको शान्त किया, और जवाहरलाल पूर्ववत वहां अध्ययन करते रहे।

जवाहरलाल जब केम्ब्रिजमें थे, तभी यह प्रश्न उठा कि उन्हें जीवनमें कौन-सा उद्यम या पेशा ग्रहण करना चाहिये। यह भी सोचा गया कि वे भारतीय सिविल सर्विसमें प्रवेश करें। उस समय इस सर्विसके कर्मचारी बहुत ही उच्च श्रेणीके समझे जाते थे। पर मोतीलालजी और जवाहर भी उसके लिये कुल विशेष उत्सुक न थे। दूसरे, जवाहरकी आयु भी कम थी याने केवल बीस वर्षकी थी, और सिविल सर्विसमें आयुकी मियाद बाइससे २४ वर्ष तककी थी। उधर मोतीलालजी और उनके परिवारके लोग जवाहरके इंग्लैण्डमें अनेक वर्षों तक रहनेके कारण ऊब गये थे, और वे चाहते थे कि पुत्र अब शीघ्र ही लौट आवे। अन्तमें यही निश्चय हुआ कि जवाहर वकालतका पेशा अखत्यार करें, और इसलिये वे 'इनर टेम्पल' में भरती हो गये।

सन् १९१० में केम्ब्रिजसे अपनी डिग्री लेनेके बाद जवाहरलाल वहांसे विदा हुए। विज्ञानके अन्य तीन विषयोंमें भी वे परीक्षोत्तीर्ण हुए। अगले दो वर्ष तक वे लन्दनमें घूमते रहे। कानूनकी पढ़ाईमें अधिक समय नहीं लगता था। कुछ अन्य विषयोंकी पुस्तकोंका अध्ययन करते रहे, और 'फेबियन' तथा साम्यवादी (सोशलिस्ट) विचारोंकी ओर उनका विशेष आकर्षण हुआ।

उन्हीं दिनों इंग्लैण्डमें स्त्रियोंके मताधिकारका प्रबल आन्दोलन भी प्रारम्भ हुआ। जवाहरका ध्यान इस आन्दोलन और आयर्लैण्ड

के राष्ट्रीय आन्दोलनकी ओर भी आकर्षित हुआ। वे सन् १९१० के ग्रीष्ममें आयर्लैण्ड गये, वहां उस समय स्वतंत्रता प्रेमियोंका 'सिनफिन' आन्दोलन ब्रिटेनके विरुद्ध जोर पकड़ रहा था। वे कुछ आयरिश नेताओंसे भी मिले, और उनके 'सिनफिन' आन्दोलनसे उन्होंने सहानुभूति दिखाई।

उन्हें हेरोके पुराने मित्र मिले जो धनी अंग्रेज लार्डोंके लड़के थे। हेरोके संगीत और वहांकी परम्परा सदा ही जवाहरको प्रिय लगती और उन पुराने मित्रोंकी संगतिमें उनकी भी आदत अधिक खर्चीली हो गई। पिताजी यद्यपि उन्हें काफी रुपये भेजते, पर जवाहर इससे भी ज्यादा खर्च कर डालते थे। उनके इस बढ़े हुए खर्चसे पिताका चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। मोतीलालजीको यह भी आशंका होने लगी कि उनका लाड़ला पुत्र कहीं कुमार्गपर तो नहीं जा रहा है? पर ऐसी कोई बात नहीं थी। जवाहरलाल स्वयं यहांपर अपनी आत्म-कथामें लिखते हैं—"मैं तो केवल उन धनी किन्तु खोखले दिमागवाले अंग्रेजोंकी नकल कर रहा था, जो बड़े ठाट-बाट और शान-शौकतसे रहा करते थे। यह कहना व्यर्थ है कि इस उद्देश्यहीन सुखदायी जीवनसे मेरी किसी तरहकी कोई उन्नति नहीं हुई। पर साथ ही मुझमें अहंकारकी मात्रा कुछ अधिक बढ़ गई थी।"

युवक जवाहरलाल अपनी एक खास शानके साथ ऐसा रहते थे कि उनके सामने उनके बड़े-बड़े अभिमानी धनी मित्रोंको भी विनम्र होना पड़ता था। सन् १९१० में केम्ब्रिजसे अपनी डिग्री

लेनेके बाद वे तुरन्त ही भ्रमण करनेके लिये नार्वे रवाना हो गए। हेरो छोड़ते समय उन्हें इतना दुःख हुआ था कि उन्हें आँसू आ गए थे, पर केम्ब्रिज छोड़ते समय उनके मनमें ऐसा कोई भाव नहीं आया। वे अपने एक अंग्रेज मित्रके साथ जब नार्वे पहुँचे, तो वहाँ एक पहाड़ी प्रदेशमें घूमने चले गए। खूब थककर एक छोटे-से होटलमें पहुंचे और गरमीके कारण नहानेकी इच्छा प्रकट की। होटलवालेको उनकी यह इच्छा कुछ विचित्र मालूम हुई, क्योंकि होटलमें नहानेके लिए कोई प्रबन्ध न था। वे नहानेके लिए एक नदीमें गए और वहाँ एक दुर्घटनासे बाल-बाल बचे।

इन दोनोंको यह बता दिया गया कि पासमें ही एक पहाड़ी नदी है। दोनों नवयुवक छोटे-छोटे तौलिये लेकर नहानेके लिए गये। दोनों बेधड़क नदीमें कूद पड़े, पर नदीका जल बहुत ही ठंढा था और जमीन रपटीली थी। जवाहर रपटकर गिर गये और बरफकी तरह ठंडे पानीमें उनके हाथ-पैर निर्जीव-से हो गए। नदीकी उग्र धारा उन्हें तेजीके साथ बहाये लिए जा रही थी। उनका अंग्रेज साथी किसी तरह बाहर निकलकर उनके साथ तट पर दौड़ने लगा और अन्तमें बड़ी कठिनाईसे वह उनका एक पैर पकड़नेमें सफल हुआ। उसने उन्हें बाहर खींच लिया। इसके बाद उन्हें मालूम हुआ कि वे कैसे खतरेमें पड़ गए थे; क्योंकि वह पहाड़ी नदी दो-तीन सौ गज आगे जाकर एक विशाल चट्टानके नीचे गिरती थी। नेहरूजी अपने मित्रके साथ कुछ समय तक रमणीक नार्वेका भ्रमणकर आनन्द लेते रहे, इसके बाद वे फिर इंगलैण्ड लौट गए।

नेहरूजी : विलायतमें बैरिस्टरीकी डिगरी मिलने पर

भारतीय राजनीतिसे दिलचस्पी

सात वर्ष इङ्गलैण्डमें रहनेके बाद जवाहरलालने सन् १९१२ में बेरिस्टरी पास करली और उसी शरद् ऋतुमें वे भारतके लिये रवाना हो गये। इन सात वर्षोंके भीतर वे छुट्टियोंमें दो बार घर भी आये थे, पर अब बैरस्टरी की डिग्री लिये वे सदाके लिये वहांसे घरके लिये विदा हुए। वे लिखते हैं, कि "जब मैं जहाजसे बम्बईमें उतरा तो मुझमें कुछ बड़प्पनका अभिमान भरा था।"

सन् १९१२ के अन्तमें राजनीतिक दृष्टिसे भारतमें कोई विशेष चहल-पहल न थी। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक कारावासमें थे, और गरम दलवालोंको ब्रिटिश शासकोंने कुचल दिया था। मिन्टो मार्ले योजनाका बोलबाला था जिसके अनुसार सरकार नरम दलवालों (माडरेटों) को अपने पक्षमें मिलानेमें सफल हुई थी। राष्ट्रीय कांग्रेस माडरेटोंके हाथमें थी और उसकी प्रगति बहुत ही शिथिल तथा धीमी थी।

सन् १९१२ के दिसम्बर महीनेके बड़े दिनोंकी छुट्टियोंमें कांग्रेस का अधिवेशन बांकीपुरमें हुआ, जिसमें जवाहरलाल नेहरू एक

डेलिगेट (प्रतिनिधि) के रूपमें उपस्थित थे। उस समयके कांग्रेस अधिवेशन उच्च श्रेणीके शिक्षित हिन्दुस्तानियोंके "डिबेटिंग क्लब" की तरह थे, जहां वे अपने लच्छेदार अंग्रेजी भाषणोंके चमत्कार दिखाना ही बहुत बड़ी देश सेवा समझते थे। श्री गोपालकृष्ण गोखले दक्षिण अफ्रीकासे लौटे थे और कांग्रेसमें उपस्थित थे। उस अधिवेशनके प्रमुख व्यक्ति वही थे। नेहरूजीको वही एक ऐसे तेजस्वी व्यक्ति मालूम हुए जो राजनीतिक और सार्वजनिक विषयोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करते थे।

जवाहरलालजीने इलाहाबाद हाईकोर्टमें बैरिस्टरी करनी शुरू कर दी, और उनके सामने पिताका उच्च आदर्श उपस्थित था। वे भी यदि चाहते तो अपने पिताकी तरह या उनसे भी बढ़कर कानूनी पेशेमें धन, और यश दोनों ही कमाते, पर ईश्वरने उन्हें कुछ और ही बड़े कार्योंके लिए पैदा किया था। वे ब्रिटिश शासनके सम्बन्ध में कुछ खतरनाक विचार लेकर लौटे थे, और देशकी समस्त दुर्दशा के लिए वे उसी शासनको जिम्मेदार समझते थे। उन्होंने इंग्लैंड में रहकर अंग्रेजोंको बहुत ही निकटसे देखा और समझा था, वे उनके अनेक गुणोंके प्रशंसक भी थे, पर भारतमें उनका दुर्व्यवहार और कुशासन देखकर वे मन ही मन असन्तुष्ट होते और सोचते कि उन्हें भारतपर शासन करनेका क्या अधिकार है? भारतमें अंग्रेजी शासनके पिछले सैकड़ों वर्षोंकी अन्याय और अत्याचार पूर्ण नीतिका ध्यानकर नेहरूजीकी विचारधारा किसी अन्य दिशामें काम करने लगी। भारतीय इतिहासमें राष्ट्रीयता पैदा करनेवाले

गुण मौजूद हैं, और उन्हींके प्रभावसे नेहरूजी सरीखे सच्चे राष्ट्रीयतावादी भारतीय राजनीतिके रंगमंचपर ऐसे समयमें आये जब उनका आना देशके लिये बहुत ही आवश्यक था।

सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेसका जन्म हुआ, जो पहले एक बहुत ही नरम संस्था थी, और केवल राजभक्तिके प्रस्ताव पास किया फिरती थी। कांग्रेसका उस समय आन्दोलनकारी रूप न था, इसलिये ब्रिटिश सरकार भी उसके कार्योंसे कुछ विशेष चिन्तित न थी।

भारतमें पहली राजनीतिक हलचल सन १९०७ में हुई, जब मदान्ध लार्ड कर्जनने बंगालका विभाजन कर दिया था। उसके कारण देशभक्ति और क्रान्तिकी एक नवीन लहर सी दौड़ गई। नये नये राष्ट्रीय गान बने और नये नये राजनीतिक आन्दोलन जारी हुए। आन्दोलनकारियोंमें श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रधान थे, और उनके नेतृत्वमें आन्दोलन ऐसा प्रबल हुआ कि ब्रिटिश सरकारको अपने कदम पीछे हटाने पड़े और बंगभंग करनेकी भारी भूल सुधारी गई। पर अंगरेजोंने इस आन्दोलनके दमनके लिये जो भीषण अत्याचार किये थे उनकी यादगार भूल सुधारे जानेके बाद भी समस्त देशमें कायम रही और विदेशी शासनके विरुद्ध भारतीयोंकी विद्रोहाग्नि धधकती रही।

सन् १९१२ में जवाहरलाल नेहरू जब इंग्लैण्डसे भारत लौटे तो उन्हें अपने विचारों और जीवनमें असन्तोष मालूम होने लगा। उन्हें अपने वकालतके पेशेमें जैसे कुछ उत्साह न था।

उनके खयालसे राजनीतिका अर्थ यह था कि विदेशी शासनके विरुद्ध उग्र रूपसे राष्ट्रीय आन्दोलन हो जिसमें देशकी समस्त जनता और सभी वर्ग शरीक रहें। किन्तु उस समयकी नरम राजनीतिमें यह उग्रता कैसे आती जब कांग्रेसके कर्णधार स्वयं ही नरम (माथरेट) विचारोंके थे। नेहरूजी कांग्रेसमें शरीक हो हो गये, और उसकी बैठकोंमें जाते भी थे पर उनका मन उसमें नहीं लगता था।

उस प्रारम्भ कालमें जवाहरलालजीका ध्यान गोखलेकी सर्वेन्ट आफ इंडिया सोसायटी (भारत सेवक समिति) की ओर भी आकृष्ट हुआ, पर एक नरम नेताकी नरम संस्थामें शरीक होनेका भाव भी उनके मनमें नहीं आया। पर वे उस समितिको अच्छा समझते थे, कमसे-कम इस दृष्टिसे कि उसमें कुछ लोग एकाग्र चित्तसे देशके लिये सोचते और काम करते हैं, भले ही उनका काम पूर्णतया ठीक दिशामें न हो। नेहरूजीको गोखलेके लिये विशेष आदर था।

सन् १९१४ में यूरोपमें विश्वव्यापी महायुद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसकी ओर भारतियोंका ध्यान भी आकर्षित हुआ था। ब्रिटिश सरकारने उस युद्धमें भारतसे धन-जनकी प्रचुर सहायता जबर्दस्ती ली थी। पंजाबमें सेनाके लिये जबरन रंगरूटोंकी भरती हुई थी। युद्धके दूसरे वर्षसे ही षड़यन्त्रों और गोलियोंसे उड़ाये जानेके समाचार मिलने लगे। ब्रिटेनके "डिफेन्स एक्ट" की तरह यहाँ भी 'भारत रक्षा कानून' बना, पर वह कानून वास्तवमें

भारतकी रक्षाके लिये नहीं, वरन् भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाके लिये था। देशमें दमनकी सर्वत्र धूम थी।

पर इस दमनसे राजनीतिक जीवन दबनेके बदले उभरने और बढ़ने लगा। जनता एक चेतना शक्तिसे जागृत हो रही थी। लोकमान्य तिलक जेलसे बाहर आकर आन्दोलनमें फिर लिप्त हो गये। उनका यह अमर वाक्य "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा," देश भरमें गूंज रहा था। उधर श्रीमती एनी बिसेन्टने अपनी होमरूल लीग कायम की जिसमें नेहरूजी अधिक दिलचस्पी लेने लगे। कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनोंमें कुछ अधिक उत्साह आया, और मुस्लिम लीग भी कांग्रेसके आंदोलनमें शरीक हो गई। उस समय श्रीमती एनी बिसेण्टके नजरबन्द होनेपर शिक्षित लोगोंमें उत्तेजना आई और इससे देश-भरमें होमरूल आन्दोलनकी प्रगति बढ़ी। उनकी नजरबन्दीका नतीजा यह हुआ कि कितने ही नरमदलके 'माडरेट' लोग भी होमरूम लीगमें शरीक हो गये। पं० मोतीलाल नेहरू, जो पहले नरम विचारोंके थे, होमरूल लीगमें शरीक होकर उसकी इलाहाबाद-शाखाके अध्यक्ष हुए और धीरे-धीरे वे माडरेटोंकी विचारधारासे पूर्णतया अलग हो गये।

यह सब उस समयकी राजनीतिक प्रगति थी, पर जवाहरलाल नेहरू अभी तक खुलकर राजनीतिक और सार्वजनिक कार्योंमें आगे नहीं आए थे। उनका पहला भाषण सन् १९१५ में इलाहाबादकी एक सार्वजनिक सभामें हुआ था। सरकारने समाचार-

पत्रोंका गला घोंटनेके लिये एक कड़ा कानून बनाया था जिसके विरोधमें वह सभा हुई थी। डाक्टर तेज बहादुर सप्रू भी उस सभामें उपस्थित थे। जवाहरलालजी पहली बार सार्वजनिक मंच पर आये और उन्होंने उस कानूनके विरोधमें एक छोटा-सा भाषण अंग्रेजीमें दिया था। इस भाषणसे डाक्टर सप्रू इतना प्रसन्न हुए कि उन्होंने जवाहरलालजीको पकड़कर अपनी छातीसे लगा लिया और प्रेमसे चुम्बन किया।

जवाहरलालजीका झुकाव दिन-ब-दिन गरम दलकी ओर हो रहा था और वह भी ऐसी तेजीसे कि उनके पिताको यह आशंका होने लगी कि लड़का हाथसे निकला जा रहा है और वह उस हिंसात्मक मार्गका अनुसरण कर रहा है जिसे बंगालके क्रान्तिकारी नवयुवकों ने ग्रहण किया था। पर वास्तवमें जवाहरलालजीका आकर्षण उधर न था। तो भी, वे विदेशी कुशासनके विरुद्ध शान्ति और शिथिलताके साथ नरम आंदोलनके पक्षमें नहीं थे। उनके स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान दोनोंका यह तकाजा था कि ब्रिटिश-शासनपर प्रहार करनेके लिए अधिक उग्र उपायोंसे काम लिया जाय और उस शासनमें जो-कुछ भी भारतीयोंपर अनाचार हो रहे हैं उन्हें चुपचाप न सहन किया जाय। वे एक वीर योद्धाकी तरह राजनीतिक संग्रामके रणप्रांगणमें कूदनेके लिए बेचैन हो रहे थे।

नव दम्पति
पं० जवाहरलाल और कमला नेहरू

सहधर्मिणी कमला नेहरू

सन् १९१६ में जवाहरलाल नेहरूकी आयु जब २७ वर्षकी थी, उनका व्याह दिल्लीके एक कुलीन काश्मीरी परिवार की पुत्री कमला देवीसे हुआ। जवाहरलाल नेहरूके श्वसुरका नाम भी जवाहरलाल था, और उनका पूरा नाम पंडित जवाहरलालजी अटल था, जिन्हें जयपुरके एक प्रसिद्ध काश्मीरी ब्राह्मण पंडित जयकिशनजी अटलने गोद लिया था। बादमें पंडित जवाहरलाल अटल दिल्ली जाकर बस गये, वहीं व्यवसाय करने लगे और वहाँके एक प्रसिद्ध व्यवसायी हुए।

अटलजीको सन् १९०० में एक लड़की पैदा हुई, जो हमारे देश की एक सर्वश्रेष्ठ विभूति और नारी-रत्न कमला थी। कमलाजीका बचपन बड़े लाड़-प्यारसे बीता और भाइयोंके होते हुए भी पिताका पुत्रीसे विशेष स्नेह था। कमलाजी जब सात वर्षकी थीं तो वह अपने किसी रिश्तेदारके साथ प्रयाग गईं थीं और जार्ज टाउनमें एक बंगलेमें रहती थीं। उनकी शिक्षा किसी स्कूलमें नहीं हुई। उन्हें घर पर ही हिन्दीकी शिक्षा मिली थी। वह सुशीला, गुणवती और कुशाग्र बुद्धिकी थीं, और यह नेक भोली-भाली बालिका

मोतीलाल नेहरूको इतनी अच्छी मालूम हुई कि उसे अपनी पुत्र-वधू बनानेकी निश्चय कर लिया और ब्याहकी कुछ बातचीत भी चलने लगी।

जवाहरलाल नेहरू बैरिस्टरी पास करके लौटे थे। उन पर उस समय विलायती सभ्यता और संस्कृतिका रंग चढ़ा हुआ था और भारतीय रीति-रिवाज उन्हें बिल्कुल नापसन्द थे। पर साथ ही वे पिताके अत्यन्त आज्ञाकारी थे, इसलिये मोतीलालजीके इच्छानुसार विशुद्ध काश्मीरी पद्धति तथा रीति रिवाजसे उनका विवाह वसन्त-पंचमीके शुभ दिन बड़ी धूमधामसे सम्पन्न हुआ, जिसमें अनेक प्रतिष्ठित लोग सम्मिलित थे। विवाहके उपलक्षमें मोतीलालजी ने एक बड़ी शानदार दावत दी, जिसमें सरकारी और गैर-सरकारी सभी श्रेष्ठ व्यक्ति सम्मिलित थे।

अपने पिताकी लाडली पुत्री आनन्द-भवनमें लाडली बहूकी तरह सुखोंमें रहने लगी। घरमें ऐसा कौन था जो मोतीलालजी की लाडली बहूको प्यार न करता। उसके लिये सास-ससुरके प्रेमका तो कुछ ठिकाना ही न था। माता स्वरूपरानीकी आंखोंकी वह पुतली थी। कमलाजी भी पूर्ण हृदयसे सास-ससुरकी सेवा करनेमें अपना सौभाग्य समझती थीं। वह यद्यपि दुबली-पतली सुन्दरी और बहुत ही कोमल थीं, पर सास, ससुर और पतिकी स्वयं अपने हाथोंसे सेवा करनेमें उन्हें सुख मिलता था।

विवाहके पश्चात् जवाहरलालजी सपरिवार काश्मीरकी सैर

करनेके लिये रवाना हुए। आपने अपने परिवारको श्रीनगरमें छोड़ दिया और अपने एक चचेरे भाईके साथ पहाड़ोंपर भ्रमण करनेके लिये चले गये, जहां वे कई सप्ताह रहे। वे लद्दाखकी सड़क तक गये थे। उस भ्रमणमें नेहरूजी एक बड़ी दुर्घटनामें पड़ गये थे, जो शायद नार्वेकी दुर्घटनासे भी खतरनाक थीं। जोजिला घाटीसे आगे जब वे मातायन पहुंचे, तो उन्हें मालूम हुआ कि श्रीअमरनाथकी गुफा यहांसे केवल आठ मीलकी दूरी पर है। बीचमें हिमाच्छादित एक पहाड़ भी था। वे उस समय साढ़े ग्यारह हजार फीटकी ऊँचाई पर थे, उन्होंने अपने डेरे तम्बू वहीं छोड़ दिये और एक छोटेसे दलके साथ पहाड़ पर चढ़ने लगे। पथ-प्रदर्शक वहांका एक गड़ेरिया था।

नेहरूजी और उनके साथियोंने रस्सियोंके सहारे कई बरफीली नदियोंको पार किया। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों-त्यों कठिनाइयां भी बढ़ती गईं, यहां तक कि सांस लेनेमें भी कठिनाई मालूम होती थी। उनका सामान उठाये हुए कुछ मजूरोंके मुँहसे खून निकलने लगा, यद्यपि उनपर बोझ अधिक नहीं था। इतनेमें बर्फ गिरने लगी और बर्फीली नदियां भी प्रबल रूपसे रपटीली हो गईं। नेहरूजी दल सहित बहुत थक गये। एक-एक पग आगे बढ़ना कठिन हो रहा था, पर ये लोग उमंगमें आगे बढ़ते ही गये। उन्होंने अपना तम्बू प्रातःकाल ४ बजे छोड़ा था, और बारह घंटे तक लगातार चढ़ते रहनेके बाद उन्हें एक सुविशाल हिम सरोवर दिखाई दिया। उसके चारों ओर बर्फसे ढकी हुई पर्वत चोटियां

थीं, जैसे चन्द्राकार रूपमें देवताओंका मुकुट हो, दृश्य बहुत ही सुन्दर और रमणीक था।

किन्तु बर्फ और कोहरेके लगातार गिरनेसे यह दृश्य शीघ्र ही आखोंसे ओझल हो गया। ये लोग उस समय लगभग पन्द्रह-सोलह हजार फीटकी ऊँचाई पर पहुंच गये थे। हिम सरोवर लगभग आध मील लम्बा था, जिसे पार करके दूसरी ओर नीचेकी गुफाको जाना था। बहुत थके होने पर भी ये लोग आगे बढ़ते ही गये, पर अब इसमें बड़ा धोखा भी था, क्योंकि वहाँ दरारें बहुत सी थीं और ताजी गिरी हुई बरफने उन दरारोंको ढक दिया था। इस नई गिरती हुई बरफने हमारे बीर नायक नेहरूका अन्त ही कर दिया होता, क्योंकि उन्होंने ज्योंही उसके ऊपर पैर रखा बरफ नीचेको खिसक गई और वह धमसे एक गहरी दरारमें जा गिरी। पर खैरियत इतनी ही हुई कि उनके हाथोंसे रस्सी नहीं छूटी थी, जिसे वे मजबूतीसे पकड़े थे और फिर उन्हें जल्दीसे ऊपर खींच लिया गया। इस दुर्घटनासे उनका उत्साह कुछ शिथिल पड़ गया, तो भी वे आगे बढ़ते ही गये। किन्तु दरारोंकी संख्या और उनकी चौड़ाई आगे बढ़ती ही गई, और इनमेंसे कुछको पार करनेके लिये उनके पास कुछ साधन भी नहीं था, इसलिये अन्तमें थके-मांदे उन्हें हताश होकर लौट आना पड़ा, और श्री अमरनाथकी गुफा देखनेकी साध मनकी मनहीमें रह गई।

काश्मीरसे लौटने पर आनन्द-भवनमें पं० जवाहरलाल नेहरू का पारिवारिक जीवन बहुत ही निश्चिन्त और सुखमय था। धन

वैभव और मान सभी कुछ था, और सबसे बढ़कर यह कि उनकी सहधर्मिणी एक ऐसी आदर्श ललना थी, जो वास्तवमें उनके प्रेम और आदरकी अधिकारिणी थी। वह भी पतिको अपना आराध्यदेव मानती और तन मनसे उनकी हरतरह सेवा करती थीं।

जवाहरलालजीको स्वयं अपने शरीरकी कोई चिन्ता नहीं रहती। उन्हें अपने खाने-पीने, पहनने आदिका भी ध्यान न रहता, और वे एक बहुत ही निर्द्वन्द्व लापरवाह स्वभावके रहे हैं। कमलाजी उनके इस स्वभावको जान गई थीं, इसलिये उनकी सब आवश्यक वस्तुएँ वह पहलेसे ही जमाकर रखती थीं। उनके पतिदेव चंचल और कुछ तुनुक मिजाज भी थे, जल्दी रूठना और फिर नाराज हो जाना उनका सहज स्वभाव था, पर कमलाजीने अपनी आन्तरिक भक्ति, सद्भावना और सुन्दर सेवाओंसे उन्हें अपने वशमें कर लिया था। जवाहरलाल नेहरू संसारके सर्वश्रेष्ठ पुरुषोंमें हैं, और उनका सारा जीवन देश-सेवामें ही बीता है। उनकी रुचि और भावना समझकर कमलाजीने भी अपनेको उसी भावनामें मिला दिया था।

जवाहरलाल नेहरू भी कमलाजीको हृदयसे प्रेम करते और उनसे स्नेह तथा गुणोंका आदर करते थे। विवाहके एक वर्ष बाद कमलाजीको एक लड़की पैदा हुई, जिसका नाम इन्दिरा है। कुछ वर्षों बाद कमलाजीको एक पुत्र भी हुआ पर वह तीन ही दिन जीवित रहा। इसके बाद कमलाजी प्रायः बीमार रहतीं, और उनका स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता ही जाता था। जवाहरलालने

उनका इलाज करनेमें लाखों रुपये खर्च किये। मोतीलालजीको अपना वंश चलानेकी चिन्ता थी। उन्होंने जवाहरलालसे दूसरा विवाह करनेके लिये कहा, पर कमलाजीको वे इतना अधिक प्रेम करते थे कि उन्होंने किसी अन्य स्त्रीको अपने हृदयमें स्थान देना उचित न समझा, और दूसरा विवाह करना स्वीकार न किया।

महात्मा गांधीसे प्रथम मिलन

सन् १९१६ में लखनऊमें कांग्रेसका जो अधिवेशन हुआ उसमें महात्मा गांधी भी आये थे, और वहीं युवक जवाहरलालने पहली बार उनसे भेंट की। दक्षिण अफ्रीकामें गांधीजीने जिस वीरतासे भारतीयोंके सत्याग्रह संग्रामका संचालन करके अभूतपूर्व सफलता दिखाई थी, उसका प्रभाव जवाहरलाल नेहरूके हृदय पर बहुत पड़ा था। पर उन्हें देखनेके बाद जवाहरलालजीको ऐसा मालूम हुआ जैसे "वह बहुत अलग, और राजनीतिसे दूर रहनेवाले व्यक्ति हैं।"

गांधीजीने उस समय कांग्रेस या राष्ट्रीय राजनीतिमें भाग लेना स्वीकार नहीं किया था। उन्होंने अपना सम्बन्ध केवल प्रवासी भारतीयोंके प्रश्नसे रखा था। पर इसके बाद ही गांधीजीने सुना कि चम्पारन (बिहार) में निलहे गोरे कृषकों पर बहुत अत्याचार करते हैं। गांधीजीने तुरन्त चम्पारन जाकर सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया, और कृषकोंके दुःख दूर करनेमें उन्होंने जैसा अपूर्व साहस दिखाया। उससे जवाहरलालजीका हृदय नई उमंगों और उत्साहसे भर गया। नेहरूजीने उनकी कार्य-पद्धतिसे यह समझ लिया कि

वे भारतमें भी अपने सत्याग्रहके प्रयोग करनेके लिये तैयार हैं, जिससे नेहरूजीको राजनीतिक आन्दोलनमें भी सफलताकी आशा होने लगी।

लखनऊ कांग्रेसके बाद नेहरूजी फिर इलाहाबाद लौटे। उन दिनों श्रीमती सरोजनी नायडू इलाहाबादमें आई हुई थीं, और उनके कई ओजस्वी भाषणोंसे नेहरूजी पर बहुत प्रभाव पड़ा था। श्रीमती नायडूके बिचार राष्ट्रीयता और देशभक्तिकी भावनासे ओतप्रोत थे, और उनके भाषण नेहरूजीके लिये भूखेको भोजनकी तरह मिले थे।

नेहरूजी एक विशुद्ध राष्ट्रीयतावादी थे, पर उनके विशाल हृदय में साम्यवादी भाव भी छिपे थे, सन् १६१६ में आयर्लैण्डमें ईस्टर का जो महान विद्रोह हुआ था, उसमें बीर आयरिश देश-भक्तोंने विकट लड़ाइयां लड़ी थीं, जिनको ओर नेहरूका ध्यान आकृष्ट हुआ था। उन्हीं दिनोंमें सर रोजर केसमेन्ट नामका एक महान् प्रतिभाशाली आयरिश देश भक्त जर्मनीसे गोलाबारूद आदि शस्त्रास्त्र मंगानेके लिये पकड़ा गया था। यह व्यक्ति पहले अंग्रेज सरकारका एक उच्च कर्मचारी था और लाला हरदयालने "जर्मनी और तुर्कीमें ४४ महीने" नामकी पुस्तकमें उसकी चर्चा बड़ी ही श्रद्धाके साथ की है। १२ अप्रैलको जर्मनीसे एक जहाज गोलाबारूद लेकर आयर्लैण्डके तट पर उतरा, और उसी समय राजर केसमेन्ट जहाज सहित वहां पकड़े गये। उन पर राजद्रोहका मुकदमा चलाया गया, और उस समय उन्होंने जो आश्चर्य-जनक भाषण दिया था,

उसका नेहरूजीके दिल पर बहुत असर पड़ा। राजर केसमेन्टने अपने उस भाषणमें यह बताया था कि परतंत्र जातिवालोंके भाव विजेताके प्रति कैसे होने चाहियें। आयलैण्डका ईस्टर विद्रोह यद्यपि बिफल हो गया था, पर उस विफलता पर भी जो हँसता हुआ संसारके सामने यह घोषणा करता है कि एक राष्ट्रकी अजेय आत्माको कोई भी शक्ति नहीं कुचल सकती, वह यदि सच्चा बीर नहीं था, तो क्या था? नेहरूजी उन विचारोंसे बहुत प्रभावित हुए, और नई-नई पुस्तकोंके पढ़नेसे उनके मन और मस्तिष्कमें साम्यवादी बिचारोंके अंगारे दहकने लगे।

उनके मनमें एक संघर्ष उत्पन्न हुआ, और उन्हें अपने वकालत पेशेसे कुछ अरुचि और घृणा-सी होने लगी। एक ओर उनके उग्र राजनीतिक आन्दोलनका कार्य-क्रम, दूसरी ओर सरकारी अदालतमें यह वकालतका पेशा, दोनों एक साथ चल नहीं सकते थे। कलकत्तेके एक सुविख्यात वकील श्री रासबिहारी घोष मोती-लालजीके वड़े मित्र थे, और वे जवाहरलालजीको बहुत प्यार करते थे। उन्होंने जवाहरलालको यह राय दी, कि तुम किसी कानूनी विषय पर कोई पुस्तक लिखो, क्योंकि 'जूनियर' वकीलके लिये अपनेको 'ट्रेण्ड' करनेका यह सबसे अच्छा उपाय है। कहना व्यर्थ है कि क्रान्तिकारी विचारोंसे ओत-पोत युवकके लिये इससे बढ़कर समय नष्ट करनेवाली और कोई बात हो न सकती थी।

देश-भक्त जवाहरलाल अपने जिन उग्र विचारोंमें तल्लीन रहते उनकी खबर रासबिहारी घोष या किसीको भी न थी। उनका

वास्तविक आकर्षण जीवनमें पहली बार महात्मा गांधीकी ओर हुआ, और महात्माजीके सत्याग्रहको इन्होंने देशके लिये एक उपयोगी शस्त्र समझा। दक्षिण अफ्रीकाके बाद सत्याग्रहका चमत्कार चम्पारनमें दिखाई दिया। भारत सरीखे महादेशके सभी वर्ग और सम्प्रदाय दासता और अज्ञानताके अंधकारमें डूबे हुए थे, और किसीको स्वतंत्रताके मार्ग पर आनेके लिये कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। जवाहरलालको इस अंधकारमें केवल एक महात्मा गांधी और उनके सत्याग्रहकी एक ऐसी स्वर्ण-किरण दिखाई दी, जिसके प्रकाशमें परतंत्र देश स्वतंत्रताके पथ पर अग्रसर हो सकता था। जवाहरलाल महात्मा गांधीकी ओर अधिक झुके, और फिर बादमें धीरे-धीरे उन्होंने महात्माजीको बिल्कुल अपना लिया। देशके साथ जवाहरलाल भी महात्मा गांधीके नेतृत्वमें राजनीतिक सफलताओंकी ओर अग्रसर हुए।

क्रान्तिकारी नेहरू

बंगाल और भारतके सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता देशबन्धु चित्तरंजन दासने एक बार जवाहरलाल नेहरूको "Cold Blooded" (ठंडे खूनवाला) कहा था और सच ही कहा था। ऐसे ठंडे रक्तका मनुष्य बड़ा कठोर, निर्भीक, साहसी, निर्मम और कर्मठ स्वभावका होता है जो समुद्रमें कूद पड़ने और पर्वतोंपर चढ़ जानेके लिए बेधड़क तैयार रहता है। नेहरू सदा ही क्रान्तिकी आँधीके प्रबल वेगपर सवार रहे और समस्त अन्यायोंके विरुद्ध क्रान्ति करना ही उनके जीवनका ध्येय रहा है। वे न्यायके प्रचारक और सत्यके ऐसे सैनिक हैं कि उसकी रक्षाके लिये कोई भी मूल्य—यहाँ तक कि जीवनका मूल्य भी देनेमें वे संकोच न करेंगे। उन्होंने बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी हैं, पर हर लड़ाईमें उनका पक्ष सदा सत्य और न्यायकी ओर रहा है।

वह अपने निजी स्वार्थके वशीभूत होकर कभी कोई काम न करेंगे। अत्यन्त सुदृढ़ और साहसी हृदय होने पर भी उनके मुख पर कभी कोई उत्तेजना, चंचलता या घबराहट नहीं रहती। वह सदा जैसे एक ध्यान और शान्तिमें डूबे रहते हैं, और वही अवि-

च्छिन्न शान्ति सदा उनके चेहरे पर मुस्कुराया करती है। उनके बोलनेमें नवीनता मालूम होती है, और उनके लहजेमें एक चमत्कार प्रतीत होता है। वह सदा प्रसन्न और परिश्रमीसे लगते हैं। उनमें सर्वत्र मानसिक, शारीरिक और चरित्रका बल दिखता है। वह फांसी पर लटकने भी उसी शान्तिके साथ जायेंगे, जैसे वह अपनी कांग्रेस कार्यकारिणी या मंत्रिमंडलकी बैठकमें जाते हैं। यदि मानव जातिमें धर्म नामकी कोई चीज है, और उस धर्मका अर्थ सदा परहितके लिये परिश्रम और आत्म-त्याग करना है तो नेहरूजीमें उस धर्मकी मात्रा अत्यन्त अधिक है, उनकी सद्भावना और कल्याण-कामना केवल भारतके लिये ही नहीं, वरन् समस्त एशिया और संसारके लिये है। वह निस्सन्देह मानव जातिके एक आदर्श पुरुष हैं।

मानवताके इस वीर आदर्श-पुरुषने संसारके किसी भी क्रान्ति-कारी नेतासे क्रान्तिके फैलानेके लिये कम काम नहीं किया है। वे लेनिनकी तरह एक खुले क्रान्तिकारीके रूपमें गांव-गाँव घूमते, किसानोंके साथ खाते-पीते, उन्हींके साथ उनके कच्चे झोपड़ोंमें रहते और उनकी सभाओंमें ओजस्वी भाषण देकर मुर्दा दिलोंमें नई जानें लाते थे। स्वतंत्रताकी लड़ाई, असहयोग आन्दोलन और सभी राष्ट्रीय आन्दोलनोंके द्वारा उनकी कार्य-प्रणालीका एक मात्र ध्येय क्रान्ति फैलाना ही था।

क्रान्तिकी सफलताके लिये तीन बातें परम आवश्यक हैं। पहली, साधारण जनतामें जाग्रति उत्पन्न करना, दूसरी, निरकुंश

शासनकी आज्ञाओंकी अवज्ञा करना, और तीसरे अन्तिम प्रहार के लिये सुदृढ़ संगठन करना। अशिक्षित जनता मूढ़ और मूक होनेके कारण अपनेको बहुत ही असहाय समझती है, पर जब कोई निर्भीक क्रान्तिकारी उसमें स्वतंत्रता और क्रान्तिकी लहर फैलाता है तो वह अत्यन्त शक्तिशाली हो जाती है। दीन जनताको उसके समस्त अभावोंकी याद दिलाना, और निर्बलताके कारणोंको दूर करनेकी आवश्यकता बताना, क्रान्ति फैलानेके महत्व-पूर्ण आवश्यक अंग हैं।

नेहरूजीने एक कुशल क्रान्तिकारीकी तरह उपरोक्त सभी बातोंको पूरा किया। उन्होंने पहले जनतामें एक अभूतपूर्व जाग्रति उत्पन्न की, इसके बाद स्वयं बारम्बार कारावास जाकर सरकारी आज्ञाओं और नियमोंका उल्लंघन कर जनताको शक्तिशाली शासनका मुकाबला करना सिखाया, और यह भी बताया कि स्वतंत्रताके संघर्षमें कोई भी आत्मत्याग करना अधिक नहीं है। स्वतंत्रताके लिये खुलकर क्रान्ति करना केवल हमारा कर्त्तव्य ही नहीं, वरन् अधिकार है। उत्कट देशप्रेम और स्वतंत्रताकी प्रबल अभिलाषा मनुष्यको सीधे क्रान्ति-पथ पर लगा देती है।

नेहरूजीने एकवार झांसीकी सार्वजनिक सभामें कहा था—

"स्वतंत्रताकी पुकार भारतमें कुछ नई नहीं है, जिस दिन हमारा देश विदेशी शासनके नीचे आया, उसी दिनसे भारतमें ऐसे लोग आये हैं जिन्होंने स्वातंत्र्य संग्रामकी कल्पना की, उसके लिये कोशिश की, और अपना सर्वस्व स्वतंत्रताके लिये न्योछावर कर

दिया। सन् १८५७ का संघर्ष स्वाधीनताका ही संग्राम था, जिसमें वीरता और साहसके अनेक कार्य और चिरस्मरणीय बलिदान हुए। पर हमारे ही कुकृत्योंसे हमें उनमें सफलताकी जगह विफलता मिली। यहां झांसी नगरमें मेरा ध्यान उस रानी झांसीकी तरफ जाता है जो भयका नाम नहीं जानती थी, जो बड़ी बहादुरीसे लड़ी और प्रबल शत्रुओंका मुकाबला करती हुई, भारत और भारतीय गौरवके लिये मर कर अमर हो गई।

"एक पीढ़ीके बाद दूसरी पीढ़ी आती गई, पर कभी किसी पीढ़ी में ऐसे साहसी नर-नारियोंका अभाव नहीं था, जिन्होंने विदेशी शासनके सामने सिर झुकाने और घुटने टेकनेसे इन्कार न किया हो। इस अवज्ञाके लिये उन्हें निश्चय ही बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा, किन्तु देशक्ति और स्वतंत्रताकी उन्मुक्त धारा बहती और बढ़ती ही गई। हमारी स्मरणशक्ति निर्बल होती है और हम पिछले वीरताके कार्योंको भूल जाते हैं। जिस पीढ़ीमें हम हैं उसमें बहुतसे वीरोचित कार्य हुए हैं। कोई भी जीवित देश विदेशी शासनके नीचे अपने विजेताके साथ शान्ति पूर्वक नहीं रह सकता, क्योंकि इस शान्तिका अर्थ दासता है और दासताका अर्थ एक जीवित राष्ट्रके लिये जो-कुछ महत्त्वपूर्ण है उसका सर्वनाश है। भारतके पुत्र और पुत्रियोंने देशको विदेशी-शासनसे स्वतंत्र करनेके लिये जो अपूर्व बलिदान किये हैं, उनके द्वारा भारतने अपने जीवित रहनेका प्रमाण दिया है। भारत जब तक स्वतंत्रता

न प्राप्त कर लेगा तब तक इंगलैण्डके साथ वह कभी शान्तिसे न रहेगा।”

पं० नेहरूजीने उसी भाषणमें समाजवादके लिये भी जोर दिया और कहा कि समाजवाद क्रान्तिका एक दूसरा रूप या नाम है। आपने इसी सिलसिलेमें जनताकी शक्ति और स्वार्थोंपर कहा —

“हमें जनताके स्वार्थोंको सर्वोपरि रखना चाहिये और उनके लिये बाकी सब स्वार्थोंका बलिदान कर देना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें जनता ही राष्ट्र है। उसीकी समृद्धिपर देशकी समृद्धि निर्भर करती है। अपने आंदोलनमें जनताके प्रतिनिधियोंको प्रमुख स्थान देना चाहिये, तभी हम आंदोलनको वास्तवमें जन-आंदोलन बना सकते हैं। जिनका आर्थिक, राजनीनिक और सामाजिक क्रान्तिसे सम्बन्ध है वे ही ऐसी क्रान्ति लाते हैं। उनके पीछे परिवर्त्तनके लिये आवश्यक शक्ति होगी और वही शक्ति उन्हें विजय तक ले जायगी……मैंने बार-बार कहा है, और अब भी कहता हूँ कि मेरे विचारसे हमारी बहुत-सी सामाजिक बुराइयोंका समाधान एकमात्र समाजवाद है, इसलिये हमारा उद्देश्य समाजवाद होना चाहिये · हमें श्रम-जीवियोंका संगठन और आर्थिक तथा सामाजिक कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिये, तभी हम अपने आंदोलनको वास्तविक शक्तिशाली बना सकते हैं।”

क्रान्तिकी उन्मुक्त धारामें बहने वाले जवाहरलालजी जनताको

किसान आन्दोलन और जवाहरलाल

जवाहरलालके प्रारम्भिक जीवनमें एक बड़ी विचित्र बात यह रही है, कि गौतम बुद्धकी तरह उन्हें भी दीन हीन मनुष्योंके दुःखोंकी कुछ विशेष खबर न थी। सन् १६२० में एक सुशिक्षित युवककी तरह राजनीतिका अच्छा ज्ञान रखते हुए भी उन्हें यह ठीक तरह पता नहीं था कि कल-कारखानों और खेतोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी वास्तविक दशा क्या है? उस समय उनका राजनीतिक दृष्टिकोण कुछ मध्यम-वर्गके रईस राजनीतिज्ञोंके जैसा था, यद्यपि उन्हें यह आभास था कि देशमें व्यापक रूपसे गरीबी और बेकारी फैली है, जिसका हल राजनीतिक स्वतंत्रताके ही द्वारा सम्भव है। गाँधीजीके चम्पारन (बिहार) और खेड़ा (गुजरातके) किसान-आन्दोलनके बाद उनका ध्यान किसानोंकी समस्याकी ओर अधिक आकर्षित हुआ। उन्हीं दिनोंमें प्रतापगढ़ और अवधमें किसानोंकी अशान्ति बढ़ने लगी। पं० नेहरू वहाँ गये, और अपनी प्रभावशाली गर्जनासे उन्होंने किसानोंको क्रान्तिका सन्देश सुनाया। उन्होंने बहुतेरे गाँवोंका दौरा किया। गरमीकी दुपहरियामें सूरजकी तेजी शरीरको झुलसाये देती थी।

नेहरूजीको धूपमें चलनेकी आदत न थी। इंग्लैण्डसे लौटनेके बाद वह हर साल गर्मियोंमें पहाड़ों पर चले जाते थे। किन्तु अब तो एक सच्चे क्रान्तिकारीके रूपमें मीलों धूपमें चलते, और 'हैट' (अंग्रेजी टोपी) न लगाकर सिर पर केवल एक तौलिया रखे रहते थे। साथ में खुफिया पुलिसके आदमी भी एक डिप्टी कलक्टरके नेतृत्वमें रहते थे, जो उनके साथ धूपमें चलते-चलते, और नदी नाले पार करते-करते परेशान होते थे। इस तरह देहातोंमें लगातार घूमनेसे नेहरूजीके चेहरेका रंग बदलकर कुछ पक्का हो गया था।

असली क्रान्ति तो वही है जो अशिक्षित किसानों और श्रमजीवियोंमें की जाय, इसलिये गांधी और लेनिनने भी श्रमजीवी आन्दोलनको ही अपनी क्रान्तिका मुख्य आधार बनाया था। नेहरूने भी क्रान्ति-प्रचारके इस कार्यमें प्रमुख भाग लिया, और एक सफल क्रान्तिकारीकी तरह वे किसान आन्दोलनमें एक नई चेतना शक्ति लाये। उनको पहले अंग्रेजी भाषामें बोलने और विचार करनेका अभ्यास था, कन्तु अब वे हिन्दुस्तानी भाषामें भाषण देकर उनके स्वार्थोंको उन्हींकी दृष्टिसे समझते थे। उनके भाषणों में एक नया जोश और प्रवाह था, जिनसे किसानों पर प्रभाव पड़ता और वे समझते कि उनका दुःख सुख सुननेवाला कोई मनुष्य है। किसान उनका विश्वास करते, और उन्हें श्रद्धा-भक्ति की दृष्टिसे देखते थे।

बीच-बीचमें वे कभी अपनी बीमार माता और पत्नीको देखने के लिये मसूरी चले जाते, पर उनका दिमाग़ किसानोंकी समस्याओं

से भरा रहता, और वे उनसे फिर मिलनेके लिये उत्सुक रहते थे। मसूरीसे लौटते ही वे फिर देहातोंमें चले जाते और उन्हें यह देखकर सन्तोष होता कि किसान-आन्दोलन बराबर बढ़ रहा है। पीड़ित किसानोंमें एक नया आत्म-विश्वास पैदा हुआ और वे सिर ऊँचा करके चलने लगे। जमींदारोंके कारिन्दों और पुलिसका डर उनके दिलोंमें कम हो गया था। यदि किसी किसानका खेत बेदखल होता तो कोई दूसरा किसान उसे लेनेके लिये तैयार नहीं होता था। जमीदरोंके नौकरोंका उन्हें मारना-पीटना और कानून के खिलाफ उनसे बेगार लेना बहुत कम हो गया। जब कभी कोई घटना होती तो उसकी जाँच करनेकी कोशिस की जाती थी। इससे जमींदारोंके कारिन्दों और पुलिसके अनाचार बहुत घट गये थे। जमींदार और ताल्लुकेदार लोग घबराने लगे और अपनी रक्षाके लिये उपाय सोचने लगे। नेहरूके प्रभावसे किसान आन्दोलनका प्रबल बेग बढ़ते देख प्रान्तीय सरकारने अवध काश्तकारी-कानूनमें सुधार करनेका वादा किया। कृषक-क्रान्तिका बेग और सन्देश दूर-दूर गांवोंमें ऐसा पहुँच गया था कि किसान सरकारी आज्ञाओं पर प्रश्न और आपत्ति करनेका साहस करते थे।

सन् १९२१ में नेहरूजी गांवोंमें जाते, और अब उनका कार्य-क्षेत्र बढ़कर प्रान्त भरमें फैल गया था। गांधीजीका असहयोग आन्दोलन भी तेजीसे शुरू हुआ, जिसके प्रभावसे गाँव भी अछूते न बचे। प्रत्येक जिलेमें कांग्रेस कार्यकर्ताओंका एक दल रहता जो अहिंसात्मक क्रान्ति गांवोंमें फैलाता था। सन् १९२१ के प्रारम्भ

में पं० नेहरू नागपुर कांग्रेससे लौटे ही थे कि उन्हें रायबरेलीसे एक तार मिला, जिसमें लिखा था, "जल्दी आओ, क्योंकि यहाँ उपद्रव होनेकी आशंका है।" नेहरूजी तुरन्त रायबरेली गये। किसानों के कुछ नेताओंके पकड़े जानेसे अशान्ति फैल गई थी। किसानोंकी भारी भीड़ रायबरेली पहुँच गई, और उसे रोकनेके लिये पुलिस और फौज बुला ली गई थी। कसबेके बाहर एक छोटी नदीके उस पार किसानोंका एक बड़ा दल रोक दिया गया था, पर दूसरी तरफ से किसान लोग बराबर चले आ रहे थे।

स्टेशन पर पहुँचते ही नेहरूजीको इस परिस्थितिकी सूचना मिली, और वे तुरन्त निर्भीकतापूर्वक नदीकी ओर गये जहाँ फौज किसानोंको रोकनेके लिये तैयार थी। मार्गमें नेहरूजीको जिला मजिस्ट्रेटका लिखा जल्दीमें एक पत्र मिला कि—"आप आगे न बढ़ें और लौट जांये।" नेहरूजीने तुरन्त इस पत्रके पीछे जिला मजिस्ट्रेटको लिखा कि—"कानूनकी किस धाराके अनुसार आप मुझे वापस लौटा रहे हैं। जबतक इसका उत्तर नहीं मिलेगा, तबतक मैं अपना कार्य बराबर जारी रखूंगा।" नेहरूजी आगे बढ़े और नदीके किनारे पहुँचे। पर इसी समय दूसरे किनारेसे गोलियोंकी तड़तड़ाहटकी आवाज सुनाई दी। वे जब पुलपर पहुँचे तो फौज वालोंने उन्हें रोक दिया। नेहरूजी वहाँ ठहर गये, पर इतने ही में बहुतेरे घबराये हुए किसानोंने आकर उन्हें घेर लिया।

नेहरूजीने वहीं पर लगभग दो हजार किसानोंकी एक सभा की। थोड़ी ही दूर पर एक छोटे नालेके उस पार किसानों पर

गोलियां बरस रही थीं, और हर तरफ फौज ही फौज दिखाई देती थी, जैसे वहाँ पर कोई बड़ा युद्ध होनेवाला है। किसानोंके लिये यह असाधारण स्थिति थी। सभा सफलताके साथ हुई, और नेहरूजीने उन्हें निर्भीक रहने तथा शान्ति बनाये रखनेके लिये उपदेश दिया। किसानोंका भय कुछ कम हुआ। इसी समय जिला मजिस्ट्रेट उस स्थानसे लौटे जहाँ गोलियाँ बरसाई जा रही थीं। मजिस्ट्रेटके अनुरोध पर नेहरूजी उनके घर गये, जहाँ उन्होंने किसी न किसी बहाने दो घंटे तक नेहरूजीको रोक रखा। मजिस्ट्रेट का उद्देश्य नेहरूजीको कुछ समयके लिये किसानोंसे दूर रखनेका था। बादमें नेहरूजीको मालूम हुआ कि गोलियोंसे बहुतेरे किसान मारे गये और घायल हुए। किसानोंने भागने या पीछे हटनेसे इन्कार कर दिया था, पर उन्होंने शान्ति रखी थी।

किसानोंका आन्दोलन प्रबल वेगसे बराबर आगे बढ़ता रहा। गाँवोंमें पंचायतें आदि भी कायम हो गई थीं, और ग्रामीण लोग उन्हीं पंचायतोंके द्वारा अपने झगड़ों आदिका निर्णय कराके सन्तुष्ट हो जाते थे। रायबरेलीके जिलोंमें उन्हीं दिनोंमें किसानों पर दो बार पुलिस और फौजने गोलियाँ चलाईं, और उसके बाद प्रमुख किसान-कार्यकर्ता या पंचायतके सदस्य गिरफ्तार होने लगे। कांग्रेसकी प्रेरणासे किसानोंमें चरखा चलानेकी प्रवृत्ति आ गई थी, पर अब जिस ग्रामीणके घरमें पुलिस चरखा देखती, उसे पूरे संकट का सामना करना पड़ता था। बहुतेरे चरखे जला दिये गये। सैकड़ों गिरफ्तारियां हुईं। दमन-चक्रका वेग प्रबल हो उठा।

किसान-आन्दोलनकी सफलताका यही प्रमाण था कि सरकार की बहुमुखी दमन-शक्तियां कृषकोंको कुचलनेमें लगी थीं, यह दमन जितना ही बढ़ता उतना ही आन्दोलन भी तीव्र गतिसे उमड़ता, और देखते-देखते वह आन्दोलन देश व्यापी हो गया। कांग्रेसके अहिंसात्मक आन्दोलनके साथ जन-तंत्रवाद, समाजवाद, साम्यवाद और क्रान्तिवाद सभी तरहके आन्दोलन ब्रिटिश साम्राज्यवादकी जड़ें हिलाने लगे, और देश एक निश्चित स्थिर गतिसे स्वतंत्रता एवं समानताकी ओर अग्रसर होने लगा।

असहयोग आन्दोलनमें नेहरूजी

महात्मा गांधीके असहयोग आन्दोलनके साथ पं० जवाहर लाल नेहरू प्रारम्भसे ही थे, और उन्होंने आन्दोलनके प्रचारमें प्राणपणसे प्रयत्न किया था। यों तो अहिंसात्मक असहयोग देशके सभी दुःख दूर करनेके लिये था, पर उस समय कांग्रेस के सामने दो बड़े अन्याय थे—एक पंजाब (जलियाँवाला) का हत्याकांड, और दूसरे तुर्कीकी खिलाफत—इन्हीं दो अन्यायोंके निवारणके लिये असहयोग या सत्याग्रह आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्वमें आरम्भ हुआ था। गांधीजीने भारतके हृदयमें मंत्र फूंका, "स्वतंत्र हो जाओ, दास मत बने रहो!" भारतके कोने-कोने में यह आवाज फैल गई और उसकी प्रतिध्वनिसे राष्ट्रकी हृत्तंत्री झनझना उठी।

जवाहरलाल नेहरू असहयोग आन्दोलनके प्रारम्भ होनेसे बहुत ही प्रसन्न हुए, जैसे वे देशभक्तिके नशेमें मतवालेसे हो रहे थे। वे स्वयं अपनी आत्म-कथामें अपने उस समयके भाव इस प्रकार लिखते हैं,—"हमारे उत्साह, आशावाद और साहसका कुछ ठिकाना न था। हमें ऐसे सुख और आनन्दका अनुभव हो रहा

था जैसे हम किसी शुभ कार्यके लिये धर्म-युद्धमें जा रहे हैं। हमारे मनमें संकोच या शंकाओंके लिये स्थान न था। हमारे सामने हमारा मार्ग बिल्कुल स्पष्ट हो गया था, और हम आगे बढ़ते चले जा रहे थे। हमने प्राणपणसे कार्य करनेमें कोई कसर न उठा रखी। हमने इतना अधिक परिश्रम पहले कभी न किया था, क्योंकि हम जानते थे कि शक्तिशाली सरकारसे शीघ्र ही मुकाबला होनेवाला है, और इससे पहले कि सरकार हमें अलग कर दे (यानी जेलोंमें बन्द कर दे) हम अधिकसे-अधिक कार्य कर डालना चाहते थे।"

एक वीर योद्धाकी तरह नेहरूजीके हृदयमें स्वतंत्रताका और स्वतंत्रताके गर्वका भाव आ गया था। उन्हें अब अपने कार्योंके परिणामोंकी चिन्ता न थी। ज्यों-ज्यों उनका नैतिक तेज और साहस बढ़ रहा था। त्यों-त्यों इधर ब्रिटिश शासनका तेज और उत्साह घट रहा था। शासकोंका पुराना पालतू भारत अहिंसात्मक विद्रोहीके रूपमें अब कुछ उन्हें अपरिचित-सा दिखने लगा। आन्दोलनके वेगसे अंग्रेज अफसर सर्वत्र घबराये हुए थे। वाय-सराय लार्ड रीडिंगने तो यहाँ तक कह दिया कि इस समय "हम हैरान और परेशान हैं।" ब्रिटिश पार्लिमेन्टमें भारतमंत्री श्री मांटेगू पर, असहयोग आन्दोलन बढ़नेके कारण, प्रबल आक्षेप हो रहे थे। पर आन्दोलन बराबर बढ़ता रहा, और वह एक तीव्र प्रकाशकी तरह कुशासनसी कालिमा पर ऐसा छा गया कि निरकुंश ब्रिटिश शासकोंकी आँखे चकाचौंध हो गई, और वे किंकर्तव्य-

विमूढ़की तरह चारों ओर देखने लगे। असहयोग आन्दोलन और दमन-चक्र दोनों तेजीके साथ चल रहे थे, और इन दोनोंमें जैसे एक दूसरेसे आगे बढ़नेकी होड़ लगी हुई थी।

जवाहरलाल नेहरू जी-जानसे असहयोगमें लगे हुए थे। उन्होंने अपने सब निजी कार्य और सम्बन्ध, पुराने मित्रों और पुस्तकोंको भी कुछ समयके लिये त्याग दिया। देश और संसारकी घटनाओंको जाननेके लिये केवल समाचार पत्र पढ़ लिया करते थे। मनुष्यमें पारिवारिक मोह स्वभावसे ही कुछ अधिक होता है, पर नेहरूजीको उस आन्दोलन-कालमें अपने परिवार, अपनी पत्नी और पुत्रीको भी प्रायः भूलसे गये थे। बहुत दिनोंके बाद उन्हें यह मालूम हुआ कि—वे अपने परिवारकी कितनी कठिनाइयों और कष्टोंके कारण बन गये थे। उनकी सती साध्वी धर्मपत्नी श्रीमती कमला नेहरूने उस समय अपूर्व धैर्य और सहनशीलताका परिचय दिया था।

पर नेहरूजीकी उस समय क्या दशा थी? काँग्रेस कार्यालय, समितिकी बैठकें और लोगोंकी भीड़ तो मानो उनका घर हो गया था। आन्दोलनकी ध्वनि थी कि "गाँवोंमें जाओ।" नेहरूजी कोसों खेतोंमें चलकर और मेंड़ नाले लांघकर दूर-दूर गाँवोंमें जाते और किसानोंकी सभाओंमें पहुँचकर भाषण देते थे। उन्हें धूल-धक्कड़ और बड़ी-बड़ी सभाओंके धक्कम-धक्कामें मजा मिलने लगा। पर कभी-कभी ग्रामीणोंकी अनुशासन-हीनतासे वे मनमें कुछ चिढ़ जाते, पर उनके सरलतासे भरे देश प्रेम, श्रद्धाभक्ति पर मनमें

मुग्ध भी हो जाते थे। उन्हें भी ग्रामीण जनतासे इतना प्रेम हो गया कि वे पूर्ण आत्म-विश्वासके साथ सीधे भीड़में घुस जाते थे, और भारी जनसमुदायकी अपार भीड़में उन्हें साहस और उत्साह, प्रेम और विश्वासका समुद्र लहराता हुआ दिखाई देता था।

सन् १६२१ के वर्ष भरमें काँग्रेस कार्यकर्ताओंकी गिरफ्तारियां और सजाएँ होती रहीं। नेहरूजीके कार्योंने शासकोंमें एक हल-चल-सी पैदा कर दी, पर उन्हें सहसा गिरफ्तार कर लेनेकी हिम्मत उनमें न थी। वे धमकियोंसे उस सिंहको दबाना चाहते थे, जिसकी दहाड़से उनके दिल दहल रहे थे। अन्तमें उनके कुछ भाषणोंके लिये राजद्रोहका मुकदमा चलाये जानेकी धमकी उन्हें ग्रीष्ममें दी गई, पर उस समय उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई।

इसके बाद अंग्रेज युवराज 'प्रिन्स आफ वेल्स' के भारत आने का समाचार सुना गया, पर काँग्रेसने उनके आगमनके सम्बन्धमें की जानेवाली सब कार्रवाइयोंके बहिष्कार करनेकी घोषणा कर दी। पर सरकार प्रिन्सका धूम-धामसे स्वागत करनेके लिये अपने इरादे पर अटल थी, और इसके लिये उसने पहले काँग्रेसको दबानेका प्रयत्न किया। नवम्बरके अंत तक बंगालमें कांग्रेस स्वयंसेवक गैर-कानूनी करार दे दिये गये, और इसके बाद युक्तप्रान्तमें भी ऐसी ही घोषणा की गई। देशबन्धु चित्तरंजन दासने उस समय बंगाल को एक मर्मस्पर्शी सन्देश दिया—"मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरे हाथोंमें हथकड़ियां पड़ीं हुई हैं, और मेरा सारा शरीर लोहेकी भारी

जंजीरोंसे जकड़ा हुआ है, यह है दासताकी वेदना और यंत्रणा! सारा भारतवर्ष आज एक बड़ा कारावास हो गया है। पर कांग्रेस का कार्य हर हालतमें जारी रहना चाहिये—इसकी चिन्ता नहीं कि मैं पकड़ा जाऊँ—इसकी भी चिन्ता नहीं कि मैं मर जाऊँ या मैं जीवित रहूं!" इसके बाद बंगालमें, विशेष कर कलकत्तेमें ऐसे जोरोंका आन्दोलन हुआ कि गवर्नमेन्ट हाउसकी दीवारोंके भीतर बैठे हुए अंग्रेज अफसर थर्राने लगे, और सब यही सोच रहे थे कि अब क्या होनेवाला है?

देशके अन्य भागोंकी तरह युक्तप्रान्तमें भी आन्दोलनकी प्रगति बहुत तीव्र थी। जवाहरलाल नेहरू एक पटु नेताकी तरह सर्वत्र दौड़-दौड़ कर संगठन-कार्यमें व्यस्त रहते थे। प्रान्तीय कांग्रेसने घोषणा की कि स्वयंसेवक संगठन कायम रहेगा और दैनिक पत्रोंमें स्वयंसेवकोंकी नामावली भी प्रकाशित कर दी गई। इस सूचीमें सबसे पहला नाम पंडित मोतीलाल नेहरूका था। वह यद्यपि स्वयंसेवक नहीं थे, पर केवल सरकारी आज्ञाकी अवज्ञा करनेके लिये उन्होंने स्वयंसेवकोंमें अपना नाम दे दिया। दिसम्बरके प्रारम्भमें, युक्तप्रान्तमें अंग्रेज युवराज आनेके कुछ दिन पहले धर-पकड़ और सामुहिक गिरफ्तारियां होने लगीं।

सब परिस्थितियोंको देखते और समझते हुए जवाहरलाल नेहरूने यह जान लिया कि अन्तिम पासा अब पड़ चुका है और कांग्रेस तथा सर ारमें जोर आजमाई शुरू होने ही वाली है, वे इस अनिवार्य संघर्षके लिये तैयार थे। अभी तक जेल उनके लिये

एक अपरिचित जगह थी। एक दिन वे इलाहाबादके कांग्रेस कार्यालयमें कुछ देर तक बैठे हुए सब कार्य देख रहे थे, इतने ही में एक कांग्रेस क्लर्क कुछ घबड़ाया हुआ आया और उसने कहा कि पुलिस तलाशीका वारण्ट लिये हुए आ गई है और कार्यालयकी इमारतको घेर रही है, इस पर नेहरूजी भी कुछ उत्तेजित हुए, क्योंकि उनके लिये यह पहला अनुभव था। किन्तु उन्होंने तुरन्त दृढ़ता और शान्तिकी मुद्रा धारण किये हुए उस क्लर्कसे कहा कि जब पुलिस कार्यालयके कमरोंकी तलाशी ले, तो तुम उसके साथ रहना।

इसके बाद नेहरूजीने शेष कर्मचारियोंसे अपना काम सदाकी भांति करने और पुलिसकी ओर बिल्कुल ध्यान न देनेकी हिदायत की। कुछ देर बाद एक कांग्रेसी मित्र पुलसिकी हिरासतमें नेहरूजी से विदाई लेनेके लिये आये। नेहरूजीने पुलिस अफसरोंसे कहा कि मैं जब तक अपनी एक चिट्ठी पूरी न करलूं, तब तक ठहर जाओ। नेहरूजीको सहसा घर (आनन्द-भवन) जाकर वहांकी स्थिति देखनेका खयाल आया और वे घरकी ओर रवाना हुए। उन्होंने वहां भी पुलिसमैनोंको सर्वत्र फैला हुआ देखा। पुलिस विशाल आनन्द-भवनके लम्बे-चौड़े भागोंकी तलाशी लेनेमें व्यस्त थी। नेहरूजीको वहां यह मालूम हुआ कि पुलिस उन्हें और पं० मोती-लालजीको गिरफ्तार करनेके लिये आई है, थोड़ी देर बाद पिता और पुत्र दोनों गिरफ्तार हुए और दोनोंको ६-६ महीनेकी सजाएँ दी गईं।

दूसरी बार गिरफ्तारी और सजा

पिता और पुत्र साथ ही जेलमें रहे, पर तीन महीने बाद जवाहरलालजी रिहा कर दिये गये, क्योंकि उनके मामले पर पुनः विचार करने वाले न्यायाधीशोंको यह मालूम हुआ कि उन्हें सजा गल्तीसे दे दी गई है, इसलिये उन्हें छोड़ देनेकी आज्ञा हुई। नेहरूजीको जब यह मालूम हुआ तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि मामले पर पुनः विचार करनेके लिये उनकी ओरसे कोई दरख्वास्त नहीं दी गई थी। पिताको जेलमें छोड़ कर जवाहर-लालजीको बाहर आनेमें बड़ा दुःख हुआ।

जेलसे छूटते ही जवाहरलाल नेहरूकी महात्मा गांधीसे मिलने की उत्कट इच्छा हुई, पर उनके अहमदाबाद पहुंचनेसे पहले ही गांधीजी गिरफ्तार हो चुके थे गांधीजीका जब मुकदमा हुआ तो नेहरूजी उस समय अदालतमें मौजूद थे। जज कोई अंग्रेज था और उसने गांधीजीको लम्बी मियादकी सजा दी थी।

गांधीजीको सजा मिलनेके बाद नेहरूजी साबरमती जेलमें जाकर उनसे मिले। इसके बाद नेहरूजी प्रयाग लौट गये, पर उन्हें इस पर बहुत ही दुःख था कि उनके पिता, म० गांधी और

अन्य अनेक मित्र तो जेलोंमें बन्द हैं और वे (नेहरूजी) जेलसे बाहर हैं। लाचारी थी ! नेहरूजीने बाहर रह कर अपना ध्यान कांग्रेसके संगठन-कार्यमें लगाया। इस बार उन्होंने विलायती वस्त्रके बहिष्कारमें अधिक दिलचस्पी ली। उन्होंने इलाहाबादके कपड़ेके व्यापारियोंसे यह प्रतिज्ञा कराई कि वे न तो देशके भीतर किसीसे विलायती वस्त्र खरीदेंगे और न इंग्लैण्डसे वस्त्र मंगवायँगे। प्रतिज्ञा भंग करने वालेके लिये जुर्मानेकी सजा निश्चय की गई थी। पर बादमें नेहरूजीने देखा कि बड़े-बड़े व्यापारियोंने प्रतिज्ञा भंग कर दी और वे फिर विलायतसे माल मंगाने लगे। नेहरूजीको उनकी यह वादा-खिलाफी बहुत बुरी मालूम हुई और उन्होंने उन व्यापारियोंको शिक्षा देनेका निश्चय किया। उनकी दूकानों पर धरना दिया गया और इससे व्यापारी लोग दुरुस्त हो गये। उन्होंने जुर्माने दिये और विलायती वस्त्र न खरीदनेकी फिर प्रतिज्ञा की। जुर्मानेसे मिला रुपया दुकानदारोंके मंडलको दे दिया गया।

नेहरूजीके ये कार्य सरकारको फिर खटकने लगे और उसने उन्हें स्वतन्त्र न रहने देनेका निश्चय किया। नेहरूजी कई साथियों सहित गिरफ्तार किये गये, उन पर जबर्दस्ती रुपया ऐंठने और लोगोंको डराने-धमकानेके अभियोग लगाये गये। राजद्रोहके साथ कुछ और भी अभियोग थे। नेहरूजीको तीन अभियोगोंके लिये दंड दिये गये, जिनमें जबर्दस्ती रुपया ऐंठने और लोगोंको धमकानेका भी अभियोग था। नेहरूजीने अदालतमें अपनी कोई सफाई नहीं दी, पर एक लम्बा वक्तव्य दिया था। उन्हें कुल

मिला कर एक वर्ष नौ महीनेकी सजा मिली। उन पर राजद्रोह का मामला नहीं चलाया गया, क्योंकि शायद यह सोचा गया कि उन्हें जितनी सजा मिलनी चाहिये थी, वह मिल चुकी है। लग-भग छः सप्ताह जेलके बाहर रहनेके बाद नेहरूजीको फिर जेल जाना पड़ा। यह उनकी दूसरी जेल-यात्रा थी।

जेलमें उन्होंने फिर अपने पिताजीके दर्शन किये। जवाहर-लालजीके दो चचेरे भाई भी वहीं थे। इन चारोंके लिये जेलमें एक अलग सायबान था और उन्हें एक बेरकसे दूसरी बेरकमें आने-जानेकी पूरी स्वतन्त्रता थी। बाहरके मित्रों और सम्बन्धियोंसे वे मिलने पाते थे। समाचार-पत्र भी मिलते थे। जवाहरलालजी सुबह अपने सायबानको धोते और साफ करते, अपने और पिताजीके कपड़े धोते और चर्खा चलाते थे। उन्हें अपने अशिक्षित स्वयंसेवकोंको हिन्दी, उर्दू पढ़ानेके लिये पाठशाला खोलने की भी वहां आज्ञा मिल गई थी। नेहरूजी उस समय लखनऊकी जेलमें थे, जहां पहले वहां कुछ स्वतन्त्रता थी, वहां बादमें कुछ बन्धन बढ़ा दिये गये थे।

जिस बेरकमें जवाहरलालजी थे, उसमें करीब पचास कैदी और भर दिये गये थे। उनमेंसे अधिकांशसे वे परिचित थे और उनमें कितने ही उनके मित्र थे, तो भी हर समय छोटी-सी जगह के भीतर इतने आदमियोंके बीचमें हर समय रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता था, और वे कुछ अलग एकान्तमें रहना चाहते थे। वे बेरक छोड़कर अहातेके खुले हिस्सेमें आकर बैठते और कुछ चिन्तन

किया करते थे। वह वर्षा ऋतु थी, और नेहरूजीको खुले स्थानमें बैठकर बादलोंकी मनोहर छटा देखना प्रिय लगता था। इसके बाद जेलमें नियम कड़े कर दिये गये थे। नेहरूजीको एक छोटे अहातेमें रखा गया जहाँ कष्ट अधिक थे। उन्हें अब पढ़नेके लिये समाचार पत्र भी नहीं मिलते थे। भोजन भी खराब मिलता था। पर तो भी नेहरूजी अपनेको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करते थे। वे व्यायाम करते, अहातेके चारों तरफ दौड़कर चक्कर लगाते और बैलोंकी तरह दो-दो आदमी मिलकर कुएँसे बड़ा चमड़ेका मोट खींचते, इस तरह वे अपने अहातेके एक छोटेसे साग-सब्जीके खेत को सींचते थे। वे नित्य चरखा चलाकर थोड़ा सूत कातते और रात्रिमें पढ़ते थे।

अखबार न मिलनेसे उन्हें देश और संसारके समाचारोंका कुछ भी पता न लगता था, पर तो भी बाहरकी कोई महत्त्वपूर्ण खबर कभी-कभी उन्हें जेलमें मिल जाती थी। उन्हें मालूम हुआ कि बाहर जनतामें उनका आन्दोलन शिथिल पड़ रहा है। उन्होंने यह भी सुना कि बाहर काँग्रेसमें दो दल हो गये थे—परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी। पहला दल, असहयोग और काँग्रेस कार्य-क्रममें परिवर्तन करके कौंसिल जानेके पक्षमें हो गया था, पर दूसरा दल उसका विरोधी था। पं० मोतीलालजी और देशबन्धु चित्तरंजन दास जेलसे रिहा हो चुके थे और ये दो महरथी परिवर्तनवादी दलके नेता थे। दूसरे दलके नेता श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य थे, जो असहयोगके पुराने कार्यक्रममें कोई भी

परिवर्तन नहीं चाहते थे। उस समय महात्मा गांधी जेलमें थे, इसलिये उनसे किसीका इस विषय पर परामर्श करनेका कोई प्रश्न ही नहीं था। बाहरके इन समाचारोंसे जवाहरलाल मनही-मन असन्तुष्ट हुए, पर वे किसी भी विषयमें कोई हस्तक्षेप करनेमें असमर्थ थे।

जेलका बड़ा अफसर सुपरिन्टेण्डेन्ट एक अंग्रेज कर्नल था, जो कभी-कभी खतरनाक कैदी जवाहरलालको देखने जाता था, पर वह जब उनके पास जाता तो वह उन्हें पढ़ते ही देखता था। उनका पढ़ना उसे बुरा लगता था, उसने शायद एक बार कुछ चिढ़कर उनसे यह भी कहा कि—'आप इतना पढ़ते क्यों हैं, इससे क्या लाभ है? मैंने तो अपना साधारण पढ़ना बारह वर्षकी आयुमें ही समाप्त कर दिया था!' पढ़ना छोड़ देनेसे उस वीर अंग्रेज कर्नलको इतना लाभ तो हुआ कि उसके मनमें अशान्ति उत्पन करनेवाले विचार कभी आये ही नहीं। 'सबसे भले वे मूढ़ जिन्हें न व्यापे जगत गति'—और शायद अपनी अशिक्षाके ही गुणसे वह युक्त-प्रान्तकी जेलोंका इन्सपेक्टर-जनरल भी बना दिया गया था!

जेलके अधिकारियोंकी यह बराबर कोशिश रहती कि नेहरूजी आदि राजनीतिक कैदी अन्य सामान्य गैर-राजनीतिक कैदियोंसे न मिलने पावें, जैसे भले आदमियोंको बुरोंकी सोहबत से दूर रखनेका प्रयत्न रहता था, पर तो भी ये 'बुरे आदमी' उन अभागे मामूली कैदियोंसे कभी-कभी मिलते और उनके सुख दुःखकी दशा समझते थे। उनकी मारपीट, जोरोंकी रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचारकी तरह-

तरहकी कहानियोंसे नेहरूजीका हृदय दुखित हो जाता था। जेलके नियम तोड़नेके लिये कठोर दंड दिया जाता था। एक ऐसे ही छोटे लड़केको नियम तोड़नेके लिये बेंतकी सजा दिये जानेका हाल नेहरूजीने लिखा है। उस लड़केकी आयु १५-१६ बर्षकी थी और वह अपनेको 'आजाद' कहता था, उसे बेंत मारनेकी सजा दी गई। उसे नंगा करके टिकटीसे बाँध दिया गया। उसे जैसे-जैसे जोरके बेंत पड़ते, जिससे उसकी खाल उधड़ जाती, वैसे-वैसे वह 'महात्मा गांधीकी जय' चिल्लाता था। हर बेंतपर वह लड़का यही नारा लगाता, और अन्तमें बेंतोंकी मारसे वह बेहोश हो गया। बादमें वही लड़का उत्तर भारतके आतंकवादी क्रान्तिकारी दलका नेता बन गया था, जिसका नाम श्रीचन्द्रशेखर आज़ाद प्रसिद्ध हुआ।

सन् १९२३ के जनवरीमें जवाहरलाल नेहरू जेलसे अन्य कैदियोंके साथ छोड़ दिये गये। जेलके फाटकसे बाहर निकलते ही उन्होंने फिर एक बार स्वच्छ वायुमें सांस ली और सुखदायी दृश्योंको देखा। घर लौटनेपर सबको देखकर वे प्रसन्न हुए और कुछ विश्राम करनेके बाद फिर राजनीतिक आन्दोलनमें संलग्न हो गये।

नेहरूजी नाभाके आन्दोलनमें

जेलसे छूटनेके बाद नेहरूजीको देशके राजनीतिक आन्दोलनमें एक विचित्र संघर्ष दिखाई दिया, जो कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नपर परिवर्त्तन वादियों और अपरिवर्त्तन वादियोंमें हो रहा था, पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरंजन दासके नेतृत्वमें स्वराजदलने कौंसिल-प्रवेशके लिये प्रबल आन्दोलन किया। सन् १९२३ के सितम्बरमें दिल्लीमें कांग्रेसका विशेष अधिवेशन हुआ, जिसमें स्वराज्य दलने सफलता प्राप्त की। पर जवाहरलालजी नेहरूको उस संघर्ष या कौंसिल-प्रवेशके कार्यक्रमसे कोई दिलचस्पी न थी। वे तो एक योद्धा रहे हैं, और उन्हें लड़ाई लड़नेके कार्यक्रमसे सदा दिलचस्पी रही है। वह जैसे एक लड़ाईकी तलाशमें थे।

उसी समय पंजाबमें सिखोंका आन्दोलन आरम्भ हुआ। पटियाला और नाभाके राजाओंमें कुछ निजी झगड़ा था, जिसका फ़ल यह हुआ कि भारत सरकारने पटियाला नरेशका पक्ष लेते हुए महाराज नाभाको राजगद्दीसे उतार दिया और नाभामें एक अंगरेज शासक (एडमिनिस्ट्रेटर) नियुक्त कर दिया गया। सिखोंने

महाराज नाभाका गद्दीसे उतारे जानेका घोर विरोध किया, और नाभाके भीतर और बाहर आन्दोलन हुआ। सिखोंने जैतो नामक स्थानमें अखंड पाठ प्रारम्भ करनेका प्रयत्न किया, जिसे अंग्रेज शासकने रोक दिया, सिखोंने अपने जत्थे जैतो भेजने आरम्भ किये। जिन्हें पुलिस रोकती और मारती पीटती थी। जवाहर-लालजीका ध्यान इस आन्दोलनकी ओर आकर्षित हुआ।

जवाहरलाल कांग्रेसके विशेष अधिवेशनके सिलसिलेमें उस समय दिल्लीमें ही थे और वहीं उन्हें सिखोंका जैतो आनेके लिये निमंत्रण मिला। नेहरूजीने निमंत्रण तुरन्त स्वीकार कर लिया, और वे अपने दो सहयोगियों—आचार्य गिड़वानी और श्री के सन्तानाम के साथ जैतोके लिये रवाना हुए। कुछ दूर उन्हें बैलगाड़ीमें यात्रा करनी पड़ी, जब वे जैतो पहुँचे तो सत्याग्रही सिखोंका एक जत्था जा रहा था। नेहरूजी और उनके साथी इस जत्थेके पीछे-पीछे पर उससे कुछ अलग रहते हुए चले। जैतो पहुंचने पर पुलिसने जत्थेको रोक दिया, और उसी समय ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेटरके हस्ताक्षरका उन्हें एक आज्ञापत्र मिला जिसमें उन्हें जैतो जानेके लिये मनाही थी। नेहरूजीने पुलिस अफसरसे कहा, कि 'हम केवल दर्शकके रूपमें हैं—जत्थेमें शरीक नहीं हैं—और न नाभाका कोई कानून तोड़नेका हमारा इरादा है। दूसरी ट्रेन जानेमें अभी देरी है, इसलिये हम अभी तो यहीं रहना चाहते हैं।' इसपर पुलिसने उन्हें तुरन्त गिरफ्तार कर लिया, और उन्हें ले जाकर एक हवा-लातमें बन्द कर दिया।

इसके बाद उन्हें हथकड़ियाँ पहनाकर जैतोके बाजारसे निकाला गया। नेहरू और सन्तानमको एक ही हथकड़ीमें बांधा था, और आचार्य गिडवानी भी एक हथकड़ीमें बंधे उनके पीछे आ रहे थे। नेहरूजीने लिखा है, कि "जैतोके बाजारसे इस तरह जाते हुए मुझे कुत्तोंको जंजीरसे जकड़कर ले जानेकी याद आती थी।" रातको ट्रेनके ठसाठस भरे हुये एक तीसरे दर्जेके डिब्बेमें नेहरूजीको साथियों सहित ठूंस दिया गया। दूसरे दिन जब वे नाभा पहुंचे तो हथकड़ी और भारी जंजीरोंसे वे लदे थे। उन्हें जेलकी एक तंग गन्दी कोठरीमें बन्द कर दिया गया। कोठरीमें सील थी और उसकी छत बहुत नीची थी। नेहरूजी उसी जमीन पर सोये, पर कभी-कभी वे चौंककर जाग उठते, तब उन्हें मालूम होता कि उनके मुँहपर कोई चूहा या चुहिया निकल गई है। दो-तीन दिन बाद उनपर अदालतमें षड़यन्त्र करनेका मुकदमा चलाया गया। षड्यन्त्रके मामलेमें केवल तीन आदमी काफी नहीं हैं' एक चौथा आदमी भी उसमें होना चाहिये, इसलिये एक अन्य अपरिचित सिखको गिरफ्तार कर षड्यंत्र अभियोगमें शरीक कर दिया गया।

इस बीचमें नाभाके ब्रिटिश शासककी ओरसे जेलका सुपरिटेन्डेण्ट नेहरूजीके पास गया, और उसने कहा कि यदि तुम लोग दुःख प्रकट करो और नाभामें फिर न आनेका वादा करो तो तुम लोगों परसे मुकद्दमा उठा लिया जा सकता है। नेहरूजीने कहा कि 'हम किस बातके लिये दुःख प्रकट करें, बल्कि दुर्व्यवहारके

लिये रियासतको हमसे माफ़ी मागनी चाहिये। हम किसी तरहका कोई वादा करनेके लिये तैयार नहीं हैं।'

गिरफ्तारीके दो सप्ताह बाद मुकदमे समाप्त हुए। नेहरूजीने एक लिखित बयान दिया। नाभासे न जानेकी अवज्ञामें ६ मास और षड्यंत्रके लिये अठारह मासकी सजा मिली। यह खबर जब मोतीलालजीको मिली तो वे कुछ परेशान हुए और उन्होंने वायसरायको एक तार दिया। बादमें मोतीलालजीने नाभा की जेलमें जाकर जवाहरलालजीसे भेंट की, पर जवाहरलालजीने उनसे कहा कि आप कृपया इलाहाबाद लौट जायें और कुछ चिन्ता न करें। मोतीलालजी लौट गये, पर वे एक वकील कपिलदेवजी मालवीयको वहां छोड़ गये। जवाहरलालजीको साथियों सहित सजाएं तो मिल गईं, पर फैसलोंकी नकलें मांगने पर भी नहीं मिलीं।

शामको जेलके सुपरिटेण्डेण्टने नेहरूजीको ब्रिटिश शासक (एड-मिनिट्रेटर) का एक आदेश-पत्र दिखाया, जिसके द्वारा नेहरू और उनके दोनों साथियोंकी सजाएं स्थगित कर दी गईं थीं। एक दूसरे आदेश-पत्रके द्वारा उन्हें नाभासे चले जाने और फिर बिना आज्ञा नाभा न लौटनेकी हिदायत थी। इन दोनों आज्ञाओंकी नकलें उनके मांगने पर भी उन्हें न दी गईं। इसके बाद नेहरूजीको साथियों सहित स्टेशन भेज दिया गया और वहाँ पर वे रिहा कर दिये गये। रातकी ट्रेनसे नेहरूजी अम्बालाके लिये रवाना हुए, और वहांसे दिल्ली होते हुए वे इलाहाबाद आये। नेहरूजीने

नाभाके अंग्रेज शासकको एक पत्र लिखा, कि "अपनी दोनों आज्ञाओं और फैसलोंकी नकलें मुझे भेजिये।" पर उस शासकमें उन्हें भेजनेका साहस न हुआ।

नेहरूजी यद्यपि सकुशल लौट आये, पर नाभा जेलकी गन्दी कोठरीसे वे अपये साथ एक रोग भी ले आये। वह था विषम-ज्वर, जिससे नेहरूजी और उनके दोनों मित्र कुछ दिनों तक पीड़ित रहे। नेहरूजी पर विषमज्वरका प्रकोप अधिक हुआ और कुछ खतरनाक भी मालूम हुआ, पर लगभग चार सप्ताह बिस्तरे पर पड़े रहनेके बाद वे अच्छे हो गये। पर उनके दोनों मित्र दीर्घकाल बीमार रहे।

दूसरी बार यूरोप यात्रा

जवाहरलालजी नेहरू तेरह वर्ष बाद फिर यूरोप गये। उनकी पत्नी श्रीमती कमला नेहरूका स्विटजरलैण्डमें इलाज होने लगा। इन्हीं दिनोंमें इंग्लैण्डके मजूरोंकी एक विराट हड़ताल हुई, जिसमें नेहरूजीकी सहानुभूति मजूरोंके पक्षमें थी। वे हड़तालका दृश्य देखनेके लिये स्वयं इङ्गलैंड गये, और वहाँ ब्रिटिश मजूरों तथा उनकी स्त्रियों, बच्चोंपर पुलिस तथा अदालतके अत्याचार देखे। उन्हें इसपर आश्चर्य और दुःख हुआ कि ब्रिटिश जातिके दीन-हीन श्रमजीवियोंपर उसी जातिके शासकोंका कैसा कठोर दमन-चक्र चल रहा था।

नेहरूजी यूरोपमें एक वर्ष नौ महीना रहे, और इस बार उन्होंने वहाँका कुछ अच्छी तरह भ्रमण किया और तरह-तरहके लोगोंसे मिले, जिनमें कुछ पुराने भारतीय क्रान्तिकारी भी थे। उन्होंने जिनेवामें श्रीश्यामजी कृष्ण वर्माको देखा जो अपनी बीमार गुजराती पत्नीके साथ एक मकानकी ऊँची मंजिलपर रहते थे। नेहरूजीने स्विटजरलैण्डमें राजा महेन्द्र प्रतापको, पेरिसमें बूढ़ी मेडम कामाको और इटलीमें मौलवी उबैदुल्ला और बरकत उल्ला

को देखा। भारतके एक सुविख्यात वंशके रत्न श्री वीरेन्द्रनाथ चटोपाध्याय और श्री मानवेन्द्रनाथ रायकी विद्वत्ता और अनुभव का नेहरूजी पर विशेष प्रभाव पड़ा। इन सभी भारतीय क्रान्तिकारियोंकी लगन, देशक्ति और कष्ट सहन करनेकी दृढ़ताकी नेहरूजीने कद्र की।

सन् १९२६ के दिसम्बरमें नेहरूजी जर्मनीकी राजधानी बर्लिन में थे, और वहीं उन्हें यह मालूम हुआ कि ब्रुसेल्स (बेलजियम) में दलित जातियोंका एक सम्मेलन शीघ्र ही होनेवाला है। नेहरूजी उस सम्मेलनमें शरीक होनेके लिये तैयार हुए और भारतीय कांग्रेसके प्रतिनिधिकी हैसियतसे वे उसमें शरीक हुए। सन् १९२७ के फरवरी मासमें यह सम्मेलन हुआ, जिसके सभापति ब्रिटिश मजूर नेता श्री जार्ज लेन्सबरी थे। सम्मेलनमें यूरोपके कम्युनिस्टों, समाजवादियों और अन्य प्रकारके परिवर्त्तनवादियोंका भी सहयोग था, पर कम्युनिस्टोंका उसपर कुछ विशेष प्रभाव न था। इसके बाद ही एक साम्राज्यविरोधी संघ भी कायम हुआ जिसमें दलित जातियोंके लोग और अन्य उग्र मजूर प्रतिनिधि भी शरीक थे। उस समय वहाँ जावा, हिन्द-चीन, सीरिया, फीलस्तीन, मिस्र, उत्तरी अफ्रिकाके अरब और अफ्रीकाके हबशियोंके प्रतिनिधि भी वहाँ मौजूद थे। कम्युनिस्ट भी थे और उन्होंने संघ के कार्योंमें काफी भाग लिया। जवाहरलाल नेहरूके अतिरिक्त श्रीमती सनयात सेन और रोमांरोला और आइनस्टीन भी उसके सदस्य थे।

नेहरूजीने ब्रुसेलसमें कुछ दिन रहकर कालोनीज़ (ब्रिटिश और फ्रेञ्च उपनिवेश) और परतंत्र देशोंकी समस्याओंको समझा, और पश्चिमके श्रमजीवियोंका संघर्ष देखा। ये यद्यपि इन समस्याओंके बारेमें पहलेसे ही बहुत कुछ जानते थे, पर वहाँ अन्य देशोंके आन्दोलनकारियोंके सम्पर्कमें आनेसे उन्हें और भी बहुत-सी नई बातें मालूम हुईं। दलित सम्मेलन और साम्राज्य विरोधी संघसे इंग्लैंड और फ्रांसकी सरकारें असन्तुष्ट थीं, इसलिए उनके बहुतेरे गुप्तचर भी वहाँ नाना रूपोंमें मौजूद थे।

साम्राज्य विरोधी संघकी एक बैठक कोलोन (जर्मनी) में भी हुई, और उसमें भी नेहरूजीने भाग लिया। यह संघ दिन-दिन कम्युनिजमकी ओर झुकता गया और बादमें ऐसा हो गया कि जिन लोगोंका पूँजीवाद या उसके प्रतिनिधियोंसे जरा भी सम्पर्क रहता उससे वह संघ नाराज होता। नेहरूजी उस संघके कई वर्ष तक सदस्य रहे, पर सन् १९३१ में भारतीय कांग्रेस और सरकार के बीच दिल्लीमें जो समझौता हुआ और उसमें नेहरूजीने जो हिस्सा लिया उससे संघ नेहरूजी पर बहुत असन्तुष्ट हुआ और उसने उन्हें संघसे अलग कर दिया। संघने नेहरूजीको स्थिति स्पष्ट करनेका अवसर भी नहीं दिया।

सन् १९२७ के ग्रीष्ममें पंडित मोतीलाल नेहरू सपरिवार यूरोप गए, और वेनिसमें पं० जवाहरलाल नेहरूसे भेंट की। कुछ महीने ये लोग साथ रहे, इसके बाद नवम्बरमें जवाहरलालजीने अपने पिता, माता और छोटी बहिन कृष्णाके साथ सोवियट रूसकी राजधानी

मास्कोकी यात्रा की। जिस देशमें श्रमजीवियोंका स्वर्ग सुना करते थे, वहाँ पहुंचकर जवाहरलालजी बहुत प्रसन्न हुए। वे वहाँ तीन या चार दिन रहे और इतने दिनके भीतर वे रूसी श्रमजीवियोंकी अभूतपूर्व उन्नतिके बारेमें जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त कर सके, उसे उन्होंने प्राप्त किया।

श्रीमती कमला नेहरूका स्वास्थ्य अब बहुत सुधर गया था और जवाहरलालजी भारत आनेके लिये व्यग्र थे। इसका एक कारण यह था कि मद्रासमें भारतीय कांग्रेसका अधिवेशन होनेवाला था और जवाहरलालजी उसमें अवश्य उपस्थित रहना चाहते थे। इसलिए वे अपनी माता पत्नी, बहिन और पुत्रीके साथ भारतके लिये रवाना हुए और पं० मोतीलालजी तीन महीने यूरोपमें और रहे।

जवाहरलालजी नेहरूने यूरोपमें इस बार अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का जो अध्ययन किया उससे उन्हें यही मालूम हुआ कि सोवियट रूस बड़ी तेजीके साथ अपनी आर्थिक और औद्योगिक उन्नति करनेमें संलग्न था, और इङ्गलैंड उसे केवल इर्ष्याके साथ देखता ही न था, बल्कि वह सोवियटको घेरनेका प्रयत्न कर रहा था, किन्तु दूसरी ओर जवाहरलालजीने यह भी देखा कि यूरोपीय श्रमजीवियों का आकर्षण सोवियटकी ओर बढ़ता जाता है।

साइमन कमीशन और नेहरूजी

पंडित जवाहरलाल नेहरू साइमन कमीशनके आनेके समय लखनऊमें थे। लन्दनसे यह कमीशन भारतकी राजनीतिक स्थिति जांचने और समझनेके लिये आया था, पर राष्ट्रीय काँग्रेसने उसका बहिष्कार करनेका निश्चय किया था। इस-लिये कमीशन जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ उसे तिरस्कारके काले झंडे ही दिखाई दिये। साइमन कमीशन जब लाहौर गया तो वहाँ उसके विरुद्ध जो जलूस निकला उसके नेता स्वयं पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय थे। लालाजी पर पुलिसकी लाठियाँ बरसीं, और अन्तमें उन्हीं प्रहारोंके आघातसे लालाजीकी मृत्यु हो गई। इस दुर्घटनासे कमीशनके प्रति जनताकी नाराजी और भी बढ़ गई, और उसके विरुद्ध हर जगह बड़े जोरोंके प्रदर्शन हुए।

लाला लाजपतरायकी इस तरह अचानक मृत्यु हो जानेसे देश में शोक छा गया, और जवाहरलालजी नेहरूको तो बड़ा ही मार्मिक दुःख हुआ। वे लखनऊमें कमीशनका बहिष्कार द्वारा 'स्वागत' करनेकी तैयारियोंमें लगे थे। कमीशनके आनेके कई दिन पूर्वसे ही बड़े-बड़े जलूस, प्रदर्शन और सभाएँ करके अभ्यास (रिहर्सल)

किया गया। इन प्रारम्भिक प्रदर्शनोंकी सफलतासे अधिकारी वर्ग चिढ़ गया, और उसने कुछ विशेष स्थानोंपर जलूसोंको रोकना शुरू किया। मनाहीकी आज्ञा भी जारी कर दी गई। इसी सिलसिले में जवाहरलालजीको एक नया अनुभव करना पड़ा, और लाला लाजपतरायकी तरह उनके भी शरीर पर पुलिसकी लाठियोंके प्रहार हुए। जलूसोंके लिये मनाहीका कारण बताते हुए अधिकारियोंने कहा था कि उनसे सड़कें रुक जाती हैं।

जवाहरलालजीने यह निश्चय किया कि बड़े-बड़े जलूस न निकालकर सोलह-सोलह स्वयंसेवकोंके छोटे-छोटे दल निकाले जायं, जो अलग-अलग रास्तोंसे गुजरते हुए सभा स्थलपर पहुँचा जांय। सोलह आदमियोंके एक दलके साथ स्वयं जवाहरलालजी नेहरू हाथ में तिरंगा झंडा लिये आगे-आगे चल रहे थे। थोड़ी दूरसे एक दूसरा दल पंडित गोविन्द वल्लभ पन्तके नेतृत्वमें आया। पुलिस बड़े जोरोंमें मुस्तैदीके साथ इन दलोंके रोकथामका इन्तजाम कर रही थी, और उधर जनताकी भीड़ भी पुलिससे बचते हुए इस संघर्षका दृश्य देख रही थी।

पं० जवाहरलालजीका दल लगभग दो सौ गज आगे बढ़ा होगा कि उन्हें सहसा पीछेसे घोड़ोंकी टापोंकी आवाज सुनाई दी। जवाहरलालजीने जब पीछे देखा तो उन्हें लगभग दो तीन दर्जन पुलिसके घुड़सवार बड़ी तेजीके साथ आते हुए दिखाई दिये, और वे तुरन्त ही उनके पास पहुँच गये और उन्होंने घोड़ोंको ठेलते हुए सोलह आदमियोंके छोटेसे दलको छिन्न-भिन्न कर

दिया। इसके बाद घुड़सवारोंने बड़े-बड़े डंडोंसे स्वयंसेवकोंको मारना शुरू किया। सवारोंने भागते हुए मनुष्योंका पीछा किया, और डंडों, लाठियोंसे उन्हें मार-मारकर गिरा दिया।

इतनेमें जवाहरलालजीने घोड़ोंको अपने ऊपर आते हुए देखा, और उन्होंने पहले आक्रमणको सहन कर लिया। पर इस समय जवाहरलालजी सड़क पर अकेले खड़े थे, और इनसे कुछ ही गजकी दूरी पर पुलिसवाले स्वयंसेवकोंको लाठियोंसे पीट-पीटकर धराशायी कर रहे थे। वह निश्चय ही अहिंसात्मक संघर्षका एक बड़ा ही दारुण दृश्य था जब कि पुलिसको अपने ऊपर हमला होनेका कोई भय नहीं था, पर वह सब तरफ भीषण हमला करके अंधाधुंध लाठियाँ बरसा रही थी।

जवाहरलालजीने पहले कहीं आड़में चले जानेका ख्याल किया, पर पुलिसकी लाठियोंसे स्वयंसेवकोंको गिरते देख उनका दिल तिल-मिला उठा, और वे जिस जगह खड़े थे वहाँसे जरा भी न हटे। इतनेमें उन्होंने मुड़कर देखा कि एक सवार तेजीसे घोड़ा फेंकते हुए उन्हींकी तरफ चला आरहा है और अपना लम्बा डंडा भी घुमा रहा है। जवाहरलालजीने उसे ललकारते हुए कहा—"मारो! मारो!" और दासताके प्रतीक उस सवारने उनकी पीठ पर दो डंडे मारे। उन प्रहारोंसे सुकोमल जवाहरलालको चक्कर आगया, पर वे गिरे नहीं और वहीं दृढ़ताके साथ खड़े रहे।

इसके बाद तुरन्त ही पुलिस दल पीछे हटा लिया गया, और उसे सड़क रोक लेनेकी आज्ञा दी गई। कांग्रेसी स्वयंसेवक फिर

एकत्र हो गये। उनमेंसे बहुतेरोंकी खोपड़ियां फूट गईं थीं और खून बह रहा था। इसी समय पंडित गोविन्द बल्लभ पन्तका दल भी लाठी प्रहार सहन करनेके बाद वहाँ आगया और जवाहरलालजी इन सब स्वयंसेवकोंके साथ वहीं पुलिसके सामने सड़क पर बैठ गये। लगभग एक घंटे बाद शामको पुलिसने उन्हें वहाँसे जाने दिया।

दूसरे ही दिन साइनन कमीशन आनेवाला था, और जवाहर-लालजी भी सदलबल विरोधी प्रदर्शन करनेके लिये तैयार थे। दूसरे दिन प्रातःकाल ६ बजेके बाद काँग्रेस कार्यालयसे कई हजार मनुष्यों का एक विराट जलूस रवाना हुआ। पंडित जवाहरलाल नेहरू और पं० गोविन्द बल्लभ पन्त जलूसका नेतृत्व कर रहे थे। जलूस जब रेलवे स्टेशनके निकट पहुँचा तो वहाँ बेशुमार पुलिस, घुड़-सवार और फौजी दल खड़े थे। सवारोंने लोगोंको मारना कुचलना शुरू किया। जवाहरलाल और उनके दल पर भी लाठियाँ बरसने लगीं। जवाहरलालजी उन प्रहारोंसे कुछ तिलमिलासे गये और आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। स्वयंसेवकोंकी पंक्तियां धीरे-धीरे पीछे हटने लगीं, और जवाहरलालजी कुछ अलग खुलेमें रह गये। उनपर फिर मार पड़ी, और उनके साथियोंको आशंका हुई कि उनपर घातक प्रहार हुए हैं। उसी समय कुछ लोगोंने आकर जवाहरलालजीको उठा लिया, और वे उन्हें दूर ले गये।

साइमन कमीशन आया, और काले झंडों तथा पुलिसकी वीरता देखता हुआ बहुत दूरसे निकल गया। इसके बाद जवाहर-लालजी जलूस बनाकर काँग्रेस कार्यालय आये। पं० मोतीलालजी भी लखनऊ पहुँच गये थे और जवाहरलालजीने जाकर उनसे भेंट की। पर पुलिसके निर्मम प्रहारोंसे जवाहरलालजीके शरीरमें बादमें बहुत दर्द हुआ, पर कुशल यही हुई कि शरीरके किसी नाजुक हिस्सेमें चोट नहीं आई थी।

राष्ट्रपति पंडित नेहरू

(लाहौर कांग्रेस—२४ दिसम्बर, १६२६)

भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेसका ४४ वां वार्षिक अधिवेशन लाहौरमें रावी नदीके तट पर हुआ, जिसके सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। इसके एक वर्ष पूर्व उनके पिता पंडित मोतीलाल नेहरूने कलकत्ता कांग्रेसका अध्यक्षपद सुशोभित किया था। यह तुलना करनी व्यर्थ है कि पिता और पुत्रमें कौन बड़ा राजनीतिज्ञ था, पर पं० मोतीलालजीने स्वयं यह बात सहर्ष और सगर्व कही थी, कि 'जो काम पिता पूरा न कर सका उसे पुत्र करेगा।' और वास्तवमें, जवाहरलालजीने ऐसा ही किया भी। कांग्रेसकी पूर्ण स्वतंत्रताकी घोषणा पं० मोतीलालजीके समयमें नहीं, बल्कि पं० जवाहरलालजीकी अध्यक्षतामें हुई थी।

लाहौरमें कांग्रेस-अधिवेशन पं० जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमें बड़ी धूमधामसे हुआ, जिसमें देश-भरके हजारों प्रतिनिधि और दर्शक उपस्थित थे। कांग्रेसके विशाल पंडाल और उस सम्पूर्ण क्षेत्रका नाम 'लाजपत राय नगर' था, जहां प्रदर्शनीके

अतिरिक्त कांग्रेस प्रतिनिधियों (डेलिगेटों) के खेमे, भोजनालय आदि भी थे। ये सब क्षेत्र राष्ट्रीय झंडों, बिजलीकी रोशनी आदिसे खूब सजाये गये थे, और नगरवासियोंने अपने-अपने मुहल्ले सजानेमें भी कोई कसर न उठा रखी थी। २४ दिसम्बरसे प्रमुख नेताओंका आगमन प्रारम्भ हुआ।

मनोनीत अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू एक स्पेशल ट्रेनसे सायंकाल ४ बजे पहुंचे। उनके साथ श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री श्रीनिवास आयंगर और श्री के० सन्तानम थे। बहुसंख्यक मनुष्योंकी भीड़ फैली थी। लगभग दो हजार कांग्रेसी स्वयंसेवकोंने बिना पुलिसकी सहायताके भीड़का बड़ी सफलतासे नियंत्रण किया।

कलकत्ता कांग्रेसके अवसरपर राष्ट्रपति पं० मोतीलाल नेहरूकी सवारी ३४ श्वेत घोड़ोंकी गाड़ीपर निकली थी, पर लाहौरकी सड़कें और रास्ते इतने तंग हैं कि वहाँ ऐसी सवारीके साथ जलूस निकालना सम्भव नहीं है, इसलिए पं० जवाहरलाल नेहरूकी सवारी एक श्वेत घोड़ेपर निकली। 'वन्दे मातरम्' की गगनभेदी ध्वनिमें राष्ट्रपति जवाहरलाल उस घोड़ेपर सवार हुए। आगे-आगे कई संस्थाओंके बैंड बाजे थे, उसके पीछे शहनाई और अन्य बाजे थे और उनके पीछे जनरल आफिसर कमाण्डिग (प्रधान सेनापति) सरदार मंगल सिंह श्वेत अश्वपर सवार थे। पं० जवाहरलाल नेहरू सबके बीचमें थे। उनके पीछे सिखोंके जत्थे और जलूस थे। मार्गमें हर जगह मकानों, बरामदों, छतों, चबूतरों आदिपर

बहुसंख्यक नर-नारी और बच्चे बैठे राष्ट्रपतिका जलूस देख रहे थे। मीलों तक जन-समुदायका समुद्र ही समुद्र दिखलाई देता था। लगभग दो लाख मनुष्य जलूसके साथ थे।

जिस रास्तेसे जलूस गुजरता, वहीं नेहरूजीका स्वागत करनेके लिये सभी लोग उत्सुक रहते। जलूस जब अनारकलीमें पहुँचा तो वहाँ पंडित मोतीलाल नेहरूने अपने पुत्रपर फूल बरसाये और माता स्वरूपरानीने आह्लादमें भरकर रुपये बरसा दिये। जलूस के लाजपत-हाल (सभा-भवन) पहुँचनेके बाद राष्ट्रपतिको फाटक पर पुष्पहार पहनाया गया। स्वर्गीय लाला लाजपत रायकी धर्म-पत्नीसे राष्ट्रपतिने भेंट की और उनके साथ कुछ जलपान करनेके बाद वे जयघोषके बीच लाजपत-नगरकी ओर रवाना हुए।

दूसरे दिन पं० मोतीलाल नेहरूने हिन्दीमें भाषण करते हुए कांग्रेस-अध्यक्षका पद पं० ज़वाहरलाल नेहरूको प्रदान किया। मोतीलालजीने अपने भाषणमें कहा कि मेरे अध्यक्षकालमें सभी विचारके जिन लोगोंने मेरा साथ जिस सद्भावनाके साथ सह-योग किया उसके लिए मैं आभारी हूँ। सन् १९२९ में हमें अपने लक्ष्य और कार्योंमें अधिक सफलता नहीं मिली। अब मैं पं० जवाहरलालको अध्यक्षपद ग्रहण करनेके लिए आमंत्रित करता हूँ। उनका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है।

पं० मोतीलालजीने आगे कहा कि—'अब ऐसा जमाना आ गया है कि जवान आदमी ही कुछ काम कर सकते हैं, मुझ जैसे बूढ़े नहीं। उनसे (जवाहरलाल) मुझे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। वे जो कुछ हैं,

आप लोग जानते ही हैं। मैं आपसे केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि मैं इस दृढ़ आशा और विश्वासके साथ अध्यक्षपदसे अवकाश ग्रहणकर रहा हूं कि मेरी अपेक्षा वे (जवाहरलाल) कहीं अच्छे तरीकेसे काम कर सकेंगे। मैं सिर्फ उस फारसी कहावतको यहाँ दोहराना चाहता हूं जिसका यह अर्थ है कि जो काम बाप न कर सका उसे बेटा पूरा कर सकता है। हाँ, एक बात और कहनी है। आज नियम पालन करनेकी सबसे अधिक आवश्यकता है, आज जो सदस्य उठकर चले गए हैं यदि वे अधिक नियमशीलता दिखाते तो क्या ही अच्छा होता। पं० जवाहरलाल नेहरूको अध्यक्षपद ग्रहण करनेका निमन्त्रण देते हुये मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि मैं अत्यन्त नियमशील रूपसे उनके आदेशोंका पालन करूँगा (हँसी और करतल ध्वनि)।

'जवाहरलाल चिर आयु हों,' और 'वन्दे मातरम्' जयध्वनिके बीच युवक-शिरोमणि पं० जवाहरलाल नेहरूने सभापतिका आसन सुशोभित किया। माता स्वरूपरानीने उन्हें बधाई दी। इसके बाद श्रीमती सरोजनी नायडूने उन्हें फूलोंकी मालाएँ पहनाईं।

२९ दिसम्बरको लाहौर कांग्रेस-अधिवेशनका पहला दिन था। इसके पहले प्रातःकाल राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरूने कांग्रेसका तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा फहराया। बहुसंख्यक नर-नारियोंकी भारी भीड़ जमा हो गई थी। खद्दरधारी स्वयंसेवकों और स्वयंसेविकाओंका प्रबन्ध था। दिनके ९॥ बजे तक लगभग एक लाख मनुष्य वहां एकत्र हो गए थे और कितने ही मनुष्य वृक्षोंपर चढ़े हुए थे।

पौने दस बजे भूतपूर्व राष्ट्रपतियों और अन्य नेताओंका आगमन आरम्भ हुआ, जिनमें पं० मोतीलाल नेहरू, श्री श्रीनिवास आयंगर, श्रीमती सरोजनी नायडू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डा० गोपीचन्द, डा० अन्सारी, श्री अब्बास तैयबजी, डा० सत्य-पाल, लाला हरकिशन लाल, श्री जे० एम० सेन गुप्त, श्री शेरवानी आदि थे। ठीक समयपर राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू सकुटुम्ब पधारे। आपने 'वन्दे मातरम्', शंखों तथा बिगुलोंकी तुमुल जयध्वनिमें राष्ट्रीय झंडा फहराया। कांग्रेस स्वयंसेवक सेनाके प्रधान सरदार मंगल सिंहने सैनिक ढंगसे सलाम किया। इसके बाद 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' का मधुर गान हुआ।

पं० जवाहरलाल नेहरूने अपने भाषणमें कहा :—

"मैंने अभी भारतका राष्ट्रीय झण्डा उड़ाया है। यह भारत की स्वतंत्रताका चिन्ह है और भारतकी एकताकी निशानी है। संसारके सभी राष्ट्रोंका अपना-अपना राष्ट्रीय झण्डा है, जिसकी रक्षाके लिए वे किसी प्रकारके बलिदानको भी अधिक नहीं समझते। याद रखो, कि जब एक बार यह झंडा फहराया जा चुका, तो यह तब तक न गिरने पाये, जब तक कि देशका एक भी मनुष्य जीवित रहे। जब तक रक्तकी एक बूँद भी आपकी नसों में है, तब तक यह झुकने न पाये। आप अपनी छातीपर हाथ रखकर कहें कि देशकी स्वतंत्रताकी लड़ाईमें आप झंडेकी रक्षा करनेके लिये अटल और दृढ़ प्रतिज्ञ रहेंगे। आत्मबलिदान करनेके लिए तैयार रहें। जिस झण्डेके नीचे आप लोग यहां खड़े हैं, वह

किसी सम्प्रदायका नहीं बल्कि देशका झण्डा है। आज इस झण्डेके नीचे जो लोग खड़े हैं, वे न तो हिन्दू हैं और न मुसलमान हैं, बल्कि सब भारतीय हैं। भारतकी स्वतंत्रता ही सब भारतीयों का प्रधान लक्ष्य है। जिन स्वयंसेवकोंने अभी इस झण्डेका अभिवादन किया है, वे इसकी रक्षाके लिये अपनी जान तक दे दें। यह झंडा तब तक बराबर फहराता रहे, जब तक कि भारत स्वतंत्र न हो जाय।"

२६ दिसम्बरको कांग्रेसका प्रथम अधिवेशन दिनके ३ बजेसे प्रारम्भ होनेवाला था, पर विषय निर्वाचिनी समितिमें महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर विचार होनेके कारण अधिवेशन ५ बजेसे पहले प्रारम्भ न हो सका। कांग्रेस पंडालमें १५००० मनुष्योंके बैठनेके लिये स्थान था और पंडाल इतना भर गया था कि उसमें कहीं तिल रखनेकी भी जगह न थी। पंडालमें १८ लाउड-स्पीकर लगे थे, ताकि सभी उपस्थित लोग नेताओंके भाषण सुन सकें।

लगभग ५ बजे नेताओंका पंडालमें आगमन आरम्भ हुआ। ठीक ५ बजे स्वयंसेवकोंके बैंडने राष्ट्रपतिके आनेकी सूचना दी। आगे-आगे स्वागताध्यक्ष डा० सैफुद्दीन किचलू, उनके पीछे अन्य नेताओंके साथ राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू पंडालमें पधारे।

आरम्भमें स्वयंसेविकाओं द्वारा 'वन्दे मातरम्' गानके बाद राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरूने अपना लिखित भाषण दिया :–

"गत ४४ वर्षोंसे यह राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) भारतकी स्वतंत्रताके लिए निरंतर प्रयत्न कर रही है। इस बीचमें महासभा

तुर्कीस्तान, ईरान और इजिप्ट, बल्कि रूस और पश्चिमके अन्य देश इस आन्दोलनमें भाग ले रहे हैं। भारत भी अपनेको इनसे पृथक् नहीं रख सकता। यदि हम संसारकी प्रगतिसे उदासीन रहे तो इससे हमारा ही अहित होगा। हमारे सामने महत्त्वपूर्ण प्रश्न सामाजिक और आर्थिक समानताका है। भारतको ये समस्याएँ हल करनेके लिए आवश्यक साधन ढूँढ़ने हैं, और जब तक वह ऐसा नहीं कर लेता तब तक उसके राजनीतिक तथा सामाजिक संगठन सुदृढ़ नहीं रह सकते।

"हमारे अन्दर पारस्परिक अविश्वास और भय फैला हुआ है। गत वर्ष सर्वदल सम्मेलन द्वारा इसे मिटानेका प्रयत्न किया गया। पर हम सफल न हुए। हमारे बहुतेरे मुसलमान और सिख भाइयोंने समझौतेके उपायोंका घोर विरोध किया, और लोगोंको 'गणितके अंकों' तथा 'प्रतिशत' का नाम ले-ले कर उत्तेजित किया गया। भय और सन्देहके साथ तर्क और प्रमाणका क्या लाभ है? उदारता और विश्वाससे ही हम ठीक मार्ग पर लग सकते हैं। विभिन्न सम्प्रदायोंके नेतागण अधिक उदारता और पारस्परिक विश्वाससे काम लें। यदि हम सब परतंत्र देशमें पराधीन ही बने रहे तो हम अपने-अपने सम्प्रदायोंको क्या लाभ पहुंचा सकेंगे? क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि जो विदेशी शासक हमारी जन्मसिद्ध स्वाधीनताका अधिकार नहीं देते, वे हमारे छोटे मोटे स्वार्थोंकी रक्षा करके हमें सहारा देंगे?

"मुझे धर्म या साम्प्रदायिकतासे कोई प्रेम नहीं है। मुझे यह

समझनेमें कठिनाई होती है कि राजनीतिक और आर्थिक अधिकार क्यों किसी धर्म या वर्गके मानने पर निर्भर होने चाहियें। मैं हिन्दू कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, पर मैं नहीं समझता कि मैं अपनेको कहाँ तक हिन्दू कहने अथवा हिन्दुओंकी ओरसे कुछ बोलनेका अधिकारी हूं। पर इस देशमें अब तक किसी वर्ग या सम्प्रदायमें जन्म होनेका मूल्य है, और मैं इसी जन्मके अधिकारसे हिन्दू नेताओंसे प्रार्थना करूंगा कि यह उनकी विशेषता होगी यदि वे उदारता दिखानेका नेतृत्व ग्रहण करें। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं अपने मुसलमान और सिख मित्रोंसे कहूंगा कि वे खुशीसे जो कुछ चाहें, ले लें। इसके लिये झगड़नेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वास्तविक संघर्ष आर्थिक है, इसलिये बीचके संक्रान्ति कालके लिये चाहे जो भी प्रबन्ध हों, उनके लिये झगड़ना उचित नहीं है।"

इसके बाद राष्ट्रपति नेहरूने ब्रिटिश शासकोंकी अनीति और वादाखिलाफीकी ओर संकेत करते हुए कहा, कि उनके वादे अस्पष्ट हैं जिन्हें पूरा करनेके लिये वे बाध्य नहीं हैं। औपनिवेशिक स्वराज्य केवल भ्रमजाल है। दस वर्षके लिये किये गये शासन-सुधारोंसे भारतीय जनताका बोझ और बढ़ गया है। हमारी यह मांग नहीं है कि लन्दनमें भारतीय हाई-कमिश्नर हो, या हमें राष्ट्र-संघमें प्रतिनिधित्व मिले, या हिन्दुस्तानी गवर्नर बने। हम गरीब जनताकी लूटको बन्द करना चाहते हैं, और हम पदोंकी दिखावटी खोल नहीं, बल्कि वास्तविक अधिकार चाहते हैं।

"आज हमारे सामने केवल एक ही लक्ष्य है—पूर्ण स्वाधीनताका। हम संकुचित राष्ट्रीयता या स्वाधीनता नहीं चाहते। इस पूर्ण स्वाधीनताका उद्देश्य अन्य राष्ट्रोंसे पृथक रहनेका नहीं है। हमारे पूर्ण स्वाधीनताका अर्थ ब्रिटिश साम्राज्यसे सम्बन्ध विच्छेद करनेका है। यह ब्रिटिश साम्राज्यका 'कामनवेल्थ' तब तक सच्चा राष्ट्रोंका समूह नहीं हो सकता जब तक कि उसका आधार साम्राज्यवाद है, जिसमें अन्य लोगोंको लूटनेकी नीयत रहती है। साम्राज्यवाद और अर्थसत्तावादसे शान्तिकी उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। हम लोग पूर्ण स्वाधीनता और औपनिवेशिक स्वाधीनता पर काफ़ी वादविवाद कर चुके हैं, पर सच तो यह है कि हम अधिकार प्राप्तिके लिये लड़ते हैं। हमारी स्वतंत्रताकी लड़ाई अधिकारों और शक्तिके लिये है। किसी प्रकारका भी औप-निवेशिक पद (डोमिनियन स्टेटस) हमें सच्चा अधिकार या स्वराज्य न दे सकेगा। इस अधिकारका एक ही प्रमाण है—विदेशी सेना हटा ली जाय, और आर्थिक आधिपत्य हम प्राप्त करें। हम आज भारतकी पूर्ण स्वाधीनताके लिये खड़े हुए हैं, और हम यह घोषणा करते हैं कि अब भविष्यमें हम भारतवासी किसी विदेशी शासनके अधीन न रहेंगे। कोई भी और विशेषकर इग्लैण्ड हमारे दृढ़ निश्चयको तुच्छ न समझे। यदि हम आज असफल हुए, और कल भी असफल हुए तो परसों निश्चय ही हम सफलता प्राप्त करके रहेंगे।

"मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मैं सोशलिस्ट और

रिपब्लिकन-समाजवादी और प्रजातंत्रवादी हूं। मेरा विश्वास राजाओं, जमींदारों और पूजीपतियोंकी सत्तामें नहीं है। हमारी तीन मुख्य समस्याएं हैं—अल्पसंख्यक जातियां, देशी राज्य और श्रमजीवी (मजदूर और किसान) हमें अल्पसंख्यक जातियोंको अपने शब्दों और कार्यांसे यह दृढ़ निश्चय करा देना चाहिये कि उनकी सभ्यता और संस्कृतिकी यहां पूरी रक्षा रहेगी। देशी राज्य सम्पूर्ण राष्ट्रकी उन्नतिमें बाधक हैं। आश्चर्य है कि अब भी ऐसे कुछ राजा लोग हैं, जो अपनेको ईश्वरका प्रतिनिधि समझकर जनता पर मनमाना शासन जारी रखे हुए हैं, वे कठपुतले ही क्यों न हों। ब्रिटिश शासकोंने अपनी सत्ताको बनाये रखनेके लिये इन राजाओंका सृजन किया है। पर देशी राज्योंकी दीन हीन प्रजाको हम उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देख सकते। तीसरी समस्या श्रमजीवियोंकी, देशकी सबसे बड़ी समस्या है। भारतके किसानों और मजदूरोंकी दशा जब तक न सुधरेगी तब तक देशकी दशा सुधरनी भी असम्भव है। मजदूरोंकी इस मांगको यह राष्ट्र-महासभा स्वीकार करेगी कि 'मजदूरोंको अच्छा जीवन निर्वाह करनेके लिये अवसर मिले' और इसके लिये उन्हें वह सब प्रकारकी सहयता देगी।

"हम अपने छोटे-छोटे झगड़े भुलाकर राष्ट्रीय कार्यक्रमके पूरा करनेमें लग जायँ। पिछला कार्यक्रम त्रिविध बहिष्कार था—धारा-सभाओं, अदालतों और विद्यालयोंका बहिष्कार, जिसमें आगे चल कर सेनामें नौकरी न करना और कर न देनेका कार्यक्रम भी शामिल

है। यह बहिष्कार केवल साधन होगा, साधक नहीं। इससे हमारी शक्ति बढ़ेगी। हमारा कार्यक्रम राजनीतिक और आर्थिक बहिष्कारका होना चाहिये। आजकल हमारे देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें षड्यंत्रोंके मामले चल रहे हैं, परन्तु गुप्त षड्यंत्र करनेका समय गया, और अब तो भारतमाताको पराधीनतासे मुक्त करनेके लिये खुला षड्यंत्र करना चाहिये। मित्रों, प्यारी वहनों! तुम सबको इस महान् कार्यके लिये नियंत्रित किया जा रहा है। देशभक्ति और देश सेवाका पुरस्कार है यातना, कारागार और मृत्यु। परन्तु आपको इससे सन्तोष होगा कि आपने अपना थोड़ा-सा कर्त्तव्य पालन करके प्राचीन भारतको, जो सदा युवा है, मुक्त किया और मानवसमाजको दासतासे छुड़ानेमें सहयोग दिया है।"

दूसरे दिन कांग्रसके खुले अधिवेशनमें महात्मा गांधीने पूर्ण स्वाधीनताका प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसमें राष्ट्रीय कांग्रेसका ध्येय बताते हुए यह कहा गया, कि—"स्वराज्य शब्दका अर्थ पूर्ण स्वाधीनता है... यह कांग्रेस आशा करती है—कि सभी कांग्रेसवादी भारतके लिये पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करनेका प्रयत्न करेंगे। पूर्ण स्वाधीनताके संगठन और कांग्रेस नीतिको बदले हुए ध्येयसे अधिकाधिक संगत बनानेके लिये यह निर्णय करती है कि व्यवस्थापिका परिषदों, कौंसिल आफ स्टेट और सभी प्रादेशिक कौंसिलों और सरकारी कमेटियोंका बहिष्कार किया जाय, और भावी निर्वाचनोंमें कोई भाग न लिया जाय, और इस समय कौंसिलों और कमेटियोंमें जो

सदस्य हैं वे इस्तीफा दे दें। यह कांग्रेस अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटीको अधिकार देती है कि वह जब जहाँ उचित समझे सामुदायिक सत्याग्रह और करबन्दीका कार्यक्रम जारी कर दे।

पंडित मोतीलाल नेहरूने प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा कि लाहौर कांग्रेसका यही एक मुख्य प्रस्ताव है। यदि आप चाहते हैं कि संसारके सामने आपका मस्तक ऊँचा रहे तो प्रस्तावको उसी रूपमें स्वीकार कीजिये जिस तरह विषय निर्वाचिनी समितिने उसे स्वीकार किया है।

विवादके अन्तमें महात्मा गांधीने महत्वपूर्ण भाषण देकर अपने पुष्ट तर्कोंसे समालोचकों और विरोधियोंको शान्त कर दिया। उन्होंने अपने प्रस्तावकी सब बातें ऐसी युक्तियुक्त पद्धतिसे समझाईं कि आपत्ति करनेवालोंकी संख्या बहुत कम हो गई, और उनका प्रस्ताव बहुमतसे स्वीकार हुआ। उन्होंने अपने अहिंसात्मक आन्दोलनका बल और सरकारके पाशविक दमनका बल मिलाते हुए कहा—"क्या वह बहादुर है जो तलवार चलाता है, या जो सामने कटार तनी देखकर शान्तिके साथ छाती खोलकर साहस दिखाता है? जिन लोगोंने संशोधन पेश किये हैं, उनसे इसपर विचार करने का मेरा अनुरोध है। हममें आवश्यक बल केवल अहिंसासे ही बढ़ सकता है।" इसके बाद कांग्रेसमें एक नयी आशावादिता और दृढ़ता दिखाई दी।

पूर्ण स्वतंत्रताकी लहर

पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा लाहौरमें पूर्ण स्वतंत्रताकी घोषणा करनेके पश्चात् भारतीय कांग्रेस एक नये प्रयत्न और संघर्षके लिये तैयार हुई, जो पहलेके सभी आन्दोलनोंकी अपेक्षा अधिक गम्भीर तथा अभूतपूर्व था। पूर्ण स्वतन्त्रताका निश्चय कांग्रेस-इतिहासमें एक नया ज्वलन्त परिच्छेद था, जिसकी कुछ तुलना केवल सन् १८५७ की विद्रोहात्मक भावनासे की जा सकती है। भारतकी राष्ट्रीय मांगोंमें पहले स्वशासन, आत्म-निर्णय उत्तरदायी शासन या औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करनेकी बातें कही जाती थीं, पर अब पं० जवाहरलाल नेहरूके नेतृत्वमें राष्ट्रीय कांग्रेसने पहली बार पूर्ण स्वतंत्रताकी जोरदार घोषणा की, जिससे जनतामें एक नवीन लक्ष्यके लिये नवीन आशा और आकांक्षाका संचार हुआ और सारा देश एक नवीन जागृतिकी उत्ताल तरङ्ग से आन्दोलित हो उठा, राष्ट्रने एक नये व्रत और संकल्पके साथ संघर्षके तीसरे दौरमें प्रवेश किया।

राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरूने एक नये संग्राममें शरीक

होनेके लिये समस्त देशवासियोंको पुकारा, और उस पुकारपर जनता इस तरह उतावली होकर आगे बढ़ी, जैसे वह स्वतंत्रताकी लड़ाई लड़नेके लिये पहलेसे ही तैयार थी और केवल अपने राष्ट्रपति के आदेशका इन्तजार कर रही थी। स्वतंत्रता दिवस मनाने के लिये २६ जनवरीकी तिथि निश्चित की गई, और उस दिन देशभरमें बहुसंख्यक जनताने पूर्ण स्वतंत्रताके लिये पवित्र प्रतिज्ञा की, जिसमें यह कहा गया, कि "भारतके हितके लिये बलिदान और आत्मत्यागके महान् स्फूर्तिदायक उदाहरणोंको सामने रखते हुए हम स्वतंत्रताकी प्रतिज्ञाको दुहराते हैं और भारतवर्ष जब तक स्वतंत्र नहीं हो जाता, तब तक अपनी लड़ाई जारी रखनेका निश्चय करते हैं।" स्वतंत्रताके वीर सैनिक सभी नगरों और कस्बोंमें यह प्रतिज्ञा करनेके लिये एकत्र हुए थे।

महात्मा गांधीकी उंगलियां इस समय जनताकी नाड़ी पर थीं, और वे अपने अपूर्व आत्मज्ञानसे जनताकी शक्तिका अन्दाजा लगा रहे थे, क्योंकि वे भद्र अवज्ञा (सत्याग्रह) आन्दोलन प्रारम्भ करनेके लिये उत्सुक थे। उन्होंने देखा कि सन् १९३० की भारतीय जनता अधिक संयमी और दृढ़प्रतिज्ञ है। इधर नेहरूजी जन-समुदायके सामने केवल आन्दोलनके आर्थिक पहलूपर जोर देते हुए, आर्थिक कार्यक्रमका प्रचार कर रहे थे जिससे किसानों और श्रमजीवियोंमें एक नवीन शक्ति और जागृति आ गई थी। उनके अतिरिक्त इस बारके आन्दोलनमें बहुसंख्यक स्त्रियां भी परदा त्यागकर राजनीतिक क्षेत्रमें उतर आई थीं। विश्वव्यापी

आर्थिक मन्दी और उसके अनिष्टकारी प्रभावसे भयप्रद स्थितिकी भीषणता और भी बढ़ गई थी।

इस विकट परिस्थितिमें शासकोंसे ऐसा भयानक संघर्ष हुआ जैसा पहले भारतमें कभी नहीं हुआ था। एक ओर शक्तिशाली सरकार अपने महान् दमन-चक्रके साथ तैयार थी, और दूसरी ओर गांधी और नेहरूके अहिंसात्मक योद्धा अपने प्राणोंकी बाजी लगाए हुए थे। दोनोंमें भयानक संघर्ष हुआ, जिसकी प्रतिध्वनि भूमंडलके चारों कोनोंपर सुनाई दी। संसार आश्चर्यके साथ उस नाटकीय संग्रामका दारुण दृश्य देख रहा था जिसमें अनगिनत नर, नारी और बच्चे लाठियों और गोलियोंके प्रहारोंसे गिरते थे, पर पीछे नहीं हटते थे।

सरकार शीघ्र ही सङ्कटकी गुरुता समझ गई और वह उसके निवारणके प्रयत्नोंमें लग गई, उसने गांधीजीको समझाने-बुझानेका प्रयत्न किया, और वह फिर पहलेकी तरह अस्पष्ट वादे करने और दिलासे देने लगी। उसने गांधीजीको फुसलाया और धमकाया। पर गांधीजी किसी दम-दिलासे या धमकीमें आनेवाले नहीं थे। उन्हें ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और उनके वादोंका बहुत काफी अनुभव था। उन्होंने अपनी राष्ट्रीय मांगोंको मनवानेपर जोर दिया, जो अहंकारी सरकारको बुरा मालूम हुआ। न गांधीजीने माना, और न सरकारने माना, इधर आन्दोलन जङ्गलमें लगी हुई आग की तरह द्रुत वेगसे बढ़ता जा रहा था। अंग्रेजोंके बनाये कानूनों की खुलकर अवज्ञा जोरोंमें हो रही थी।

गांधीजीके इस विद्रोहमें अन्य बातोंके अतिरिक्त नमक-करको भंग करना उसका प्रमुख अंग था। भारतमें नमकपर सरकारका एकाधिपत्य अधिकार है, और इस करका सबसे अधिक बोझ गरीबोंपर पड़ता है। गांधीजीने अपनी जनताको नमक बनानेका आदेश दिया, और लोग बहुसंख्यामें जहां-तहाँ नमक बनाने लगे, इस तरह विद्रोह गरीबोंके झोपड़ों तक सहज ही में फैल गया। गांधीजी स्वयं नमक बनानेके लिये समुद्रकी ओर गये और उनकी वह ऐतिहासिक यात्रा देखनेके लिये जवाहरलाल नेहरू भी वहाँ पहुंच गए थे। नेहरूजीको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि गांधीजीके थोड़ेसे शब्द किस तरह लाखों हृदयोंको हिला देते हैं।

नेहरूजी वह दृश्य देखकर तुरन्त ही अपने प्रान्तको लौट आये, और जनताको नमक-कर भंग करनेके लिये उत्साहित करने लगे। भारतीय संग्रामके इस दौरमें नेहरू परिवारके आत्मत्याग बड़ी ही बीरताके साथ हुए, उनके पिता, माता, पत्नी और बहिनें सब राष्ट्रीय संग्रामके प्रथम पंक्तिमें थे। उन्हें जेल हुई, वे लाठी प्रहारों की चपेटमें आये, उनकी जायदाद जब्त हुई और उनके कितने, ही प्रियजन संसारसे भी उठ गये, तोभी लड़ाई बराबर जारी रही।

गाँधीजीके शब्दोंमें "दांनवी सरकार" अब अपनी पूर्ण क्रूरता के साथ राष्ट्रीय आन्दोलनपर टूट पड़ी। उसने कांग्रेसको एक गैर-कानूनी संस्था घोषित कर दिया, और कांग्रेसका धन-कोष

जब्त कर लिया। जनताकी समस्त नागरिक स्वतंत्रता समाप्त हो गई, और अत्यन्त कठोर कानूनों (आर्डिनेन्स) का दौर-दौरा शुरू हो गया, जिनमें केवल सत्याग्रही सैनिक ही नहीं; बल्कि गैर-लड़ाकू लोग भी मारे-पीटे और जेलोंमें घसीटे गये।

पं० जवाहरलाल नेहरू भी अधिक दिनों तक स्वतंत्र न रह सके और १४ अप्रैल, १६३०, को जब वे रेलगाड़ीसे यात्रा कर रहे थे, तो उन्हें गिरफ्तार किया गया। उसी दिन जेलमें उनपर मुकदमा चला और नमक कानून भङ्ग करनेके लिये उन्हें ६ मासकी सजा मिली। उन्हें अपने गिरफ्तार होनेका आभास पहले ही मिल गया था, इसलिये उन्होंने अपने पिताको कांग्रेसका स्थानापन्न अध्यक्ष नियुक्त कर दिया था। पुत्रसे पिताको अच्छी कृपा प्राप्त हुई! उस समय नेहरूजीके परिवारके साहस और आत्मत्याग की कोई सीमा न थी। जवाहरलालजीकी वृद्धा माता और बहिनें विदेशी वस्त्र और मद्य बहिष्कारकी 'पिकेटिंग' का नेतृत्व करती थीं। सभी श्रेणियोंकी स्त्रियां उनके साथ राष्ट्रीय संग्राममें शरीक थीं।

गांधीजी सहसा ५ मईको गिरफ्तार कर लिये गये और उनके बाद बीमार पं० मोतीलाल नेहरू भी गिरफ्तार किये गये। पंडित मोतीलालजीको उसी जेलमें रखा गया, जिसमें जवाहरलाल नेहरू थे। इस बार जवाहरलालजीको जेलकी एक ऐसी तंग और गन्दी कोठरीमें रखा गया था, जो 'कुत्ता घर' के नामसे प्रसिद्ध थी। जवाहरलालजीको उसके बाहर निकलनेकी आज्ञा नहीं थी, पर कुछ

दिनों बाद उन्हें बाहर निकल कर व्यायाम आदि करनेकी अनुमति मिल गई थी। वे घंटों बैठ कर चरखा चलाने, अपनी कोठरी साफ करने और अपने कपड़े धोनेमें समय बिताते थे। बादमें जब पं० मोतीलालजी आये तो वे अपने काम छोड़ कर उनकी सेवा भी करते थे। दस सप्ताह बाद मोतीलालजी रिहा कर दिये गये और फिर एक मास बाद जवाहरलालजी भी छोड़ दिये गये।

पर उनकी यह स्वतन्त्रता केवल एक ही सप्ताहके लिये रही। जेलसे रिहा होते ही जवाहरलालजीने किसानोंकी विराट सभामें भाषण दिया, जिसे स्वेच्छाचारी सरकारने आपत्तिजनक समझा, और वे जब अपनी धर्मपत्नी कमला नेहरूके साथ मोटरसे अपने बीमार पिताको देखनेके लिये जा रहे थे तो आनन्द-भवनसे कुछ दूर ही पुलिसने उनकी मोटर रोक दी। जवाहरलालजी फिर पकड़े गये और इस बार उन्हें १८ मासका सपरिश्रम कारावास दंड मिला। उनका मुकदमा जेलमें ही सुना गया और उन्होंने अपनी पैरवीमें कुछ नहीं कहा था, केवल एक वक्तव्य देकर अंग्रेजोंके कुशासनकी टीका-टिप्पणी की थी।

इसके बाद बीमार कमला नेहरू भी पीछे न रहीं। उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलनमें प्रमुख भाग लेकर स्वयं गिरफ्तार होनेका कई बार प्रयत्न किया, पर सरकार स्त्रियों पर दमन करनेसे इसलिये संकोच करती, कि यदि स्त्रियोंको भी जेल भेजा गया तो सर्वसाधारणमें अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोहाग्नि और भी धधकेगी। पर

अब स्त्रियोंके लिये भी आत्म-बलिदान करनेका समय आ गया और हजारों स्त्रियां भी कारावद्ध की गईं। वे देशभक्तिके धार्मिक गान गाती हुई जेलोंमें जाती थीं। कमला नेहरू जब गिरफ्तार हुईं तो पत्र-संवाददाता उनके पास सन्देश लेनेके लिये पहुंचा। कमलाजीने प्रसन्न चित्त हो केवल इतना ही कहा,—"मुझे बड़ा हर्ष और गर्व है कि मैं अपने पतिका पदानुशरण कर रही हूं। मुझे आशा है कि लोग राष्ट्रीय झंडेको ऊँचा रखेंगे।"

पिताका स्वर्गवास

जवाहरलाल नेहरूकी गिरफ्तारीसे जनतामें बड़ी सनसनी फैली और आन्दोलनमें एक नयी प्रगति आई। रोग-शय्या पर पड़े हुए बीमार पं० मोतीलालजी पुत्रकी गिरफ्तारीसे बहुत खिन्न हुए और उन्होंने अपनी बीमारीकी अवहेलना करते हुए पुत्र-प्रेमसे तड़फ कर कहा कि,—"मैंने अब यह निश्चय कर लिया है कि मैं अब अधिक बीमारीके प्रति आत्मसमर्पण न करूँगा।" वह उठ कर बैठ गये और कुछ विचार करनेके बाद उन्होंने जवाहरलालजीकी वर्ष-गांठ (१४ नवम्बरको) अखिल भारतीय महोत्सवके साथ मनानेकी घोषणा की।

उस दिन जवाहरलालजीकी वर्ष-गांठ पर देशमें सार्वजनिक सभाएँ हुईं, जिनमें बहुसंख्यक मनुष्योंने जवाहरलालजीके भाषणकी आपत्तिजनक बातें गर्जनाके साथ पढ़ कर सुनाईं। सरकारको यह बुरा मालूम हुआ और उसकी आज्ञासे पुलिसने लाठियां चलाकर सभाएँ भंग कीं। कितने ही सिर टूटे, कितने ही लाठियोंके प्रहारसे धाराशायी हुए और पाँच-छः हजार गिरफ्तारियां हुईं। भारतने यह एक विचित्र उपहार जवाहरलालजीकी वर्ष-गांठ पर भेंट किया।

स्वर्गीय पिता
पंडित मोतीलाल नेहरू

देशमें जब कि हजारों राष्ट्रीय नेता और कार्यकर्त्ता कारावद्ध हो रहे थे, तो उधर लन्दनमें हमारे देशवासी राउंडटेबल कान्फ्रेन्स में भारतके लिये एक नया शासन-विधान बनानेमें व्यस्त थे। भारतके सच्चे नेता सब जेलोंमें थे, पर प्रतिक्रियावादी स्वयम्भू नेता अपने निजी स्वार्थोंकी रक्षाके निमित्त, ब्रिटिश शासन बनाये रखने के लिये लन्दनमें शासकोंसे मिल कर देशके विरुद्ध षड्यन्त्र करने में संलग्न थे। चतुर ब्रिटिश शासकोंने सोचा कि नेहरूजी या गांधीजीके बिना उनकी विधान बनानेकी सब चालें व्यर्थ होंगी, इसलिये देशकी नाराजी दूर करनेके भी विचारसे सरकारने राष्ट्रीय नेताओंको रिहा करना आरम्भ कियाँ।

जवाहरलालजी जेलमें छः महीने और बीमार कमला नेहरू २६ दिन रहीं। इसके बाद दोनों २६ जनवरीको स्वतन्त्रता-दिवस के अवसर पर जेलसे छोड़ दिये गये। पर स्वतन्त्र होने पर जवा-हरलालजीको एक दूसरे दारुण दुःखका सामना करना पड़ा। उनके पिता पं० मोतीलालजी, जो स्वतन्त्रताके संग्राममें बराबर उनके सहयोगी रहे, बहुत बीमार थे। महात्मा गांधी भी जेलसे रिहा हो चुके थे और वे अपने एक भक्त-मित्रकी बीमारीका हाल सुन कर तुरन्त प्रयागके लिये रवाना हुए। देशके अन्य बड़े-बड़े नेता भी मोतीलालजीके अन्तिम दर्शन करने तथा उनसे अन्तकालमें भी कुछ परामर्श करनेके लिये प्रयाग आये। तर्क और न्यायके महान् आचार्य पं० मोतीलालजी एक असहाय बूढ़े सिंहकी तरह पलंग पर पड़े थे, दुःख और सन्तापमें डूबे हुए जवाहरलालजी चुपचाप खड़े-खड़े अपने पिताको देख रहे थे।

मोतीलालजी धीमे स्वरमें मित्रोंसे बातें कर रहे थे, पर जब वे न बोल सकते तो परचे पर अपनी बातें लिख देते थे। उन्होंने गांधीजीकी ओर देखकर कहा—"महात्माजी, मैं जा रहा हूँ, और मैं स्वराज्य न देख सकूंगा। पर मैं जानता हूँ कि आपने स्वराज्य प्राप्त कर लिया है और आप शीघ्र ही उसका उपयोग करेंगे।" मोतीलालजीके अन्तिम विचार भी भारतीय स्वतन्त्रताके लिये ही थे। उन्हें उसी दिन 'एक्सरे' करानेके लिये लखनऊ भेजा गया, और वहां दूसरे दिन उनका देहान्त हो गया।

इस समाचारसे देश भरमें शोक छा गया, बहुसंख्यक मनुष्योंकी भीड़ उनके प्रति अपना अन्तिम सम्मान प्रकट करनेके लिये आनन्द-भवनमें जमा होने लगी। मोतीलालजीका शव राष्ट्रीय झंडेसे लपेटा गया, और गंगा नदीके श्मशान घाट पर उनका अन्तिम संस्कार हुआ। गांधीजीने भीड़को सान्त्वना देनेके लिये कुछ शब्द कहे। और, गांधीजीके मार्मिक दुःखका तो ठिकाना ही क्या था। उनका दुःख तो इन शब्दोंसे ही प्रकट होता है कि—"मोतीलालजीके चले जानेसे मैं एक विधवा स्त्रीकी तरह पीड़ा अनुभव कर रहा हूँ।"

किसी महान् नेताके स्वर्गारोहण होनेपर राष्ट्रीय आन्दोलनको निश्चय ही आघात पहुंचता है, पहले बंगालके नर-पुंगव देशबन्धु चित्तरंजन दास गये, इसके बाद पंजाब-केसरी लाला लाजपत राय गये, और अब पं० मोतीलाल नेहरूकी बारी थी! इनमें से किसीके भी रिक्तस्थानकी पूर्त्ति न हो सकी।

गोलमेज परिषद्की निष्फलता

लन्दनकी प्रथम राउंड टेबल कानफ्रेन्स निष्फल होनेके बाद ब्रिटिश शासकोंने देखा कि बिना कांग्रेसके, केवल माडरेटोंके भरोसे उनकी कोई भी योजना सफल न होगी, इसलिये वायसराय लार्ड इर्विन (बादमें लार्ड हेलिफेक्स) ने महात्मा गांधीसे समझौतेकी वार्ता आरम्भ कर दी, जिसके फलस्वरूप एक समझौता हुआ जो गांधी-इर्विन पेक्टके नामसे विख्यात है। उसके द्वारा विराम-सन्धिकी शान्ति हो गई और गांधीजीने आन्दोलन रोक दिया, जो जवाहरलालजी नेहरूको अच्छा न लगा। लेकिन समझौते पर गांधीजीका हस्ताक्षर था, इसलिये इच्छा न रहते हुए भी नेहरूजीने उसे स्वीकार किया।

गांधीजी राष्ट्रीय कांग्रेसके एक मात्र प्रतिनिधि होकर लन्दनके लिये रवाना हुए, और इधर भारतमें फिर दमन-चक्र शुरू हुआ। जवाहरलालजीने सरकारकी इस निष्ठुरताको बहुत ही अनुचित समझा, और उन्होंने घोषणा की, कि 'सरकारने अकारण ही दमन-चक्र चलाकर समझौता भंग किया है।' उधर सरकारने नेहरूजी और अन्य नेताओं पर यह दोषारोपण किया कि वे जनताको

सरकारके विरुद्ध भड़का रहे हैं। नेहरूजीने बड़ी वीरताके साथ आर्डिनेन्सोंके कठोर शासनका विरोध किया। नेहरूजीने दौरा करके लोगोंको समझाया, कि वे ऐसे अन्यायी आर्डिनेन्सोंको कदापि न मानें, जिनमें बच्चोंके कार्योंके लिये माता पिता और अभिभावकोंको दंड दिया जाता है।

पं० जवाहरलाल नेहरू उस समय दक्षिणका दौरा करते हुए कर्नाटक तक पहुँच गये थे, और दक्षिणसे उत्तर भारत लौटते हुए उन्होंने सर्वत्र राष्ट्रीय आन्दोलनकी प्रबल प्रगति देखी, जिससे उन्हें सन्तोष हुआ। गांधीजी कांग्रेसके एक मात्र प्रतिनिधि होकर लन्दन की गोलमेज परिषद (राउंड टेबल कान्फ्रेन्स) में शरीक होनेके लिये गये थे, और उनसे समझौता करनेके बाद सरकारको देशमें कमसे-कम शान्ति पूर्ण वातावरण स्थापित रखना चाहिये था, पर उसने शान्तिके बदले दमनका दौर-दौरा शुरू कर दिया। गांधीजीने लन्दनमें ही यह समाचार सुन लिया था कि बंगालमें कठोर आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये हैं, और इससे वे बहुत दुखी हुए थे। जवाहरलाल नेहरू इस नये आन्दोलनकी हलचलमें एक दिन मोटरसे अपने नगर लौट रहे थे और तभी उन्हें मार्गमें ही आर्डिनेन्सके अन्तर्गत एक आदेश पत्र मिला, जब वे इलाहाबाद पहुंचे तो उन्हें दूसरा आर्डिनेन्स-पत्र मिला, और जब अपने घर आनन्द-भवन पहुँचे तो उन्हें एक तीसरा आर्डिनेन्स मिला। इनमें से प्रत्येक आर्डिनेन्सके द्वारा नेहरूजी पर कोई न कोई प्रतिबन्ध लगाया गया था, जिनका तात्पर्य यह था, कि वे 'इलाहाबाद म्युनि-

सिपल सीमाके बाहर न जांय, न किसी सार्वजनिक सभामें शरीक हों, न किसी समाचार पत्रमें कोई लेख आदि लिखें, और न थोड़ेसे मनुष्योंके समूहके सामने भी भाषण करें।'

इस स्वेच्छाचारिताकी आज्ञापर नेहरूजीने शिष्टताके साथ मजिस्ट्रेटोंको यह सूचना दी, कि—'मैं इस आर्डरको नहीं मानूंगा, और मैं गांधीजीसे मिलनेके लिये शीघ्र ही बम्बई जानेवाला हूँ।' नेहरूजी अपने निश्चयके अनुसार दूसरे ही दिन बम्बईके लिये रवाना हो गये। किन्तु एक गाँवके स्टेशनके पास उनकी ट्रेन रोक दी गई, और कुछ पुलिस अफसरोंने उनके डिब्बेमें घुसकर उन्हें गिरफ्तार किया। ४ जनवरी १९३२ को उन्हें दो वर्षका कारावास दंड मिला। पर उसी अपराधमें उनके अन्य सहयोगियों को केवल छः मासका दंड मिला था, इससे मालूम होता है कि सरकारका कोप उनपर विशेष रूपसे कुछ अधिक था।

नेहरूजी और सभी प्रमुख नेता तथा कार्यकर्ता कारावद्ध हो चुके थे। दो दिन बाद महात्मा गांधी जब लन्दनसे बम्बई लौटे तो उन्हें सरकारकी इस दमन नीतिपर बड़ा क्षोभ हुआ। गांधीजीने वायसरायको पत्र लिखा, और उनसे मिलनेका भी प्रयत्न किया, पर वे इसमें निष्फल रहे। इसके बाद सरकारने गांधीजीको भी गिरफ्तार कर लिया। देशमें फिर एक बार प्रबल सत्याग्रह आन्दोलन और जोरोंका दमन शुरू हुआ। नित्य हजारों गिरफ्तारियां और सजाएँ होने लगीं। सत्याग्रही कैदियोंसे सब जेलें भर गईं, पर कैदियोंके लिये सरकासको नयी जेलें बनवानी पड़ीं।

नेहरूजीके कारावद्ध होनेके बाद उनके परिवारके लोग भी शान्त न रहे। उनकी बीमार पत्नी कमला नेहरूका तो बम्बईमें इलाज हो रहा था, पर उनकी माता और दोनों बहिनें आन्दोलनमें कूद पड़ीं। श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित और श्रीमती कृष्णा नेहरू को आन्दोलनमें प्रमुख भाग लेनेके कारण एक-एक वर्षका कारावास दंड मिला। सारे देशमें नादिरशाहीको भी लज्जित करनेवाली एक भीषण दमनकी धूम मची थी।

इसी समय माता स्वरूपरानी नेहरूके साथ एक ऐसी घटना हुई, जिसपर देश दुःख और आश्चर्यके साथ स्तब्ध रह गया। २६ जनवरीके राष्ट्रीय सप्ताहमें वह प्रयागमें एक जलूसका नेतृत्व कर रही थीं, उसी समय उद्दंड पुलिस-दलने पहुंचकर जलूसपर लाठियां बरसाईं। पुलिसकी लाठी दुर्बल मातास्वरूप रानीके सिरपर भी पड़ी और वह बेहोश होकर वहीं सड़कपर गिर गईं। उनके मस्तकके घावसे रक्तकी धारा बह चली। बादमें कुछ पुलिस-अफसरोंने उन्हें उसी बेहोशीकी दशामें उठाकर आनन्द-भवन पहुँचाया।

इस समाचारसे इलाहाबाद-भरमें सनसनी और नाराजी फैल गई और फिर यह अफवाह भी फैली कि माता स्वरूपरानी पुलिस के लाठी प्रहारसे मर गईं। अब तो क्रुध मनुष्योंकी भीड़के क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा। लोग अहिंसाका पाठ भूल गए और उन्होंने विक्षिप्त होकर पुलिसपर हमला किया। पुलिसने जवाबमें गोलियां चलाईं, जिनसे बहुतेरे मनुष्य मरे और घायल हुए

यह दुःखद समाचार नेहरूजीको जेलमें मिला, जिसपर वह अपनी आत्मकथामें लिखते हैं—"इस खयालसे ही मुझे बड़ी बेचैनी हुई कि मेरी वयोवृद्धा निर्बल माता खूनसे लथपथ सड़ककी धूलपर पड़ी हैं और मुझे आश्चर्य है कि यदि मैं उस समय वहाँ होता तो क्या करता ? मेरा अहिंसा व्रत कहां तक मेरा साथ देता ?" और, नेहरू फिर आगे लिखते हैं—"धीरे-धीरे माता अच्छी हुईं और दूसरे महीने जब वह मुझे जेलमें देखने आईं तो उनके सिरके घावपर पट्टी बँधी थी। पर इसपर उन्हें बहुत ही हर्ष और गर्व था कि स्वयंसेवक लड़कों और लड़कियोंके साथ उन्होंने बेंत और लाठियोंके प्रहार सहन किये।"

पर माताका स्वास्थ्य फिर न सुधरा और वह दिनों-दिन बीमार और कमजोर होती गईं। वर्ष-भरके भीतर उनकी दशा बहुत ही चिन्ताजनक हो गई। डाक्टरोंका इलाज उन्हें कुछ सँभाले था, पर उनकी बीमारीसे जनता बहुत ही चिन्तित थी।

इधर पं जवाहरलाल "जेलकी चिड़िया" प्रसिद्ध हुए और उसी तरह जीवन व्यतीत करने लगे। कुशासनकी दुर्नीतिमें सच्चे ईमानदार मनुष्योंके लिए जेल ही रहनेके लिए उपयुक्त स्थान है। सुप्रसिद्ध आदर्शवादी विलियम थोरोने लिखा है कि "जिस समय पुरुषों और स्त्रियोंको अन्यायपूर्वक कारावद्ध किया जाता है, उस समय ईमानदार नर-नारियोंका उचित स्थान जेल ही में है।" नेहरूजीका सम्बन्ध बाहरी संसारसे बिलकुल कट गया था और जेलमें उनका अधिक समय लिखने-पढ़नेमें ही व्यतीत होता था।

जेलमें ही उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखी, जो जून १९३४ में प्रारम्भ हुई और फिर १८ महीनोंमें समाप्त हुई। इस पुस्तकमें उन्होंने अपने समयकी भारतीय राजनीति तथा अनेक ऐतिहासिक घटनाओं आदिका बहुत ही मार्मिक दिग्दर्शन किया है। जेलसे ही उन्होंने अपनी पुत्री इन्दिराको वे हजारों पत्र लिखे, जो बादमें "ग्लीम्पसेज़ इन टू वर्ल्ड हिस्ट्री" नामक पुस्तकके रूपमें प्रकाशित हुए। जेलमें वे हर समय अपनेको व्यस्त रखते या कीड़े-मकोड़ोंके तमाशे देखते थे।

कुछ दिनों बाद गांधीजीने अपना सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया। देशमें राजनीतिक कैदियोंकी रिहाई हुई। पं० जवाहरलालजी भी छोड़ दिए गये, पर वे कुछ ही दिन जेलसे बाहर रह सके। उन्हें कमलाजीके इलाजके सम्बन्धमें कलकत्ते जाकर डाक्टरोंसे परामर्श करना था। वे सपत्नीक कलकत्ता गये और वहां उन्होंने तीन भाषण ऐसे दिये, जो सरकारके लिये आपत्तिजनक थे और बादमें उन्हीं भाषणोंके लिये उनकी गिरफ्तारी और सजा हुई। वे कलकत्ता साढ़े तीन मास रह कर कमलाजीके साथ शान्ति-निकेतन चले गये और वहां विश्वविख्यात महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे मिले।

बिहार भूकम्पमें नेहरूजीके कार्य

सन् १९३४ के जनवरीमें उत्तर भारतमें एक बड़ा ही भीषण भूकम्प आया, जिससे सारा बिहार प्रान्त प्रायः ध्वस्त हो गया। पं० जवाहरलाल नेहरू सपत्नीक कलकत्तेसे लौटते हुए पटनामें ठहर गये। बिहार-केसरी बाबू राजेन्द्र प्रसाद हाल ही में जेलसे छूटे थे और वे भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायताके लिये काम कर रहे थे। जवाहरलाल कमला नेहरूके भाईके मकानमें ठहरनेवाले थ, पर भूकम्पसे वह खंडहर हो गया था। पहले वह ईंटोंकी एक बड़ी भारी दोमंजिला इमारत थी। इसलिये जवाहर-लालजी भी अन्य लोगोंकी तरह खुले मैदानमें ही ठहरे।

दूसरे दिन जवाहरलालजी मुजफ्फरपुर गये। भूकम्प हुए एक सप्ताह बीत चुका था, पर अभी तक सिवा कुछ खास रास्तोंके, कहीं भी मलवा हटानेके लिये कुछ काम नहीं हुआ था। इन रास्तोंको साफ करते समय बहुत-सी लाशें निकलीं। ध्वस्त घरों और बड़ी-बड़ी इमारतोंके खंडहरोंका दृश्य बड़ा ही रोमांचकारी था। जो लोग बच गये थे, वे बहुत ही भयभीत और घबराये हुए थे। जवाहरलालजीने कितने ही ध्वस्त स्थानोंमें घूम-घूमकर वहांकी

दुर्दशा देखी, और पीड़ित जनताको सान्त्वना दी। नेहरूजीके लिये तुरन्त ही इलाहाबाद लौटना भी आवश्यक था।

वे इलाहाबाद लौट आये, और कांग्रेसी कार्यकर्ताओं द्वारा उन्होंने भूकम्प-पीड़ितोंके लिये धन और आवश्यक सामान जमा करनेका प्रबन्ध किया। नेहरूजीने धनके लिये जनताके नाम एक अपील प्रकाशित की, और उसी अपीलमें उन्होंने बिहार-सरकारकी अकर्मण्यताकी आलोचना भी की थी, जिसका यह मतलब था कि यदि बिहार-सरकारके अधिकारियोंने मलबा आदि हटानेमें कुछ अधिक तत्परता दिखाई होती तो बहुतेरे मनुष्योंकी जानें बच गईं होतीं। केवल एक मुंगेर नगरमें ही हजारों मनुष्य भूकम्पसे मरे थे, और तीन सप्ताह बाद भी नेहरूजीने वहां जाकर देखा कि गिरे हुए ध्वस्त मकानोंके मलवेका पहाड़ ज्यों-का-त्यों पड़ा था।

इलाहाबादकी भूकम्प-सहायक-समितिने नेहरूजीको बिहार जाने और वहांके कार्योंके सम्बन्धमें एक रिपोर्ट देनेके लिये नियुक्त किया, और नेहरूजी अकेले तुरन्त ही रवाना हो गये। नेहरूजीको इस दौरेमें बड़ा परिश्रम करना पड़ा, यहां तक कि उन्हें सोनेकी भी फुरसत न मिलती थी। प्रातःकाल ५ बजेसे लगभग अर्धरात्रि तक नेहरूजी कार्यकर्ताओंके साथ बराबर घूमते ही रहते थे, कभी वे पैदल चलते, कभी दरारोंवाली फटी हुई टूटी-फूटी सड़कों पर मोटरसे जाते, और जहां मोटरका जाना असम्भव होता, वहां फिर पैदल चलते, कभी छोटी नौकाओंके द्वारा उन स्थानोंमें जाते, जहां

पुल गिर पड़े थे, या जहां समथल धरतीके भंग हो जानेसे सड़कें जलमग्न हो गईं थीं। सड़कोंकी बड़ी-बड़ी दरारोंमें से पानी और बालू बड़े जोरोंके साथ निकला था, जिससे बहुसंख्यक मनुष्य और पशु बह गये थे, ऐसे अनेक नाशकारी भयानक दृश्य देखते हुए नेहरूजी कार्यकर्ताओंके साथ सहायता-कार्यमें संलग्न थे।

नेहरूजीने मुंगेरमें स्वयं अपने हाथोंसे कठिन कार्य करनेका उदाहरण उपस्थित किया। उस समय वहां अनेक सहायक समितियोंके कार्यकर्ता—जिनमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों थे—कार्य कर रहे थे। जवाहरलालजी टोकरी और फावड़ा लेकर इन कार्य-कर्ताओंके साथ आगे बढ़े, और ध्वस्त इमारतोंके मलबेको खोदने लगे। दिन भर वे परिश्रमके साथ यह खुदाईका कार्य करते रहे, जिससे कार्यकर्ताओंका उत्साह बहुत बढ़ गया, और वे अधिक तत्परतासे काम करने लगे।

नेहरूजीने बहुत ही व्यापक रूपसे ध्वस्त स्थानोंका दौरा किया, यहां तक कि वे नेपालकी सीमाके निकट तक पहुंच गये थे। उन्होंने अनेक हृदय-विदारक दृश्य देखे। नेहरूजी पटना आये, और वहां सहयोगी कार्यकर्ताओंसे, पीड़ितोंको सहायता पहुंचानेके सम्बन्धमें देर तक परामर्श करते रहे। इसके बाद वे ११ फरवरीको लौट आये।

लम्बे दौरेके कारण नेहरूजी बहुत ही थके हुए थे, और प्रति-कूल मौसमके प्रभावसे उनके चेहरेका रंग भी बदल गया था। अत्यधिक परिश्रम और पूरी नींद न होनेके कारण वे बिल्कुल

शिथिल हो रहे थे। उन्होंने इलाहाबाद सहायक-समितिके लिये अपने दौरेकी रिपोर्ट लिखनेका प्रयत्न किया, पर नींद उन्हें दबोच रही थी। इसलिये वे पलंग पर पड़ गये, और फिर ऐसी गहरी नींद आई कि १२ घंटे तक सोते रहे।

दूसरे दिन नेहरूजी सायंकाल कमलाजीके साथ बैठे हुए चाय पी रहे थे, और श्री पुरुषोत्तम दासजी टंडन उनसे मिलने आये थे। इतने ही में पुलिसकी मोटर आई, और एक पुलिस अफ़सरने उन्हें सलाम किया। नेहरूजीने कुछ हास्यके साथ कहा—"आइये, बहुत दिनोंसे आपका इन्तजार था।"

उस पुलिस अफसरने कुछ क्षमा याचना करते हुए कहा—"कसूर मेरा नहीं है। वारण्ट कलकत्तेसे आया है।"

उसी रातको जवाहरलालजी पुलिसकी हिरासतमें कलकत्ता भेजे गये। कलकत्तेमें उन्होंने जो पहले भाषण दिये थे, उनके लिये उन्हें दो वर्षकी सजा दी गई। यह नेहरूजीकी सातवीं सजा थी। उन्हें अलीपुर जेलमें रखा गया, पर बादमें उन्हें अलमोड़ा (युक्त प्रान्त) की जेलमें भेज दिया गया।

वीरांगना कमला नेहरू

जवाहरलाल नेहरू सरीखे उत्कट देशभक्त, क्रान्तिकारी नेताकी पत्नी कोई सामान्य स्त्री नहीं हो सकती थी। एक अत्यन्त तेजस्वी और तपस्वी पतिके साथ कमलाजी भी संयमी तपस्विनीकी तरह सच्ची देशसेविका हो गई थीं। वह अपने कर्मठ पतिके राजनीतिक आन्दोलन और कार्योंमें अन्त समय तक शरीक रहीं, और कोई कष्ट सहन करने या आत्मत्याग करनेसे वह कभी पीछे न रहीं। निश्चय ही नेहरूजीके साथ कमलाजीका नाम भी भारतीय इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित और अमर रहेगा।

पंजाबमें ब्रिटिश शासकोंके भीषण हत्याकाण्ड होनेके बाद देशमें एक अभूतपूर्व राजनीतिक आन्दोलनकी लहर आई, जो महात्मा गांधीके नेतृत्वमें बड़ी ही तेजीके साथ सर्वव्यापी क्रान्तिके रूपमें हर तरफ फैल गई। गांधीजीके अहिंसात्मक असहयोग या सत्याग्रह संग्राममें पं० जवाहरलालजी उनके एक प्रमुख सहयोगी तथा नायक रहे, और वीरांगना कमलादेवी पति-देवकी भक्त अनुयायिनी तथा सहकारिणी रहीं। इतना ही नहीं, वह पतिको

कभी चिन्ता या निराशामें देखकर उन्हें प्रसन्न मुखसे उत्साहित करतीं और यह कहना कुछ अत्युक्ति नहीं कि जवाहरलालजीको भी उनकी सम्मति और मीठी बातोंसे बड़ी सान्त्वना मिलती थी।

कमलाजी राजनीतिक आन्दोलनमें सदा आगे रहीं, और नेहरूजीकी तरह वह भी कई बार कारागार गईं थीं। वह यद्यपि एक सुकोमल सुकुमारी राजकुमारीकी तरह थीं, पर देशके लिये कष्ट सहन करने और आन्दोलनकी गति-विधि चलानेमें वह रणकी एक ऐसी निर्भीक वीरांगना थीं जो किसी भी सुख-चैनकी परवाह न करती थीं। स्वदेशीका प्रचार प्रारम्भ होते ही उन्होंने तुरन्त खादी धारण की, और विदेशी वस्त्रका बहिष्कार होनेपर उन्होंने सबसे पहले अपने मूल्यवान विदेशी वस्त्रों और चीजोंमें आग लगादी थी। विलायती वस्त्रोंकी होलीमें कमलाजी सबसे आगे रहीं, और जिन गरीबोंके विदेशी वस्त्र जल जाते उन्हें वह स्वयं अपने पाससे खद्दर के कपड़े देतीं। कमलाजीका विदेशो वस्त्र त्याग सुनकर न जाने कितनी स्त्रियोंने अपने विदेशी कपड़े जलाये, और स्वदेशी को अपनाया। कमलाजीके आत्म त्यागकी कहानियाँ दूर-दूर गाँवों में फैल गईं थीं, और ग्रामीण स्त्रियां उनके तथा उनके पतिके दर्शन करनेके लिये आनन्द-भवन तक आती थीं।

कमलाजी राष्ट्रीय जलूसोंके साथ आगे चलतीं, विदेशी वस्त्र विक्रेताओंकी दुकानों पर धरना देतीं, और पुलिसके प्रहारोंकी अवहेलना करती हुई आन्दोलन करती थीं। वह अपने पतिकी ही तरह बिल्कुल निडर और साहसी थीं। वह मर्दानी वर्दी

पहिनकर स्वयंसेवकोंका काम करती थीं। यह वीरांगना अपनी ननन्द कृष्णा नेहरू और अन्य महिलाओंके साथ हर मुहल्लेमें स्वदेशी और स्वराज्यका सन्देश पहुँचाती थी। कमलाजीके प्रयत्न से नगरकी बहुतेरी लड़कियों और स्त्रियोंने स्वयंसेविकाओंमें अपने नाम लिखवाये। इन स्वयंसेविकाओंने प्रयागमें सत्याग्रह आन्दोलन को बहुत दिनों तक जारी रखा था।

महात्मा गांधीने जब नमक कानून तोड़नेका आन्दोलन प्रारम्भ किया तो जवाहरलालजीने भी प्रयागमें नमक कानून भंगकर नमक बनाया। गांधीजी डांड़ीमें गिरफ्तार हुए, और जवाहरलालजी दो दिन बाद प्रयागमें गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये। इसके बाद उत्तेजनाकी एक लहर आई, और कमलाजीने भी इलाहाबादमें नमक बनाया। उन्होंने बारम्बार नमक कानून भंग किया, पर सरकारने न जाने क्यों उन्हें गिरफ्तार नहीं किया। फिर भी वह नमक बराबर बनाती ही रहीं। उन्होंने उस समय आन्दोलन चलानेका बहुत अच्छा काम किया। वह स्वयंसेवकोंको अपने पास से भोजन और वस्त्र भी देतीं, और उनके प्रति हरतरह दया भाव रखतीं थी।

पंडित मोतीलाल नेहरूने भी नमक कानून भंग किया और विदेशी वहिष्कारके आन्दोलनको आगे बढ़ाया, जिसके लिये उन्हें ६ मासकी सजा मिली थी। इसके बाद तो कमलाजीमें बड़ी तेजी आगई और वह प्रबल वेगसे आन्दोलनकी दावाग्नि फैलाने लगी। वे चौकमें बजाजोंकी दुकानों पर पैदल जातीं, और उनसे विदेशी

कपड़े न बेचनेकी प्रतिज्ञा करवाती थीं। जिन दुकानदारोंने नहीं माना उनकी दुकानों पर जाकर उन्होंने धरना दिया। उस दुबले पतले शरीरमें न जाने कितनी विद्युत शक्ति आगई थी। ग्रीष्मकी तपती हुई लू और दोपहरियामें वे स्वयंसेविकाओंके साथ पैदल निकलतीं और लोगोंसे विदेशी वस्त्र न खरीदनेसे लिये प्रार्थना करती थीं। इसके बाद उन्होंने गाँवोंका भी दौरा किया और ग्रामीणोंको स्वदेशीका सन्देश सुनाया, कमलाजीने कर बन्दीके आन्दोलनमें भी प्रमुख भाग लिया था।

एक बार इलाहाबादके पास एक गाँवमें वह भाषण देनेके लिये गईं और वहाँ वह गिरफ्तार कर लीं गईं। उन पर कानून द्वारा स्थापित सरकारके विरुद्ध लोगोंको भड़कानेका अपराध लगाकर, उन्हें कुछ महीनोंकी सजा दी गई, और वे लखनऊ जेलमें भेज दी गईं। इसके बाद सरकार और काँग्रेसमें सुलहकी वार्ता आरम्भ हुई; और देशमें कुछ समयके लिये शान्तिका वाताबरण व्याप्त हो गया।

अस्थायी संधिके बाद महात्मा गांधी लन्दनकी गोलमेज परि-षद्में गये, और इधर देशमें आन्दोलन कुछ दिनोंके लिये शान्त हो गया। उस समय पं० जवाहरलालजीने युक्त प्रान्तके कई नगरोंका दौरा कर जनताको संधिका महत्व और उसके नियमोंका पालन करनेके लिये बातें समझाईं। कमलाजी भी इस शान्तिके प्रचारमें लगी थीं। पर आन्दोलनमें परिश्रमके साथ निरन्तर भाग लेनेसे कमलाजीका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था, और जवाहरलालजी भी

थके हुए कुछ अस्वस्थ होने लगे। जलवायुके परिवर्तनके लिये वे कमलाजीके साथ लंका (सीलोन) के लिये रवाना हुए। वहाँ उनका धूमधामसे स्वागत हुआ। लंकामें कुछ दिन रहकर जब वे कमलाजी के साथ भारत लौटे तो उस समय लन्दनमें गोल परिषद्का स्वांग समाप्त हो चुका था। ब्रिटिश सरकारकी कूटनीति और धूर्त्ततासे देशमें फिर नाराजी और सनसनी फैल गई। गांधीजी लन्दनसे रवाना हो चुके थे, और वे अभी मार्ग ही में थे कि भारतमें फिर प्रबल वेगसे आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।

जवाहरलालजीने फिर राष्ट्रीय आन्दोलनका संचालन किया और कमलाजी भी आन्दोलनमें प्रवृत्त हुईं। जवाहरलालजी गिरफ्तार कर कारागारमें भेजे गये, पर कमलाजीने उनके पीछे आन्दोलनको बराबर जागृत और जारी रखा। कांग्रेसका आन्दोलन और सरकारका दमन-चक्र जोरोंमें चला, और थोड़े ही दिनोंके भीतर कांग्रेसके प्रमुख नेताओंको जेल पहुंचा दिया गया। प्रयागमें केवल कमलाजी और उनकी ननन्द विजय लक्ष्मी बच गईं थीं। नगरमें धारा १४४ का कठोर प्रतिबन्ध था, पर कमलाजीके संगठन के प्रभावसे नित्य ही स्वयं-सेवकोंके दल धारा १४४ भङ्ग करनेके लिये निकलते, और गिरफ्तार होते थे। जनताके बड़े-बड़े जलूसों पर पुलिसकी लाठियां बरसतीं और पुलिसके घोड़े दौड़ाये जाते थे।

कमलाजी इसी समय कांग्रेस कार्यकारिणी समितिकी सदस्या चुनी गईं और उसकी बैठकके सम्बन्धमें उन्हें बम्बई जाना पड़ा।

कमलाजीने वहां भी अनेक जलूसोंमें भाग लिया और अपनी बड़ी वीरताका परिचय दिया था। इसके बाद वह प्रयाग लौट आईं।

वहाँसे प्रयाग लौटनेपर वह बीमार हो गईं। उनकी सास माता स्वरूपरानीजी भी बीमार थीं। आनन्द-भवनमें सास, बहू अलग-अलग रोग-शय्या पर पड़ी थीं। कमलाजीको तपेदिकका पुराना रोग था, जो इलाज होनेपर कुछ अच्छा हो जाता पर परिश्रम करनेसे फिर उभर आता था, कलकत्तेसे डाक्टर विधानचन्द्रराय उनका इलाज करनेके लिये बुलाये गये। पं० जवाहरलालजी उस समय जेलमें थे। कमलाजी और स्वरूप-रानीजीकी बीमारी जब अधिक बढ़ी तो सरकारने जवाहरलालजीको कुछ दिनोंके लिये छोड़ दिया।

पत्नी वियोग
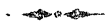
इस बीचमें श्रीमती कमला नेहरूकी तबियत कुछ ज्यादा खराब हुई, और उनकी राजयक्ष्माकी बीमारी बहुत बढ़ गई। वैसे तो कमलाजी स्वभावसे ही एक सुकुमार बाला थीं, पर जवाहरलालजी सरीखे महा कर्मठ और उद्यमी पतिके संसर्गमें आने पर उनके सद्गुणोंका जो प्रभाव कमलाजी पर पड़ा, उससे वह, शारीरिक अवस्था ठीक न रहने पर भी कठिनसे कठिन कार्य परिश्रमके साथ सहर्ष करने लगीं। भारतके स्वाधीनता-संग्राममें कमलाजीने जी-जानसे बराबर साथ दिया, और किसी भी प्रयत्न या आत्म-त्यागमें वह पीछे न रहीं। राजयक्ष्मा सरीखे भयंकर शत्रुसे बराबर लड़ते हुए भी वह देशसेवाके कार्योंमें बराबर लगी रहीं।

जवाहरलालजीको एक ओर देशकी चिन्ता थी, पर दूसरी ओर वे अपनी सहधर्मणीकी बीमारीसे भी बहुत चिन्तित रहते थे। इन दोनोंमेंसे न तो वे देशसेवा छोड़ सकते थे और न अपनी धर्मपत्नीको भूल सकते थे। एक ओर कमलाजीका पतिके लिये प्रगाढ़ प्रेम था, और दूसरी ओर उनकी देशसेवाएं भी इतनी

अधिक थीं कि जवाहरलालजी पत्नी होनेका खयाल भुलाकर केवल उनकी देशभक्ति और सेवाओंके लिये भी उनका अत्यधिक आदर करते, जैसा कि वे सभी सच्चे देशभक्तोंका करते थे। कमलाजी पत्नी होनेके अतिरिक्त एक उत्कट देशभक्त भी थीं, इसलिये वह जवाहरलालजीको और भी अधिक प्यारी थीं।

कमलाजीकी बीमारीसे केवल जवाहरलालजी ही नहीं, वरन् देश भी चिन्तित रहता था। भारतके सभी सुप्रसिद्ध डाक्टरों, वैद्यों और हकीमोंका जितना भी इलाज हो सकता था, वह सब किया गया, और कभी-कभी यूरोप भी वह इलाजके लिये गईं। कुछ दिनके लिये वह अच्छी हो जातीं, पर अपने स्वभावके अनुसार वह फिर राष्ट्रीय आन्दोलनमें लग जातीं, और अधिक परिश्रम करने या कारावासमें यातना भोगनेसे उनकी बीमारी फिर बढ़ जाती, इस तरह वह जीवन पर्यन्त शरीरके भीतरी शत्रु और देशके बाहरी शत्रुओंसे बराबर लड़ती रहीं।

इस बार जवाहरलालजी नेहरू जब कलकत्तेके अलीपुर जेलमें सजा भुगत रहे थे तो वहांका जल-वायु अनुकूल न होनेके कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, और सरकारने उन्हें किसी अच्छे स्वास्थ्यप्रद स्थानमें भेजनेका निश्चय किया, और ७ मईको देहरा-दून-जेल भेज दिया गया। इधर कमलाजीकी बीमारी सहसा अधिक बढ़ गई, और कुछ ही दिनोंमें उनकी दशा गम्भीर होने लगी। १२ अगस्तको जवाहरलालजीको यह मालूम हुआ कि

सहधर्मिणी
स्वर्गीया श्रीमती कमला नेहरू

उन्हें देहरादूनसे कहीं अन्यत्र जाना होगा। उसी रातको पुलिसकी निगरानीमें उन्हें इलाहाबाद भेज दिया गया।

दूसरे दिन सायंकाल जवाहरलालजी प्रयाग स्टेशन पर पहुंचे, और वहां जिला मजिस्ट्रेटने उनसे कहा कि "आप अस्थायी तौर पर रिहा किये जा रहे हैं, जिससे आप अपनी बीमार पत्नीको देख सकें।" इसके बाद जवाहरलालजी अपने घर आनन्द-भवन पहुंचे। कमलाजीकी बीमारीकी वजहसे घर डाक्टरों, नर्सों, और रिश्तेदारोंसे भरा था। उनकी पुत्री कुमारी इन्दिरा, जो शान्ति-निकेतनमें पढ़ती थी, माताकी बीमारीका हाल सुनकर आ गई थी। जवाहरलालजीने घर पहुंचते ही पहले कमलाजीको देखा, और वह अपनी आत्म-कथामें लिखते हैं,—

"उसके (कमलाके) शरीरमें केवल हड्डियां रह गईं थीं और वह बहुत कमजोर हो गई थी। वह जैसे अभी बीमारीसे लड़ रही थी, और इस खयालसे उसे बड़ी वेदना हो रही थी कि शायद वह मुझे छोड़ जायगी।...." यहां पर जवाहरलालजी पुरानी बातोंको याद करते हुए व्यथित हृदयके साथ लिखते हैं,—

" .....हमारे ब्याहके ठीक साथ ही साथ देशकी राजनीतिमें अनेक नवीन घटनाएँ घटित हुईं, जिनकी ओर मेरा झुकाव बराबर बढ़ता गया। वे होमरूलके दिन थे और उसके बाद ही पंजाबके मार्शल-ला और फिर असहयोग आन्दोलनका युग आया और मैं सार्वजनिक कार्योंके आंधी-बवण्डरमें अधिकाधिक फँसता ही गया। इन आन्दोलनोंमें अधिक लिप्त रहनेके कारण मैं उसकी ओर विशेष

ध्यान न दे सकता था ... उसे निजके भरोसेपर छोड़ दिया था। उसके प्रति मेरा प्रेम बराबर बना रहा, और वह अपने प्रेमपूर्ण हृदयसे जिस तरह मुझे सहायता देनेके लिये सदा तैयार रहती, उससे मुझे बड़ी सान्त्वना मिलती थी। उसने मुझे बल दिया, पर साथ ही मेरी कुछ लापरवाहीसे उसे मानसिक व्यथा भी होती होगी। इसके बाद उसकी बीमारीका दौरा शुरू हुआ, और मेरा दीर्घकालीन जेल निवास। हम केवल जेलकी भेंट-मुलाकातके समयमें ही मिलने पाते थे। सत्याग्रह आन्दोलनमें वह सैनिकोंकी प्रथम पंक्तिमें आ गई, और उसे स्वयं जेल जानेमें बड़ी प्रसन्नता होती थी।......वैवाहिक जीवनके १८ वर्ष बाद भी उसके मुखपर मुग्धा कुमारीका-सा ही भाव बना रहता था, और प्रौढ़ताका कोई चिह्न नहीं था। वह पहले ही की तरह अब भी नववधु मालूम होती थी।......वैवाहिक जीवनके इन अनेक वर्षोंमें मैंने कितने वर्ष जेलकी कोठरियोंमें बिताये, और कमलाने अस्पतालों और सेनोटोरियममें।......इस समय जब कि मुझे उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता है, वह कहीं मुझे छोड़कर चली तो न जायगी?"

जवाहरलालजी पत्नीको देखनेके लिये अस्थायी रूपसे जेलसे मुक्त हुए थे, पर कुछ व्यक्तियों द्वारा उन्हें यह सूचना मिली कि यदि वे अपनी मियादके शेष दिनोंमें राजनीतिमें भाग न लेनेका आश्वासन दे देवें—वह चाहे लिखित न भी हो—तो उन्हें कमलाजीकी सेवा-सुश्रूषा करनेके लिये छोड़ा जा सकेगा। जवाहरलाल नेहरू जब कमलाजीको देखने गये तो वह ज्वरमें अचेत-सी पड़ी थीं।

जवाहरलालजीको देखकर उसके होठोंपर कुछ मन्द मुस्कराहट-सी आगई, और उसने उन्हें कुछ नीचे झुकनेका संकेत किया। जवाहर-लालजी उसके निकट जाकर झुके तो उसने धीरेसे उनके कानमें कहा,—"सरकारको आश्वासन देनेकी यह क्या बात है ? ऐसा हरगिज न करना।" कहना व्यर्थ है कि वीरांगनाके प्रोत्साहनसे नेहरूजीने सरकारको कोई आश्वासन न दिया।

भुवाली जानेके एक दिन पहले कमलाजीसे पं० जवाहरलाल मिले थे। लगभग तीन सप्ताह बाद जवाहरलालजीको अल्मोड़ा जेल पहुँचाया गया, ताकि वे कमलाजीके निकट रहें और उनसे मिल सकें। पर कमलाजीसे उनकी मुलाकात महीनेमें दो एक बार हो सकती थी। यह बात समाचार पत्रोंमें छपने पर उस समयके भारत मंत्री सर सेम्युएल होरने ब्रिटिश पार्लिमेन्टमें कहा था कि—"पं० नेहरूको सप्ताहमें एक या दो बार अपनी पत्नीसे मिलनेकी आज्ञा है।" भारत मंत्रीकी यह बात कैसी मिथ्या थी।

कमलाजीकी दशा जब अधिक शोचनीय हो गई तो उन्हें डाक्टरोंकी सलाहसे इलाजके लिये यूरोप भेजा गया। पहले उनका इलाज जर्मनीमें कुछ दिनों तक होता रहा, इसके बाद उन्हें लोजान (स्विटजरलेण्ड) भेजा गया। इसके बाद ४ सितम्बर, १९३५, को पं० जवाहरलालजी अल्मोड़ा जेलसे छोड़ दिये गये, और वे तुरन्त वायुयानसे यूरोपके लिये रवाना हुए। उन्होंने देखा, कि कमलाजी जीवन और मृत्युके बीचमें पड़ी हुई संघर्ष कर रही थीं।

२८ फरवरी, १९३६ को जब कमलाजीका देहान्त हुआ, उस

समय जवाहरलालजी उनके निकट ही थे, और निष्प्राण प्रियाको देखकर शोकके आँसू बहा रहे थे। लोजानमें कमलाजीका अन्तिम संस्कार हुआ, और जवाहरलालजी उनके फूल लेकर प्रयाग लौट आये। बमरौलीके हवाई अड्डे पर नेतागण उनसे मिले थे।

उसी दिन आनन्द-भवनसे एक बहुत बड़ा जलूस उठा, जो कटरेसे होता हुआ चौक गया, और वहां जवाहर स्कायर (पार्क) में एक सभा हुई जिसमें कमलाजीकी अनेक लोक-सेवाओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। इसके बाद जलूस वहांसे त्रिवेणी तट पर गया। नेहरूजीने अपनी सहधर्मणीके फूल विसर्जित किये। उस समय वहाँ हजारों मनुष्योंके हृदय शोकके आँसुओंसे भरे थे और सभी कमलाजीके गुणोंको याद करके रो रहे थे।

युवकोंके आदर्श नेहरूजी

पं० जवाहरलाल नेहरू अपनी युवावस्थामें सदा नवयुवकोंके एक आदर्श रहे हैं, और युवक लोग उनके उत्साह वर्द्धक उपदेशोंको सुनने तथा उनके पद-चिन्हों पर चलनेके लिये उत्सुक रहे हैं। नेहरूजीने युवावस्थामें ही विभिन्न देशोंका भ्रमण कर वहांके युवकोंके मनोभाव समझे और उनकी महत्वाकांक्षाओंकी कद्र की, और विदेशोंसे जब वे भारत लौटते तो भारतीय युवकों और विद्यार्थियोंको उन देशोंके युवकोंके सन्देश सुनाते थे।

नेहरूजीको युवकोंकी सभामें जाकर भाषण देनेमें सदा ही आनन्द मिलता था, क्योंकि नये खून और नये जोशके सामने क्रान्तिकारी भावोंका मूल्य बढ़ जाता हैं और युवक लोग तुरन्त ही उन भावोंको ग्रहण कर लेते हैं। जो सुस्त, अपाहिज या बृद्ध हैं उनके सामने उन भावों या जोशीले वाक्योंका कुछ भी मूल्य नहीं है, पर युवक लोग नये साहस, उत्साह और तेजसे परिपूर्ण रहते हैं और उनमें नवीन विचारोंको ग्रहण करनेकी पर्याप्त शक्ति होती है। इसलिये नेहरूजी युवकोंकी सभामें भाषण देनेका सुअवसर नहीं खोते थे, और चाहे मैदान हो या युनिवर्सिटीका सभा भवन हो,

निमंत्रण मिलने पर नेहरूजी वहाँ अवश्य जाते और अपने गम्भीर जोशीले भाषणोंसे नवयुवकोंमें नया उत्साह भर देते थे।

एक बार बम्बईके विद्यार्थियोंके विराट सम्मेलनका निमंत्रण पाकर नेहरूजीने वहाँ जाकर जो महत्वपूर्ण भाषण दिया था, उसमें उन्होंने युवक आन्दोलन पर काफी प्रकाश डाला, और युवकोंकी जिम्मेदारियाँ उन्हें भली प्रकार समझाईं। नेहरूजीने कहा :—

"युवकोंके सम्मेलनकी ओर मेरा आकर्षण बना हुआ है, क्योंकि वह वयोवृद्धोंके सम्मेलनसे बिल्कुल भिन्न है। आज आप युवा हैं और साहस तथा उत्साहसे भरे हुए हैं। मैं, जिसकी आयु ढलती जारही है, आपकी आशा और महत्वाकांक्षामें साझीदार बनने आया हूं ताकि अपने दैनिक जीवनके लिये आपका कुछ उत्साह और आशा अपने साथ लेजा सकूं। मैं यहाँ इसलिये आया कि युवकोंकी पुकारकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, और जब बम्बईके युवकों और युवतियोंकी ओरसे मेरे लिये निमंत्रण आया तो मैंने इस सम्मानको सहर्ष स्वीकार किया। आप लोग वर्तमान युवा-जाग्रतिके नेता रहे हैं।

"आप लोग आज यहाँ क्यों एकत्र हुए हैं? केवल व्याख्यान देने या सुनने अथवा काम या खेल-कूदसे छुट्टी पाकर समय बितानेके लिये? नहीं! मैं सोचता हूं कि आप लोग इसलिये एकत्र हुए हैं, कि इस समय देश या समाजमें जो कुछ हो रहा है उसे आप पसन्द नहीं करते और उसमें आप परिवर्तन चाहते हैं। क्योंकि आप यकीन करते हैं कि इस सभ्य संसारमें जो कुछ है,

उसमें सभ्यताका अभाव है और आप अपनी आशाओंके अनुसार उसे अच्छा नहीं समझते। आप अपने कंधों पर देशकी दासता और दुरवस्थाका भारी बोझ अनुभव करते हैं, और आपका विश्वास है कि आप अपनी युवावस्थाके साहस स्वभाव और मनोबलसे उस बोझको उठाकर फेंक सकते हैं। यदि मेरा अनुभव ठीक है और आप लोग इसी प्रेरणा और इच्छासे यहाँ एकत्र हुए हैं तो बहुत अच्छा है, और आपके सम्मिलन, सम्भाषण तथा निर्णयसे कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा। पर यदि आप वर्तमान दशासे असन्तुष्ट नहीं हैं, और आप वर्तमान अशान्तिके कारणोंको दूर करनेके लिये तैयार नहीं हैं तो फिर आपमें और बुड्ढोंकी बैठकोंमें अन्तर ही क्या है? बुड्ढे लोग आपसमें मिलकर बातें और तर्क तो बहुत करते हैं, पर काम कम करते हैं। जो लोग बराबर अपने स्वार्थोंकी सुरक्षा और संरक्षणकी चिन्तामें लगे रहते हैं, वे संसार या समाजका सुधार नहीं करते, और न कर सकते हैं। जिन्हें वर्तमान पद्धति या दुरवस्थासे कोई शिकायत नहीं है वे भला परिवर्तनके लिये क्यों प्रयत्न करने लगे? लेकिन आप देखते हैं कि दुनिया बदलती है और उन्नतिकी ओर बढ़ती है, क्योंकि दुनियामें ऐसे भी लोग हैं जो बुराइयों और अन्यायोंको सहन नहीं कर सकते।

"समाजके आधार सबके लिये सुरक्षा और स्थायित्वके साधन हैं। सुरक्षा और स्थायित्वके बिना समाज या सामाजिक जीवन ठहर नहीं सकता, लेकिन आपके समाजमें कितनोंको सुरक्षा और

स्थायित्व प्राप्त है ? आप जानते हैं कि समाजमें कितने अधिक दीन हीन मनुष्य ऐसे हैं, जिन्हें अन्न-वस्त्रका भी ठिकाना नहीं है। उनके सामने सुरक्षाकी बातें करना केवल मक्कारी है। जबतक जनता सुरक्षामें भाग नहीं लेती तब तक आप स्थायी समाजका निर्माण नहीं कर सकते। इसीलिये आप देखते हैं कि विश्वके इतिहासमें एक क्रान्तिके बाद दूसरी क्रान्ति होती है। इसका यह कारण नहीं है कि कोई व्यक्ति या व्यक्तियोंका दल अराजकता या खूनखराबी पसन्द करता है, बल्कि यह कि पतितोंके सुधारकी ओर जिनका ध्यान जाता है वे ही क्रान्तिकारीके रूपमें सामने आकर क्रान्ति करनेके लिये तैयार रहते हैं। केवल कुछ लोगोंकी भलाई होनेसे समाजका भला नहीं हो सकता। एक स्वस्थ समाजमें विद्रोह या क्रान्तिके बीज अवश्य होने चाहियें। युवा नर-नारियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे समाजको प्रभावशाली भावना प्रदान करें। संसार या समाजकी बुराइयोंके विरुद्ध विद्रोह करना युवकों और युवतियोंका कर्त्तव्य है।

"हमारी अधिकांश कठिनाइयां मिथ्या आदर्शवादके कारण हैं। विदेशी राजनीतिक और आर्थिक आधिपत्य काफी खराब है, लेकिन शासकोंका आदर्शवाद स्वीकार कर लेना और भी खराब है, क्योंकि इससे हमारे सब प्रयत्नों पर रोक लग जाती है, और बिना लक्ष्यके हम केवल अंधकारमें भटकते रहते हैं, जबतक हमारा लक्ष्य स्पष्ट न होगा तब तक हम अपना लक्ष्य ठीक तरह निर्धारित न कर सकेंगे। मेरे साथ यदि आप इन बातोंमें सहमत हों, तो

मैं इस सम्मतिका स्वागत करूंगा, पर इस सम्मतिके पीछे एक विचार और प्रबल विश्वास होना चाहिये। मैं चाहता हूं कि आप संसारकी दशा देखें और समझें और उसे अच्छा बनानेकी इच्छा उत्पन्न करें, और ठीक तरह समझदारीके साथ यह जाननेका प्रयत्न करें कि क्या करना चाहिये और कैसे करना चाहिये। धर्म, समाज या प्राचीन प्रणालीसे स्वीकृत जो भी बात आपको अनुचित, अन्यायपूर्ण और सत्य विरोधी जान पड़े उसे मत मानिये, क्योंकि धर्म एक चीनी कहावतके अनुसार बहुत हैं, लेकिन कारण एक है।

"आपको अपने आदर्श तक पहुंचनेके लिये दो विरोधी दलोंका सामना करना होगा। एक दल राजनीतिक विरोधी और दूसरा सामाजिक विरोधी होगा। आप समाजका सुधार केवल उसके एक भागको सुधार कर नहीं कर सकते, क्योंकि एक भागके कीटाणु दूसरे भाग पर निश्चय ही असर डालते हैं और रोगकी गहरी जड़ जमी रहती है। इसलिये आपका सामाजिक और राजनीतिक विज्ञान एक होना चाहिये, और आपका कार्यक्रम ऐसा होना चाहिये जिससे सामाजिक जीवनके सभी अंगोंका एक साथ सुधार हो। प्रतिक्रियावादी सदा उन लोगोंके साथ रहेंगे जो भारतको परतंत्र बनाये रखना चाहते हैं। आप देखेंगे कि प्रतिक्रियावादी, सम्प्रदायवादी या अवसरवादी वे लोग हैं जो जातिके स्वार्थोंकी बलि चढ़ाकर केवल अपने ही लिये सुविधाएँ और संरक्षण चाहते हैं। ऐसे खतरनाक मनुष्योंसे सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

"मनुष्यको परतंत्र बनाये रखनेके लिये पहले भी धर्मका बहाना लिया गया है। राजाओं और सम्राटोंने अपने लाभके लिये धर्मकी दुहाई देकर जनताको अपने अधीन रखा है, और जनतामें यह विश्वास फैला दिया था कि जनता पर शासन करनेका राजाओंको दैवी अधिकार है। धर्मके द्वारा जनताके दिमागमें यह बात जमा दी गई कि उसकी दुरवस्था उसके दुर्भाग्यके कारण है, और गरीब मनुष्य पूर्व जन्मके पापोंका फल भोगता है। धर्मके नामपर ही स्त्रियोंको भी दबाकर रखा गया है, और आज भी उसीके नामपर परदा जैसी बर्बर प्रथा जारी है। दलित और अछूत जातियां चिल्ला-चिल्लाकर यह कह रही हैं कि किस तरह धर्मके नामपर उन्हें मानवताके न्यायोचित अधिकारोंसे वंचित रखा गया है। धर्म निजी प्रभुता और अधिकारवादका एक स्रोत रहा है, और चूंकि ब्रिटिश शासकोंने भी हमारी यह कमजोरी समझ ली है; इसलिये वे उसके बुरेसे-बुरे रूपको भारतमें फैलाये रखनेके लिये प्रयत्नशील हैं। यदि शिक्षित नवयुवकोंकी भावना इस अवस्थाके प्रति विद्रोही हो उठे और यह विद्रोही भावना भारत भरमें फैल जाय तो धर्माचार्योंके अधिकारकी नींव हिल जायगी, और साथ ही ब्रिटिश शासनकी जड़ भी हिलने लगेगी।

"यदि आपमें कोई यह विश्वास करता हो कि जिनके पास सत्ता, शक्ति और सुविधाएँ हैं वे आपके विवेक और तर्कोंसे प्रभावित होकर उन्हें छोड़ देंगे तो मैं कहूँगा कि अपने इतिहासका ठीक तरह अध्ययन नहीं किया है, और भारतमें जो घटनाएँ घटी हैं उन

पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। हमारे सामने मुख्य समस्या है शक्ति प्राप्त करनेकी, क्योंकि शक्तिके द्वारा ही हम पुरानी कुप्रथाओं और बुराइयोंको दूर कर सकेंगे। इसलिये इस समय देशमें एक आवाज, सिर्फ आवाज होनी चाहिये विद्रोह और क्रान्ति की! लाखों, करोड़ों कंठोंसे केवल विद्रोहकी गगनभेदी ध्वनि उठनी चाहिये, तभी हमारे शासक अपने सिर झुकायंगे। जनताकी आर्थिक दशा सुधारनेवाले आदर्श और कार्यक्रम सामने रखें, और तब जनता भी सहर्ष आपका साथ देगी।

"आप लोग भारतके युवा आन्दोलनमें नेता रहे हैं, और आपने अपना एक शक्तिशाली संगठन तैयार किया है। किन्तु याद रखिये, संस्थाएँ और संगठन तब तक आगे नहीं बढ़ सकते जब तक कि उनके पीछे शक्तिशाली विचार न हों। आप अपने सामने समाज-सेवाका महान् आदर्श रखिये, और उपेक्षणीय समझौते द्वारा उसे नीचा मत कीजिये। खेतों और कारखानोंमें काम करनेवालोंको देखिये, और देखिये भारतकी सीमाके बाहर, कि लोग कैसे अपने देशकी समस्याओंको हल करते हैं। अपनी मातृ-भूमिके उद्धारके लिये राष्ट्रीय बनिये, और अन्यायके बन्धनोंसे संसारको मुक्त करनेके लिये अन्तर्राष्ट्रीय बनिये। महान् कार्य करनेके लिये एक फ्रेंच महापुरुषने कहा है—मनुष्यको सोचना चाहिये कि वह कभी नहीं मरेगा। मृत्युसे कोई भी नहीं बच सकता, पर युवक इसका ख्याल तक नहीं करते, इसलिये युवक मृत्युंजयी हैं, और जो मृत्युको जीत चुका है, वह संसारमें सब कुछ कर सकता है।"

साम्यवादी नेहरू

पं० जवाहरलाल नेहरू समाजवादी या साम्यवादी विचारों के पोषक प्रारम्भसे ही रहे हैं। वे यद्यपि स्वयं एक धनी परिवारके नररत्न हैं, पर धनियों और पूंजीवादियोंकी लिप्सा और शोषण पद्धतिसे उन्हें सदा घृणा रही हैं। वे सदासे अमीरी और गरीबीके भेद-भाव मिटानेके पक्षमें रहे हैं, क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि पूंजीवादके ही कारण मानवजातिमें दुःख, दारिद्र्य, कष्ट, रोग आदि फैले हुए हैं, और यदि पूंजीवादका नाशकर साम्य-वादी शासन तन्त्रका प्रचार हो तो फिर मानवजाति नाना कष्टोंसे बच जायगी। नेहरूजी अपनी इसी धारणा और विचार प्रणालीसे सदा कार्य करते रहे हैं।

उन्होंने साम्यवादके प्रवर्त्तक महान् कार्ल मार्क्सके ग्रन्थोंका अच्छा अध्ययन किया है, और फिर जब महामना लेनिनके नेतृत्व में रूसमें बोल्शेविक महाक्रान्तिके बाद साम्यवादी सोवियट तंत्र स्थापित हुआ तो जवाहरलालजीका ध्यान उधर विशेष रूपसे आकर्षित हुआ। वे अबतक तो साम्यवादके भक्त थे, पर अब रूस सरीखे विशाल देशमें साम्यवाद किस तरह काम करता है, यह जाननेके

लिये जवाहरलालजी बहुत ही व्यग्र हुए। वे स्वयं रूस गये, और वहां साम्यवादी शासन तंत्रको, सबके सुखोंके लिये काम करते हुए देख उनका हृदय आनन्दसे नाच उठा। उन्होंने रूसमें देखा कि गरीबोंकी गरीबी और अशिक्षा दूर करनेका कार्य जैसे वृहद् और सुव्यवस्थित रूपमें वहां हो रहा है, वैसा रूसमें क्या. संसारके किसी भी देशमें पहले कभी नहीं हुआ था। नेहरूजीने वहांसे लौटने के बाद 'सोवियट रूस' पर एक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने वहां के शिक्षा प्रचार, उद्योग-धन्धों, साम्यवादी शासन तथा सामाजिक पद्धति, जनताके हितके लिये कला, कौशल आदि पर गवेषणापूर्ण विचार प्रकट किये। उस पुस्तकसे यह मालूम होता है कि नेहरूजीके हृदयपर सोवियट रूसके साम्यवादकी कितनी गहरी छाप पड़ी है, और उनकी यह धारणा प्रबल हो गई है कि मानव-जातिके समस्त रोगोंकी चिकित्साके लिये केवल साम्यवाद ही एक अमोघ औषधि है।

पर अपने पतित स्वार्थोंके कीचड़में डूबे हुए पूंजीवादी देशोंने सोवियट रूसके नाशके लिये उसपर कैसे घातक प्रहार किये, और इसके बाद जब वह शक्तिशाली हो गया तो वही पूंजीवादी देश उसकी कैसी खुशामद करने लगे, इन सबपर भी नेहरूजीने काफी प्रकाश डाला है। उन्होंने सन् १६३८ के मईमें अपने एक भाषणमें कहा था—

"बीस वर्ष पूर्व तरुण सोवियट प्रजातन्त्रपर इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रांस और जापान सरीखे शक्तिशाली राष्ट्र सब तरफसे टूट पड़े

थे, और उन्होंने उसके नाशके लिये सभी तरहके उपाय किये थे। स्वयं रूसमें साम्यवादी क्रान्तिके विरुद्ध प्रति-क्रान्ति उठ खड़ी हुई, जिसका समर्थन पूंजीपतियोंने किया था। उस समय रूसके पास सेना नहीं थी, धन नहीं था और लड़ाई लड़नेके साधन तथा उद्योग-धन्धे भी नहीं थे। चारों तरफके हमलों और देशके भीतर उठी हुई प्रति-क्रान्तिके कारण रूसका नाश हो जाता, और उसके शत्रु इसी ताकमें थे कि कब उसका नाश हो और कब वे उसपर हावी हो जांय। किन्तु एक महान् पुरुष-लेनिनके दृढ़ सङ्कल्प, अदम्य उत्साह और असाधारण प्रतिभाने देशमें एक नवीन जीवन और एक नवीन आशा पैदा कर दी, जिससे सब भयंकर मुसीबतें पार हो गईं और रूस जीवित रहा।

लेकिन फिर भी पूंजीवादी राष्ट्र उसे इस तरह घृणाकी दृष्टिसे देखते रहे जैसे सोवियट रूस कोई अछूत या अन्त्यज हो। पूंजीवादी राष्ट्रोंमें उसकी कोई पूछ न थी और किसीने उसके साथ कोई सम्बन्ध न रखा। वे उसका अपमान करते रहे और उसके मार्गमें हर तरहके संकट पैदा करते रहे। पर सोवियट रूसने पूंजीपतियोंकी किसी भी व्यंगोक्ति या बाधा डालनेकी चालोंकी कभी कोई परवा नहीं की। वह अपने नये साम्यवादी सोवियट-तंत्रके द्वारा रूसी जनतामें एक नई जिन्दगी, नयी सभ्यता और नई संस्कृति लानेमें बराबर लगा रहा। रूसमें एक नये संसारकी सृष्टि हुई, जिसमें एक जीवन, एक आशा और सुरक्षा थी। विद्युत शक्ति, बड़े-बड़े उद्योग धन्धे वहां फैले, नये समृद्धिशाली नगर बस

गये और उन्नतिशील उपायोंसे बढ़ाई गई खेतीने देशका रूप-रंग ही बदल डाला। पहलेके संकीर्ण तरीकोंके बदले वहां सामुहिक खेती होने लगी। जनतामें साक्षरताका प्रसार प्रबल वेगके साथ हुआ, देश भरमें शिक्षा और संस्कृतिकी उन्नति हुई, विज्ञानोंको अपनाया गया और वैज्ञानिक उपायोंसे राष्ट्रके नवनिर्माणमें बहुत बड़ी सहायता मिली।

इस तरह रूस जब बड़ी तीव्र गतिसे उन्नतिकी ओर अग्रसर हुआ तो पूंजीपति संसारकी दिलचस्पी बढ़ी, और वह रूसकी उन्नतिको कुछ ईर्ष्याके साथ देखने लगा। क्योंकि पूंजीपति देशों की दशा आर्थिक मन्दीके कारण बहुत ही शोचनीय हो गई थी—उनके गलेमें उनका दम घुट रहा था—क्योंकि प्रत्येक पूंजीवादी देशमें बेकारी भयानक रूपसे फैल रही थी, पर इसके विपरीत सोवियट रूसमें तेजीसे तरक्की होने और बेकारी कम होनेसे सबको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। पूंजीवादी देशोंके राजनीतिज्ञों और चांसलरोंको रूसकी यह असाधारण उन्नति जरा भी अच्छी न लगी, क्योंकि उनके देशोंमें रूसका यह उज्ज्वल उदाहरण उन्हें परेशान किये हुए था। वे सोवियटको मुसीबतमें डालनेके लिये जाल और षड्यन्त्र रचने लगे, वे छेड़खानीके व्यवहार करके रूसको भड़काने और उसे लड़ाईमें फँसानेका प्रयत्न करने लगे। पर उसने उनके किसी भी अपमान या दुर्व्यवहारकी परवा न कर लड़ाईमें फँसनेसे इन्कार किया। रूसी राजनीतिज्ञोंने अपने राष्ट्रके नव-निर्माणके लिये एक जोरदार भारी कार्यक्रम जारी किया और दूसरी

और उसने दृढ़ताके साथ वैदेशिक मामलोंमें शान्तिकी नीति कायम रखी।

इसी बीचमें सोवियटने अपनी जल, स्थल और वायु सेनाओं की शक्ति भी बहुत बढ़ायी, और जब उसकी प्रबल सेनाएँ तैयार हो गईं तो पूंजीवादी राष्ट्र कुछ घबराये और उसे आदरकी दृष्टिसे देखनेके लिये विवश हुए। पर साथ ही उनमें एक भय भी पैदा हुआ, और वे सोवियटको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये फिर चालें चलने लगे। वे उसे अकेला छोड़ देने और उसे नई फासिस्ट शक्तियोंके विरुद्ध उभाड़नेका प्रयत्न करने लगे। लोकतंत्रवादके समर्थकों (इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि) ने साम्यवादी रूसको छोड़कर नाज़ी जर्मनी और फासिस्ट इटलीसे प्रेम किया, और उन दोनोंकी स्वेच्छाचारिता और बर्बरताकी उपेक्षा करते हुए अपने मित्रोंसे विश्वासघात किया और यह सब इस आशासे किया गया कि नाजियोंसे उसपर हमला करवा दें और सोवियट रूसको किसी तरह नष्ट कर दें। उन लोगोंने म्युनिचका समझौता करते हुए रूसको पूछा तक नहीं हालांकि वह फ्रांसका मित्र था और इंग्लैण्डसे भी उसका सद्भाव था। पर सोवियट अन्त समय तक अपने मित्रोंके साथ सच्चा और अपने वादोंपर कायम रहा।

म्युनिचकी घटना होने और जर्मनीको सन्तुष्ट करनेकी नीतिके खेल खेले जानेके बाद आठ महीने गुजर गये। पर अब ईश्वरकी लीला है कि सोवियट रूसकी अवहेलना करनेका कोई साहस नहीं कर सकता। अब उसे चाहने और उसकी कृपा प्राप्त करनेवाले

बहुतेरे हैं। फ्रान्स और इंग्लैण्ड उसके पीछे-पीछे लगे हुए हैं और मीठी-मीठी बातें करके वह अब यह छिपाना चाहते हैं कि वे कभी सोवियटके शत्रु थे। सोवियट रूस सहसा अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंका कर्त्ताधर्ता बन गया और उसका निर्णय आज स्थितिमें बहुत बड़ा परिवर्त्तन कर सकता है।"

इस तरह पं० जवाहरलाल नेहरूने सोवियट रूसके साम्यवाद और उसकी शक्तिको अच्छी तरह समझ कर जो मत स्थिर किया है, वह परतंत्र देशोंके लिये सभी दृष्टिसे लाभदायक है। साम्य-वादका महान् आदर्श अपनानेसे ही रूसका समाज आज सुधर कर इतना प्रबल हो गया है कि संसारके अन्य सभी समाज उसके सामने निर्बल और पिछड़े हुए मालूम होते हैं। व्यक्तियोंके मतिमन्द और निर्बल होनेसे ही समाज पिछड़ते हैं, और जब समाज एक बार निर्बल हो गया तो फिर पुरानी पद्धतिके ढर्रे पर उसका पनपना और सुधरना वैसा ही असम्भव है, जैसा पत्थर पर दूब जमाना। इसीलिये संसारके समस्त नये-पुराने वादोंमें एक साम्यवाद ही ऐसा तंत्र है जो मरते हुए देश और समाजको नव-जीवन प्रदान कर सकता है।

पं० जवाहरलाल नेहरूने एक बार बंगालके नर-नारियोंकी विराट सभा (कलकत्ता) में साम्यवाद पर भाषण करते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की, और कहा—

"यदि आपका आदर्श सामाजिक समानता और विश्व संघका है, तो आपको समाजवादी या साम्यवादी राज्य स्थापित करनेके

लिये प्रयत्नशील होना चाहिये। इस देशमें 'समाजवाद' शब्द ही बहुतोंको डरा देता है। कौंसिल चेम्बरमें बैठे हुए हमारे बड़े बूढ़े इस शब्दका नाम सुनते ही अपने सफेद सिरों और सफेद दाढ़ियोंको हिलाने लगते हैं। जब वर्तमान व्यवस्था ही पूर्ण अन्याय पर अवलम्बित है, तो जो यह व्यवस्था कायम रखना चाहते हैं उन्हें अन्याय कायम रखनेवाला ही समझना चाहिये। मुझे इसमें बड़ा सन्देह है कि जो लोग साम्यवादके विरोधी हैं, उन्हें क्या इस साम्यवादका सामान्य ज्ञान भी है?

"ब्रिटिश सरकारको दो बातोंसे डर लगता है--एक तो ट्रेड यूनियन आन्दोलनसे, और दूसरे कम्युनिस्टोंसे। क्या आपने कभी यह सोचा है कि नया विचार फैलानेवाले व्यक्तियोंसे साम्राज्य क्यों डरता है? पर विचार तोपोंका भय नहीं करते, और सीमा या प्रणालीके बन्धनोंको नहीं मानते। मजदूरों और पूँजीपतियोंके भेदभाव साम्यवादमें ही मिट सकते हैं, और मेरा खयाल है कि संसारको सर्वनाशसे केवल साम्यवाद ही बचा सकता है।

"और सोवियट रूस! रूस ही एक ऐसा देश है जो आज पूँजीवादके एक महान् प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें साम्राज्यवादको पूरी चुनौती दे रहा है। साम्यवादी सोवियट रूसका व्यवहार आज पूर्वी देशोंसे उदारता एवं न्यायपूर्ण रहा है। चीन, तुर्की और ईरानमें उसने अपनी इच्छासे अपने कीमती अधिकार और सुविधाएं छोड़ दी हैं। और अंग्रेजोंने चीनियों पर बम वर्षा करके

बहुतेरोंको आहत किया, क्योंकि चीनियोंने ब्रिटिश साम्राज्यवादका सामना करनेका साहस किया था।

"ईरानके तब्रेज नगरमें जब रूसी राजदूत पहुँचा तो उसने वहांके लोगोंको बुलाकर सम्राट जारके अपराधों और पापोंके लिये सोवियटकी ओरसे क्षमा मांगी, और कहा कि उन अन्यायोंका अब हमारे साम्यवादी तंत्रमें अन्त हो गया है। सोवियट रूस पूर्वमें समान अधिकार और समान हैसियतसे व्यवहार करता है, वह अपनेको कोई विजेता या ऊंची जातिवाला नहीं समझता, इसलिये उसका सर्वत्र स्वागत होना कुछ आश्चर्यजनक नहीं है।

"सम्भव है आपमेंसे कुछ नवयुवक विदेशोंमें शिक्षा ग्रहण करनेके लिये जांय, आपको इंग्लैण्ड जाने पर यह मालूम होगा कि जातिभेद तथा असमानता क्या है? इंग्लैण्डकी अपेक्षा इटली, फ्रान्स या जर्मनीमें जातिभेदकी भावना बहुत ही कम है, और वहां जाने पर आपका अच्छा स्वागत होगा। सोवियट रूसमें आप देखेंगे जातिभेद या रंगभेदका भाव बिल्कुल नहीं है, मैंने आपके सामने समाजवाद और अन्तर्राष्ट्रीयवादके आदर्श रखे हैं, क्योंकि यही आदर्श युवकोंकी मनोवृत्तिके अनुकूल हैं। ये दोनों आदर्श देशकी स्वाधीनतासे ही प्राप्त हो सकते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद या ब्रिटिश कामन-वेल्थ द्वारा उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

"वर्तमान व्यवस्थासे सन्तुष्ट रहनेके लिये कोई कारण नहीं है, हमारे तौर-तरीके और रीति-रिवाज विभिन्न हैं, हमारी

महिलाओंकी दशा गिरी हुई है, और हमारे श्रमजीवियोंकी दशा बहुत खराब है, मृत पुराकालकी प्रशंसा करनेसे हमारा कुछ भला न होगा, जब कि वर्तमान हमें पुकार रहा है, और हमारे सामने बहुत काम करनेके लिये पड़ा हुआ है। दुनिया बदलती और तेजीसे बदल रही है, और अगर हम नई स्थिति और नई आवश्यकताओंके अनुसार अपना समाज नहीं बनाते तो हमारा नाश हो जायगा। हमने देखा है कि लेनिन और कमालपाशाने वर्षोंमें नहीं, बल्कि महीनोंमें ही पुरानी प्रणाली और व्यवस्थाको भंग कर नई व्यवस्था प्रचलित की, जिससे निश्चय ही रूस और तुर्कीने इतना लाभ उठाया है—जितना पहले उन देशके निवासियोंने कभी नहीं उठाया था।

"इस देशमें और अन्य देशोंमें भी, युग-युगमें मानव जातिके सहायताके लिये दिव्य महापुरुषोंका जन्म हुआ है। पर किसी भी महापुरुषकी अपेक्षा वह आदर्श बड़ा है जिसका वह प्रचारक है। धर्मकी व्याख्या युग-युगमें बदलती रहती है, और कोई भी सामाजिक प्रणाली जो किसी समय हितकर थी, वह बादमें किसी समय अहितकर भी हो सकती है। आप आज बैलगाड़ीमें बैठकर बम्बई नहीं जाते, और न तीर कमान लेकर लड़ते हैं। तब ऐसी प्रणालीके पीछे आप क्यों पड़ते हैं, जो बैलगाड़ी या तीर-कमानके युगमें अच्छी थी।

"जितने महापुरुष जिस युगमें हुए, उन्होंने अपने समयकी व्यवस्था और प्रणालीके विरुद्ध विद्रोह किया है। ढाई हजार वर्ष

पूर्व गौतम बुद्धने सामाजिक समानताकी घोषणा की, और उस समयके फैले हुए भ्रष्टाचारका विरोध किया। इसी तरह ईसा-मसीह और अन्य महापुरुषोंने भी किया है। आजके जमानेके 'अवतार' वे विचार हैं, जिनका संसारके सुधारके लिये जन्म हुआ है, और आजका महान् आदर्श है सामाजिक समानता। मैं और आप अलग-अलग कमजोर हैं, पर हम लोग मिलकर बहुत कुछ कर सकते हैं। युवा ही देश और संसारकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। बड़े बूढ़ोंको सुरक्षित रहने दीजिये, पर मैं चाहता हूं और मुझे आशा है कि आप लोग खतरोंसे खेलेंगे। मैं और आप भारतीय हैं, और भारतके हम बहुत ऋणी हैं, किन्तु हम मानव भी हैं और हम मानवताके भी ऋणी हैं। मानवताका एक विशाल समाज योग्य नागरिकोंसे बनाना है, और यही समाज भावी विश्व-संघका एक प्रबल आधार है।"

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें नेहरूजी

भारतके समस्त राजनीतिज्ञोंमें पं० जवाहरलाल नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके एक सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता हैं। संसारके विभिन्न देशोंके प्रति आपकी अनुभूति और सहानुभूति इतनी गहरी और व्यापक रही है कि आप किसी भी देशमें जाकर वहाँ की समस्याएँ तत्काल समझते और उन पर अपनी सम्मति तथा ठीक निर्णय प्रकट करते हैं। अन्य किसी भी भारतीय नेताकी अपेक्षा पं० नेहरूने सबसे अधिक अपनी पैनी दृष्टि संसारके राजनीतिक उत्थान पतन पर रखी है, और भारतीय राजनीतिकी अनेक कठिन समस्याओंमें व्यस्त रहने पर भी वे अपने मन और मस्तिष्कको दूर-दूर देशोंका पर्यटन करानेमें व्यस्त रखते हैं। उनके लिये कोई भी देश दूर नहीं है; वे सबके ध्यानमें और सब उनके निकट हैं।

वे अनेक वर्षोंसे भारतीय जनताको यह स्मरण कराते हैं कि भारतका स्वातंत्र्य-संग्राम एक विश्वव्यापी संघर्षका विशेष अंग है, और भारत संसारकी राजनीति या उसके प्रभावसे अछूता बचकर अलग नहीं रह सकता। वे [illegible] विचारोंके पोषक तो

प्रारम्भसे ही रहे हैं, पर बादमें सोवियट रूसमें जाकर उन्होंने समाजवादको व्यावहारिक रूपमें कार्य करते हुए भी देखा है। वे स्पेन उस समय गये जब वहाँ घोर गृह-युद्ध हो रहा था उन्होंने चेकोस्लोवाकियाको उस समय जाकर देखा जब उस देशके भाग्य का निर्णय क्रूर नाजियों द्वारा हो रहा था। उन्होंने जर्मनी, फ्रान्स आदि देशोंको मर मिटनेकी तैयारियां करते हुए देखा था। उन्होंने चीनको उस समय देखा जब वह एक ओर अपने गृह-युद्ध और दूसरी ओर जापानके हमलोंसे त्रस्त था। नेहरूजीने चीनियोंकी सहायताके लिये कांग्रेसकी ओरसे डाक्टरोंका एक दल भी भेजा था। अफ्रीका और अमेरिकामें गोरे शासकोंके दमनसे पीड़ित हबशी जातियां भी नेहरूजीकी सहानुभूति पानेसे वंचित नहीं रहीं। सचमुच 'वसुधैव कुटुम्बकम' उनके लिये स्वयंसिद्ध एक ऐसा प्रिय सिद्धान्त है कि सारे संसारको एक परिवारके रूपमें देखना उन्हें पसन्द है और उसके किसी भी सदस्यको कोई कष्ट होनेसे वे स्वयं उस कष्टका अनुभव करते हैं।

पं० नेहरू भारतीय कांग्रेसके पहले राष्ट्रपति हैं, जिन्होंने सन् १९२९ में अपने अभिभाषणमें स्पष्ट रूपसे यह बताया था कि भारत संसारकी राजनीतिका एक प्रमुख स्थान है। उनके पहले अन्य कांग्रेस अध्यक्षोंने केवल भारतीय समस्याओं पर ही विचार प्रकट किये पर वैदेशिक विषयों पर उनके लिये कुछ कहना विशेष महत्व-पूर्ण न था। नेहरूजीने उसी समय पहली बार संसारकी राजनीतिका दिग्दर्शन कराते हुए कहा था, कि "यूरोपका एशिया पर आधिपत्य

समाप्त हो चुका है···भविष्य अमेरिका और एशियाके हाथोंमें है ? क्योंकि यूरोपकी अपनी शक्ति अब बहुत ही क्षीण हो गई है। २५ वर्ष पूर्व यूरोपकी जो शक्ति थी वह द्वितीय महायुद्धके बाद ऐसी समाप्त हुई कि यूरोप आज एक अशक्त भिखारीकी तरह ठोकरें खा रहा है, और अपने पुनरुत्थानके लिये आधा यूरोप अमेरिकाकी ओर, और आधा यूरोप सोवियट रूसकी ओर देख रहा है।"

नेहरूजी पूंजीवाद और साम्राज्यवादके घोर विरोधी हैं, और उनका यह दृढ़ विश्वास है कि संसारमें जब तक ये दोनों रहेंगे तब तक कहीं भी शान्ति न होगी। सन् १९३९ के जुलाईमें लन्दनमें 'इंडिया लीग' और 'लन्दन फेडरेशन आफ पीस कौंसिल' की ओरसे एक सम्मेलन हुआ, जिसके अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू थे। नेहरूजीने अपने भाषणमें साम्राज्यवादकी निन्दा करते हुए कहा—"शान्ति और साम्राज्य ! मूलमें ही एक दूसरेके विरोधी शब्दों और विचारोंका यह एक अनोखा मेल है·· मै समझता हूँ कि जब तक साम्राज्यवादी विचार दूर न होंगे, तब तक हम इस संसारमें शान्ति न पा सकेंगे। जब तक साम्राज्य फूलते-फलते और शक्तिशाली रहते हैं, तब तक सम्भव है उनमें खुली लड़ाई न हो, पर तब भी शान्ति नहीं रहती, क्योंकि तब संघर्ष और युद्धकी तैयारियां भीतर ही भीतर चलती रहती है। साम्राज्य विरोधी राष्ट्रोंमें, शासकों और शासितोंके बीच संघर्ष तो रहता ही है, क्योंकि साम्राज्यवादी राष्ट्रका आधार ही निर्बल जनताका दमन और शोषण करना है, इसलिये उसका विरोध भी होगा और उस शासन

नेहरूजी स्पेनमें : श्रीकृष्ण मेनन और जनरल-लीस्टरके साथ.

का अन्त करनेके लिये प्रबल प्रयत्न भी होंगे। पर इस संघर्षके आधार पर कोई भी शान्ति कहीं कायम नहीं की जा सकती।"

इसके बाद नेहरूजीने जर्मनीके नाजीवाद और इटलीके फासिस्टवादकी तीव्र आलोचना करते हुए कहा, कि "फासिज्म और साम्राज्यवाद नामकी दोनों भावनाओंमें अन्तर नहीं है, और फासिज्म वास्तवमें साम्राज्यवादका ही एक उग्र रूप है। इसलिये यदि आप फासिज्मसे लड़ना चाहते हैं तो आपके लिये साम्राज्य-वादसे भी लड़ना अनिवार्य्य है। इस समय जब कि फासिस्ट प्रतिक्रियावादी सेनाएं लड़नेके लिये तैयार खड़ी होकर संसारको आतंकित कर रही हों, और दूसरी ओर अन्य सम्राज्यवादी शक्तियां उन्हें अकसर बढ़ावा और मदद देती हों, तो ऐसी दिशामें हमें बड़ी विकट और जटिल परिस्थितिका सामना करना पड़ता है। आज, जब कि संसारकी प्रतिक्रियावादी शक्तियां एक साथ संगठित हो रही हैं, तो फिर उनका सामना करने और और उन्हें रोकनेके लिये हमें भी अपने तुच्छ भेदभावोंको भुलाकर आपसमें संगठित और सक्रिय होना होगा।"

नेहरूजीने आगे चीन आदि निर्बल देशोंकी समस्याओंकी मार्मिक समीक्षा करते हुए प्रभावोत्पादक भाषामें कहा—"आपको याद होगा कि चीनके आन्तरिक संघर्षने ही उस राष्ट्रको कमजोर बना दिया, पर गत वर्ष जापानका जब उस पर आक्रमण हुआ तो हमने देखा कि जो चीनी लोग आपसमें बुरी तरह लड़ रहे थे और एक दूसरेको मिटानेमें लगे थे, वे ही इतने महान हो गये कि

उन्होंने जापानी—संकटको देखा और समझा, और वे उसका मुकाबला करनेके लिये आपसमें संगठित हो गये। आज हम वर्ष भरसे देखते आ रहे हैं कि चीनके संगठित लोग आक्रमणके विरुद्ध किस वीरता और दृढ़ताके साथ लड़ रहे हैं। इसी तरह आप देखेंगे कि प्रत्येक देशमें एकता लानेके लिये थोड़े बहुत सफल प्रयत्न हो रहे हैं, और संसार भरके भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंके ये संगठित दल एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनानेके लिये व्यग्र हैं।

"यूरोप और पश्चिममें, जहांके प्रगतिशील दलोंका इतिहास जरा लम्बा और भूमिका थोड़ी भिन्न है, लाभ और हानि आपको दोनों ही दिखायी देंगे। परन्तु एशियामें, जहाँ ऐसे दल अभी बने ही हैं, यह प्रश्न प्रायः राष्ट्रीय प्रश्नके आवरणसे छिपा रहता है और किसीके लिये अन्तर्राष्ट्रीयताकी भाषामें इस प्रश्नको सोचना समझना कुछ सहज नहीं है, क्योंकि हमें सबसे पहले अपने देशकी राष्ट्रीय राजनीतिकी भावनाके अनुसार सोचना पड़ता है। यह सब होते हुए भी, आधुनिक परिवर्तनोंने, विशेषकर अबिसीनिया, स्पेन और चीनमें हुई घटनाओंने अब लोगोंको अन्तर्राष्ट्रीयताकी भाषामें सोचने और विचार करनेके लिये विवश कर दिया है। एशियाके कुछ देशोंमें हम बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ पाते हैं, कारण कि अपने संघर्षोंमें लगे रहने पर भी, हम संसारके अन्य भागोंमें होनेवाले सामाजिक संघर्षों पर अधिकाधिक सोचने लगे और यह अनुभव करने लगे कि उन संघर्षोंका प्रभाव सारे संसार पर पड़ा है, इसलिये हम पर भी पड़ा है।"

इसके बाद प० नेहरूने साम्राज्यवादियोंकी 'कामनवेल्थ आफ नेशन्स' या राष्ट्रोंके सामुहिक संघकी टीका-टिप्पणी और निन्दा करते हुए कहा, कि "हमसे अब कहा जाता है कि साम्राज्यवादी धारणाके बदले हमें राष्ट्रोंके कामनवेल्थकी धारणा बनानी चाहिये। यह भाव तो हम सबको अच्छा लगता है कि संसारमें सब लोगोंके लिये एक समान कामनवेल्थ बने। पर यदि हम सोच लें कि साम्राज्य ही धीरे-धीरे करके एक 'कामनवेल्थ' के रूपमें बदल जायगा, पर राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टिसे उसका ढाँचा प्रायः वैसा ही साम्राज्यका-सा बना रहे, तो मुझे ऐसा लगता है कि ऐसे कामनवेल्थको माननेमें हम अपने आपको बड़े भारी धोखेमें रख रहे हैं। ऐसा कोई सच्चा 'कामनवेल्थ' हो ही नहीं सकता जो साम्राज्यसे पैदा हुआ हो। उसे जन्म देनेवाले तो दूसरे ही होंगे।

"ब्रिटिश कामनवेल्थमें बहुतेरे देश (जैसे कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजिलेण्ड, दक्षिण अफ्रीका आदि) हैं जो करीब-करीब स्वतंत्र हैं। पर हम यह न भूल जांय कि ब्रिटिश साम्राज्यमें एक विस्तृत भू-खंड और एक बड़ी भारी आबादी ऐसी है जो बिलकुल पराधीन है, और यदि आप यह समझें कि वह पराधीन जनता धीरे-धीरे उस 'कामनवेल्थ' में बराबरीकी साझीदार बननेवाली है, तो यह आपका बहुत बड़ा भ्रम हैं और इसमें अनेक कठिनाइयां और समस्याएँ सामने आयंगी। आपको पता लगेगा कि यदि किसी तरह राजनीतिक उपायोंसे कोई सहकारिता हो भी गई, तो भी ऐसे अनेक बन्धन रहेंगे जो एक स्वतंत्र 'कामनवेल्थ' से मेल नहीं खाते

और उनसे पराधीन लोगोंको कोई सच्ची स्वतंत्रता नहीं मिल सकेगी, यहाँ तक कि यदि वे अपनी आर्थिक व्यवस्था बदलनी चाहें तो उसमें रुकावटें आयेंगी और वे अपनी सामाजिक समस्याएँ भी नहीं सुलझा सकेंगे। मेरा ख्याल है कि हम लोगोंमें बहुतेरे ऐसे हैं जो राष्ट्रोंके सच्चे समूह या 'कामनवेल्थ' के पक्षमें होंगे। पर हम उसे कुछ देशों या राष्ट्रों तक ही सीमित कर देना क्यों चाहें? इसका यह तात्पर्य हुआ कि आप एक वर्गका विरोध करनेके लिये दूसरा वर्ग बना रहे हैं। दूसरे शब्दोंमें, आप साम्राज्यकी धारणापर एक नयी रचना कर रहे हैं, और एक साम्राज्यकी टक्कर दूसरेसे होती है। इससे एक समूहके भीतर लड़ाई होनेका खतरा भले ही कम हो जाय, पर समूहोंके बीचमें लड़ाई होनेका खतरा तो बढ़ ही जायगा।

"इसलिये यदि हम किसी सच्चे कामनवेल्थकी बात सोच रहे हैं तो फिर यह आवश्यक हो जाता है कि हम साम्राज्यवादके विचारोंको छोड़ दें और एक नये स्वतंत्र आधारपर नयी रचना करें—वह आधार होगा सब जातियोंके लिये पूरी स्वतन्त्रताका। ऐसी व्यवस्थाके लिये हरएक राष्ट्रको दूसरोंके साथ-साथ प्रयुक्त (सत्ता) के कुछ चिन्ह छोड़ने होंगे, इसी आधारपर हम सामुहिक सुरक्षा और शान्ति, स्थापित कर सकते हैं।"

नेहरूजीने आगे उस 'मेंडेट' (शासनादेश) प्रथाकी कटु आलोचना की जिसे सन् १६१६ के महायुद्धके बाद राष्ट्र संघ (लीग आफ नेशन्स) ने जारी किया था और जिसके द्वारा एक

शक्तिशाली राष्ट्रको दूसरे निर्बल राष्ट्रपर शासन करनेका अधिकार दिया गया था। नेहरूजीने कहा, कि—"अफ्रीका और अन्य देशोंमें 'मेंडेट' देनेकी प्रथा, मेरी सम्मतिमें, बड़ी खतरनाक है, क्योंकि वह एक बुरी चीजको अच्छे नाममें छिपाकर रखती है। सार रूपमें वह (मेंडेट) एक दूसरे नाम और भेदमें साम्राज्यवादी प्रथा ही है। किसी व्यक्तिको दूसरेका 'ट्रस्टी' (संरक्षक) बनाना और उसे इससे लाभ उठाने देना सदा खतरनाक है। मेरी दिलचस्पी साम्राज्यको बनाये रखनेमें नहीं, बल्कि उसका एक मुनासिब ढंगसे खातमा करनेमें है।"

नेहरूजीने अन्तमें फिलस्तीनमें अरब-यहूदी समस्या और संघर्ष पर कहा कि यह समस्या ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा उत्पन्न की गई है। गत दो हजार बरसोंसे फिलस्तीनमें अरबों और यहूदियोंमें कभी कोई सच्चा झगड़ा नहीं हुआ, पर वृटिश राजनीतिज्ञोंने हाल ही में वहाँ एक नया झगड़ा खड़ा कर दिया है। यहूदियोंसे हमारी सहानुभूति है क्योंकि—वे बहुत सताये गये हैं और उन्हें यूरोपके कई देशोंसे निकाला जा रहा है। पर यह स्मरण रहे कि फिलस्तीन विशेष रूपसे अरबोंका देश है, और यह आन्दोलन बुनियादी तौरपर अरबोंका स्वतंत्रता प्राप्तिके लिये राष्ट्रीय सङ्घर्ष है। यह मजहबी मसला भी नहीं है, क्योंकि अरब के मुसलमान और ईसाई दोनों ही यहूदियोंके आगमनका विरोध कर रहे हैं। अरब लोगोंने आन्दोलन अपने देशकी स्वतन्त्रता के लिये उठाया था, पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कूट चालोंसे

यह झगड़ा अरबों और यहूदियोंका झगड़ा बन गया और इसके बाद ब्रिटिश सरकार सरपञ्चका काम करनेके लिये आ गई। फिलस्तीनकी समस्याको स्वयं अरब और यहूदी आपसमें समझौता करके सुलझा सकते हैं—ब्रिटिश साम्राज्यवाद उसे कदापि हल नहीं कर सकता।"

पण्डित नेहरूने अनेक वर्षोंसे संसारकी बड़ी-बड़ी राजनीतिक घटनाओंको सदा इस दृष्टिसे देखा कि उनका प्रभाव भारतपर किस तरह पड़ता है, क्योंकि वे भारतीय समस्याको संसारकी राजनीतिसे कुछ भिन्न नहीं समझते और वे जब भारतीयोंकी किसी सभामें भाषण करते तो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिपर अवश्य खरे विचार प्रकट करते और अपने श्रोताओंको यह बारम्बार याद दिलाते, कि—"भारतीय स्वतन्त्रताका सङ्घर्ष विश्वव्यापी सङ्घर्षसे अलग नहीं है और भारतीयोंको उसपर दृष्टि रखते हुए अपने स्वतन्त्र मार्गका अनुसरण करना चाहिये।" वे देशवासियोंकी प्रायः हर सभामें संसारकी राजनीतिकी चर्चा अवश्य किसी न किसी रूपमें करते हैं।

यदि वे किसानोंकी सभामें भाषण करते हैं तो उन्हें यह समझाते हैं कि किस तरह संसारकी आर्थिक व्यवस्था बिगड़नेसे उनकी भी दशा खराब हुई है। वे विश्वव्यापी आर्थिक मन्दीके कारणों और पूंजीपतियोंके अनिष्ठकारी स्वार्थोंका विश्लेषण करते हुए उनकी मार्मिक समालोचना करते हैं। वे किसानोंसे कहते हैं कि संसारमें सर्वत्र शासक और पूंजीपति लोग श्रमजीवियों

और कृषकोंकी पीठपर सवार होकर अपनी स्वार्थसिद्धि करते हैं, पर भारतमें तो श्रमजीवियोंकी अवस्था और भी हीन दशाको पहुंच गई है, क्योंकि यहाँ एक ओर तो पूंजीपतियोंका और दूसरी ओर विदेशी शासकोंका भारी शोषण बराबर जारी है। इसलिये उन्हें चाहिये कि वे भारतीय स्वतन्त्रताके सङ्घर्षमें शरीक होकर पहले तो ब्रिटिश आधिपत्यसे स्वतन्त्र हों, और इसके बाद अपने मालिकों-राजाओं, जमींदारों और ऋण देनेवाले महाजनोंसे मुक्त हों। उन्हें बिना किसीका भरोसा किये अपने भाग्य स्वयं अपने हाथोंमें लेने चाहियें।

यदि नेहरूजी कारखानोंके मजदूरों या ट्रेड यूनियनके श्रमजीवियोंके सामने भाषण करते हैं, तो उनकी विचारधारा वही रहती है और स्थितिके अनुसार मजूरोंकी समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए एक केन्द्रीय विचार या प्रसंग अवश्य उनके सामने रखते हैं और वह है संसार भरके मजूरोंकी कठिन समस्या। और इसी सिलसिलेमें वे उन्हें कार्लमार्क्सका, "संसारके श्रमजीवियो! एकता करो!" वाक्य और उसका आशय भी समझा देते हैं। जब वे ऐसे मिश्रित जन-समूहके सामने बोलते हैं, जिसमें विभिन्न आर्थिक स्वार्थोंके लोग हों, तो वे उनसे कहते हैं कि इंग्लैण्डके विरुद्ध भारतकी लड़ाई उस बड़ी लड़ाईका एक भाग है, जिसमें सभी कालोनियल (ब्रिटिश, फ्रेंच, डच, पुर्तगाली आदि उपनिवेशों) के निवासी गोरोंकी प्रयुक्त और उनके साम्राज्यवादके विरुद्ध शरीक हैं और उनकी विजय प्रतिक्रियावादियों पर प्रगतिशील शक्तियोंकी विजय है।

नेहरूजी इस तरह संसारके राजनीतिक संघर्षसे भारतीय संघर्षका सम्बन्ध स्थापित करके एक नया महत्वपूर्ण मार्ग या आदर्श दिखाते हैं। नेहरूजीने यह जोरके साथ कहा है कि भारतको संसारकी राजनीतिमें, विशेष कर एशियाके संघर्षमें प्रमुख भाग लेकर दूसरोंका पथ-प्रदर्शन करना है। भारतको संसारके लिये एक सन्देश देना है, और वह सन्देश है अन्तर्राष्ट्रीय सद्-भावना तथा विश्व-मैत्री का। नेहरूजीका संसारके संघर्षको अपने विचारोंकी पृष्ठभूमि बना कर भारतीय संघर्षके पहलूको समझाना ही एक दिव्य सन्देश देना है और यही कारण है कि वे अपनी पद्धतिमें अन्य नेताओंसे कुछ भिन्न हैं। नेहरूजीकी राजनीतिमें आर्थिक स्थिति पहले आती है और वे राष्ट्र या संसारकी समस्त समस्याओं पर विचार करते हुए आर्थिक स्थितिको कभी नहीं भूलते। वे राष्ट्रीय हैं और उनके लिये राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्रामकी सफलता, उन आर्थिक तथा सामाजिक सुधारोंके लिये आवश्यक है, जिनके बिना मानव-जाति पीड़ित है। आर्थिक शक्तियोंकी क्रियाशीलता समग्र संसारके आन्तरिक सामाजिक स्तरोंमें फैली हुई है, इसलिये यह विश्वव्यापी विस्तृत क्षेत्र—यह संसारका रङ्गमञ्च नेहरूजीकी दृष्टिसे कभी बाहर नहीं रहता।

वे समस्त देशोंकी घरेलू तथा आन्तरिक समस्याओंको विश्व-व्यापी आर्थिक सङ्घर्षका अङ्ग ही समझते हैं और साम्यवादी होनेके कारण उन समस्याओंके हलके सम्बन्धमें उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक रहता है। वे कभी एक देशको हानि पहुंचा कर

दूसरे देशको लाभ पहुंचानेका समर्थन न करेंगे। उन्होंने रूस, स्पेन, चीन आदि देशोंमें जाकर वहांकी जनताकी आवश्यकताएँ देखीं और उनकी महत्वाकांक्षाएँ समझीं और उनका सम्बन्ध भारत के लिये कहां तक लाभजनक, हानिकर मूल्य या उपयोग रखता है, इसे भी उन्होंने सदा अपने ध्यानमें रखा। वे कभी-कभी संसारकी कठिनाइयों और झगड़ों पर विचार करते हुए अपने व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय कठिनाइयोंको भी भूल जाते हैं और उनमें एक न जाने कैसी विचित्र व्यापक सहानुभूति है कि वे मानवताको समस्त कठिनाइयोंसे मुक्त करनेके नाना उपायोंका सदा चिन्तन किया करते हैं।

नेहरूजीने एक बार कहा था कि,—"मैं कभी-कभी इस पर खुश भी होता हूँ कि मैं एक ऐसे समयमें जीवित हूँ जब कि संसारके इतिहासमें महान् क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। सम्भव है संसारके अपने कोनेमें मुझे भी कोई छोटा भाग लेना पड़े, जब कि संसार महान् परिवर्तनोंके लिये तैयार हो रहा है।" इस कारण नेहरूजीके लिये भारतीय समस्या संसारकी एक समस्या है और वे उन लोगोंसे कभी सहमत नहीं रहे, जो भारत और इङ्गलैण्डकी लड़ाईको दोनों देशोंका घरेलू झगड़ा समझते रहे। उन्होंने इस प्रश्न पर कहा है—

"भारत पर अंग्रेजोंका डेढ़सौ वर्षसे शासन है, और इससे ब्रिटेनकी अपनी घरेलू और परराष्ट्र नीति पर बहुत असर पड़ा है, और यही नीति संसारके मामलोंमें खुलकर खेल रही है। समस्त

प्रतिद्वन्द्वियोंको भारतसे दूर रखनेके लिये इंग्लैण्डने भारतमें और भारत आनेके मार्गों पर समुद्रोंमें अनेक संग्राम लड़े हैं। भारतमें अपनी शक्ति जमानेके बाद, इंग्लैण्डने दूर-दूर तक अपने प्रभावके क्षेत्र फैलाये। इन क्षेत्रोंमें कोई भी हस्तक्षेप उसके लिये सह्य न था। उत्तरमें अफगानिस्तानके दमनके लिये कई बार ब्रिटिश और भारतीय सेनाएं भेजी गईं, और कोई विरोधी अफगान अमीर अपनेको राज-सिंहासन पर सुरक्षित्त नहीं समझ सकता, क्योंकि उसके निकट ही रूस सरीखी महान् शक्ति मौजूद है, जिससे ब्रिटेन सदा सशङ्क रहा है। इधर बरमाको भी उसने हस्तगत करना उचित समझा। ईरान दीर्घकाल तक ब्रिटिश प्रभावमें रहा है, तुर्की तथा निकट-पूर्वके अन्य अरब देश भी उसके प्रभावसे खाली न रहे। सारांश यह कि जिब्राल्टरसे लेकर माल्टा, स्वेज और अदन तकका समुद्री मार्ग अविच्छिन्न रूपसे ब्रिटिश नियन्त्रणमें रहा है। भारत पर प्रभुत्व रखकर इङ्गलैण्डने अपनी समस्त उन्नति की है और वह कभी किसी अन्य शक्तिको भारतीय मार्ग पर अधिकार देनेमें सहमत न होगा।"

भारत विशाल ब्रिटिश साम्राज्यकी वह एक मजबूत धुरी है जिसके चारों ओर न केवल साम्राज्य, वरन् संसारकी राजनीति चक्कर काटती है, इसलिये भारतका अप्रत्यक्ष रूपसे संसारकी राजनीति पर विशेष प्रभाव है। नेहरूजी अपने देशवासियोंसे संसारकी राजनीतिक प्रगतिका अध्ययन करनेके लिये कहते हैं और दूसरी ओर संसारसे भी कहते हैं कि वह भारत तथा भार-

तीय सङ्घर्षको इस दृष्टिसे समझे कि उसकी सफलता पर संसारकी अनेक कठिनाइयोंके हल होनेकी सम्भावना है। इस दृष्टिसे उनका ध्यान अन्य देशोंकी ओर लगा रहना स्वाभाविक है।

सन् १९३९ में जब स्पेनमें गृहयुद्ध जोरोंमें हो रहा था, और जर्मनी तथा इटलीकी फासिस्ट सेनाओंने वहाँ जनरल फ्रैंकोके पक्षसे प्रजातन्त्रवादियोंको दबाया तो नेहरूजी उस समय फासिस्ट शक्तियोंकी उग्रता तथा ब्रिटेनकी शिथिल नीति पर बहुत नाराज हुए थे। वे स्वयं स्पेन गये थे और उन्होंने उस समय कहा था कि "हम जो अपनी स्वतंत्रताके लिये लड़ रहे हैं, स्पेनके इस ऐतिहासिक युद्ध पर बहुत चिन्तित हैं, क्योंकि संसारकी स्वतन्त्रता वहां पर कुंठित हो रही है। हमारे सङ्घर्षकी सीमाएं हमारे ही देश तक नहीं हैं, वरन वे स्पेन और चीन तक फैली हुई हैं।"

नेहरूजी स्पेनसे चेकोस्लोवाकिया गये, और वहांकी दुर्दशा पर उन्होंने इङ्गलैंडके "मैंचस्टर गार्जियन" पत्रके सम्पादकको एक सार गर्भित पत्र भेजा था, जिसमें लिखा था—"मैंने हाल ही में थोड़ा समय चेकोस्लोवाकियामें बिताया और वहांके बहुतेरे चेक और जर्मन लोगोंसे मिला। भयङ्कर सङ्कट और कठिनाइयोंमें स्वतन्त्रता के लिये उनके दृढ़ निश्चयका मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा। वे अल्पसंख्यकोंकी मांगें पूरी करने और शान्ति बनाये रखनेके लिये दूर तक जानेको तैयार हैं। पर हर कोई जानता है कि यह प्रश्न केवल अल्पसंख्यकोंका ही नहीं है। यदि अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंके प्रेमने सबको द्रवित किया होता, तो हम यही बात इटलीमें

संसारमें साम्राज्यवादियोंके जब तक पारस्परिक द्वन्द्व और संघर्ष जारी रहेंगे तब तक कहीं भी चिर-शान्ति स्थापित न होगी। सबल राष्ट्र आपसमें शक्ति विस्तारके लिये कटु प्रतियोगिता और गहरे षड्यंत्र करेंगे जिनसे संसारकी निर्बल जनता सदा त्रस्त और कुंठित रहेगी। इसलिये नेहरूजीने एक स्वतंत्र विश्व-संघकी कल्पना का समर्थन किया है जिसमें समस्त राष्ट्रोंको स्वशासनकी स्वतंत्र सत्ता प्राप्त रहेगी और विश्वकी सुव्यवस्थाके लिये सबको उसमें समान रूपसे योग प्रदान करना होगा। यह एक विराट योजना है, और यही "एक संसार" का महान आदर्श है।

इसलिये नेहरूजी काले 'कालोनियल' देशोंकी राष्ट्रीय जाग्रति को शान्ति और लोकतंत्रवादी-विश्व-व्यवस्थाके लिये अधिक उपयोगी और आवश्यक समझते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि यह राष्ट्रीय जाग्रति जितनी ही बढ़ेगी उतनी ही साम्राज्यवादी शक्ति क्षीण और अशक्त होगी। लोकतंत्रवादी सिद्धान्तोंके लिये उन्हें पूरी आस्था और श्रद्धा है, पर संसारके बड़े-बड़े लोभी लोक-तन्त्रवादियोंको साम्राज्यवादी समझ कर वे उनकी पूरी निन्दा करते हैं, और कहते हैं कि पहले वे अन्य देशों परसे अपना प्रभुत्व हटायें, तब लोकतन्त्रवादकी बातें करें। इस प्रकार नेहरूजी एक परतन्त्र देशके राष्ट्रवादी, और संसारके नागरिककी हैसियतसे अन्तर्राष्ट्रीय तथा साम्यवादी होकर संसारकी राजनीतिको देखते और समझते हैं, और इस अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें मानव कल्याणके निमित्त उनकी सूझ और सहानुभूति किसी भी गांधी या लेलिनसे कम व्यापक नहीं है।

नेहरूजी और मुसोलिनी

पं० जवाहरलाल नेहरू वायुयान द्वारा जब लुजानसे भारत लौट रहे थे, तो मार्गमें रोम (इटली) पड़ा और वहां उनका वायुयान हवाई बन्दर पर कुछ देरके लिये रुका। इटलीका महान् फासिस्ट प्रधानमन्त्री सिन्योर मुसोलिनी उनसे मिलनेके लिये उत्सुक था, और उसने उन्हें पहले ही एक निमन्त्रण भेज दिया था कि—"जब आप रोमसे गुजरें तो मुझसे अवश्य मिलें।" पत्नी वियोगसे जवाहरलालजीका दिल दुःखी था, और दूसरे वे इटालियन फासिस्टोंके घोर स्वेच्छाचारी शासनसे भी सन्तुष्ट न थे। इटलीने उस समय एक निर्बल देश एबिसीनिया पर आक्रमण कर दिया था, इससे नेहरूजी कुछ और भी खिन्न थे।

जवाहरलालजीने यह भी सोचा कि यदि वे मुसोलिनीसे मिलें तो ऐसी मुलाकातको लेकर फासिस्टोंकी ओरसे प्रोपगण्डा करनेमें दुरुपयोग होगा और वे नेहरूजीके नामका नाजायज फायदा उठायेंगे। जवाहरलालजीको यह भी याद था कि गांधीजी जब सन् १९३१ में रोमसे गुजरे तो उन्होंने यद्यपि मुसोलिनीसे भेंट

नहीं की थी पर तोभी एक इटालियन पत्र 'जर्नल दि इटालिया' में उनकी एक ऐसी मुलाकातका मिथ्या समाचार प्रकाशित हुआ था। जवाहरलालजीको ऐसे और भी कई अन्य उदाहरण याद थे, जिनमें भारतीयोंके इटलीमें जानेके कारण उनकी इच्छाके विरुद्ध फासिस्टों ने बड़ा प्रचार किया था।

पर जवाहरलालजीको मुसोलिनीकी ओरसे यह विश्वास दिलाया गया कि उनके साथ ऐसी कोई बात न होगी जो उनकी इच्छाके विरुद्ध हो, और मुलाकात केवल निजी रूपसे मैत्रीपूर्ण होगी। जवाहरलालजी यद्यपि इटलीके विधाता और संसारके घटनाचक्र पर असर डालनेवाले इस विचित्र महत्वाकांक्षी व्यक्तिसे मिलना पसद करते, पर फासिस्टोंकी दुर्नीति और कुटिल चालोंको याद कर उन्होंने उससे मिलकर समय नष्ट करना उचित न समझा। उन्होंने उससे मिलनेसे साफ इन्कार कर दिया, और शिष्टताके ढङ्गसे अपनी असमर्थता उस तक पहुंचा दी।

पर मुसोलिनी कब माननेवाला था? वह ब्रिटेनका कट्टर विरोधी था, और उसने समझा कि ब्रिटिश शासनके विरुद्ध आन्दोलन करनेवाले नेहरू सरीखे एक प्रमुख नेतासे मिलनेका अवसर क्यों जाने दूं। पर जवाहरलालजीको वायुयान द्वारा रोमसे गुजरनेकी मजबूरी थी, और जब उनका वायुयान रोम पहुंचा तो उसे वहीं रात भर रुकना पड़ा। एक बड़े प्रमुख इटालियन अफसरने आकर उनसे भेंट की, और शामको मुसोलिनीसे मिलनेके

लिये उन्हें निमन्त्रण दिया। इटालियन अफसरने कहा, कि 'सब कुछ तय हो चुका है, और अब चलनेके लिये तैयार रहिये।'

इस पर नेहरूको बड़ा आश्चर्य हुआ, और उन्होंने विनम्र भाव पर कुछ विशेष दृढ़ताके साथ कहा, कि 'मैं पहले ही इसके लिये माफी मांग चुका हूँ।' पर उस इटालियन अफसरने नहीं माना, और वह उन्हें मुसोलिनीके पास ले जानेके लिये बड़ा आग्रह करने लगा। वह एक घण्टे तक नेहरूजीसे हुज्जत और बहस करता रहा, यहां तक कि मुलाकातका ठीक समय भी आ गया। वह अफसर उनकी हर तरह प्रशंसा, और खुशामद करता रहा, पर जवाहर-लालजीने न माना। अन्तमें उन्हींकी बात रही, और मुसोलिनीसे कोई मुलाकात नहीं हुई। जवाहरलालजीके इस विचित्र इन्कार और उनकी अपूर्व दृढ़ता पर मुसोलिनी भी एक बार चकरा गया, और उसने समझा होगा कि किसी असाधारण मनुष्यसे उसका पाला पड़ा है। नहीं तो, मुसोलिनीसे कोई मिलनेसे इन्कार करे? ऐसी उसने स्वप्नमें भी कल्पना न की होगी।

स्वर्गीया माता—स्वरूपरानी नेहरू

लखनऊ व फैजपुर कांग्रेस

लखनऊमें राष्ट्रीय कांग्रेसका उनचासवां साधारण वार्षिक अधिवेशन १२ अप्रेल १९३६ ई० से आरम्भ हुआ। उसके पहले कांग्रेसका अधिवेशन १९३४ ई० के अक्टूबरमें देशरत्न राजेन्द्रप्रसादके सभापतित्वमें बम्बईमें हुआ था। लगातार डेढ़ वर्ष तक इस पदपर रहकर उन्हें जैसा कठिन श्रम देशके दौरे आदिके रूपमें करना पड़ा था, उससे राजेन्द्र बाबूका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। उनके स्थानपर लखनऊ कांग्रेसकी अध्यक्षता करनेके लिये एक ऐसे पुरुषकी आवश्यकता सभीको अनुभव हो रही थी, जो कांग्रेसके भीतर दिन पर दिन जोर पकड़नेवाले समाजवादी दलका विश्वास प्राप्त करनेके साथ ही महात्मा गांधीका भी सच्चा अनुयायी हो। जवाहरलालजीमें ये दोनों ही विशेषताएँ थीं, इसलिये उनकी ओर ही कांग्रेसजनोंका ध्यान जाना स्वाभाविक था। २८ फरवरी १९३६ ई० को वीर पुरुष जवाहरलालजीकी वीर पत्नी कमला नेहरूका देहावसान हो चुका था, इसलिये भी महात्माजी को लखनऊ कांग्रेसके अध्यक्ष पदके लिये नेहरूजी ही सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति जँचे। कांग्रेसके भीतर समाजवादी विचारधाराके

सोषकोंकी प्रथम कान्फरेंस १७ मई १९३४ ई० को हुई थी और उसके निश्चयानुसार कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टीका पीछे जन्म भी हो चुका था। कांग्रेसके समाजवादी (सोशलिस्ट) गांधीजीकी विचार-धारासे अपनी भिन्न विचारधारा रखते हुए भी तब कांग्रेसके अभिन्न अंग बने रहना चाहते थे, इसीसे उन्होंने अपनी पार्टीके नामके साथ 'कांग्रेस' का नाम जोड़ रखा था। परन्तु भारतको सर्वप्रथम समाजवादका संदेशा सुनानेवाले युवक नेता जवाहर-लालजीके विरुद्ध समाजवादी विचार-धारा वाले भी नहीं जा सकते थे, इसलिये कांग्रेसजनोंको राष्ट्रीय महासभाकी परम्परा तोड़कर भी लखनऊ कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके लिये पं० जावहरलाल नेहरूको निर्वाचित करनेमें कुछ भी हिचकिचाहट नहीं हुई। अबतक कांग्रेसकी यह परम्परा बन रही थी कि जिस प्रान्तमें राष्ट्रीय महा-सभा कांग्रेसका वार्षिक अधिवेशन हो रहा हो, उसी प्रान्तका आदमी उसका अध्यक्ष न चुना जाये और नेहरूजीके आलोचकोंने इस बात पर जोर देनेमें भी कोई कसर नहीं रखी थी। किन्तु कांग्रेसके विधानमें इस प्रकारकी कोई बाधा है नहीं, इसलिये नेहरू जीको लखनऊ कांग्रेसका अध्यक्ष निर्वाचित कर कांग्रेसजनोंको उनका इस भांति अणाधारण सम्मान करने और उनके नेतृत्वमें अपना विश्वास प्रकट करनेमें कुछ भी हिचकिचाहट नहीं हुई।

नेहरूजीके इस निर्वाचन पर उनके विपक्षियों और आलोचकों को, जिनमें श्री सुभाषचन्द्र बोसको प्रधान कहना कदाचित् कुछ भी अनुचित न होगा, कैसा लगा था, यह बोस महाशय द्वारा

प्रकट किये हुए इस विचारसे ही प्रकट हो जाता है—"पंडितजीकी स्थिति मनोरंजक है। उनके विचार तो आमूल परिवर्त्तनकारी हैं और वे अपनेको सम्पूर्णतया समाजवादी कहते भी हैं, किन्तु कार्य-रूपमें वे महात्माजीके अनुयायी हैं। यह कहना संभवतः ठीक होगा कि जब कि उनका मस्तिष्क वाम पक्षियोंके साथ है, उनका हृदय है महात्मा गांधीके साथ।" सुभाष बाबूने अपनेको और भी अधिक स्पष्ट करते हुए यह भी कहा था—"महात्मा गांधीने पं० जवाहरलाल नेहरूकी उम्मेदवारीका समर्थन करनेका निश्चय किया और यह समझदारीकी बात थी, क्योंकि यहींसे महात्माजी और पंडित नेहरूका राजनीतिक मेल आरंभ होता है और परिणाम स्वरुप नेहरूजी और वाम पक्षके बीच पार्थक्य उपस्थित होता है।"

लखनऊ कांग्रेसके पहले देशकी अवस्था यह थी कि १८ दिसम्बर १६३५ ई० को वायसरायने घोषणा करके क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्टको समस्त भारतके लिये लागू कर दिया था, यद्यपि केन्द्रीय असेम्बली बिल रूपमें उपस्थित किये जाने पर दिसम्बरमें उसे अस्वीकार कर चुकी थी। खास संयुक्तप्रान्तमें समाजवादी दलका जोर बहुत बढ़ रहा था और वहांकी सरकार उसके आन्दोलनको जमींदारी प्रथाका अन्त करनेके प्रधान उद्देश्यसे चालित समझती थी, इसलिये उसके दमनके लिये उसने नवम्बरमें युक्तप्रांतीय कौंसिलसे विशेषाधिकार बिल पास करा लिया था। पंजाब और दिल्लीके लिये भी इसी प्रकारके विशेषाधिकार प्राप्त करके नौकरशाहीने उन सारे अधिकारोंको अपने हाथमें बना

रखनेका आयोजन कर लिया, जो आर्डिनेंसके समयसे चले आते थे। एक ओर तो सरकारकी ओरसे भीषण दमनकी तैयारी थी और दूसरी ओर नेहरूजीके दलकी तत्परता जनमत जाग्रत करनेके लिये प्रचंड रूप धारण करती जा रही थी। प्रथम समाजवादी कान्फरेंसमें नये विधानका सामना करनेके लिये सत्याग्रह आदि प्रत्यक्ष संग्राम रचनेकी सलाह देनेके साथ ही पद ग्रहणके विचार जोरोंसे विरोध किया गया था और साथ ही कांग्रेसके विधानमें श्रम-मताधिकार एवं खद्दरकी अनिवार्यताकी व्यवस्थाका भी विरोध प्रकट किया गया। किसानों और मजदूरों की ओरसे भी कुछ मांगें उपस्थित की गयीं। इस तरह कांग्रेसके भीतर रह कर भी समाजवादी लोग उसके अधिकारियोंकी नीतिसे काफी जोरोंसे असन्तोष प्रकट करने लग गये थे। इस प्रकार लखनऊ कांग्रेसमें नेहरूजीको एक साथ ही दो प्रकारके विरोधका सामना करनेके लिये कांग्रेसको तैयार करनेका भगीरथ उद्योग करना था और कहना नहीं होगा कि नेहरूजी जैसा महा पराक्रमी और तेजस्वी नेता ही इसके लिये सक्षम और उपयुक्त था।

कांग्रेसके अधिवेशनका समय आया। सभापति नेहरूजीका जुलूस पैदल निकालनेका निश्चय किया गया था, किन्तु वे कुछ ही दूर चल पाये थे कि असाधारण भीड़के कारण और आगे बढ़ना असंभव हो गया। फिर तो उन्हें घोड़ेपर सवार हो जाना पड़ा। नेहरूजीने अपना भाषण हिन्दुस्तानीमें सुनाया और जैसी कि आशा थी, सभी उपस्थित समस्याओं पर उन्होंने अपने विचार

तेजस्विता पूर्ण ढंगसे प्रकट किये। इस कांग्रेसमें कुल पन्द्रह प्रस्ताव पास किये गये थे। एकमें देश-निर्वासनके लम्बे समयके पश्चात् आते हुए श्री सुभाषचन्द्र बोसकी गिरफ्तारी पर रोष प्रकट किया गया। नागरिक अधिकारोंके अपहरणकी निन्दाका भी प्रस्ताव पास किया गया और प्रवासी भारतीयों तथा अन्य देशोंकी राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय और मजदूर दल आदि संस्थाओंसे सम्पर्क रखनेके लिये कांग्रेसका एक वैदेशिक विभाग खोलनेका निश्चय किया गया। एक प्रस्ताव द्वारा साम्राज्यवादी युद्धमें भारतके भाग न लेनेकी घोषणा की गयी और एक अन्य प्रस्तावमें अबीसिनियासे सहानुभूति प्रकट करते हुए राष्ट्र संघकी नपुंसकताकी निन्दा की गयी। एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव द्वारा रियसती प्रजाके लिये जनतंत्रात्मक स्वतंत्रताके अधिकारकी घोषणा की गयी। भावी शासन विधान और उसे ग्रहण करने न करनेका प्रश्न सबसे अधिक महत्वका था। कुछ लोगोंने वर्किङ्ग कमेटीके प्रस्तावोंका तीव्र विरोध किया, किन्तु अन्तमें मूल प्रस्ताव ही बहुत अधिक बहुमतसे पास हुआ। इसके द्वारा नया शासन-विधान अस्वीकृत किया गया, विधान-निर्माणार्थ एक विधान-परिषद्की मांग की गई, पार्लमेंटरीबोर्ड तोड़कर सब अधिकार वर्किङ्ग कमेटीको दिये गये। नये विधानके अनुसार कौंसिलोंका चुनाव लड़नेका निश्चय किया गया, पर पद-ग्रहणका विवाद ग्रस्त प्रश्न समय आने पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके निर्णयके लिये स्थगित किया गया। एक प्रस्ताव द्वारा जनतासे सम्पर्क बढ़ानेके उपायों पर विचार करनेके

लिये श्री राजेन्द्र प्रसाद, श्री जयरामदास दौलतराम और श्री जय-प्रकाश नारायणकी एक सब-कमेटी बनायी गयी। कांग्रेसमें किसान और मजदूर सभाओंके प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्वका प्रस्ताव तो पास नहीं हो सका, पर एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेसने किसानोंकी बहुत सी मांगें स्वीकार कर लीं।

अधिवेशनकी समाप्तिके साथ ही राष्ट्रपति नेहरूजी उसके निश्चयोंको कार्यान्वित करनेके उद्योगमें लग गये और उन्होंने ऐसी तत्परता दिखायी कि उनके आलोचकोंको भारी अचंभेमें पड़ जाना पड़ा। नेहरूजीने नागरिक स्वतंत्रताकी रक्षाके लिये रवीन्द्र नाथ टेगोरकी अध्यक्षतामें 'नागरिकस्वतंत्रता संघ' (सिविल लिबर्टी यूनियन)की स्थापना की और इसमें उन्हें विभिन्न दलों और विचारों के डेढ़ सौ से अधिक नेताओंका सहयोग प्राप्त हुआ। डा० राम-मनोहर लोहियाकी देख-रेखमें कांग्रेसका एक वैदेशिक विभाग भी खोला गया, जो विभिन्न देशोंके स्वतंत्रता आन्दोलनों और जन-आन्दोलनोंसे पूरा सम्पर्क रखने और विदेशोंकी विभिन्न संस्थाओं एवं समाचार पत्रोंको भारतकी अवस्थाका प्रामाणिक परिचय देनेका महत्वपूर्ण कार्य करता है। सच तो यह है कि पं० जवाहरलाल कांग्रेसके अन्य सभी नेताओंसे अधिक अन्तर्राष्ट्रीय विषयोंकी जान-कारी रखते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय मामलेमें उनके प्रगाढ़ अनुरागको सभी लोग मुक्त कंठसे स्वीकार करते हैं। स्पेनकी अपनी अत्यन्त संक्षिप्त यात्रामें नेहरूजीने जो कुछ वहाँ देखा था, उसका उनपर जो असाधारण प्रभाव हुआ था, उसका उल्लेख स्वयं उन्होंने ही अपनी

पुस्तक 'मेरी कहानी' में इस भांति किया है—"जेनरल फ्रंकोके स्पेनमें विद्रोह करनेका मुझपर बहुत ज्यादा असर हुआ। मैंने देखा कि यह विद्रोह, जिसके पीछे जर्मनी और इटलीकी मदद काम कर रही थी, एक यूरोपीय या विश्वव्यापी संघर्ष बनता जा रहा है। आवश्यक था कि हिन्दुस्तानको भी उसमें पड़ना पड़ता और ऐसे अवसर पर जब कि सबका साथ-साथ चलना जरूरी था, मैं अपनी संस्थाको कमजोर बनाना और भीतरी संकट पैदा करना नहीं चाहता था। स्पेनके युद्धकी मुझपर जो प्रतिक्रिया हुई, उससे पता चलता है कि मेरे मनमें किस प्रकार हिन्दुस्तानका सवाल दुनियांके दूसरे सवालोंसे जुड़ा हुआ था। मै अधिकाधिक सोचने लगा कि चीन, स्पेन, अबीसीनिया, मध्य यूरोप, हिन्दुस्तान या अन्य स्थानोंकी सारी राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याएं एक ही विश्व समस्याके विविध रूप हैं। जब तक मूल समस्या नहीं हल कर ली जाती, इनमेंसे कोई एक समस्या अन्तिम रूपमें नहीं सुलझ सकती। संभावना इस बातकी थी कि मूल समस्या सुलझनेके पहले ही कोई क्रान्ति या आपदा आयेगी। जिस तरह कहा जाता था कि आजकी दुनियामें शांति अविभाज्य है, उसी प्रकार स्वतंत्रता भी अविभाज्य है। दुनिया बहुत दिनों कुछ स्वतंत्र और कुछ गुलाम नहीं रह सकती। फेसिस्टवाद और नाजीवादकी यह चुनौती मूलतः साम्राज्यवादी ही चुनौती थी। ये दोनों जुड़वां भाई थे—अन्तर केवल इतना ही था कि साम्राज्यवादका विदेशोंमें उपनिवेशों और अधिकृत देशोंमें जैसा नंगा नाच देखनेमें आता

था, वैसा ही नाच फेसिस्टवाद और नाजीवादका निजके देशोंमें दिखाई पड़ता था। अगर दुनियामें स्वतंत्रता कायम होती हैं, तो न केवल फेसिस्टवाद और नाजीवादको ही मिलाना होगा, बल्कि साम्राज्यवादका भी बिल्कुल नाम निशान मिटा देना होगा।" नेहरूजीके ऐसे दूरदर्शितापूर्ण गंभीर और दृढ़ विचारका ही यह परिणाम था कि उनके नेतृत्वमें उनके बहुसंख्यक देशवासी भी इसी प्रकार सोचने लगे और उनके कार्य कालमें ६ मईको अबीसिनिया दिवस, २७ सितम्बरको फिलस्तीन दिवस और ११ नवम्बर को युद्ध-विरोधी दिवस मनाये गये और इनके सम्बन्धमें कांग्रेसने देशमें हजारों सभाएं और प्रदर्शन किये थे।

पिछले राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबूने देशके विभिन्न भागोंका विस्तृत दौरा करनेकी जो प्रथा चलायी थी, उसका उनके उत्तराधिकारी राष्ट्रपति नेहरूजीने भी भरपूर निर्वाह किया। पंजाब, दिल्ली, बम्बई, सिंध, संयुक्तप्रान्त, बंगाल, उत्कल, तामिलनाद, अंध्र और मध्यप्रान्त में दौरा कर नेहरूजीने लक्ष-लक्ष भारतीयोंको कांग्रेसका संदेश सुनाया। बड़े बड़े शहरोंसे छोटेसे-छोटे गांव तक उन्होंने राष्ट्रीयता का संदेशा पहुँचाकर देश भरमें असाधारण जागृति पैदा कर दी, अपने भाषणोंमें आर्थिक समस्याओं पर जोर देते हुए उन्होंने जहां समाजवादी विचार-धाराको बहुत बल दिया, वहां साम्प्रदायिक समस्याको तुच्छ बताते हुए आश्वासन भरे शब्दोंमें वे यह कहते देखे गये कि मुख्य समस्या आर्थिक है, जिसे सुलझालेनेसे छोटी-छोटी समस्याएं स्वयं सुलझ जायेंगी! सबसे अधिक नेहरूजी इस

बात पर जोर देते थे कि :—'देशमें केवल दो ही दल हैं—एक कांग्रेस है और दूसरी ओर सरकार। सभी कांग्रेस विरोधी दल, चाहे वे कितना ही राष्ट्रीय नाम क्यों न रखें, देशके राष्ट्रीय संग्राममें रुकावट खड़ी करते हैं, फलतः वे सरकारके साथ हैं।' समाजवादी दृष्टिसे उग्र विचार रखते हुए भी नेहरूजी उन समाजवादियोंका साथ नहीं दे सके, जो मजूरों और किसानोंके संगठनके नाम पर कांग्रेसका विरोध करने और तिरंगे झंडे पर लाल झंडेको प्रशस्तता देने लगे थे। कुछ कांग्रेसियोंमें बढ़नेवाली ऐसी प्रवृत्तिका कड़े शब्दोंमें विरोध करनेमें नेहरूजीको तनिक भी संकोच नहीं हुआ और उन्होंने ऐसे कांग्रेसियोंके विरुद्ध अनुशासनकी कार्रवाई करनेकी धमकी भी सुना दी थी। नेहरूजी कहते थे कि :—'मैं लाल झंडेके प्रति सम्मान प्रकट करता और मानता हूँ कि उसका भी अपना एक स्थान है, किन्तु वह कांग्रेसमें उस तिरंगे झंडेका स्थान कदापि नहीं दे सकता, जो सम्पूर्ण भारतका राष्ट्रीय झंडा है और जिसके नीचे एकत्र हो समस्त देशके लोग स्वदेशको स्वतंत्र करनेके लिये प्रयत्नशील हो रहे हैं।'

कांग्रेसका अनुशासन पालनपर नेहरूजी जो अत्याधिक जोर दे रहे थे, उसका प्रधान कारण कांग्रेसको छिन्न-भिन्न एवं अव्यवस्थित होनेसे बचाना था। वे देख रहे थे कि प्रान्तीय असेम्बलियोंका चुनाव सिर पर आ रहा हैं, इसलिये इसकी पूरी संभावना है कि व्यक्तियोंके स्वार्थोंके परस्पर टकरानेसे कांग्रेसमें भारी अव्यवस्था पैदा होनेसे चुनावोंमें उसकी हार भी हो सकती है। इसीसे

दिसम्बरमें कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटीकी जो बैठक की गयी, उसमें एक खासा लम्बा प्रस्ताव इस इस सम्बन्धमें नेहरूजी द्वारा उपस्थित किया गया। निश्चय हुआ कि वर्किङ्ग कमेटी उन कांग्रेस कमेटियोंके विरुद्ध अनुशासनकी कार्रवाई करेगी, जो कांग्रेसके कार्यक्रम और निश्चयोंके विरुद्ध आचरण या प्रचार करेंगे, कांग्रेसके उच्च अधिकारियों और नियुक्त किये हुए मध्यस्थके निर्माणको नहीं मानेंगे, कांग्रेसके धनके दुरुपयोगके अपराधी सिद्ध होंगे, कांग्रेसकी प्रतिष्ठा घटानेवाला कोई काम करेंगे और सदस्योंकी भर्तीमें धोखेबाजीसे काम लेंगे। यह भी निश्चय किया गया कि दंड स्वरूप अनुशासनकी जो कार्रवाईकी जायेगी, वह कांग्रेस कमेटीको भंग कर देने या कांग्रेसियोंको पदाधिकार एवं सदस्यतासे च्युत करने अथवा चुनावमें भाग लेनेकी अनुमति न देनेके रूपमें दी जा सकती है। प्रान्तीय कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटियोंको भी इसके लिये अधिकार दिया गया और यह भी निश्चय किया गया कि जब वर्किङ्ग कमेटीकी बैठकका समय न हो तो स्वयं राष्ट्रपतिको ही अनुशासनकी काररवाई करनेका अधिकार होगा। इस तरह जहाँ कांग्रेसका संगठन सुदृढ़ बनानेका आयोजन किया गया, वहाँ नेहरूजीने प्रान्तीय असेम्बलियोंके निर्वाचनोंमें कांग्रेसकी सफलताकी दृढ़ व्यवस्था भी पहले ही से कर ली।

लखनऊ कांग्रेसके निश्चयानुसार चुनावके घोषणापत्र पर स्वीकृति देनेके लिये अगस्तमें बम्बईमें अखिलभारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक करके नेहरूजीने जो घोषणा पत्र पास कराया था,

उसमें ये मुख्य बातें थीं—(१) सरकारने उन बंधनोंको और अधिक मजबूत बनाने और भारतके शोषणको स्थायी बनानेके विचारसे गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट बनाया है। जिनसे वह भारतको जकड़े हुए है, इसलिये भारत इस लादे हुए विधानको स्वीकार नहीं करता और न वह किसी बाहरी शक्ति द्वारा लादे जानेवाले किसी ऐसे विधानको स्वीकार करेगा, जो भारतके स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धांतको स्वीकार नहीं करता। (२) भारतकी पूर्ण स्वतंत्रताके आधार पर विधान-परिषद् द्वारा तैयार किये गये विधानको ही भारत स्वीकार करेगा। (३) कांग्रेस पचासों वर्षसे भारतकी स्वतंत्रताके लिये प्रयत्न कर रही है और अब भी यह धारा-सभाओंसे बाहरके रचनात्मक कार्य और जनताके संगठन पर पहलेकी भांति विश्वास रखती है। तथापि विदेशी प्रभुत्व एवं शोषणको दृढ़ बनानेवाली प्रगतिविरोधिनी शक्तियोंको रोकनेके लिए प्रान्तीय असेम्बलिबोंका चुनाव लड़नेका निश्चय किया गया है। किन्तु कांग्रेसियोंको असेम्बलियोंमें भेजनेका उद्देश्य विधानसे किसी प्रकारका सहयोग करना नहीं बल्कि उससे लड़ना और उसका अन्त करना है। (४) असेम्बलियोंमें जाकर कांग्रेसी प्रतिनिधि विधानमें वर्णित वायसराय और गवर्नरोंके विशेषाधिकारों और संरक्षणोंका प्रतिरोध करेंगे और प्रत्येक संभव उपायसे दमनकारी कानूनों और आर्डिनेंसोंको समाप्त कराने तथा राजनीतिक कैदियों और नजरबंदोंको छुड़ानेका प्रयत्न करेंगे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि नेहरूजीके उपरोक्त घोषणापत्रके प्रकाशित होते ही देश भरमें चुनाव-

चर्चा जोरोंसे चलने लगी और नवम्बरमें कांग्रेसकी पार्लमेंटरी कमेटीने चुनावके लिए धनकी अपील की। तब तक दिसम्बरमें फैजपुरमें होनेवाले कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनका समय भी सिर पर आ पहुँचा।

फैजपुर कांग्रेसमें दूसरी बार पुरानी प्रथाको तोड़कर पंडित जवाहरलाल नेहरू तीसरी बार कांग्रेसके सभापति हुए। नेहरूजी तीसरी बार अपने चुनावके लिये राजी नहीं थे लेकिन देशने एक स्वरसे यही आवाज़ उठायी कि वह नेहरूजीको ही फिर इस बार अपना राष्ट्रपति बनायेगा। सचाई भी यही है कि देश तथा विदेशोंके ऐसी संकटाकीर्ण एवं उलझी हुई परिस्थितियोंमें पंडित जवाहरलालजीसे ज्यादा "समयका व्यक्ति" दूसरा था ही नहीं। नेहरूजी ही देशमें एक ऐसे व्यक्ति थे जो कांग्रेसकी आन्तरिक स्थिति एवं शासकोंकी कूट चालोंको अपनी विशाल अन्तर्राष्ट्रीयता के द्वारा संभाल सकते थे। उस समय देशमें पुराने और नये खयालोंका जबरदस्त संघर्ष जारी था, अतः दोनों विचारधाराओंमें जोड़नेकी एक मजबूत कड़ीकी परम आवश्यकता थी और यह कड़ी नेहरूजी ही हो सकते थे। नेहरूजीने कहा है—

"आदर्शोंके संघर्ष अनिवार्य हैं पर हम संयुक्त मोर्चेको नष्ट नहीं होने दे सकते।" और एकताकी आवश्यकता उस समय कितनी जरूरी थी यह इसीसे प्रमाणित हो जाता है कि सभी विचारधाराओंके नेता उस समय इसीकी आवाज़ उठा कर रहे थे। गांधीजीने फैज़पुर अधिवेशनके अवसर पर स्वयं कहा था—

"जवाहरलालजी ही इस समयके उपयुक्त व्यक्ति हैं" -

और समय ही नहीं जवाहरलालजी सचमुच उन क्षणोंके भी उपयुक्त व्यक्ति साबित हुए। इसलिये कि देशको उस समय अत्यन्त तेजस्वी, शक्तिशाली और साहससे भरे हुए नेतृत्वकी जबरदस्त आवश्यकता थी।

जिस प्रकार लखनऊ कांग्रेसकी विशेषता यह थी कि राष्ट्रपतिने कांग्रेसमें एक नवीन विचारधाराको प्रविष्ठ किया उसी प्रकार फैज़पुर अधिवेशनकी भी यह विशेषता थी कि कांग्रेसके इतिहासमें पहली बार वार्षिक अधिवेशन एक गाँवमें हुआ। गांधीजीकी इच्छा थी कि शहर वालोंको गांवोंमें जाकर वहाँकी असली हालत देखना और समझना चाहिये और शहरोंमें वार्षिक अधिवेशन होनेसे गाँववालोंको न तो कांग्रेसके कार्यक्रममें कोई दिलचस्पी ही रहती थी और न वे यह समझ पाते थे कि कांग्रेसमें क्या होता है? गांवों और शहरोंका सम्बन्ध स्थापित करनेके उद्देश्यसे ही गाँधीजीने शहरोंके बजाय गांवोंमें कांग्रेसके अधिवेशन करनेकी परिपाटी डाली और इस लिहाज़से नेहरूजीके सभापतित्वमें कांग्रेसका गाँवमें होनेवाला यह प्रथम अधिवेशन था।

फैजपुरका अधिवेशन हर प्रकारसे सफल अधिवेशन था। सार्वजनिक सम्पर्ककी बात जो एक विशेष भावनाको लेकर सोची गई थी, अब वह भविष्यके लिये महज कार्यक्रम ही नहीं बनी। वरन फैज़पुरमें यह बात अपने आप ही हो गई। फैज़पुरमें

सौभाग्यकी बात थी कि शंकर राव देव उसके मुख्य चालक थे, जो गांधीजीके अनन्य भक्त और स्वयं एक बहुत ही समझदार और व्यवहार पटु व्यक्ति थे। लखनऊ अधिवेशन व उसके बादके अनुभवोंने राष्ट्रपति जवाहरलालजीको भी काफी नरम कर दिया था। पिछले आठ महीनोंमें उन्होंने जिस असलियतको पकड़ा, उससे उनके चारों तरफके वातावरणके बीच जो खाई थी, वह पट रही थी। जब नेहरूजीका नाम सभापति पदके लिये लिया गया तो उन्होंने देशको अपने एक बयानमें चेताया कि उनका रुझान समाजवादी कार्यक्रम और सिद्धान्तकी ओर था। इसलिये फैज़पुर अधिवेशन यदि लखनऊकी अपेक्षा कम तूफ़ानी और संघर्षोंका रहा तो उसके कारण सिर्फ दोही नजर आते हैं। पहिला तो सभापतिके चुनावमें उनके अनुकूल वातावरण दूसरे पंडित नेहरूजीके पिछले सालके अनुभव।

अपने मन्तव्यके प्रमाणमें जवाहरलालजीके तत्सम्बन्धी पत्र व्यवहारके कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं—

"एक प्रकारसे पिछले साल मैंने विचित्र प्रकारकी विचार-धाराओंके बीच जोड़नेवाली कड़ीका प्रतिनिधित्व किया और इस प्रकार बीचके फरकको मैंने कुछ कम करनेमें मदद की। और साम्राज्यवादके खिलाफ अपनी लड़ाईके बुनियादी ऐक्य पर काफी जोर दिया। अनिश्चितताके कारण मैं हाँ या ना कुछ नहीं कह सका और खामोश बना रहा। अब सभापति पदके लिये नाम पेशकर दिये गये हैं और चुनावका वक्त करीब आ रहा है। मैं

ऐसा महसूस करता हूँ कि मैं अब खामोशी नहीं रख सकता और मैं अपने देशवासियोंको अपने विचार बता देना चाहता हूं। अपने किसी भी साथीके चुनावमें मुझे बहुत खुशी होगी और इस बड़े काममें मैं किसी दूसरे रूपमें इसके साथ सहयोग करूँगा। अगर मेरे देशवासियोंका इरादा मुझे ही चुननेका है तो मैं इसके लिये न कहनेकी हिम्मत नहीं कर सकता और मैं उनकी इच्छाके आगे झुक जाऊँगा। लेकिन अपना फैसला करनेके पहिले उन्हें समझ लेना चाहिये कि मेरी विचारधारा क्या है? क्या चीज मुझे प्रेरणा देती है और लिखने और बोलनेमें मेरे कामका स्रोत क्या है। इसका मैं काफी इज़हार दे चुका हूँ और उसीको मद्दे नजर रखकर मेरे विषयमें निर्णय होना चाहिये।"

जवाहरलालजीने इस प्रकार अपना दिल खोलकर देशके सामने इसलिये रख दिया कि वे गत वर्षकी तरह निष्कारण ही देशकी हानि, पारस्परिक मतभेद तथा आलोचनाओंका शिकार नहीं बनना चाहते थे।

देशके सामने उसी समय एक ऐसी घटना भी पेश आई जिससे स्पष्ट हो गया कि देशके लिये इस समय जवाहरलालजी से उपयुक्त दूसरा और कोई व्यक्ति नहीं है। चुनावके पूर्व ही नेहरूजीके सम्बन्धमें गांधीजीका समर्थन देशके सम्मुख आया। उसके शीघ्र बाद ही फैजपुर अधिवेशनके सभापतित्वके दूसरे उम्मीदवार सरदार वल्लभभाई पटेलने भी समयके उपयुक्त व्यक्ति नेहरूजीको ही स्वीकार किया। उन्होंने अपने वक्तव्यमें स्पष्ट

किया कि हो सकता है कि नेहरूजीकी विचारधारासे सर्वांशतः मैं सहमत नहीं हूँ, किन्तु मूल उद्देश्यमें हम दोनोंमें कोई भी अन्तर नहीं है। आगे चलकर पण्डित नेहरूजीके बारेमें सर्दार पटेलने कहा—

"हम जानते हैं कि जवाहरलालजीके लिये कांग्रेसकी ऐसी निष्ठा है कि एकबार बहुमतसे फैसला हो जानेपर और उनके अपने दृष्टिकोणके विरुद्ध होनेपर भी, वे उसके खिलाफ नहीं जावेंगे। साथ ही राष्ट्रपतिके कोई निरंकुश अधिकार नहीं होते, वह तो हमारे निर्मित संगठनका प्रमुख होता है। किसी व्यक्तिको चुन लेने मात्रसे कांग्रेस अपने अधिकारोंको नहीं खो देती। इसीलिये मैं प्रतिनिधियोंको यह बताता हूं कि देशमें जो विभिन्न शक्तियाँ काम कर रही हैं उनका ठीक दिशामें नियंत्रण और निदेश करने और साथ ही राष्ट्रका प्रतिनिधित्व करनेके लिए जवाहरलालजी सर्वोत्तम व्यक्ति हैं।"

इन दो महान समर्थ नेताओंका जबरदस्त समर्थन हो जानेके बाद जनताके दिलमें जवाहरलालजीके प्रति बहुत गहरी सद्भावना हो गई व साथ ही देशका शंकित वातावरण भी साफ हो गया किन्तु जवाहरलालजी गतवर्षके कटु अनुभवोंका काफी सामना कर चुके थे अतः उनके दिलमें इतनेसे ही सन्तोष न हो सका और इसीलिए फिर उन्होंने अन्तिम बार इसी सम्बन्धमें अपना व अपनी विचारधाराका स्पष्टीकरण किया—

"मैं एक विचित्र स्थितिमें हूं और विवादमें नहीं पड़ना

चाहता। मैं पुनः राष्ट्रपति चुना जाना नहीं चाहता था और इसीलिए मैंने यह कहा था कि जिस दूसरे आदमीका भी चुनाव होगा, मैं सहर्ष उसे सहयोग दूँगा। बड़े योग्य और सम्मान्य व्यक्तियोंके नाम इस पदके लिये पेश किये गये हैं, और उनमेंसे किसीका भी चुनाव उपयुक्त होता। लेकिन जैसा कि पहिले स्पष्ट कर चुका हूं, वर्तमान परिस्थतियोंमें मं न नहीं कह सकता। अभी हाल ही में मुझे अपने दो साथियोंके तार मिले हैं, जिनका आशय इस प्रकार है—

"अखबारोंने तुम्हारे बयानके ये अर्थ लगाये हैं कि तुम्हारे लिये वोटका अर्थ है, समाजके लिये हाँ, और पद-ग्रहणके लिये विरोध। हमारा ऐसा खयाल है कि उस बयानमें समाजवादकी झलक तो है, लेकिन साथ ही यह भी कि आप राजनीतिक आजादीको सबसे पहले जगह देते हैं और संयुक्त मोर्चा चाहते हैं। उससे आपके चुनावके माने समाजवादके लिये हाँ और पद ग्रहणके लिये न नहीं है। गलतफ़हमी दूर होना जरूरी है।"

"मेरे लिये यह एक गलत बात होगी कि मैं राष्ट्रपतिके चुनावको समाजवादके पक्षकी और पद-ग्रहणको विरोधका वोट बना दूँ। समाजवादपर अपने विचारोंको मैं प्रकट कर चुका हूं। मैं यह बता चुका हूं कि मेरा दृष्टिकोण उस रङ्गमें रङ्गा हुआ है। पद-ग्रहणके लिये मैं अपना विरोध भी व्यक्त कर चुका हूँ और जब भी अवसर आयेगा मैं अपना दृष्टिकोण फिर समझाऊँगा। लेकिन आखिरी फैसला सोच विचारके उपरान्त

कांग्रेस ही करेगी। मेरा यही विश्वास है कि सबसे पहली चीज राजनीतिक आजादी है और उसके लिये हम सबको संयुक्त मोर्चा बनाना चाहिये। मैं इस चर्चाको फिर इसलिये दुहरा रहा हूं कि मैं गलतफहमीको दूर कर देना चाहता हूँ। इतने पर भी अगर मैं चुना जाता हूँ तो मैं उसके माने यह लगाऊँगा कि पिछले आठ दस महीनोंमें मैंने जिस ढंगको अपनाया है वह अधिकांश कांग्रेसियोंको स्वीकार है। जिन बातोंको सोचकर मैंने इस ढंगसे काम किया, वे बातें अब भी बनी हुई हैं और जहाँ तक मुझसे हो सकेगा, चाहे मैं चुना जाऊँ या न चुना जाऊँ, मै उसी ढंगसे काम करता रहूंगा।"

फैजपुरमें अपने राष्ट्रपति पदसे दिये गये भाषणमें उन्होंने खान अब्दुल गफ्फारखाँ और श्री एम० एन० रायका—जो बड़ी लम्बी और सख्त कैदसे अभी हाल ही में छूटे थे, स्वागत करते हुए यूरोपमें फासिस्टवादके विजयपूर्ण प्रवाहकी चर्चा की और उसका रवैया बताया। साथ ही नेहरूजीने इस बातकी तरफ भी लोगों का ध्यान खींचा कि अगर रोक-थाम न की गई, तो उसका लाजिमी नतीजा संसार व्यापी महायुद्ध होगा। एबीसीनियापर बलात्कार और स्पेनकी दुर्दशा उसके प्रमाण थे। ब्रिटेनकी नीति भी निर्दोपितापूर्ण नहीं थी। प्रतिक्रियावादियोंकी इस प्रतिक्रियाके बीच राष्ट्रपतिने कहा—

"कांग्रेस आज भी देशमें पूरी तरह लोकतन्त्र लाना चाहती है और उसीके लिये लड़ रही है। वह साम्राज्यवाद विरोधी है

और वह राजनैतिक और सामाजिक ढांचेमें बड़े-बड़े परिवर्तनोंकी कोशिस में है। मेरी ऐसी आशा है कि घटनाओंके प्रवाहमें समाजवाद आ जायग, क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि देशकी आर्थिक बीमारीका सिर्फ वही एकमात्र इलाज है।"

इसके बाद राष्ट्रपति राष्ट्रीय समस्याओंकी ओर भी मुड़े। उन्होंने नये विधान, चुनावके घोषणा पत्र, विधान परिषद, धारा-सभाके लिये निर्वाचित कांग्रेस सदस्योंके सम्मेलन, संघीय ढांचेके विरोधकी आवश्यकता और नये सिरेसे विधान बनानेकी बातोंकी चर्चा की। इसके बाद नेहरूजीने पद-ग्रहणके सवालकी विस्तार-पूर्वक विवेचना की और इस बातकी याद दिलाई कि किस तरह उन्होंने लखनऊमें यह बात साफ की थी कि पद ग्रहणसे विधानको अस्वीकार करनेकी बात ही उड़ जावेगी। नेहरूजीने बताया कि बादमें घोषणापत्रने इस बातको साफ ही कर दिया था कि हम विधान सभामें विधानसे सहयोगके लिये नहीं वरन् उसके विरोध के लिये ही जा रहे हैं। नेहरूजीको इस बातमें कोई शक नहीं था कि कांग्रेसी नीतिके अनुसार कांग्रेसियोंका पद और मंत्रिमण्डल से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इससे सम्बन्ध रखनेका अर्थ देशके शोषणमें ब्रिटिश साम्राज्यवादके साथ साझेदारीका होगा। चाहे विरोध साथमें हो, लेकिन उसके माने एकके आधारभूत सिद्धान्तोंसे समझौतेके होंगे। इसके अलावा अपने उन्नत अंशोंके दमनमें ब्रिटिश साम्राज्यवादके साथ कुछ हद तक हमारा भी भाग होगा। नेहरूजीने आगे कहा—

"हमारे सामने असली उद्देश्य यह है कि देशकी सारी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियोंका एक संयुक्त मोर्चा तैयार किया जाय। कांग्रेसका ऐसा संयुक्त सार्वजनिक मोर्चा पहिले भी था और अब भी है और यह बात लाजिम है कि जो कुछ काम हो उसकी धुरी और बुनियाद कांग्रेस ही हो। संगठित किसानों और मजदूरोंके सहयोगसे यह मोर्चा और भी मजबूत होगा और हमें उसके लिये कोशिस करनी चाहिये। उनमें और कांग्रेस सङ्गठनमें सहयोग बढ़ता रहा है और यह बात पिछले साल खास तौरपर दिखाई दी है। इस प्रकृतिको बढ़ावा देना चाहिये। हिन्दुस्तानकी आज सबसे पहली और सबसे बड़ी जरूरत साम्राज्यवाद विरोधी सारी ताकतों और सारे दलोंका यही संयुक्त मोर्चा है। खुद कांग्रेसमें इनमेंसे बहुत-सी शक्तियोंका प्रतिनिधित्व होता है और दृष्टिभेद होते हुए भी वे लोग सबके भलेके लिये मिल-जुलकर काम करते रहे हैं।"

लखनऊकी तरह फैजपुरमें भी विश्व शान्ति सम्मेलनका ध्यान आ रहा था और उससे भी अधिक लड़ाईका भय सता रहा था। नागरिक स्वतंत्रतासे वंचित होनेके कारण देशमें वैसे ही तीखापन और कटुता बढ़ी हुई थी और उसी प्रकार आम चुनाव के लिये भी फिक्र थी। सितम्बर १६३६ में भारतीय प्रतिनिधिने ब्रूसेल्समें उसमें भाग लिया। कांग्रेसकी निगाहमें विश्व शान्तिके लिये उस समय तक कोई संभावना नहीं थी, जब तक कि एक शोषक राज्य एक शोषित राष्ट्रपर राज्यकर रहा था और उसके शोषणमें

रात-दिन एक कर रहा था। नेहरूजी स्वयं यह जानते थे कि युद्ध आनेवाला है और हिन्दुस्तान उन झगड़ोंका लाजिमी तौरपर एक मुहरा बनाया जायगा।

फैजपुर कांग्रेसके सभापति पंडित नेहरूने एक प्रस्तावके द्वारा देशको चेतावनी दी कि यदि लड़ाई छिड़े तो उसको युद्धके लिये बृटिश साम्राज्यवाद द्वारा होनेवाले अपने धन और जनके शोषण को रोकना चाहिये और यह भी कहा कि उस लड़ाईमें न कोई चन्दे दिये जांय और न कर्ज ही। और न लड़ाईकी तैयारियों में किसी प्रकारकी सहायता ही दी जाय। इसके अलावा देशकी सीमाओंमें शान्ति और पड़ोसियोंसे दोस्ती बनाये रखनेकी कोशिशकी जानी चाहिये। कांग्रेसका ऐसा विश्वास है कि सीमा प्रान्तमें जो सरकारी नीति है, वह असफल रही है क्योंकि उसे साम्राज्यवादी हितोंके लिहाजसे ढाला गया है। नेहरूजीको यह विश्वास था कि वहाँके पठानोंके विरुद्ध जो खूंखार और आक्रामक होनेका आरोप लगाया गया है, वह निराधार है और उन लोगोंके साथ दोस्ताना बर्ताव करके उनका बड़ा शक्तिदायक उपयोग किया जा सकता है। नेहरूजीने ब्रिटिश सरकारकी हजारों देशवासियों को अनिश्चित कालके लिये नजरबन्द रखनेकी अमानुषिक नीतिकी भी निन्दाकी और अण्डमान कारावासको बन्द करनेके लिये भी कहा।

नेहरूजीके सभापतित्वमें फैजपुर कांग्रेसमें सबसे महत्वपूर्ण विषय चुनाव और विधान परिषदसे सम्बन्धित थे। कार्य-

समितिने पहली अप्रेल १९३७ को आम हड़तालके लिये भी कहा। यह हड़ताल इस बातको जाहिर करनेके लिये थी कि हिन्दुस्थानी जनता अवांछित विधानके लादे जानेके विरुद्ध थी। नेहरूजी व कांग्रेसके लिहाजसे यह विधान हिन्दुस्तानकी आजादीकी लड़ाईके साथ विश्वासघात था इसलिये कि इसके लादे जानेसे हिन्दुस्तानी जनताके शाषणके लिये ब्रिटिश साम्राज्यवादकी पकड़ और भी ज्यादा मजबूत हो जायगी। हिन्दुस्तान अपने लिये स्वयं ही विधान बनाना चाहता था। भारत सच्चा लोकतन्त्र—जिसमें अन्तिम सत्ता सर्व साधारणमें निहित होती—अपनी निर्मित विधान सभा के द्वारा ही निर्मित करना चाहता था। यह विधान परिषद् सब वयस्क स्त्री-पुरुष द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी संस्था होती और उसको देशका विधान बनानेकी सर्वोच्च सत्ता प्राप्त होती। चुनाव घोषणा-पत्रपर कार्य समिति विचार कर ही चुकी थी। उसको भी फैजपुरमें समर्थन प्राप्त हो चुका था। लखनऊमें जो खेतिहर कार्यक्रम तैयार किया गया था, उसे भी मामूलीसे संशोधनोंके बाद स्वीकार कर लिया गया।

भय और आशाओंके सम्मिलित वातावरणके बीच दिल्ली सम्मेलन हुआ। उससे पहिले १७ मार्चको महासमितिकी बैठक हुई और १७ मार्चकी शामको श्री सुभाषचन्द्र बोसको बिना किसी शर्तके ही छोड़ दिया गया। ५ वर्षसे अधिक समयसे वे निर्वासित या नजरबन्द थे और छोड़े जानेके समय उनकी तन्दुरुस्ती बहुत ही खराब थी। उनकी छूटपर महासमितिकी

ओरसे पंडित जवाहरलाल नेहरूने उनका दिल खोलकर स्वागत किया और इनके शीघ्र स्वास्थ्य लाभकी शुभ कामनाएँ कीं।

दिल्ली सम्मेलनके प्रभावशाली वातावरणमें राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरूने निम्नलिखित प्रतिज्ञापत्र पढ़ा और सभी सदस्योंने उसे दोहराया।

"मैं जो अखिल भारतीय सम्मेलनका एक सदस्य हूं, इस बात की शपथ लेता हूँ कि मैं देशकी सेवा करूँगा और धारा सभाके भीतर व बाहर हिन्दुस्तानकी आजादीके लिये काम करूँगा ताकि वहाँकी जनताकी गरीबी और उसका शोषण खत्म हो। मैं कांग्रेसके उद्देश्य और आदर्शको हासिल करनेके लिये कांग्रेसके अनुशासनमें काम करनेकी शपथ लेता हूँ जिससे हिन्दुस्तान आजाद हो सके और उसके करोड़ों निवासियोंको अपनी तकलीफ और अपने बोझसे छुटकारा मिले।"

इसके बाद राष्ट्रीय मांग भी पेश की गई जिसमें पार्लिमेन्टरी पार्टियोंको आदेश दिया गया कि वे राष्ट्रके नाम पर अपनी-अपनी धारा सभाओंमें इस विधानके वापस किये जानेकी मांग करें जिससे हिन्दुस्तानी जनता अपना विधान बना सके। केन्द्रीय असेम्बलीमें भी चुनावोंके सिलसिलेमें सरकारी हस्तक्षेपकी कड़ी शिकायत की गई। इसके उत्तरमें सर हैनरी जेकने इस शिकायत का स्पष्ट विरोध करते हुए उल्टा कांग्रेस पर ही दोषारोपण किया।

जहाँ विधानके कानूनी और वैधनिक पक्षका सम्बन्ध आता है वहां यह कहना आवश्यक है कि जिस समय गांधीजीने कांग्रेसी

रुखको सही बताया, तो वह एक राजनैतिक दलके नेताकी हैसियत से नहीं बल्कि एक वैधानिक वकीलकी हैसियतसे, जिसे साम्राज्यके सुदूर प्रदेशोंका पर्याप्त अनुभव था। विधानका नेहरूजीने तथा कांग्रेस के अलावा देश और विदेशोंके कानूनी लोगोंने भी विरोध किया। देशमें सबसे प्रथम विरोध सर तेजबहादुर सप्रूने किया। नेहरूजी के शब्दोंमें ही यह कहना आवश्यक है कि हिन्दुस्तानका यह दुर्भाग्य रहा है कि जब कभी प्रगतिशील शक्तियोंने किसी मांगको पेश किया तो सबसे पहले उसका विरोध किसी मृतप्राय संस्थाके भारतीय नेतासे ही आरंभ हुआ। जब २३ दिसम्बर १९२९ को लार्ड इरविनने गांधीजी और नेहरूजीको बातचीतके लिये बुलाया था तब भी उनके विरोधी मि० जिन्ना और डाक्टर सप्रू ही थे। उन्होंने सार्वजनिक मांगकी ब्रिटिश अवहेलनाका विरोध ही नहीं किया, बल्कि खुद उस मांगकी ही मुखालफत की। डाक्टर सप्रूने १९३७ की विकट परिस्थितियोंकी अवहेलना करके कांग्रेसका विरोध किया। ऐसे समय कांग्रेसका साथ देनेके लिये दो धुरन्धर वैधानिक तार-पोर वाला तथा डाक्टर बहादुरजी—जो पहले एडवोकेट जनरल रह चुके थे—सामने आये और उन्होंने घोषित किया कि आश्वास-नोंके लिये कांग्रेसकी मांग किसी भी दृष्टिसे कानून या विधानके लिये अमान्य नहीं थी। इसके बाद इंग्लैण्डके कानूनी महारथी बेरीडेल कीथने कांग्रेसके मतका ही समर्थन किया। इसी बीच राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरूके बयानकी लार्ड लोथियनने टीका करते हुए कहा कि—

"मि० जवाहरलाल नेहरूसे उस सचाई और क्रान्तिकारी जोशकी झलक मिलती है जिसकी एक बहुत बढ़िया आत्मकथाके लेखकसे आशा की जाती थी किन्तु उन्होंने जो तस्वीर खींची है कि अंग्रेजी हुकूमत अपने पैरोंसे हिन्दुस्तानी आजादीको निर्दयतासे कुचल रही है, यह बात नहीं जंचती। नया भारतीय विधान इन अनन्त विवादों और विचार विमर्शोंका परिणाम है जो कि भारतीय नेताओंसे हुए और जिनमें खुद मि० गांधी शामिल थे। यह विधान ब्रिटिश पार्लिमेन्टने अपनी जिम्मेदारी पर बनाया है और इसमें भारतीय स्वशासनकी दिशामें एक रास्ते का सुझाव है। मि० नेहरू और और उनके दोस्त दूसरे रास्तेमें यकीन करते हैं, असली फरक यही है। विधान इस अनुभवके आधारपर ही बना है कि तत्कालीन स्वशासनके सबसे बड़े रोड़े खुद हिन्दुस्तानमें ही हैं।"

इन बौद्धिक और सैद्धान्तिक विवादोंके अलावा कांग्रेसकी पद ग्रहणके सम्बन्धमें इतनी सी मांग थी कि गवर्नर अपने हस्तक्षेपके विशेषाधिकारोंका उपयोग नहीं करेंगे और न वैधानिक प्रवृत्तियोंके बारेमें मंत्रियोंकी इच्छाओंको ठुकरायेंगे। गवर्नरोंके विशेषाधिकार कुछ समुदायों, स्थापित स्वार्थों और क्षेत्रोंसे सम्बद्ध थे। समुदायों में अल्पसंख्यक दल था, स्थापित स्वार्थोंमें ब्रिटिश स्वार्थ था और क्षेत्र थे ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतोंके कुछ छंटे हुए भाग। कांग्रेसकी मांगका मतलब था कि गवर्नर आस्ट्रेलियाके गवर्नरोंकी तरह ही काम करें। गवर्नरोंको यह अधिकार नहीं

होना चाहिये कि वह अपनी इच्छासे मंत्रियोंको पदच्युत कर दे। मंत्रियोंका वेतन कांग्रेसके द्वारा तै होना चाहिये। गवर्नर मंत्रियों की कौंसिलमें सभापति न बनें। गवर्नर सुरक्षाके नाम पर आर्डिनेन्स लागू न करें और एडवोकेट जनरलकी नियुक्तिमें उसका हाथ न रहे। वह पुलिसके नियम भी न बनायें।

अन्तमें काफी बाद विवादके बाद वायसरायके निम्न लिखित आश्वासनके बाद, थोड़ासा मतभेद होते हुए भी जुलाई १६३७ में कांग्रेसने पद ग्रहण करना स्वीकार कर लिया—

"उस पूर्णतर राजनैतिक जीवनके लिये, जिसे आपमेंसे बहुतसे लोग जी जानसे चाहते हैं, सबसे छोटा मार्ग इस विधानको अपनाना और उसको उसीके गुण दोषके अनुसार अपनाना है। इस विधानको पूरी तरह अमलमें लाने और उसके अनुसार आगे बढ़नेमें ही देहाती जनता और समाजके निचले वर्गकी तकलीफोंको स्थायी रूपसे घटाने और दूर करनेकी—जिनको दूर करनेके लिये हम सब लोग अत्यन्त उत्सुक हैं, सर्वोत्तम आशा निहित है।"

इस प्रकार कांग्रेसने देशमें राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमें ही ७ प्रान्तोंमें मंत्रिमंडलोंका निर्माण किया।

पंडित नेहरूजीका यह राष्ट्रपति काल भी १६२६ व १६३६ की तरह ही बहुत घटना पूर्ण रहा। कांग्रेसने उस साल कोई अधिवेशन नहीं किया लेकिन उतने ही समयमें उसने आधी सदीकी प्रगति पूरी कर दी।

अन्तमें नेहरूजीके कार्य कालमें ही एक और विशेष घटना घटी जिससे यह जाहिर हुआ कि कांग्रेसमें पदग्रहणके बाद ही अनुशासन हीनताकी बीमारी भी घर करना चाहती है। श्री वीर नारीमैनकी रिपोर्ट पर कार्यकारिणीने विचार किया और वह इस नतीजे पर पहुँची कि "उनका वर्ताव ऐसा रहा है कि जिसके कारण कांग्रेसमें कोई दायित्व पूर्ण पदग्रहण करनेके लिये वे योग्य नहीं हैं।"

इसी वर्ष स्वाधीनता दिवस पर दुहराये जानेवाला प्रतिज्ञा पत्र नया तैयार किया गया और देश भरने २६ जनवरी १६३८ को उसे दुहराया।

इस वर्ष भी राष्ट्रपति पंडित जवाहरलालजी नेहरूने अत्यन्त उत्साह और परिश्रमके साथ सभापतित्वका कार्य सम्पादन किया। जंजीबार दिवस २१ जून, चीन दिवस २६ सितम्बर, नव विधान विरोधी दिवस १ अप्रेल, अन्दमान दिवस और स्वाधीनता दिवस २६ जनवरी १६३७ और सीमा प्रान्त दिवस २२ मई १६३७ को मनाये गये। इनके अलावा भिन्न-भिम्न समस्याओं पर राष्ट्रपति ने वक्तव्य भी प्रकाशित कराये। वैदेशिक और आर्थिक विभाग भी सुचारु रूपसे संगठित हो जानेके कारण उत्साह और लगनके साथ कार्य करते रहे।

नेहरूजी और युद्ध संकट

द्वितीय महायुद्ध १ सितम्बर १६३६ को आरम्भ हो गया। जिस समय महायुद्ध आरंभ हुआ पंडित जवाहरलाल नेहरू चुनकिंग (चीन) में थे। कांग्रेसके सभापतिने युद्ध छिड़ते ही उन्हें तार द्वारा तुरन्त वापस लौटनेकी सूचना दी। जिस वक्त पंडित नेहरूजी भारत वापस आये उस समय युद्धसे उत्पन्न परिस्थितियों पर विचार करनेके लिये कांग्रेस कार्य समितिकी बैठकें जारी थीं। इन बैठकोंमें सम्मिलित होनेके लिये मि० जिन्नाको भी बुलाया गया था लेकिन उन्होंने असमर्थता जाहिर कर दी। इधर वायसरायने हिन्दुस्तानको लड़ाईमें शामिल ही नहीं किया, बल्कि कई आर्डीनेन्स भी जारी कर दिये। और ब्रिटिश पार्लिमैन्टने गवर्नमेन्ट आफ इंडिया एक्टमें संशोधन कर दिये। इससे प्रान्तोंकी सरकारोंके अधिकारों और कार्य क्षेत्रोंको सिमित कर दिया गया था। देशके किसी भी दलके नेतासे इस विषयमें सरकारने कोई सलाह नहीं ली थी। बल्कि कांग्रेसकी हमेशासे दुहराइ जानेवाली ख्वाहिशों और ऐलानोंकी बुरी तरह अवहेलना कर दी गई थी। आखिर इन स्थितियोंसे परेशान होकर कार्य समितिने १४ दिसम्बर

१९३९ को लम्बी बहसके बाद महायुद्धके सिलसिलेमें एक लम्बा बयान जारी किया जिसमें वायसरायके उठाये हुए कदमों और नये कानूनोंका जिक्र था और साथ ही यह भी कहा गया कि "कार्य समितिको इन घटनाओंको बड़े गंभीर रूपमें लेना चाहिये।" फासिस्ट और नाज़ी मतोंकी निन्दा की गई और खासकर नाज़ी जर्मन सरकारके सबसे ताजे हमलेकी जो उसने पोलैन्ड पर किया था, घोर निन्दा की गई।

कार्य समितिके फैसलेका स्पष्टीकरण करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरूने व्यक्त किया कि सहयोगके लिये तो हम तैयार थे लेकिन यह साफ था कि ज़बरदस्तीसे मढ़े हुए फैसले हम नहीं मान सकते थे। यदि किसी ऊँचे आदर्शको लेकर सहयोगकी जरूरत है तो यह साफ बात है कि ऐसा सहयोग जबरदस्ती या दवावसे नहीं मिल सकता। और न कार्य समिति ही इस बातके लिये कि हिन्दुस्थानी उन हुक्मोंकी पावन्दीको जो विदेशी शक्ति द्वारा दिये गये हैं, माननेको तैयार हो सकती है।

नेहरूजीका कहना था कि सहयोग तो बराबरवालोंमें हुआ करता है। और वह भी उस आदर्शके लिये जिसको दोनों ही अहम् चीज़ समझते हों। हमारी हमदर्दी पूरी तरह लोकतंत्र और आजादीके लिये हैं। हिन्दुस्थान किसी ऐसी लड़ाईमें शामिल नहीं हो सकता, जिसके लिये कहा तो यह जाय कि यह लोक-तंत्रकी आजादीके लिये है, लेकिन वह आजादी उसे खुद हासिल

नहीं है बल्कि जो कुछ थोड़ीसी आजादी उसके पास है वह भी उससे छीनी जा रही है।

नेहरूजीकी रायमें कांग्रेस कार्य समितिने राष्ट्रीय होते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि कोणको अपनाया और उसकी निगाहमें यह युद्ध हथियार बन्द फौजोंके युद्धसे कहीं बड़ी चीज़ थी। जिस संकटने यूरोपको आ घेरा है वह सिर्फ यूरोपका ही नहीं बल्कि सारी दुनियाका है। इस संकटसे दुनियाका राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक नकशा ही बदल जायेगा। यह संकट पिछले महायुद्धके बाद तेजीसे बढ़नेवाले विरोधों, सामाजिक और राजनीतिक झगड़ोंका लाज़िमी नतीजा है। इसके संतुलनकी बुनियाद इस पर है कि एक देशका दूसरे देश पर आधिपत्य और शोषणका खात्मा हो जाय और आर्थिक सम्बन्धोंको एक नये सिरेसे ऐसे ढर्रे पर लाया जाय जिसमें सबके फायदे और सबके साथ इंसाफका ध्यान हो।

पंडितजीने उपरोक्त परिस्थितियोंका दिग्दर्शन करानेके बाद बताया कि इन सारे सवालोंकी कसौटी है हिन्दुस्थान। अपने महत्वपूर्ण और बढ़े हुए साधनोंकी वजहसे दुनियाके नये ढांचे और नये नकशेमें उसका बहुत बड़ा हिस्सा होगा लेकिन ऐसा तो वह एक आजाद राष्ट्रकी हैसियतसे ही कर सकता है जिसमें कि इस बड़े मकसदके लिये शक्ति पूरी पड़ती हो। आजादीका बंटवारा नहीं हुआ करता। नेहरूजीने ब्रिटेनको चेतावनी देते हुए कहा कि

दुनियाके किसी भी हिस्सेमें साम्राज्यवादी कब्जा बचाये रखनेकी कोशिशका लाजिमी नतीजा एक खौफनाक विध्वंस होगा।

ब्रिटिश नीतिके रवैयोंमें पूर्ण रूपसे शक जाहिर करते हुए पंडितजीने कहा कि उस नीतिमें हमें लोकतंत्र या आत्म निर्णयकी मददके लिये कोई विशेष बात दिखाई नहीं दी और न उसे कोई ऐसा सबूत ही मिला कि मौजूदा लड़ाईके ऐलानों पर अमल किया जा रहा है या आगे चलकर अमल किया जायेगा। फिर भी हम अपना आखिरी निर्णय इसलिये नहीं करना चाहते कि इन बातोंके साफ होनेका अवसर रहे कि कौन-कौन सी बातों पर इस समय दांव लग रहा है, क्या असली मकसद है और हिन्दुस्थानकी उस समय और आगे चलकर क्या हैसियत रहेगी।

इसलिये कार्य समितिने ब्रिटिश सरकारको आमंत्रित किया कि "वह बिलकुल साफ लफ्जोंमें यह जाहिर करे कि लोकतंत्र और साम्राज्यवाद और विचाराधीन सारी दुनियाके एक नये नकशेके बारेमें, उसकी लड़ाईके मकसद क्या हैं, और खास तौरसे यह बात कि ये युद्धोद्देष्य किस प्रकार अमलमें लाये जायेंगे, और उनको मौजूदा वक्तमें हिन्दुस्थानमें किस तरह अमलमें लाया जायेगा। क्या उनमें साम्राज्यवादको मिटाने और हिन्दुस्थानके साथ एक आज़ाद राष्ट्रकी तरह व्यवहार करनेकी बात शामिल है—उस आज़ाद हिन्दुस्थानके साथ जिसकी नीति जनताकी इच्छाओंसे तै होगी? समितिने यह भी कह दिया कि "यह तो एक अपार दुःखकी बात होगी कि यह भयंकर लड़ाई साम्राज्यवादी नीयतसे

जनताका यकीन हो। यह ढांचा लड़ाईकी कोशिशोंका संगठन करता और उसमें जनताका सहयोग होता और वह हथियार बन्द फौजोंका पूरी तरह साथ देता। यह ढांचा एक तरफ ब्रिटिश सरकार और दूसरी तरफ भारतीय जनता और सूबोंकी सरकारोंके बीच एक कड़ीकी तरह होता। दूसरी समस्याएँ—वैधानिक मसले—लड़ाईके बादके लिये मुल्तबी कर दिये जाते। लड़ाईके बाद जनताके चुने हुए नुमाइंदे एक स्थायी विधान बनाते और आपसी हितोंकी बाबत इंग्लिस्तानसे समझौता करते।

हिन्दुस्तानकी उस समयकी राजनीतिक परिस्थितियोंका दिग्दर्शन करते हुए पंडित नेहरूजीकी स्पष्ट ही यह राय थी कि ज्यादातर लोग अन्तर्राष्ट्रीय मसलोंके बारेमें बिलकुल भी जानकारी नहीं रखते थे। हम जानते हैं कि एक दूसरेके प्रति शक और आपसमें विश्वासकी कमी शब्दोंके जादूसे नहीं मिटाई जा सकती। नेहरूजीको उम्मीद थी कि घटनाओंकी भारसे ब्रिटेनके नेता अपने गड्ढोंसे बाहर आकर दूरकी चीजोंको ध्यानमें रखते हुए, हमारे प्रस्तावको स्वीकार करेंगे। इस प्रकार हिन्दुस्तान और इंग्लिस्तानके झगड़े खत्म हो जायंगे और लड़ाईके लिये हिन्दुस्थानका जोश और उसके साधन दोनों ही रुके बांधकी तरह फूट पड़ेंगे।

पण्डितजी तथा कांग्रेस कार्यसमितिके सुझाव और निर्णयके बाद भी होना वही था जो हुआ, क्योंकि दरअसल सरकार तो अपनी इच्छानुसार ही कार्य करना चाहती थी, लोकतन्त्रकी रक्षा आदि तो केवल शाब्दिक जाल भर ही थे। वे देशके साथ दोस्तों

जैसा वर्ताव थोड़े ही चाहते थे, उनकी इच्छा तो यही थी कि हम ज्यों के त्यों गुलाम बने रहें और इन जालोंमें फँसकर उन्हें सहायता देनेका बचन दे दें। उन्होंने भी अपने वक्तव्योंमें सहयोग शब्दका उपयोग किया और कार्य समितिके भी उनके सहयोगका सीधा सच्चा यही अर्थ था कि हम उनके हुक्मों पर अमल करते चले जायँ। यह हालत भला देश कैसे बरदाश्त कर सकता था? इसका तो यही अर्थ था कि कांग्रेस उन सबसे मुंह मोड़ ले जिसे उसने इतने वर्षोंसे महत्व पूर्ण मान रखा था। इसका परिणाम देशके लिये यही होता कि राष्ट्रीयता नामको भी नहीं रहती और अन्तर्राष्ट्रीयता उसका तो नाम भी नहीं रह जाता जिसको भारतीय राजनीतिमें धीरे-धीरे पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रवेश करा रहे थे।

इसके और भी भयंकर परिणाम सामने आये। आर्डीनेन्सोंके कारण या तो कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोंको सिर झुकाकर रहना पड़ता या फिर उनका मुकाबला होता। मंत्रियोंकी मातहती में जितने भी उच्च अधिकारी थे वे अंग्रेजोंके ही भक्त थे। वे मंत्रियोंको अपनी मनमानी चलानेमें जबरदस्त रोड़े समझ रहे थे। नतीजा यह हुआ कि इस संघर्षसे बचनेके लिये कांग्रेसी सूबोंने इस्तीफे दे दिये। लोग यह भी चाहते थे कि खुद मंत्री इस्तीफे न दें वरन् गवर्नरको ही बरखवास्तगी अमलमें लाने दें। मंत्रियोंके इस्तीफे देनेसे यह लाभ हुआ कि एसेम्बली रद्द हो गई और कांग्रेस ने नये चुनावोंके लिये फिर चुनौती दे दी। कांग्रेस जानती ही थी कि

एसेम्बलियोंमें हर जगह उसका बहुमत है अतः सरकार चुनाव ही नहीं कर सकती। करे तो नया मंत्रिमण्डल ऐसा कायम हो जिसे देशका प्रतिनिधित्व ही प्राप्त न हो सके। इसलिये गवर्नर चुनावोंसे बचना चाहते थे। गवर्नरोंने इसीलिये एसेम्बलियोंको रद्द न करते हुए उन्हें मुल्तवी कर दिया और एसेम्बली तथा मंत्रियोंके कुल अधिकारोंको अपने हाथमें ले लिया। वे अब अपने-अपने प्रान्तोंके निरंकुश बादशाह हो गये। देशका शासन ठप हो गया। इस गतिरोधका जिक्र करते हुए नेहरूजीने कहा है—

"कांग्रेस जैसी शक्तिशाली-अर्ध क्रान्तिकारी संस्था, जिसमें देशकी राष्ट्रीय भावनाको नुमाइंदगी होती थी और जिसका देशकी आजादीकी लड़ाईका अपना एक इतिहास था, चुप होकर एक व्यक्तिके निरंकुश राजको मंजूर नहीं कर सकती थी। जो कुछ हो रहा था, उसके लिये वह एक दर्शक ही नहीं हो सकती थी बल्कि उस समय तो और भी नहीं जब यह सब उसीके खिलाफ था।"

ब्रिटिश सरकारने लड़ाईके मकसदको साफ करनेसे इन्कार कर दिया और साथ ही इस बातसे भी इन्कार कर दिया कि वह आगे किसी प्रकारका बचन दे सकती है।

इससे परिस्थिति विशेष गंभीर हो गई और कांग्रेस कार्य समितिने इसके लिये एक युद्ध उप-समितिका निर्माण कर दिया जिसके अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू हुए। इसका कार्य यही था कि परिस्थियोंको देखकर ही देशकी तमाम कांग्रेस कमेटियोंको

आदेश जारी करे कि उन्हें उन परिस्थितियोंका सामना करनेके लिये क्या करना है ।

इसके बाद कांग्रेस कार्य समितिने इस गतिरोधको बारीकीसे समझकर एक घोषणा प्रकाशित की । यह घोषणा पंडित जवाहरलाल नेहरूने ही बनाई थी।

नेहरूजीने इस घोषणा पत्रमें लिखा है कि कांग्रेसकी मांगका जो जवाब मिला है वह बिलकुल नाकाबिल इत्मीनान है । ब्रिटिश सरकारकी ओरसे गलतफहमी पैदा करनेकी कोशिश की गई है। साथ ही खास नैतिक सवालको धुंधला करनेकी भी चेष्टा की गई है। लड़ाईके मकसद और कांग्रेसकी आज़ादीके बारेमें कुछ न बतानेकी कोशिशको जिसमें बेकारकी बातोंकी आड़ ली गई है, समिति यही मानी लगाती है कि इस देशके और प्रतिक्रियावादी हिस्सोंसे मिलकर हिन्दुस्थानमें साम्राज्यवादको कायम रखनेकी इच्छा बाकायदा बनी हुई है। कांग्रेसने इस युद्ध संकट और उस सिलसिलेकी सारी समस्याओंको तो एक नैतिक दृष्टि कोणसे देखा है और उसने इस युद्ध संकटसे फायदा उठाकर सौदा करनेके खयालसे कुछ नहीं सोचा । हिन्दुस्थानकी आजादी और लड़ाईके मकसदके बारेमें पहिले ठीक ढंगसे फैसला हो जाना जरूरी है। इसके बाद ही और दूसरी छोटी चीजों पर गौर किया जा सकता है। किसी भी हालतमें कांग्रेस, सरकारी इन्तजामकी जिम्मेदारी के लिये मंजूरी नहीं दे सकती, जब तक कि सच्ची ताकत जनताके

नुमायन्दोंको न सौंप दी जाय। बिना इस ताकतके वह थोड़ेसे बीचके जमानेके लिये भी जिम्मेदारी लेनेको तैयार नहीं है।"

घोषणामें आगे चलकर युद्ध उप-समितिके अध्यक्ष पण्डित नेहरूजीने लिखा है कि—"ब्रिटिश सरकारके नाम पर किये जानेवाले ऐलानोंकी वजहसे ही कांग्रेसको मजबूर होकर ब्रिटिश नीतिसे अलग होना पड़ा है और उनके असहयोगका पहला कदम यह था कि प्रान्तोंकी कांग्रेसी सरकारोंने इस्तीफे दिये। असहयोगकी आम नीति जारी रही है और जब तक कि ब्रिटिश सरकार अपनी नीति नहीं बदलती, यह आगे भी जारी रहेगी। लेकिन कार्य समिति कांग्रेसियोंको यह याद दिलायेगी कि हर सत्याग्रहमें यह बात बुनियादी तौर पर शामिल है कि विपक्षीसे सम्मान पूर्वक समझौता करनेके लिये कोई कसर बाकी न रहे। इसलिये कार्य समिति सम्मान पूर्ण समझौते पर पहुंचनेके लिये जरिया पानेकी बराबर कोशिश करती रहेगी हालांकि कांग्रेसकी आंखोंके सामने ही ब्रिटिश सरकारने अपना दरवाजा बन्द कर दिया है।"

उपरोक्त घोषणा पत्रका अर्थ, देशवासियोंको समझाते हुए पंडित नेहरूजीने यह बताया कि देशमें फैली हुई उत्तेजनाको मद्दे नजर रखते हुए और इस संभावनाको सोचकर कि देशके नौजवान हिंसात्मक दंगोंके तरीकोंको न अपना लें, युद्ध उप-समितिने देशको अहिंसाकी बुनियादी नीतिकी याद दिलाई और उसे तोड़नेके खिलाफ चेतावनी दी। क्योंकि यूरोपकी बातें पढ़ और सुनकर नौजवान दलों पर असर पड़ रहा था और वे उन व्यापक

भावनाओंको उग्र शब्दोंमें व्यक्त कर रहे थे। और इसलिये उन पर रोक भी लगा दी गई थी।

शासकोंकी दुरंगी नीति और वास्तविक कमजोरियोंका जिक्र करते हुये पंडितजीने कहा है कि—“यदि मंत्रि मण्डलोंके इस्तीफोंके बाद गतिरोधको मिटानेके लिये चुनाव किये जाते तो सारा वातावरण ही साफ हो जाता और देशका उबाल अपनी स्थिति पर आ जाता लेकिन ब्रिटिश अधिकारियोंको इस अस्लीयतका ही तो डर था और तब उनकी बहुत-सी झूठी दलीलें आगे नहीं चल पातीं। इन दलीलोंमें वे बराबर अलग-अलग संस्थाओं और पार्टियोंके असरका जिक्र करते थे। लेकिन चुनावोंसे बचनेकी वे बराबर कोशिश करते रहे। केन्द्रीय एसेम्बलीके मेम्बरोंकी मियाद हरसाल एक सालके लिये बढ़ा दी जाती थी। इस तरह पर महायुद्धके समय भी वे ही मेम्बर रखे गये जो दस सालसे उसमें काम कर रहे थे। एक आदमीके पूरे सूबे पर राज्य रहनेसे तनाव बढ़ता चला जाता था ज्यादतियोंके बढ़नेसे किसान भी आवाज बुलन्द कर रहे थे। आम व्यवहारिक कार्योंके इन्तजाममें एक-एक कांग्रेसी जेल जा रहा था। लड़ाईके नाम पर हर प्रकारके चन्दे और कर वसूल किये जा रहे थे। रामगढ़ कांग्रेस (१६४०) में मौलाना अबुल कलाम आजादके सभापतित्वमें, कांग्रेसको मजबूरन तै करना पड़ा कि अब सिर्फ सविनय अवज्ञा आन्दोलन ही अन्तिम मार्ग है। फिर भी जहां तक हो संघर्षसे बचनेके लिये जनताको यही कहा गया कि वह अपनी तैयारी करे।”

पंडित नेहरूने गंभीर परिस्थितियोंकी ओर इशारा करते हुए कहा कि अन्दरूनी संकट इस तरह घनी भूत हो गया था कि संकटका टालना अब कठिन ही था क्योंकि युद्धके निमित्त भारत रक्षा कानून पास हो चुका था और आम काम काजको कुचलनेकी लिये उसका चारों तरफ इस्तैमाल हो रहा था और बिना जुर्म लगाये ही लोग जेलोंमें भरे जा रहे थे।

लड़ाईमें अचानक तब्दीली हो जाने तथा आज़ाद ब्रिटेन पर खतरा आ जाने और इससे देशमें हमदर्दीके भाव पैदा हो जाने आदि पर प्रकाश डालते हुए युद्ध उप-समितिके अध्यक्ष पण्डित नेहरूजीने कहा कि जिस समय आजाद इंग्लैण्डकी हस्ती खतरेमें थी कांग्रेस जो सविनय अवज्ञाके लिये बिलकुल तैयार थी, किसी ऐसे आन्दोलनकी बात नहीं सोच सकी। हाँ, कुछ ऐसे भी आदमी थे जिनके खयालमें इग्लिस्तानकी मुश्किलों और उसके खतरेमें, हिन्दुस्थानके लिये मौका था। लेकिन कांग्रेसके नेता इस चीजके बिलकुल खिलाफ थे कि ऐसी हालतका, जिसमें खुद इंग्लिस्तानका भविष्य खतरेसे भरा हुआ हो, फायदा उठाया जाय और यह खयाल उन्होंने खुले तौर पर जाहिर किया। अतः उस वक्तके लिये सविनय अवज्ञाका विचार छोड़ दिया गया।

इसके उपरान्त भी, पंडितजीने बताया कि कांग्रेसने सरकारके साथ समझौतेकी पूरी कोशिश की। इस कोशिशमें हिन्दुस्थानमें तब्दीलीके अलावा, लड़ाईके मकसद और साथ ही कितनी दूसरी बड़ी-बड़ी बातोंके बारेमें ऐलानकी मांग की गई थी, लेकिन इस

बार हमारा प्रस्ताव बहुत ही छोटा था, निश्चित था और उसमें सिर्फ हिन्दुस्थानका ही जिक्र था। हमने हिन्दुस्थानकी आज़ादीकी मांगको मंजूर करनेकी मांग की और यह भी कहा कि केन्द्रमें एक कौमी सरकार कायम कर दी जाय। इसका यह अर्थ था कि देशकी मुख्तलिफ़ पार्टियोंका सहयोग हो जाय। हमने ब्रिटिश सरकारको उसके मुसीबतके वक्तमें परेशान न करनेकी ही गरज़से जो मौजूदा कानूनी ढांचा है उसीमें वायसरायके जरिये राष्ट्रीय सरकार बनानेका सुझाव किया। जिन तब्दीलियोंका जिक्र हमने किया था वह ब्रिटिश सरकारके लिये बड़ी चीज तो जरूर थी, लेकिन आपसी समझौते और ढंगसे उनको ठोस शब्द दी जा सकती थी। हमारी तो केवल इतनी-सी शर्त थी कि हिन्दुस्थानकी आजादीके हकको स्वीकार कर लिया जाय। हमने सरकारको यह भी विश्वास दिला दिया कि यदि सरकार यह अहम् बात स्वीकार कर ले तो देश लड़ाईकी तैयारियोंमें पूरी तरह साथ देनेको तैयार है।

उपरोक्त प्रस्ताव वास्तवमें श्री राजगोपाल चार्यका था और इसमें उन्होंने कांग्रेसकी पिछली मांगोंमें भी बहुत कमी कर दी थी। वास्तवमें सरकार चाहती थी इन मांगोंको बिना किसी कानूनी रुकावटके फौरन अमली शक्ल दे सकती थी। मिली जुली सरकार बनानेमें भी सरकारकी मुश्किलों और परेशानियोंका पूरा खयाल रखा गया था। इस सुझावमें वायसराय तो ज्योंका त्यों बना ही रहता सिर्फ इतना अवश्य होता कि वह अपने विशेषा-

धिकारसे राष्ट्रीय सरकारके फैसलोंका रद्द नहीं कर सकता था। इधर लड़ाईका पूरा ढांचा कमान्डर इन चीफके हाथोंमें बना रहता और सिविल शासनका जो जाल अंग्रेजोंने बिछाया था, वह भी बना रहता असलमें इस लाभप्रद तजवीजसे कांग्रेस यह चाहती थी कि शासनमें एक नयी भावनाका जन्म हो, एक नई शक्तिका उदय हो और लड़ाईकी तैयारियोंमें और देशके सामने जो गंभीर समस्याएँ थीं उनको हल करनेमें जनताका सहयोग हो। इससे सबसे बड़ा लाभ तो यह था कि जनताका जबरदस्त हृदय परिवर्त्तन हो जाता और जिसके सबबसे लड़ाईमें पूरी-पूरी मदद मिल जाती। कांग्रेस पिछले अनुभवोंके आधार पर यह अच्छी तरह जानती थी कि सीमित सरकार बिलकुल ही बेबस होगी और उसका कुछ भी असर नहीं होगा।

श्री राजगोपालाचार्यके इस प्रस्ताव पर काँग्रेसी क्षेत्रोंमें काफी मतभेद और संघर्ष रहा, यहाँ तक कि युद्ध उप-समितिके प्रधान पंडित जवाहरलाल नेहरूने भी बड़ी ही मुश्किलोंके बाद इस प्रस्तावको माना। नेहरूजीने लिखा है—

"मैं बड़ी मुश्किलोंसे, खुद बहुत सोच विचारके बाद ही इसके लिये राजी हो सका। मैं इसके लिये खास तौर पर ज्यादा बड़े अन्तर्राष्ट्रीय सवालोंको सोचकर ही राजी हुआ और मेरी तबीयत यह थी कि अगर सम्मानपूर्ण ढंगसे यह मुमकिन हो, तो हमको फासिज्म और नाजिज्मके विरुद्ध लड़ाईमें पूरी तरह शामिल हो जाना चाहिये।"

किन्तु इस प्रस्तावको स्वीकार करनेमें एक सबसे महत्वपूर्ण विरोध दूसरा ही था और वह ऐसा था जिसे कांग्रेस किसी भी तरह नजर अन्दाज नहीं कर सकती थी। इस अडिग और अकाट्य विरोधके विषयमें नेहरूजीने लिखा है कि वह विरोध था गांधीजीका। उनका यह विरोध सिर्फ शांति और अहिंसाकी वजहसे था। लड़ाईमें मदद देनेके हमारे पिछले प्रस्तावोंका उन्होंने विरोध नहीं किया था लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि उन्हें बहुत बैचेनी रही होगी। लड़ाईकी शुरूआतमें ही उन्होंने वायसरायसे कह दिया था कि कांग्रेस तो नैतिक सहायता ही दे सकती है, लेकिन कांग्रेसका यह रूख नहीं था और यह बात बादमें कई बार साफ भी कर दी गई थी। अब तो गान्धीजीने निश्चित रूपसे विरोध किया जिसमें कांग्रेस हिंसात्मक लड़ाईमें भाग लेनेको तैयार न हो जाय। नेहरूजीने आगे लिखा है कि इस विषयमें गांधीजीके इतने कट्टर विचार थे कि उन्होंने अपने साथियों, यहां तक कि कांग्रेस संस्थासे भी अपना नाता तोड़ लिया। उनके साथ काम करनेवालोंके लिये यह चोट बहुत तकलीफ देह थी क्योंकि आजकी कांग्रेस तो उनकी ही बनाई हुई थी। फिर भी कांग्रेस संस्था उनके अहिंसाके सिद्धान्तको लागू करनेके लिये राजी नहीं हो सकी और ब्रिटिश सरकारसे समझौता करनेकी ख्वाहिशमें वह इतनी आगे बढ़ गई कि उसने अपने मान्य और प्रिय नेता तकसे नाता तोड़ दिया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि कांग्रेसने ब्रिटिश सरकारसे

समझौता करनेकी पूरी चेष्टा की किन्तु सब विफल गयी। स्थायी नौकरीवाले सभी सरकारी महकमोंको नियंत्रण और आलोचनासे ऐसा छुटकारा मिला हुआ था जैसा कि पिछली दो पीढ़ियोंसे कभी नहीं मिला था। जिस व्यक्तिको वे ठीक नहीं समझते उसे अभियोग लगाकर या बिना अभियोगके ही जेलमें बन्द कर देते थे। गवर्नरोंका बड़े-बड़े सूबोंपर काबू था और उनके अधिकारों पर कोई रोक टोक नहीं थी। वे भला कांग्रेस द्वारा सुझाये हुए प्रस्तावसे उत्पन्न होनेवाली तब्दीलियोंके लिये कैसे राजी होते जब तक स्वयं परिस्थितियाँ ही उनको उसके लिये मजबूर न कर देतीं। इस शाही ढांचेकी चोटी पर वायसराय लार्ड लिनलिथगों थे जिनके चारों तरफ उनकी हैसियतके मुताबिक बनाव, सजाव और शान थी। उनके विषयमें पंडित नेहरूजीने लिखा है कि "लार्ड लिनलिथगोंका जिस्म बड़ा था, लेकिन दिमाग सुस्त था। उनका दिमाग चट्टानकी तरह ठोस किन्तु उसीकी तरह जड़ भी था। उनमें पुराने ढंगके ब्रिटिश रईसोंकी खूबियाँ और कमियाँ भी थीं। उन्होंने ईमानदारीके साथ इस उलझनसे निकलनेकी पूरी कोशिश की, लेकिन उनके साथ बहुत-सी कमियाँ थीं। उनका दिमाग हमेशा पुराने ढर्रे पर ही चलता था और नये ढर्रेसे वे झिझकते थे। जिस शासक वर्गके वे नुमाइन्दे थे उसकी परिपाटीसे उनका दृष्टि कोण अवरुद्ध था। जो कुछ भी वह देखते और सुनते थे वह सिविल सर्विसकी आँखों और कानोंसे, या लोगोंकी मददसे जो उन्हें घेरे रहते थे। जो लोग उन्हें बुनियादी परिवर्तन—

राजनीतिक या सामाजिक—की सलाह देते थे, उनपर उन्हें भरोसा नहीं था। वे ऐसे लोगोंको नापसंद करते थे जो ब्रिटिश साम्राज्य और हिन्दुस्थानमें उसके खास नुमाइंदेके ऊँचे मकसदोंकी पूरी-पूरी तरह इज्जत नहीं करते थे।

हिन्दुस्थानमें इस भयंकर गति अवरोधके जबरदस्त हामी और और देशको हमेशा ही गुलाम बनाये रखनेवाले थे उस समयके ब्रिटेनके प्रधान मंत्री—मि० विन्स्टन चर्चिल। वे हिन्दुस्थानको कभी आजाद देखना ही नहीं चाहते थे। हिन्दुस्थानकी आज़ादीके विषयमें उनके विचार बिलकुल निश्चित और स्पष्ट थे। वे अपने इरादेसे कभी भी पीछे हटनेवाले व्यक्ति नहीं थे। जनवरी १९३७ में उन्होंने कहा था कि—"कभी न कभी तुम्हें गांधी, कांग्रेस और उनके आदर्शोंको कुचलना ही पड़ेगा।" उसी साल दिसम्बरमें उन्होंने फिर कहा कि "ब्रिटिश राष्ट्रका हिन्दुस्थानकी आज़ादी और तरक्की परसे अपना नियंत्रण हटानेका कोई इरादा नहीं है। बादशाहके ताजके सबसे ज्यादा कीमती और सबसे ज्यादा चमकीले उस हीरेको फेंक देनेका हमारा कतई इरादा नहीं है। वह अकेला ही और सब डोमिनियनों और अधिकृत प्रदेशोंके मुकाबले ब्रिटिश साम्राज्यकी ताकत और शानको कायम रखता है।" इसके पहिले १९३१ में एक बार उन्होंने कहा था कि—"हमने डोमीनियन स्टेटसको हमेशा ही हिन्दुस्थानके लिये आखिरी मकसद माना है।" आगे चलकर दिसम्बर १९३१ में उन्होंने कहा था कि "हिन्दुस्थानमें अपने साम्राज्यको छोड़ देनेके बाद, इंग्लैण्ड एक बड़ी ताकत नहीं रह पायेगा।"

चर्चिल और उनकी साम्राज्यमें हिन्दुस्तानको हमेशा बनाये रखनेकी प्रतिज्ञा ही इस देशके हर मसलेमें अंग्रेजोंको उल्टा सोचने और करनेके लिये मज़बूर कर रही थी। चर्चिलकी नज़रमें हिन्दुस्तान ही साम्राज्य था और उनकी नज़रमें हिन्दुस्तान पर अधिकार और उसके शोषणने ही इंग्लैण्डको जबरदस्त शान और ताकत दे रखी थी। मि० चर्चिल कभी भी ऐसे इंग्लैण्डकी कल्पना ही नहीं कर सकते थे जिसमें वह एक बड़े साम्राज्यका मालिक न हो। ऐसी स्थितिमें वे आज़ाद हिन्दुस्तानकी कल्पना भी कैसे कर सकते थे? मि० चर्चिल और हमारी आज़ादीके बीचमें यही एक जबरदस्त खाई थी।

मि० चर्चिल तथा उनके कारण उपस्थित गतिरोध पर विचार करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं कि—"हमको उनके शब्द याद आये और हम जानते थे कि वे बहुत ही जिद्दी और न झुकनेवाले शख्स हैं। उनकी नेतागीरीमें हमको इंग्लैण्डसे बहुत ही कम उम्मीद हो सकती थी। हिम्मत और नेतागीरीकी बहुत सी खूबियोंके होते हुए भी वह उन्नीसवीं सदीके साम्राज्यवादी, अनुदार, प्रगति विरोधी इंग्लैण्डके नुमाइंदे थे। ऐसा मालूम होता था कि नई दुनिया, उसकी जटिल समस्याएँ व उसकी ताकतोंको समझ सकनेमें वे असमर्थ थे और उससे भी कम उस भविष्यको समझ सकते थे, जो अब बननेकी स्थितिमें था। फ्रांसके साथ एक होनेके प्रस्तावमें उन्होंने दूर-दर्शिता दिखाई, और उससे हमने समझा कि वे परिस्थितियोंके अनुकूल जा रहे हैं। इस रवैयेका

देश पर काफी असर पड़ा। हमने समझा कि शायद लड़ाईकी जरूरतें ही उन्हें अब यह मंजूर करनेके लिये मजबूर करें कि हिन्दुस्तानकी आजादी लाजिमी ही नहीं बल्कि लड़ाईके लिहाज़से भी जरूरी और मुनासिब है। जब अगस्त १६३६ में मैं चीन जा रहा था तो मुझे यह सब याद आया। क्योंकि जब मैं लड़ाईके मारे हुए उस देशको देखने जा रहा था तो एक दोस्तके ज़रिये उन्होंने मेरे इस दौरेके लिये शुभ कामनाएँ भेजीं। यही कारण था कि जब हमने अपने प्रस्तावको पेश किया तो बिलकुल तो हम नाउम्मीद नहीं थे, लेकिन हमें उम्मीद बहुत ज्यादा भी नहीं थी। शीघ्र ही हमें ब्रिटिश सरकारका जबाब मिला।" नेहरूजीने लिखा है कि—"उस जबाबमें साफ इन्कार था और यही नहीं उसके शब्द ऐसे थे कि हमको यह इत्मीनान हो गया कि इंग्लैण्डका हिन्दुस्तान परसे अपनी ताकत उठा लेनेका कोई भी इरादा नहीं है। वह फूट बढ़ाने और मध्यकालीन विचार-धारावाले तथा प्रतिक्रियावादी हिस्सोंको मजबूत बनाने पर तुला हुआ है। हिन्दुस्तानमें अपना साम्राज्यवादी काबू छोड़नेसे पहिले ज्यादा बेहतर बात तो उन्हें यह लगती थी कि यहाँ आपसी युद्ध शुरू हो जाय और हिन्दुस्तान बिल्कुल ही बरबाद हो जाय। इससे देशमें नाउम्मीदीकी भावना अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई।"

ब्रिटेनकी सरकारके इस उत्तरके बाद पंडित नेहरूजीने एक प्रसिद्ध लेख लिखा था, जिसका शीर्षक था—"अलग अलग रास्ते!" उस लेखमें पंडितजीने बताया है कि—"मैं बहुत अरसे से हिन्दुस्तान

की आज़ादीका हामी था, क्योंकि मुझे पूरा यकीन था कि उसके बिना न तो हम सामूहिक रूपमें पूरी उन्नति ही कर सकते हैं और न हमारा इंग्लैण्डसे दोस्ताना रिश्ता ही कायम हो सकता है। फिर भी मैंने इस दोस्ताने रिश्तेकी उम्मीद की। अब अचानक ही मुझे यह महसूस हुआ कि जब तक इंग्लैण्ड पूरी तरह न बदले, हमारे लिये कोई भी एक रास्ता नहीं था। हमारे रास्ते बिलकुल ही अलग-अलग थे।"

नेहरूजीकी अन्तिम जेल-यात्रा

"मैं कोई विद्वान् पुरुष नहीं हूँ। मैं कोई इतिहास-लेखक भी नहीं हूँ। तब मैं वास्तवमें हूँ क्या ? इस प्रश्नका उत्तर देनेमें मुझे कठिनाई मालूम पड़ती है। मैं कितनी ही बातोंमें पड़ता रहा हूं। प्रारम्भमें कालेजमें मैंने विज्ञान विषय लिया था। फिर कानूनमें पड़ा। फिर जीवनकी विभिन्न बातोंमें रस लेनेके पश्चात् अन्तमें जेल जानेका वह पेशा पकड़ा है, जो भारतमें लोक-प्रिय है और जिसका अभ्यास व्यापक है"—इन सरल और स्पष्ट शब्दोंमें अपनी अभिव्यक्ति भारतके उस महान् पुरुष पं० नेहरूजी ने की थी, जिसे राष्ट्रपिता महात्मा गांधीने अपना 'राजनीतिक उत्तराधिकारी' आजसे वर्षों पहले घोषित करते हुए यह दृढ़ विश्वास प्रकट किया था कि मेरे पीछे मेरे उठाये हुए कार्योंको जवाहर-लालजी पूरा करेंगे और जिस महानुभावकी साठवीं जन्मगांठके अवसरपर भारतके उप-प्रधान मंत्री और गृह-सचिव सरदार पटेल ने स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा है कि "नेहरूजो वास्तवमें महात्मा गांधी द्वारा निर्धारित आदर्शोंपर चल रहे हैं और इन्होंने विश्वकी-राष्ट्र-मंडलीमें भारतकी स्थितिको उच्च बनाया है।" यह कहनेमें कुछ

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर और पं० जवाहरलाल.

भी अत्युक्ति नहीं होगी कि जवाहरलालजीके यौवन कालका सर्वोत्तम काल अङ्गरेज सरकारके जेलखानोंमें ही बीता है। आपमें जेल जानेका यह रोग इतना संक्रामक हो गया था कि भारतके राजनीतिक जीवनमें अपने नरम विचारोंके लिये प्रसिद्ध नरमदली नेता पं० मोतीलाल नेहरू भी अन्तमें गरमदली बन महात्मा गांधीके महान् सिद्धान्तके उसी भांति अनुयायी बन गये, जैसे उनके इकलौते पुत्र जवाहरलालजी और फिर तो पं० मोतीलालजी नेहरू और उनके सभी बाल-बच्चे जेल जानेकी उस बीमारीमें फँस गये, जिसे जवाहरलालजीने सचमुच अपना पेशा बना लिया था। जवाहरलालजीकी धर्मपत्नी वीरांगना कमला नेहरूने जेलमें जाकर ही अपने दुर्बल स्वास्थ्यको और भी निर्बल बना अन्तमें अपनी इहलीला संवरण की थी और माता स्वरूपरानी नेहरूजीने अपने समस्त परिवारको इस तरह स्वदेशोद्धारके कार्यमें जेल जाते देखकर ही एक आदर्श महिलाकी भांति अपने को धन्य समझा, बल्कि स्वयं भी प्रयागमें महिलाओंके जुलूसका नेतृत्व करते हुए विदेशी नौकरशाही पुलिसका निर्दय लाठी-प्रहार प्रसन्नतापूर्वक सहन किया था। कमला देवीके स्वर्गगमनके कुछ ही समय पश्चात् इस संसारसे प्रस्थानकर वे अपने प्यारे जवाहरके जीवनको एकदम सूना बना गईं। किन्तु स्वदेश-सेवा-व्रती अपने सुन्दर परिवारके ऊपर उन्हें अपने जीवन पर्यन्त असाधारण गर्व रहा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जवाहरलालजीके जीवनके कितने वर्ष जेलमें बीते हैं, यह तो

ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, किन्तु वे बारह वर्षसे कम तो हमारी समझसे हर्गिज नहीं होंगे। ८ अगस्त १९४२ ई० की अर्ध रात्रिमें और उसके पश्चात् बम्बईमें जब कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटी और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सभी सदस्योंके साथ नेहरूजी भी गिरफ्तार कर अहमदनगरके किलेमें कैदी बना कर रखे गये थे, तब उन्होंने 'डिसकवरी आफ़ इण्डिया' नामकी महत्वपूर्ण पुस्तक वहीं पर लिखी थी। इस पुस्तकका हिन्दी अनुवाद 'हिन्दुस्तानकी कहानी' के नामसे हिन्दीमें भी प्रकाशित हो चुका है। अपनी इस पुस्तकके अन्तमें जो अंश पण्डितजीने इलाहाबाद में २९ दिसम्बर १९४५ ई० को लिखकर 'ताजा कलम' शीर्षकसे जोड़ा है, उसमें स्वयं उन्होंने ही यह लिखा है—"अगस्त सन् १९४२ ई० में अपनी गिरफ्तारीके ठीक एक हजार इकतालीस दिन बाद हम दोनों (नरेन्द्रदेव और मैं) १५ जूनको छोड़ दिये गये। इस तरह मेरी नवीं बारकी और सबसे लम्बी कैदकी मुद्दत खत्म हो गयी।" कहना नहीं होगा कि नेहरूजीकी यही जेल यात्रा सबसे अन्तिम भी है।

आइये अब संक्षेपमें यह भी स्मरण कर लीजिये कि १९४२ ई० के अगस्तमें जेल-यात्राका प्रसङ्ग कैसे उपस्थित हुआ। ब्रिटिश मंत्रिमण्डलके एक सुयोग्य सदस्य सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारतको समझा-बुझाकर सन्तुष्ट करनेके अभिप्रायसे भारत आये, जिससे युद्धमें भारतका पूर्ण सहयोग एवं सहायता प्राप्त हो सके। २३ मार्चको वे दिल्ली पहुँचे। कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा अन्य दलोंके

नेताओंसे बातचीत करनेके पश्चात् उन्होंने अपना मसौदा प्रकाशित कर दिया। नेहरूजीको वह बिल्कुल ही नहीं जँचा और उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। फिर भी सर क्रिप्ससे महात्मा गांधी, नेहरूजी और मौलाना आजाद मिले और बातचीत की। अन्तमें यही मालूम हुआ कि क्रिप्सकी योजनाकेअनुसार वास्तविक अधिकार और नियन्त्रण फिर भी ब्रिटिश प्रतिनिधिके ही हाथमें रहेंगे। मुसलिम लीगको भी वह योजना स्वीकार नहीं हुई और जैसा कि नेहरूजीने कहा था, वह क्रिप्स-योजना किसीके स्वीकार योग्य थी भी तो नहीं। अन्तमें १२ अप्रेलको सर क्रिप्स इङ्गलैण्ड लौट गये और यद्यपि पहले वे सोवियट रूसको मित्रराष्ट्रोंके पक्षमें लानेमें सफल हो चुके थे, तो भी भारतके साथ किसी प्रकारका समझौता करनेमें उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हुई। उनके चले जानेके पश्चात् महात्मा गांधीने 'हरिजन' में एक लेख-माला प्रकाशित कर कांग्रेसके पक्षको संसारके समक्ष उपस्थित किया। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उन्हीं लेखोंका सारांश आगे चलकर अगस्तमें 'भारत छोड़ो' प्रस्तावके रूपमें प्रकट हुआ। पहले तो गांधीजीने यह लिखा था कि सभी अंग्रेज भारतसे चले जायें, लेकिन पीछे उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि मित्र राष्ट्रीय सेनाएँ जापानसे लड़नेके लिये भारतमें रह सकती हैं। ६ जुलाईको वर्धामें कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटीकी बैठक हुई। उसमें इस आशयका प्रस्ताव पास हुआ कि भारतमें ब्रिटिश शासनका अन्त तत्काल हो जाना चाहिये, क्योंकि देशकी रक्षाके लिये यह आवश्यक है। प्रस्तावमें साथ ही यह भी

स्पष्ट कर दिया गया कि सिंगापुर, मलाया और बर्माका अनुकरण भारत नहीं करना चाहता और अपनी रक्षाके लिये वह पूर्ण शक्तिके साथ प्रयास करेगा। यह भी निश्चय किया गया कि, "भारत से ब्रिटिश राज्यके उठ जानेसे देशके जिम्मेदार पुरुष और स्त्री मिलकर अस्थायी सरकार गठित करेंगे, जो भारतके सभी दलोंका प्रतिनिधित्व करेगी और जो एक ऐसी योजना तैयार करेगी, जिससे एक विधान-परिषद्का गठन हो, जो भारतके लिये सर्वमान्य शासन-विधानकी रचना करेगी। स्वाधीन भारत या ब्रिटेनके प्रतिनिधि मिल कर दोनों देशोंके भावी सम्बन्ध का निश्चय करेंगे तथा आक्रमणका सामना करनेके लिये दोनों देशोंमें जिस प्रकारके सहयोगकी आवश्यकता है, उसका निर्णय किया जा सके।" उस अवसर पर नेहरूजीने साफ शब्दोंमें कह दिया था कि, "यदि इसका कोई प्रभाव ब्रिटिश सरकार पर न पड़ेगा, तो फिर कांग्रेसको सम्पूर्ण अहिंसात्मक शक्तिका प्रयोग करनेको विवश होना पड़ेगा, जिससे राजनीतिक अधिकार और स्वतंत्रताकी प्राप्ति हो। इस प्रकारका व्यापक आन्दोलन स्वभावतः महात्मा गांधीके पथ-प्रदर्शनमें होगा।" ८ अगस्तको जब 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटीने पास कर दिया और बहुत रात बीते उसकी बैठककी समाप्ति पर सदस्यगण अपने-अपने वासस्थान पर पहुंच निद्रा-देवीकी गोदमें गये, तब नेताओंकी गिरफ्तारीका आयोजन किया गया। इसके लिये पहलेसे ही सारी तैयारियां कर रखी गयीं थीं।

थोड़ी ही देरमें और ६ अगस्तका सबेरा होनेके पहले ही महात्मा गांधी तथा नेहरूजी सहित सभी नेता गिरफ्तार करके अज्ञात स्थानोंको भेज दिये गये। उस अवसर पर ब्रिटिश पार्लमेंटकी कामन सभामें भारतकी स्वतंत्रताके कट्टर शत्रुने कांग्रेसके नेताओंके विरुद्ध जहर उगलते हुए कहा था कि कांग्रेस एक ऐसा आन्दोलन करने जा रही है, जिसमें हिंसा और अहिंसामें कोई भेदभाव नहीं रखा गया है।

नेहरूजीने 'हिन्दुस्तानकी कहानी' (डिसकवरी आव इंडिया) नामकी जो पुस्तक अहमदनगर जेलमें लिखी थी. उसकी प्रस्तावनामें वे वह लिखते हैं—"यह किताब मैंने अहमदनगर किलेके जेलखानेमें १६४४ ई० के अप्रेलसे सितम्बर तकके पांच महीनोंमें लिखी थी। मेरे कुछ जेलके साथियोंने इसका मसविदा पढ़नेकी और उसके वारेमें कई कीमती सुझाव देनेकी कृपा की थी। जेलखानेमें किताबको दुहराते हुए मैंने इन सुझावोंसे फायदा उठाया और कुछ बातें और जोड़ दीं।...थोड़ी मुद्दत तक भी रहनेके लिये जेलखाना कोई खुश गवार जगह नहीं है, न कि जब लम्बे सालों तक वहां रहना पड़े। लेकिन यह मेरा सौभाग्य था कि आला काबलियत और संस्कृतिके ऊँचे दर्जेके लोगोंसे उठकर इंसानी मामलों पर वसीय नजर रखनेवाले लोगोंके बहुत नजदीक रहनेका मुझे मौका मिला। अहमदनगर किलेके मेरे ग्यारह साथी हिन्दुस्तान के मुख्तलिफ अंशोंका एक दिलचस्प नमूना पेश करते थे।"

च्यांगकाई शेक और नेहरूजी

९ फरवरी १९४२ को चीनी प्रजातन्त्रके सर्व-सर्वा जेनरलिस्सिमो च्यांगकाई शेक व मैडम चांगकाई शेकके सहित भारत पधारे। वे यहाँ शाही अतिथिके रूपमें ही पधारे थे। भारतके लिये उनका आना अन्तर्राष्ट्रीय महत्व रखता है। वायसरायने उनका हृदय खोलकर स्वागत किया। १९ फरवरी १९४२ को जेनरलीस्सिमो शांति निकेतन पधारे। यहाँ पंडित जवाहरलालजी उनके साथ ही थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरूने एक गैर सरकारी राजदूतके रूपमें इसके पहिले चीनकी यात्रा की थी। दुनियाके महान राजनीतिज्ञों की अपेक्षा इस कुचले हुए शिशु प्रजातंत्र चीनके प्रति पंडितजीका गहरा आकर्षण था। इसका कारण यही था कि चीनी संस्कृति और भारतीय संस्कृतिका गहरा मेल है। दूसरे भारत भी विदेशी शासनसे त्रस्त है, अतः एक दुखीका दूसरे दुखी व्यक्तिके प्रति हमदर्दी होना स्वाभाविक ही है। १९४२ के विकट एवं भयंकर संघर्ष में भी नेहरूजी चीन प्रजातंत्रको विस्मरण नहीं कर सके। उस
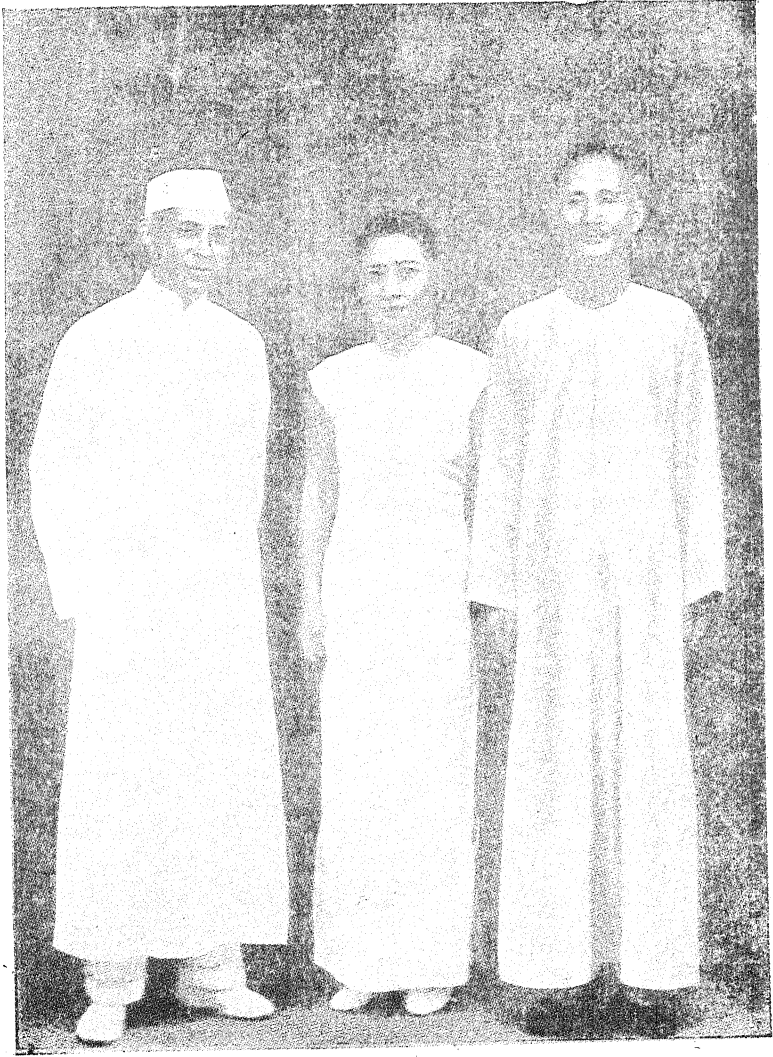
नेहरूजी चीनमें : श्रीच्यांगकाई शेक और
श्रीमती च्यांगकाई शेकके साथ

संघर्षके समय पंडितजीने अपनी असमर्थता पर एक गहरी निःश्वास ली कि वे किसी भी तरह चीनको मदद नहीं दे सकते। कानपुरमें ६ फरवरीको अपने दुःखको भाषाका रूप देते हुए उन्होंने कहा—"इस दुनियामें चारों ओर जो रक्त पात हो रहा है, उससे मुँह नहीं मोड़ सकते और न हम उस नर-संहारके प्रति आँखें बन्द कर चुप ही रह सकते हैं। भारतकी प्रमुख संस्था-कांग्रेस-ने चीन और रूस जैसे देशोंके प्रति सहानुभूति प्रकट की है, लेकिन आज उस संस्थाके सम्मुख सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है—भारतकी स्वतन्त्रता। भारत ब्रिटिश साम्राज्यवादके सामने कभी भी नहीं झुकेगा। यदि भारत आज़ाद होता तो वह खुद सोचता कि उसे ब्रिटेनका किस हद तक साथ देना चाहिये। लेकिन इस समय देशके सामने इसके सिवाय दूसरा और कोई मार्ग नहीं है कि वह उन शत्रुओंसे संघर्ष करे जो गुलाम बनाये रखना चाहते हैं। मुझे जर्मन राज्य और नाज़ीवाद बिल्कुल ही नापसन्द हैं। अंग्रेजोंने भारतको स्वरक्षाके लायक रखा ही नहीं है। यदि देश पर किसी विदेशी ताकतका हमला हो जाय तो देश उस हमलेको पूरी ताकतसे रोकेगा। वह जब तक आज़ाद न हो जाय बराबर विरोधियोंका सामना करता ही रहेगा।"

पंडितजीने अंग्रेजोंको चेतावनी देते हुए कहा कि "देशकी मरज़ीके विरुद्ध जो भी निर्णय किया जायेगा वह हानिकारक और भयंकर साबित होगा।"

११ फरवरीको चांगकाई शेक तथा मैडम चांगकाई शेकका

अभिनन्द करते हुए दिल्लीकी एक विशाल सभामें पंडितजीने कहा—

"हम महसूस करते हैं कि हम चांगकाई शेक और मैडम चांगकाई शेकका उस प्रकार स्वागत करनेकी स्थितिमें नहीं हैं, जिस प्रकार कि हम स्वतंत्र होते तब करते। दिल्लीमें जनरलीस्सिमोंके आनेके साथ ही हमने यह फुस-फुसाहट सुनी कि हम अपनी नीतिमें परिवर्तन कर रहे हैं। पर इस बातमें कोई सचाई नहीं है। हम अपने निर्णय गंभीरता पूर्वक सोचनेके बाद ही करते हैं। हम हाय-हायमें न कोई निर्णय ही करते हैं और न कोई काम ही करते हैं। जिम्मेदार संस्था कभी भी अपना निर्णय बिना विस्तार पूर्वक विचार किये, जल्दीमें कभी भी नहीं करेगी, क्योंकि ऐसे निर्णयके पीछे करोड़ों देशवासियोंका भविष्य अवलम्बित रहता है। इस समय दुनिया क्रान्तिके समुद्रमें गोते लगा रही है। यह कोई नहीं कह सकता कि अन्तमें क्या होगा। यह कोई नहीं जानता कि आनेवाले परिवर्तन लाभप्रद हैं या हानिप्रद। कुछ भी हो फिर भी हम अपनी जिम्मेदारियोंसे पीछे हटना नहीं चाहते। चाहे हम पर कितनी ही मुसीबतें क्यों न आ जाँय, हम अपने अनुशासनको विस्मृत करके, सामना करनेसे पीछे नहीं हटेंगे।"

इससे आगे चीनके विषयमें बोलते हुए पंडितजीने कहा कि—
"मैं इस बातको भूल नहीं सकता कि भारत राजनीतिके लिहाज़से चीनसे भी बदतर हालतमें है। भारत किसीका शासन कभी भी स्वीकार नहीं करेगा, चाहे फिर वह जापानी शासन हो या

जर्मन शासन। भारत एक मात्र भारतीय जनताके शासनमें ही रहेगा हम किसी भी शक्तिके सामने झुक नहीं सकते चाहे हमें कितने भी कष्ट दिये जायँ।"

२१ फरवरीको चीनके सम्बन्धमें कलकत्तेमें भाषण देते हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरूने देशवासियोंसे कहा कि उन्हें चीनकी बहादुरीके उदाहरणका अनुकरण करना चाहिये। हमें प्रजातन्त्रकी वेदी पर चीन द्वारा दिये गये बलिदानोंको याद रखना चाहिये। हमें चीनी भाई बहिनोंके उदाहरणसे सबक हासिल करके हिम्मत रखनी चाहिये और जालिमोंका मुकाबिला करना चाहिये।

चांगकाईशेकके भारत आगमन पर प्रकाश डालते हुए पंडितजीने कहा कि—"आप जानते ही हैं कि इस बार मैं कलकत्तेमें एक मकसदको लेकर आया हूं क्योंकि इस समय यहां जनरलिस्सिमो चांगकाईशेक और मैडम चांगकाई शेक तशरीफ लाये हुए हैं। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि जब तक वे भारत भूमि पर रहें मैं जितना भी उनके लिये उपयोगी सिद्ध होऊं, उतनी उनकी सहायता करूँ। मुझे इस बातका हृदयसे दुःख है और मुझे विश्वास है कि इस बातका आपको भी दुःख होगा कि उनकी जिस मुलाकातके लिये हम इतने उत्सुक थे और जो हमारे लिये एक गर्वकी बात थी वह ऐसे समयमें हुई है कि इच्छा होते हुए भी हममेंसे कई तो उनसे मुलाकात करनेमें भी असमर्थ हैं। हम उनका सम्मान करना और उनके जरिये उस चीन देशका भी सम्मान करना चाहते थे, जिसकी वे इतनी बहादुरीके साथ रक्षा कर रहे

हैं। हम कहते हैं कि हम सार्वजनिक रूपसे उनका स्वागत करनेमें कतई असमर्थ रहे। फिर भी मैं यह कहूंगा कि उनके यहां आनेसे भारतकी इज्ज़त बढ़ी है और साथ ही इस मुलाकातका भारत और चीनके इतिहासों पर भी असर पड़ेगा। यह वास्तवमें एक ऐतिहासिक मिलन है। ऐतिहासिक कहनेका मेरा यह आशय है कि भारत और चीनके सम्बन्धोंमें यह एक युगान्तरकारी चिह्नके रूपमें काम आयेगी। मैं वर्षोंसे स्वप्न देख रहा था कि वर्तमान और भविष्यमें चीन और भारत घनिष्ट मित्रोंकी तरह साथी रहें। इसी उम्मीदको लेकर मैं चुगकिंग गया था। वहाँ मुझे यह देखकर महान आश्चर्य और प्रसन्नता हुई कि चीनके नेतागण भी चीन और भारतके सम्बन्धोंको दृढ़ करनेके लिये मेरे जैसे उत्सुक और और उद्यमशील हैं। मुझे इस बातको जानकर अपार हर्ष हुआ कि भविष्यमें चीन और भारत हाथमें हाथ डालकर दोस्तकी तरह रहेंगे।"

आगे चलकर पंडितजीने चीन और भारतकी मैत्री पर आक्षेप करनेवालोंको मुंहतोड़ उत्तर देते हुए कहा कि -"मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब तक चीन और भारतकी समस्याओंका फैसला नहीं हो जाता, तब तक दुनियाकी समस्याओंका हल और शांति नहीं प्राप्त हो सकती। क्योंकि एक तो दुनियाकी सतहके भारत और चीन दो जबरदस्त और विशाल खण्ड हैं और दोनोंमें मिलकर दुनियाकी आधी आबादीका समावेश हो जाता है। मुझे ऐसी कल्पना मूर्खता पूर्ण प्रतीत होती है जो यह कहते हैं कि चीन और भारतकी

समस्याओंके हल किये बिना ही विश्वकी आर्थिक और राजनीतिक समस्याएँ हल हो सकती हैं।"

चांगकाईशेककी प्रशंसा करते हुए पंडितजीने कहा कि—"जनरलिस्सिमो एक विशिष्ठ व्यक्ति हैं और युद्धमें उन्होंने अपने आपको एक महान नेता और सेनापति सिद्ध कर दिया है। आजकी दुनियामें जो कुछ नाम सर्वोपरि हैं, उनमेंसे एक नाम उनका भी है। युद्धमें एक सेनापतिकी हैसियतसे उन्होंने साबित कर दिया है कि वे जनताके सर्वोपरि नेता हैं। यदि आप चीनमें जाँय तो आपको समस्त चीनमें कोई भी ऐसा व्यक्ति और कोई भी ऐसा दल नहीं मिलेगा जो इस एक बातसे सहमत न हो कि मार्शल चांगकाई शेक जनताके ही महान नेता नहीं हैं वरन् वे चीनके आज तकके नेताओंमें भी सर्वोपरि हैं।"

इसके बाद मैडम चांगकाई शेकके विषयमें बोलते हुए पंडित नेहरूने कहा कि मार्शल चांगकाई शेककी यह जबरदस्त सहयोगिनी सिर्फ उनकी जीवन-संगिनी ही नहीं है, वरन् वह एक ज़बरदस्त योद्धा भी है जो चीनकी आजादीकी लड़ाईमें अपने पतिके साथ कंधा भिड़ाकर लड़ी भी है। वह चीनमें सहिष्णुताकी भावनाकी भव्य प्रतीक है। आज हमें गर्व है कि यह दम्पति आज हमारे इस शहरमें पधा रे जिनको भी इनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त होगा वे इस दम्पत्ति और इनके संदेशको आजीवन नहीं भूल सकेंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे उद्देश्योंको आगे

बढ़ानेमें हमेशा ही कंधेसे कंधा लड़ाकर एक दूसरेकी सहायता करते रहेंगे।"

स्काटिश चर्च कालेज हाल कलकत्तामें भाषण करते हुए पंडितजीने २५ फरवरी १६४२ को कहा कि—"मैंने जब आप लोगोंकी "इन्कलाब जिन्दाबाद" की आवाज सुनी तो मुझे समझमें आ गया कि युवकोंके ऊपर नीचे अगल बगल सभी ओर इन्कलाब छा गया है। आज विश्वमें सबसे महान इन्कलाब हो रहा है और हिन्दुस्थानमें भी ऐसा ही इन्कलाब शायद होने जा रहा है।"

नेहरूजीने विद्यार्थियोंसे पूछा कि मुख्य बात यह है कि—"क्या आप उस तूफान—उस इन्कलाब—का स्वागत करनेके लिये तैयार हैं? हो सकता है कि इस तूफानसे आप लोगोंका सारा जीवन ही उलट-पुलट हो जाय और यह भी संभव है कि इससे आपके समुदायका भविष्य ही गड़बड़ा जाय! यदि आप सचमुच इन्कलाब चाहते हैं तो अपने आपको उसके योग्य बनाइये।"

चीनके इन्कलाबका जिक्र करते हुए पंडित नेहरूजीने कहा कि—"साढ़े चार सालसे चीनमें जबरदस्त इन्कलाब आया हुआ है। प्रायः चीनकी सभी यूनिवरसिटियाँ जमीनमें मिला दी गई हैं, उनमें पढ़नेवाले कई युवक और प्रोफेसर खत्म कर दिये गये हैं। कई विद्यार्थी और प्रोफेसर भागकर इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं। इसके बाद चीनने तीन चार हफ्तोंमें ही बाँसोंकी झोपड़ियोंमें नयी यूनिवर्सिटियाँ स्थापित करलीं। जब मैंने इन बाँसोंके विश्वविद्यालयोंको देखा तो मुझे नये चीनकी शक्तिका अन्दाजा हो गया।

इन दो सालोंमें ताशके पत्तोंकी तरह बड़े-बड़े राष्ट्र खत्म हो गये हैं लेकिन इन वर्षोंमें चीनने जो कुछ किया है, उससे बड़ा ही आश्चर्य होता है। उनकी इस तरक्कीके पीछे जनताकी जबरदस्त इच्छाशक्ति और उत्साह छिपा हुआ है। क्या भारतमें भी वह उत्साह और वह इच्छा-शक्ति विद्यमान है?"

अपनी चीन यात्रा और मार्शल च्यांगकाई शेककी भारत यात्रा पर प्रकाश डालते तथा चीन और भारतके नैसर्गिक मिलनका वर्णन करते हुए पंडित जवाहरलालजीने इलाहाबादसे "न्यूज़ क्रानिकल" लन्दनको एक वक्तव्य भेजा था। इस वक्तव्यमें पंडितजीने कहा है कि—

"ज्योंही मंचूरियामें जापानी धावे हुए कि भारतने उनका विरोध किया और चीनके प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट की। आजसे ढ़ाई वर्ष पहिले जब मैं चीन गया था तो मेरी वहाँ भारतसे गहरे सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये अत्यन्त ही उत्सुक चीनी नेताओंसे मुलाकातें हुईं। अब जनरलिस्सिमो जापानके हमलोंसे चीनको बचानेवाले जबरदस्त सेनापतिके प्रतीकके रूपमें हमारे यहाँ आये हैं। वे हमारे देशमें एक पुराने दोस्तकी तरह ही नहीं वरन् वर्तमान और भविष्यके महान साथीके प्रतीक बनकर आये हैं। भारतके कुछ लोगोंका ख्याल है कि चीन और भारत—दोनों मिल कर एक महान संघ बनाना चाहते हैं। चीनकी जनताके प्रति हमारी पूर्ण सहानुभूति है और उनको दी जानेवाली हर प्रकारकी सहायताका हम स्वागत करते हैं। यह लड़ाई एक लम्बी लड़ाई

होने जा रही है अतः हिन्दुस्तानमें जो कुछ होगा उसका असर तमाम दुनियापर पड़े बिना रह नहीं सकता। उस भविष्यमें आज़ाद भारत और आज़ाद चीन बराबरके साथी होंगे और विश्वकी जो व्यवस्थाएँ आज हमारी समस्याओंको सुलझानेमें असमर्थ साबित हुई हैं, उन्हें इसका परिणाम भोगना होगा। निकट भविष्यमें एशिया एक जबरदस्त ताकत होने जा रहा है।"

भारतसे बिदा होते हुए च्यांगकाई शेक और मैडम शेकने कलकत्ता रेडियोसे भारतके नाम एक सन्देश ब्राडक्कास्ट किया। सन्देश चीनीमें लिखा गया था जिसका अंग्रेजी अनुवाद उनकी जीवन संगिनी मैडम शेकने किया था। उन्होंने भारतको सन्देश देते हुए कहा—

"भारतके प्रति मेरे हृदयमें जो उच्च सम्मान है तथा भारतके लिये बहुत दिनोंसे मेरे हृदयमें जो आशाएँ रही हैं, उन्हें यह सन्देश प्रकट करता है। यह मेरे हृदयके अन्तस्थलसे प्रकट हुआ है। इस देशमें आनेके बादसे मैंने यह बड़े सन्तोषके साथ अनुभव किया है कि भारतके निवासियोंने एक होकर अत्याचारका विरोध करनेका दृढ़ निश्चय कर रखा है। २००० सालके पारस्परिक सम्बन्धके कालमें, जब कि इन दोनों देशोंका सम्बन्ध मुख्यतः व्यापारिक और सांस्कृतिक रहा है, इनमें कभी भी संघर्ष नहीं हुआ है। वस्तुतः संसारके अन्य किन्हीं दो पड़ोसी राष्ट्रोंमें लगातार इतने दीर्घ काल तक शान्ति नहीं रही है। यह इस बातका अकाट्य प्रमाण है कि इन दोनों देशोंके निवासी स्वभावतः शान्ति प्रिय हैं।

आज इन दोनों देशोंके हित ही नहीं हैं बल्कि इनका भाग्य भी एक सूत्रमें बंधा हुआ है।"

"मैं अपने भारतवासी भाइयोंसे यह अनुरोध करूँगा कि सभ्यताके इतिहासके इस विकटतम कालमें हमारे दोनों देशोंके निवासियोंको समस्त मानव समाजकी स्वतंत्रताके लिये अधिकसे अधिक प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि स्वतंत्र संसारमें ही चीन तथा भारत भी अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि चीन और भारतको स्वतंत्रतासे वंचित रखा गया तो संसारमें वास्तविक शान्ति नहीं रह सकती। अन्तमें मुझे पूरा विश्वास है कि हमारा महान मित्र ब्रिटेन भारतियोंकी मांगकी प्रतीक्षा किये बिना ही उन्हें शीघ्र-से-शीघ्र वास्तविक राजनीतिक शक्ति प्रदान करेगा, जिससे कि वे अपनी आत्मिक एवं भौतिक शक्तियोंको और भी अधिक उन्नत कर सकें और इस प्रकार यह अनुभव कर सकें कि वे सिर्फ आतंकवादके विरोधी राष्ट्रोंकी विजयके लिये ही युद्धमें सहयोग नहीं दे रहे हैं, बल्कि यह भी अनुभव करें कि उनका यह सहयोग भारतीय स्वतंत्रताके उनके संघर्षमें भी एक युगान्तरकारी घटना है। क्रियात्मक दृष्टिसे मेरे विचारमें यह सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण नीति होगी जो ब्रिटिश साम्राज्यके यशको चतुर्दिक प्रसारित कर देगी।"

७ मार्च १९४२ को चीन दिवस था। इस अवसर पर पंडित जवाहरलाल नेहरूने चीनकी जनताको एक बहुत ही मर्मस्पर्शी सन्देश दिल्लीके रेडियो स्टेशनसे ब्राडकास्ट किया। सन्देशमें

उन्होंने बताया कि मानवीय प्रयत्नोंके इतिहासमें चीन और भारत एक दूसरेके साथी रहे हैं। इसके बाद उन्होंने अपनी चीन यात्रा का बहुत ही मर्मस्पर्शी शब्दोंमें वर्णन किया। इसके अनन्तर उन्होंने देशवासियोंको याद दिलाई कि जापानी लोगोंके अत्याचारोंके बीच चीनियोंने अपूर्व साहस और वीरताका किस प्रकार प्रदर्शन किया है।

इतने गहरे सम्बन्धोंके होते हुए भी भारत चीनको किसी तरह भी सहायता नहीं कर सकता. इसका कारण बताते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरूने ४ जुलाई १९४२ को नागपुरमें भाषण देते हुए कहा कि—"इस समय भारतवासी गुलाम हैं—पराधीन हैं अतः वे चीनकी मदद करनेमें असमर्थ हैं। जब तक यह देश स्वतंत्र नहीं हो जाता, तब तक चीनकी मदद नहीं कर सकता। चीनको क्रियात्मक मदद देनेके रास्तेमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद सबसे बड़ी चट्टान है।"

मार्शल चांगकाई शेककी यह यात्रा जितनी अप्रत्याशित थी उतनी ही गोप्य भी थी। जहाँ तक गैर सरकारी क्षेत्रोंका सम्बन्ध है श्रीमती चांगकाई शेकने सबसे पहिले पंडित जवाहरलाल नेहरूसे उनकी गतिविधिके विषयमें पूछ-ताछ की और उसके बाद ही दूसरा समाचार पंडित नेहरूको कलकत्तासे यह मिला कि जनरलिस्सिमो और उनकी पत्नी कलकत्ता पहुंच गये हैं। यह एक रहस्य ही था कि क्या चीनके ये दोनों महान नेता भारत सरकारके आग्रह करने पर यहां आये थे या स्वयं अपनी इच्छासे।

संभवतः पहिली बात ही ज्यादा उचित हो। लेकिन एक बात अवश्य ही ऐसी है जो उससे मेल नहीं खाती। वह यह कि भारत सरकारने उनके प्रति उचित और पर्याप्त विनम्रता तथा शिष्टता क्यों नहीं दिखाई? उस समय आम तौर पर यही चर्चा थी कि हमारे ये सम्मानित अतिथि अपने प्रति भारत सरकारके व्यवहारसे संतुष्ट और प्रसन्न नहीं हो सके। कुछ भी हो पर उन्हें गांधीजीसे मिलनेमें बहुत ही कठिनाई अनुभव करनी पड़ी। और एक महान व्यक्तिके इस देशमें आने पर गांधीजीसे मुलाकात न हो सकना या मुलाकातमें कठिनाइयाँ उपस्थित कर देना—इस तथ्यको भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। गांधीजी किसी भी कीमत पर मार्शलसे मिलनेको तैयार थे। आखिर मार्शलने ही पूछा कि क्या गांधीजीसे कलकत्तामें मुलाकात की जा सकती है?

अन्तमें गांधीजीने बड़े डरते-डरते मार्शलको पत्र लिखा। इसके उत्तरमें मार्शलने लिखा कि आपके पत्रका मुझ पर इतना गहरा असर पड़ा है कि मैं हर हालतमें आपसे मुलाकात करनेको उद्यत हूं। आखिर कलकत्तेमें यह मुलाकात हुई।

जनरलिस्सिमोकी यह यात्रा सामरिक दृष्टिसे अत्यन्त ही महत्व पूर्ण थी किन्तु इसके अलावा न केवल चीन और भारतके लिये ही उसका सांस्कृतिक महत्व था बल्कि संसारके लिये, क्योंकि जब हम इन दोनों प्राचीन देशोंकी आबादीकी तुलना शेष संसारकी आबादीसे करते हैं तो हम यह बात आसानीसे समझ सकते हैं कि समस्त मानव जातिके इस एक तिहाई हिस्सेका

और खास तौर पर उस महान् पुरुषने, जो चीनकी एकता और स्वतंत्रत रहनेकी लगनका प्रतीक बन गया है। मार्शल चांगकाई शेक और मैडम चांगसे मैं कई बार मिला और अपने-अपने देशों के वर्त्तमान और भविष्य पर विचार-विनिमय किया। जब मैं भारत लौटा, तब चीन और चीनी लोगोंका पहलेसे भी अधिक प्रशंसक बन कर लौटा। मुझे यह कल्पना भी न थी कि दुर्दिन इन पुरातन लोगोंकी आत्माको कुचल सकता है। वे फिर नौजवान बन गये थे।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि नेहरूजीकी यह महत्वपूर्ण यात्रा चीनके महान् नेता जेनरल चांगकाई शेककी प्रबल इच्छासे हुई थी और तत्कालीन राजधानी चुंगकिंगमें वे उन्हींके अतिथि भी थे। वहां नेहरूजी और चीनी नेतामें जो घनिष्ट मित्रता एवं सम्बन्ध स्थापित हुआ, उसका सुफल '४२ के विप्लवके समय देखनेमें आया। वह जाननेके पूर्व यह जान लेना भी प्रासंगिक होगा कि नेहरूजीके ही उद्योगसे भारतसे एक मेडिकल मिशन चुंगकिंग भेजा गया। मार्शल चांगकी सेनाके घायलोंकी सहायता और सेवा के कार्य करनेके लिये और मार्शल चांगने एक मिशन भारतके प्रति चीन वासियोंकी सदिच्छा प्रकट करनेके लिये भारत भेजा था। एक निजी पत्रमें मार्शलने यह लिखा था,—"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि विश्वका भविष्य एशियाके विभिन्न देशोंकी जनताओं के संयुक्त संघर्षके परिणाम पर निर्भर करता है।" पीछे तो '४२ ई० में स्वयं चीनके प्रधान सेनापति मार्शल चांगकाई शेक और मैडम

चांगकाई शेकने युद्धके कारणोंसे भारतका दौरा किया था। इसके सम्बन्धमें स्वयं नेहरूजीने अपनी किताब 'हिन्दुस्तानकी कहानी' में यह लिखा है,—"चीनी नेताओं—जनरलिसिमो और मैडम चांग-काई शेकका हिन्दुस्तानमें दौरा एक महत्वकी बात थी। सरकारी रवैयेसे और हिन्दुस्तान-सरकारकी मर्जीके कारण वे आप जनतासे मिल-जुल नहीं सके। लेकिन इस संकटके मौके पर हिन्दुस्तानमें उनकी उपस्थिति और भारतकी स्वतंत्रताके लिये उनकी प्रकट सहानुभूतिने भारतकी राष्ट्रीय खोलके बाहर आनेमें मदद दी और इस वक्त जब अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न पर दांव लग रहा था, उनकी जानकारी बढ़ी। हिन्दुस्तान और चीनको एक करने वाले धागे और अधिक मजबूत हुए। और, इसी तरह चीन और दूसरे देशोंके साथ मिल कर उससे जो सभीका शत्रु था, लड़नेकी इच्छा भी तेज हो गयी। हिन्दुस्तान पर छाये हुए खतरेने राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयताको पास-पास ला दिया।"

जब मार्शल च्यांगको निश्चय हो गया कि गांधीजी और नेहरूजी 'भारत छोड़ो' वाला आन्दोलन छेड़ने जा रहे हैं, तब उन्होंने अगस्त वाले कांग्रेसके पहले ही २५ जुलाई १६४२ को अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्टको पन्द्रह सौ शब्दोंका एक गुप्त तार भेजा, जो २६ जुलाईको उन्हें मिला था। उसका उत्तर उन्होंने लग-भग ढ़ाई सौ शब्दोंमें मार्शलको ८ अगस्तको भेजा था। ११ अगस्तको मार्शल च्यांगने फिर छोटा-सा संदेश भेजा, जिसका उत्तर रा० रूजवेल्टने अगले दिन ही दिया था। च्यांगने साफ लिखा था कि

"भारतकी स्थिति बड़ी ही गंभीर और संकटपूर्ण हो गयी है। सच पूछिये तो यही वह सबसे महत्वपूर्ण तत्व है, जिसके आधार पर संयुक्त-राष्ट्रोंके युद्धका — विशेषतः पूर्वके युद्धका परिणाम आंका जा सकता है। भारतीय जनता आपसे बहुत दिनोंसे आशा करती रही है। गांधी और नेहरूको अपनी योजना पर पुनः विचार करने के लिये प्रेरित करनेका एकमात्र उपाय यह है कि संयुक्तराष्ट्र विशेषतः अमरीका, जिसे वे श्लाघाकी दृष्टिसे देखते हैं, बीच-विचाव करे और उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्हें सान्त्वना दे। भारतवासी अमरीकाके प्रति उसके उपकारोंके लिये कृतज्ञ होंगे और स्वेच्छासे युद्धमें भाग लेंगे।" च्यांगने यह चेतावनी भी दी थी कि संकटका सामना करनेकी ब्रिटिश चेष्टाएँ दुधारी तलवारके समान होंगी। यदि इन युक्तियों द्वारा सत्याग्रह आन्दोलनका दमन करनेमें सफलता भी मिली, तब भी संयुक्तराष्ट्रोंको इतनी आत्मिक क्षति पहुँचेगी, जितनी किसी युद्धको हारनेसे भी नहीं पहुँच सकती। अतः भारतको पूर्ण स्वतंत्रता दे देना ही ब्रिटेनके लिये सबसे अधिक बुद्धिमानी और प्रगतिशीलताका रास्ता होगा। संयुक्तराष्ट्रोंके युद्ध-उद्देश्यों और तमाम हितोंको दृष्टिमें रखते हुए मेरा चुप बैठे रहना असंभव है। मैं अपने इस विचारको बराबर दुहराना पसंद करूँगा।" उत्तरमें रूजवेल्टने लिखा कि, मैं आपके इस विचारसे पूर्णतया सहमत हूँ कि समान विजयके लिये भारतीय स्थितिको स्थिर बनाना चाहिये और सम्मिलित प्रयत्नमें भारतका भी सहयोग प्राप्त करना चाहिये। किन्तु मेरा ख्याल है कि आप स्वयं

इस बातको समझते होंगे कि ब्रिटिश सरकार और भारतीय जनता को हल निकालनेकी सलाह देनेमें कितनी कठिनाइयाँ हैं। ब्रिटिश सरकारका विचार है कि क्रिप्स-योजनाके सुधार ही उचित हैं और इस अवसर पर किसी दूसरे देशके सुझाव उपस्थित करनेसे भारत की वर्त्तमान एकमात्र शासन-सत्ताके अधिकारको आघात पहुँचेगा और उसके फलस्वरूप वही संकट आ उपस्थित होगा, जिसके दूर होनेकी आपको और मुझे अभी आशा है।

पीछे गांधीजी और नेहरूजीकी गिरफ्तारीके बाद भी च्यांग-काई शेकने एक बार फिर रूजवेल्टको लिखा था, पर रूजवेल्टने जवाब दिया कि मैं समझता हूँ कि वर्त्तमान स्थितिमें मेरे और आपके लिये भारतको सबसे अच्छी सहायता देनेका एकमात्र ढंग यही है कि कोई खुली अपील या घोषणा न करके अभी हम उसे केवल इतना बता दें कि मित्रकी हैसियतसे हम सदा उसकी सहा-यताकी अपील पर ध्यान देनेको तैयार हैं, बशर्ते कि यह अपील दोनों पक्षोंकी ओरसे आये। स्पष्ट है कि खुले तौर पर चाहे कुछ भी न कर सके हों, पर रूजवेल्टने अपनी मुलाकातोंमें ब्रिटिश प्रधान मंत्री चर्चिलसे भारतके प्रश्नकी चर्चा अवश्य की होगी, यद्यपि चर्चिल भारतके प्रश्नको ब्रिटिश साम्राज्यका घरेलू प्रश्न कहकर सदा किसी बाहरी हस्तक्षेपका विरोध करते रहे। फिर भी नेहरूजीने चीनके सर्वे-सर्वा मार्शल च्यांगसे जो मित्रता स्थापित की थी, उसका प्रभाव इस रूपमें सामने आया।

सन् '४२ का विप्लव और नेहरूजी

८ अगस्तको 'भारत छोड़ो' वाले प्रस्तावको कांग्रेस भी अखिल भारतीय कमेटीसे स्वीकार करा लेनेके पश्चात् महात्माजीने देशवासियोंको 'करो या मरो'का जो मंत्र दिया था, उसके बाद ही सभी नेता किस प्रकार रातोंरात पकड़कर अज्ञात स्थानोंको भेज दिये गये, यह तो पाठकोंको मालूम हो गया, किन्तु उनकी गिरफ्तारीके बाद देश भरमें जैसा भयंकर विप्लव क्रुद्ध जनताने खड़ा किया और उसका जैसा निर्दयतासे दमन किया गया, उसके विरुद्ध स्पष्ट शब्दोंमें आवाज उठायी हमारे चरित्र-नायक नेहरूजीने ही जेलसे छूट आनेके पश्चात्। नौकरशाहीने ऐसा भयंकर दमन किया था कि जो लोग जेलके बाहर थे, उन्हें भी सन् ४२ के विप्लवकारियोंका खुले शब्दोंमें समर्थन करनेका साहस नहीं होता था। नेहरूजीने जेलसे बाहर निकलते ही जिस प्रकार उनका समर्थन किया और उनका राक्षसी दमन करनेवाले अफसरोंके अपराधोंको अक्षम्य बतलाया, उसका उल्लेख करनेके पूर्व थोड़ेमें यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि महात्मा गांधी समझौतेके अन्तिम प्रयत्न होने पर ही जो संग्राम छेड़ते, वह कैसा

होता। प्रस्तावके सम्बन्धमें महात्माजीने कहा था कि मैं वायसरायसे मिलूंगा और समझौतेका मार्ग खोजनेकी चेष्टा करूंगा, पर सरदार पटेलने भावी संग्रामकी रूपरेखा इन शब्दोंमें प्रकट की थी—"अब समझौतेकी कोई आशा नहीं रह गयी है। इस बार आंदोलन जेल जाने तक ही सीमित न रहेगा। अबकी ऐसा नहीं होगा कि एक-दो वर्ष जेलमें रहेंगे और पीछे हम भूल जायँगे कि बाहर क्या हो रहा है। यह आंदोलन कांग्रेसजनों तक ही सीमित नहीं रहेगा। जो भी अपनेको भारतीय कहते हैं, वे सभी इसमें सम्मिलित होंगे। जब तक गांधीजी हमारे सेनापति हैं, तब तक उनके आदेशोंका अक्षरशः पालन करना चाहिये। वे गिरफ्तार करके हमारे बीचसे हटा लिये जायँ, तो हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति अपना नेता होगा और वह स्वयं आंदोलनको जारी रखेगा। कांग्रेसका यह अंतिम आंदोलन होगा। यह सभी लोगोंके लिये खुला होगा, चाहे लोग खादी पहनते हों या नहीं, चाहे वे कांग्रेसके सदस्य हों या नहीं और चाहे वे कांग्रेसके रचनात्मक कार्य क्रममें विश्वास रखते हों या नहीं। यह पूर्णतया सार्थक राष्ट्रीय आंदोलन होगा और हिंसाको छोड़कर भाग लेनेवाले अन्य सभी उपलब्ध साधनोंका उपयोग किया जायेगा। हम इसकी परवाह नहीं करते कि ब्रिटिश अधिकारी किसके हाथमें शासनकी बागडोर पकड़ाते हैं। वह मुसलिम लीग भी हो सकती है, नरम दल भी हो सकता है, या कोई भी राजनीतिक दल हो। हमारी मांग तो इतनी ही है कि भारतसे अपना राज्य वे हटा लें।"

जेलसे बाहर आने पर नेहरूजीने जब नौकरशाहीके भयंकर दमन और उसके घातक परिणामोंको अपनी आंखोंसे देखा और कानोंसे सुना, तो उनसे यह कहे बिना नहीं रह गया कि अपने सभी पूज्य नेताओंकी एक साथ गिरफ्तारीके बाद भी यदि देश-वासी न उत्तेजित हो उठते, तो बड़ा आश्चर्य होता। उत्तेजनामें आकर उन्होंने जो उचित समझा, वही रास्ता पकड़ा, क्योंकि नौकरशाहीने उन्हें नेता-विहीन तो बना दिया था, इससे उनको राह दिखानेके लिये तो जेलके बाहर कोई नेता रह ही नहीं गया था। इसलिये उन्हें दोष कैसे दिया जा सकता है? अपनी हिन्दुस्तानकी कहानीमें 'आम इन्कलाब और उसका दमन' शीर्षकके नीचे स्वयं नेहरूजीने ये विचार उस विप्लवके विषयमें प्रकट किये हैं—"सारे प्रमुख नेता अचानक ही अलग हटा दिये गये थे और ज्ञान पड़ता है कि किसीकी समझमें नहीं आता था कि क्या करना चाहिये। विरोध तो होता ही और अपने आप ही उनके प्रदर्शन हुए। इन प्रदर्शनोंको कुचला गया, उन पर गोली चलायी गयी, टियर-गैस काममें लायी गयी और सार्वजनिक भावनाको प्रकट करनेवाले सारे तरीके रोक दिये गये। और तब ये सारी दबी हुई भावनाएं फूट पड़ीं और शहरोंमें और देहाती हल्कोंमें भीड़ें इकट्ठी हुईं और पुलिस और फौजके साथ खुली लड़ाई हुई। उन्होंने खास तौरसे उन चीजों पर जो ब्रिटिश शासन और शक्तिका प्रतीक मालूम पड़ीं, आक्रमण किया, ये चीजें थीं थाने, डाकखाने और रेलवे स्टेशन। उन्होंने तार और टेलीफोनके

तारोंको काट दिया। सरकारी बयानोंके अनुसार पांच सौ अड़तीस मौकोंपर गोलियां चलीं और साथ ही नीचे उड़नेवाले हवाई जहाजोंसे, मशीनगनोंसे भी गोलियां चलायी गयीं। देशके अलग-अलग भागोंमें एक या दो महीने या इससे भी अधिक समय तक यह लड़ाई चलती रही और वह धीरे-धीरे धीमी पड़ गयी और उसकी जगह छिट-फुट घटनाएं होती रहीं। मि० चर्चिलने कामन सभामें कहा कि "सरकारकी पूरी ताकतसे ये उपद्रव कुचले गये।"

"देशके गांवों और कस्बों दोनोंहीमें यह प्रतिक्रिया असाधारण रूपसे व्यापक थी। लगभग सभी प्रान्तोंमें और अधिकतर हिन्दुस्तानी रियासतोंमें सरकारी रोकके विरुद्ध अगणित प्रदर्शन हुए। हड़तालें हुईं, दुकानें और बाजार बन्द हुए, सभी जगह काम-काज रोक दिये गये। कुछ स्थानों पर ये बातें कुछ दिनों तक रहीं, कुछ सप्ताहों तक और थोड़ेसे स्थानों पर एक महीनेसे भी अधिक समय तक। इसी तरह मजदूरोंने भी काम बंद किया, कारखानेके मजदूरोंने बहुतसे खास-खास स्थानों पर अपने-आप आम हड़तालकी घोषणा की। यह सब सरकार द्वारा राष्ट्रीय नेताओंकी गिरफ्तारीके विरोधमें हुआ। जमशेदपुरके लोहे और फौलादके कारखानेमें खास तौर पर यह देखनेको मिला। यहांके सुदक्ष कारीगर देशके विभिन्न भागोंके निवासी थे। वे एक सप्ताह तक काम पर नहीं गये और केवल इस शर्त्त पर काम पर लौटनेको तैयार हुए कि कारखानेके व्यवस्थापक कांग्रेसी नेताओंको छुड़ाने

और राष्ट्रीय सरकार कायम करानेके लिये अधिकसे अधिक प्रयत्न करनेका वादा करें। वादा किया गया, तभी वे काम पर लौटे। सूती कारखानोंके बड़े केन्द्र अहमदाबादमें एकदम बिना ट्रेड यूनियनकी खास पुकारके सारे कारखानोंमें पूरी तरह काम रोक दिया गया। यह आम हड़ताल रोकनेकी सारी कोशिशोंके होते हुए भी अहमदाबादमें तीन महीने तक शांति पूर्वक चलती रही। मजदूरोंकी यह प्रतिक्रिया अपने-आप हुई और इसका आधार केवल राजनीतिक था। पंजाबमें सबसे कम प्रभाव था, यद्यपि वहां भी बहुत-सी हड़तालें हुईं। सीमा प्रान्तमें बहुतसे प्रदर्शन हुए। प्रदर्शनों पर गोलियां चलायी गयीं। सार्वजनिक कामोंको रोकनेके लिये सभी ढंग काममें लाये गये। हजारों आदमी पकड़े गये। यही नहीं, पठानोंके महान् नेता बादशाह खानको (इसी नामसे अब्दुलगफ्फार खां प्रसिद्ध हैं) पुलिसकी मारने बुरी तरह घायल कर दिया। फिर भी अब्दुल गफ्फार खांके अनुशासनके कारण वहां पर देशकी बहुत-सी जगहोंकी तरह कोई हिंसात्मक काररवाई नहीं हुई।"

"जनताकी ओरसे अचानक असंगठित प्रदर्शन, जिनका अन्त हिंसात्मक झगड़ों और विनाशमें हुआ, बहुत बड़ा और सशस्त्र सेनाओंका विरोध होते हुए भी चलते रहे। इनसे जनताकी भावनाकी गहराईका पता लगता है। नेताओंकी गिरफ्तारीके पहले भी वे भावनाएं वहां थीं, लेकिन इन गिरफ्तारियों और उनके बाद प्रायः होनेवाले गोलीकांडोंने जनताके गुस्सेको बढ़ा दिया और

लोगोंने उसी रास्तेको अपनाया, जो एक अप्रसन्न जन-समूह अपनाया करता है। क्या किया जाना चाहिये, कुछ देरतक कुछ भी निश्चय नहीं किया जा सका। कोई आदेश नहीं था, कोई कार्यक्रम नहीं था। उनका नेतृत्व करने और उन्हें राह बतानेको कोई प्रसिद्ध पुरुष भी नहीं था। पर वे इतने नाराज थे, इतने उत्तेजित थे कि चुप नहीं रह सकते थे। ऐसे अवसरों पर जैसा प्रायः होता है, स्थानिक नेता आगे आये और कुछ देरतक उनके आदेशानुसार कार्य हुआ। लेकिन वे आदेश अपर्याप्त थे। सारे देशमें १९४२ में नयी पीढ़ीने, खास तौरपर विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंने उग्र और शांति पूर्ण दोनों ही प्रकारकी कारवाइयोंमें बहुत अधिक काम किया। यदि अपनी धारणाके विरुद्ध कांग्रेसने पहले हिंसात्मक कार्यके लिये थोड़ासा भी संकेत कर दिया होता तो इसमें संदेह नहीं कि जितनी हिंसा और उग्रता वास्तवमें हुई, उससे कमसे कम सौगुनी अधिक हुई होती। फिर भी इस बातका ख्याल रखा गया था कि लोगोंकी जानें न जायँ। तभी तो सरकारी बयानोंके अनुसार सारे देशमें और झगड़ेके सारे समयमें भीड़ोंने कुल एक सौ आदमियोंकी जानें लीं, जबकि पुलिस और फौजकी गोलियोंसे मारे हुओंकी संख्या सरकारकी ओरसे एक हजार अढ़ाई सौ और घायलोंकी तीन हजार दो सौ बतायी गयी है। जनताके अनुमानसे पचीस हजार आदमी मारे गये, पर शायद दस हजार आदमियोंके मारे जानेका अनुमान ज्यादा ठीक होगा। यह एक असाधारण बात थी कि बहुतसे हल्कोंमें गांवों और नगरों

दोनोंमें ब्रिटिश शासनका अन्त हो गया और उन भागोंको फिर से जीतनेमें (साधारण रूपमें उसे यही कहा गया था) कई दिन और कहीं कहीं तो कई सप्ताह लग गये थे। यह बात खास तौर-पर बिहारमें, बंगालके मिदनापुर जिलेके और संयुक्त प्रान्तके दक्षिणी पूर्वी भागोंमें हुई।"

"बलिया जिलेमें भीड़ोंके विरुद्ध शारीरिक हिंसा या किसी तरहकी चोटोंकी शिकायत नहीं है। जब मामूली पुलिस निकम्मी सिद्ध हुई, तब 'स्पेशल आर्म कांस्टेबुलरी' तैयार की गयी ! जिसे सार्वजनिक प्रदर्शनों और उपद्रवोंका सामना करनेकी शिक्षा दी गयी थी। कुछ खास समुदाय या वर्गोंको छोड़ हिन्दुस्तानी सेना साधारणतः काममें नहीं लायी गयी। बहुधा ब्रिटिश सेना और गोर्खोंसे काम लिया गया। सरकारने अपने शासनके विरुद्ध किसी भी चुनौतीको सदाके लिये कुचल डालनेकी तैयारी सावधानीसे की थी। उसने पहली चोटके लिये अवसर चुना। हजारों स्त्री-पुरुषोंको उसने जेल भेज दिया था। जनतामें अचानक जो उभार आया, उससे उसे अचम्भा हुआ और एक धक्का पहुंचा और कुछ देरतक जनताको चारों ओरसे कुचल सकने वाली मशीन अस्त व्यस्त हो गयी। पर सरकारके पास बेहद साधन थे, जिनका उसने विद्रोहके हिंसात्मक और अहिंसात्मक प्रदर्शनोंको कुचल डालनेके लिये किया। पुलिस और खुफिया विभागको तो खुली छूट थी। वे सब तरहकी बेकायदा और बेरहमीकी कारवाइयां कर सकते थे। स्कूल और कालेजोंके

विद्यार्थियोंको तरह-तरहसे दंड दिया गया। हजारों नौजवान पीटे गये और सरकारके अनुकुल कामोंको छोड़ सब ढंगसे सार्वजनिक कामोंपर रोक लगा दी गयी। लेकिन सबसे अधिक कष्ट गरीबीके मारे गांववालोंको भोगनी पड़ी। इन्होंने मूर्खता या भूल की हो या न की हो, भारतकी स्वतंत्रताके प्रति अपनी निष्ठा अवश्य प्रकट कर दी। वे असफल रहे और असफलताका बोझ उनके झुके हुए कन्धों और टूटे हुए शरीरोंपर था।"

"कितनी ही बार पूरे गांवको सजा मिली और वहाँ वालोंकी जानें कोड़ोंसे मारकर ली गयी। बंगाल सरकारकी ओरसे बयान किया गया था कि, 'सरकारी फौजोंने १६४२ के समुद्री ववंडरसे पहले और उसके बादमें तामलुक और कंटाईके तहसीलोंमें एक सौ तिरानबे कांग्रेसी डेरे या मकान जलाये। दंडकी भांति समूचे गांवोंपर बड़े बड़े जुर्माने किये गये। कामन सभामें भारत मंत्री मि० एमरीके दिए हुए बयानोंके अनुसार जुर्माना की सब रकम कुल मिला कर नब्बे लाख थी, जिसमें साढ़े अठहत्तर लाखकी रकम वसूल की गयी।"

"खबरोंपर कड़ी रोक थी। जो कुछ हो रहा था, उसके विषयमें खबरें देनेकी भारतीय पत्रोंको इजाजत नहीं थी। अमेरिका और इंगलैंडमें सरकारके पक्षमें झूठा प्रचार जोरोंसे किया जा रहा था, जिसके लिये सैकड़ों अंग्रेज और हिन्दुस्तानी प्रचारक रखे गये थे।"

"पर भारतमें जो कुछ हुआ, उसने युद्ध संकटके होते हुए भी संसारको थोड़ी देरके लिये भारतकी ओर देखनेको और प्रथम मौलिक प्रश्नोंपर विचार करनेको बाध्य कर दिया। एशियाके हर देशमें जनताका हृदय और मस्तिष्क हिल उठा। यद्यपि उस समय भारतवासी बेबस मालूम देते थे और वे ब्रिटिश साम्राज्य-वादके मजबूत पंजोंमें बुरी तरह फँसे हुए थे। लेकिन उन्होंने यह बता दिया था कि जबतक भारत स्वतंत्र नहीं होता, भारत या एशियामें शांति नहीं हो सकती।"

सन् ४२ के उस विप्लवके सम्बन्धमें जेलसे छूटनेपर सर्व प्रथम नेता नेहरूजी ही थे, जिन्होंने डंकेकी चोट यह कह दिया कि, १९४२ ई० में जो कुछ हुआ, उसके लिये मुझे बहुत गर्व है। मुझे अफसोस होता अगर जनता चुपचाप राष्ट्रीय अपमान सह लेती। अन्तमें नेहरूजीने इस आन्दोलनके बारेमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि "मेरी यह निश्चित धारणा है कि अगस्त सन् ४२ के आन्दोलनसे राष्ट्रको वह अदम्य शक्ति और बहुमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है जिसकी हमें बड़ी आवश्यकता थी। इससे हमें अपने बलिदान शक्ति और बृटेनके दमन करनेकी बर्बर शक्तिका भी काफी ज्ञान प्राप्त हुआ।"

नेहरूजी और पाकिस्तान

जिन पं० जवाहरलालको महात्मा गांधीने अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी घोषित कर रखा था और जिनकी कांग्रेसके भीतर प्रतिष्ठा महात्माजीको छोड़कर और सबोंसे अधिक थी और जो सबसे अधिक बार कांग्रेसके अध्यक्ष-पद पर रहे हैं, उन्हें मि० जिन्ना, उनकी मुसलिम लीग और उसकी पाकिस्तानकी मांगके सम्बन्धमें विचार प्रकट करनेके प्रसङ्ग इतने अधिक बार आ चुके हैं कि उनका क्रमबद्ध वर्णन करनेसे एक बड़ा भारी पोथा बन जायेगा। इसलिये हम यहां पर लीग और पाकिस्तानके विषयमें उनके विचारोंका ही उल्लेख कर देना ही अलम् समझते हैं। अपनी 'हिन्दुस्तानकी कहानी' में नेहरूजीने लीगके सम्बन्धमें लिखा है कि १६०६ में जब मुसलिम लीग शुरू हुई, तो अंगरेजों ने इसको इस इरादेसे बढ़ावा दिया कि मुसलमानोंकी नयी पीढ़ी राष्ट्रीय कांग्रेससे अलग रहे। उसके बाद सामंतवादी अंशोंसे संचालित यह एक छोटी-सी उच्च वर्गीय संस्था रही। आम मुसलिम जनतामें इसका कुछ असर नहीं था और न लोग इसे जानते थे। स्वयं अपने विधानसे वह एक छोटेसे समुदाय तक

सीमित थी, और उसके नेतागण स्थायी थे, जो अपने स्थायित्वको बनाये रखते थे। प्रथम महायुद्ध और तुर्कीमें खिलाफत और मुसलिम तीर्थ स्थानोंके प्रश्नके कारण भारतके मुसलमानोंपर भारी प्रभाव हुआ और वे अत्यन्त ब्रिटिश-विरोधी हो गए। मुसलिम लीग बनी ही इस ढंगसे थी कि वह इस जगी हुई और उत्तेजित जनताका कोई पथ-निर्देश या नेतृत्व नहीं कर सकी। लीगमें एक घबराहट पैदा हुई और वह करीब-करीब खत्म हो गई। कांग्रेसके घनिष्ट सम्पर्कमें एक नयी मुसलमान संस्था—खिलाफत कमेटी पैदा हुई। बहुत बड़ी संख्यामें मुसलमान कांग्रेसमें शामिल हो गए। और उसके द्वारा काम करने लगे। १९२०-२३ के पहले असहयोग आन्दोलनके बाद खिलाफत कमेटी भी धीरे-धीरे मिटने लगी, क्योंकि अब उसका आधार—तुर्की खिलाफतका मामला ही खत्म हो गया था। पीछे १९३० के दूसरे सविनय अवज्ञावाले आन्दोलनमें भी मुसलमानोंका सहयोग काफी था। पीछे जब मि० जिन्ना लीगमें जा मिले, तब लीगका आन्दोलन और उसके साथ ही सरकारी नौकरियों और कौंसिलोंमें मुसलमानोंके लिये काफी प्रतिनिधित्वकी उसकी मांग जोर पकड़ने लग गयी।" पीछे किस तरह महात्मा गांधीने कांग्रेस और लीगमें समझौतेके लिये प्रयत्न किये, इसकी चर्चा करनेके बाद नेहरूजीने लिखा है—जब मैं कांग्रेसका सभापति था, तब कई बार मि० जिन्नाको लिखा और प्रार्थना की कि हमें निश्चित रूपसे बता दें कि आखिर वह चाहते क्या हैं। लीग क्या चाहती है और उसका

निश्चित उद्देश्य क्या है। कांग्रेसी सरकारोंके विरुद्ध उसकी क्या शिकायतें हैं। मि० जिन्नाने लम्बे-लम्बे जवाब भेजे, लेकिन उन्होंने कोई चीज बतायी नहीं। बड़ा आश्चर्य हुआ और निराशा भी। मालूम होता था कि मि० जिन्ना किसी निश्चित बातमें फंसना नहीं चाहते थे और वे समझौतेके लिये बिलकुल उत्सुक नहीं थे। पीछे गांधीजी और हममेंसे और दूसरे लोग कई बार उनसे मिले, हम चाहते थे कि कांग्रेस और लीगके प्रतिनिधि एक जगह मिलें और सभी आपसी बातोंपर विचार करें। मि० जिन्नाने कहा कि ऐसा तो केवल तभी किया जा सकता है, जब हम खुले तौरपर यह मंजूर कर लें कि हिन्दुस्तानके मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि-संस्था मुसलिम लीग है और कांग्रेस अपनेको विशुद्ध हिन्दू संगठन समझे। ऐसा करना कांग्रेसके लिये संभव नहीं था, इससे कभी मेल नहीं हो सका। मि० जिन्नाको चीजोंको योंही कहने देनेमें संतोष था और उन्हें उम्मीद थी कि वे ब्रिटिश सरकारसे कुछ ज्यादा बड़ी चीज पा सकेंगे। उन्होंने हाल ही में हिन्दुस्तानमें दो राष्ट्र—एक हिन्दू और एक मुसलिम राष्ट्रके होनेकी घोषणा की थी। सिर्फ दो ही क्यों, मैं नहीं जानता, क्योंकि अगर राष्ट्रीयता का आधार मजहबपर हो, तो हिन्दुस्तानमें बहुतसे राष्ट्र थे। मि० जिन्नाके दो राष्ट्रके सिद्धान्तसे पाकिस्तानकी या हिन्दुस्तानके विभाजनका विचार पैदा हुआ।"

पाकिस्तानका कांग्रेसकी ओरसे अन्त तक जोरोंसे विरोध हुआ। अन्तमें जिस तरह उसे स्वीकार करना पड़ा, उसका वर्णन

यहाँ नेहरूजीके चरित्र-चित्रणके प्रसङ्गमें सर्वथा अप्रासंगिक होगा। फिर भी यह जान लेना चाहिये कि नेहरूजी दो राष्ट्रके सिद्धान्त और पाकिस्तानका आदिसे अन्त तक बड़े जोरोंसे विरोध करते रहे हैं। पाकिस्तानके सम्बन्धमें नेहरूजीकी विचार-धारा सदा एक-सी रही है और उसका परिचय पाठकोंको इसीसे मिल जायेगा कि जब वे १९४६ ई० में असेम्बलीके साधारण-निर्वाचनके सम्बन्धमें प्रचार करते हुए देशका दौरा कर रहे थे, तब सिन्धके रोहरी स्थानपर ७ जनवरी १९४६ को एक विराट सार्वजनिक सभामें स्पष्ट शब्दोंमें कहा था—"विश्वकी वर्त्तमान सङ्कटपूर्ण स्थितिमें पाकिस्तान बिलकुल ही अवांछनीय और अवास्तविक है। पाकिस्तान स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसका अर्थ गुलाम देश होगा। जिसे मंजूर कर लेनेपर स्वयं मुसलमान उसमें रहना पसन्द नहीं करेंगे। कांग्रेस देशका विभाजन हर्गिज न होने देगी। कांग्रेस का लक्ष्य संयुक्त एवं संगठित भारत है।" नेहरूजीने अपने एक और भाषणमें यह कहा था कि—"हम जो भारतके विभाजनके विरुद्ध हैं, इसका कारण संयुक्त भारतके सम्बन्धमें कोई भावुकतापूर्ण पक्षपात नहीं है। हम प्रगतिशील आधुनिक विचारोंके कारण अखंड भारतके समर्थक हैं। विभाजित भारत कमजोर राज्य होगा, जैसे कि ईराक और ईरान हैं, जो पूर्ण स्वतंत्र राज्य नहीं है और बड़े राज्योंकी दयापर आश्रित हैं। पाकिस्तान साम्प्रदायिक समस्याका हल नहीं है। दोनों ही में फिर भी अल्पसंख्यक रहेंगे ही। फिर देशका विभाजन धर्मके आधारपर नहीं हो

सकता। लीग केवल उन क्षेत्रोंके विभाजनकी मांग कर सकती है, जहां मुसलिम बहुमत बहुत अधिक है। याद रहे कि इसका अर्थ पंजाब और बंगालका भी विभाजन है। पंजाब और बंगाल में जहां गैर-मुसलिम बहुमत है, उसे आप पाकिस्तानके साथ चलने को बाध्य नहीं कर सकते। यदि मुसलमान विभाजनपर अड़ ही जायेंगे, तो वे रोके नहीं जा सकते। लेकिन विभाजनसे किसीका हित न होगा, मुसलमानोंका भी नहीं।'

नेताजी सुभाष बोस और नेहरूजी

आज़ाद हिन्द फौजके मुकदमे

नेताजी सुभाषचन्द्र बोसने जापानसे मिलकर पूर्वमें जो आजाद हिंद सरकार और फौज खड़ी की थी, जापान के युद्धमें आत्म-समर्पणके पश्चात् उनकी अवस्था बड़ी विकट हो गयी। आजाद हिंद फौजको लेकर नेताजी 'दिल्ली चलो' के नारेके साथ भारतकी पूर्वी सीमा तक ही नहीं गये थे, उस फौजने भारत की सीमाके भीतर भी प्रवेश किया था। परन्तु पीछे सामग्री आदि ठीकसे न पहुँच सकनेसे उसको पीछे हट जाना पड़ा था। युद्ध-समाप्तिके पश्चात् जब उस फौजके लोग भारत लौटने लगे, तब उनको भारी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा। उनपर मुकदमे चलानेकी तैयारियाँ की जाने लगीं और कितनों ही को सजाएँ भी मिलीं। विपत्तिमें पड़े हुए उन लोगोंकी रक्षा और सहायताके लिये नेहरूजीने जैसे जेलसे छूटते ही सर्वप्रथम आवाज उठानेका साहस किया था, वैसे ही पीछे उस फौजके कप्तान शाहनवाज, कप्तान सहगल और ले० ढिल्लन आदिके मुकदमोंकी पैरवीके लिये उन्होंने कांग्रेसको तैयार किया और अपना सारा ध्यान और शक्ति लगा दी थी। जो नेहरूजी पचीस वर्ष पहले बैरिस्टरी करना

त्याग कर स्वराज्य-प्राप्तिके संग्राममें पड़ गये थे, उन्होंने ही उनके मामलेकी कोर्ट मार्शलके सामने पैरवी करनेके लिये श्रीयुत भूलाभाई-देसाई, बैरिस्टर आसफअली आदिके साथ बैरिस्टरीकी पोशाक एक बार फिर स्वयं भी पहन कर फौजी न्यायालयके स्थान लाल किलेमें उपस्थित होनेमें कुछ भी हिचकिचाहट नहीं की थी। पीछे तो उन आजाद हिंद फौजवाले देशभक्तोंकी सहायता पर स्वयं कांग्रेसके खड़े हो जाने पर उनके पक्षमें समस्त देशके भीतर असाधारण लोकमत जाग्रत हो गया था, किन्तु उनके पक्षमें सर्वप्रथम जोरदार आवाज उठानेवाले हमारे तेजस्वी नेता पं० जवाहरलाल नेहरू ही थे। नेहरूजी और नेताजी सुभाष बोसमें उस समय कितना भारी मतभेद था, जब सुभाष बाबूने भारतमें रहनेपर कांग्रेसकी नीतिका विरोध करनेके लिये फारवर्ड ब्लाक नामसे अपनी एक अलग संस्था स्थापित कर डाली थी, यह तो सभीको मालूम है। किन्तु पीछे जर्मनी और जापानमें जाकर जब आजाद हिंद फौज खड़ी कर नेताजीने भारतको अंग्रेजोंके चंगुलसे छुड़ानेके लिये उद्योग आरम्भ किया, तब वे महात्मा गांधी और नेहरूजीके नेतृत्व की सराहना ही नहीं करते थे, सिंगापुरसे उन्होंने आजाद हिंद फौजके प्रधान सेना-नायककी हैसियतसे रेडियो पर बोलते हुए एक बार यों कहा था—"हमारे राष्ट्र-पिता महात्माजी ! भारतको स्वतंत्र करनेके इस पवित्र युद्धमें हम आपके आशीर्वाद और शुभ-कामनाकी याचना करते हैं।" स्वयं महात्माजीने भी एक अवसर पर यह कहा था—"सुभाष बाबूके साथ मेरा सम्बन्ध सदैव पवित्र-

तम और सर्वोत्तम रहा है। बलिदानकी उनकी योग्यताको मैं सदैव जानता रहा हूँ। लेकिन उनकी संगठनकी योग्यता, सैनिककी सी योग्यता और साधन जुटानेकी क्षमताका पूरा ज्ञान तो मुझे तब हुआ, जब वे भारतसे भाग निकले थे।" नेताजीकी फौजके एक परम प्रतिष्ठित मेजर-जेनरल शाहनवाज खाँने अपने मुकद्दमेसे छुटकारा पानेके पश्चात् अपने एक विचारपूर्ण लेखमें नेताजीकी निःस्वार्थताका बखान करते हुए लिखा था कि, बृहत्तर पूर्वी एशिया की एक कान्फरेंसमें जब जापानके प्रधान मंत्री जेनरल तोजोने अपने भाषणमें यह कहा था कि नेताजी स्वतंत्र भारतके सर्व-सर्वा होंगे, तब नेताजी उठ खड़े हुए और जेनरल तोजोसे बोले थे कि—"आपको ऐसी बात कहनेका कोई अधिकार नहीं है। कारण, भारतमें कौन क्या होगा, यह निश्चय करनेका अधिकार पूर्णतया भारतकी जनताको होगा। मैं तो भारतका एक तुच्छ सेवक हूँ और वस्तुतः जो लोग भारतके सर्वेसर्वा बननेके अधिकारी हैं, वे हैं महात्मा गांधी, मौलाना अबुल कलाम आजाद और पं० जवाहरलाल नेहरू।"

पं० जवाहरलाल नेहरूका सुभाष बाबूके प्रति जेलसे छूटनेके पश्चात् क्या विचार था, यह शिमलामें १ जुलाई १९४५ ई० को एक प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने प्रकट किया था। पत्र-प्रतिनिधिने उनसे प्रश्न किया कि सुभाषचन्द्र बोसके सम्बन्धमें आज आपके विचार क्या हैं। नेहरूजीने इसके उत्तरमें कहा—"मेरे विचार आज भी वही हैं, जो १९४२ के आरम्भमें मैंने

कलकत्तेमें इसी प्रकारके प्रश्नके उत्तरमें प्रकट किया था। तब मैंने कहा था कि यदि सुभाषचन्द्र बोस जापानकी सरकारके तत्वावधान में भारत आयेंगे, तो मैं उनके विरुद्ध लड़ूंगा, क्योंकि तब उनका भारत आना भारतके भविष्यके लिये खतरनाक हुआ होता। किन्तु जापानकी लड़ाईके बाद यदि सुभाषचन्द्र बोस भारत आयें, तो उनके प्रति कोई प्रति-शोधात्मक नीति काममें लाना ठीक नहीं होगा। यह तो बात ही दूसरी है कि किन शर्तोंके भीतर उन्हें भारत आने देनेकी इज़ाजत दी जा सकेगी। कोई भारतीय नेता किसी दूसरे भारतीय नेताके प्रधान उद्देश्यकी उपेक्षा नहीं कर सकता और सुभाषचन्द्र बोसके सम्बन्धमें मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उनका प्रधान उद्देश्य 'भारतकी स्वतन्त्रता' था।" जब महात्मा गांधी पहले-पहल आजाद हिंद फौजके कैदियोंसे मिले थे, तो उसके दूसरे दिनकी प्रार्थना-सभामें उन्होंने यह कहा था—"कल से मेरे मनमें जो ख्याल उठ रहे हैं, सो मैं आपसे कहना चाहता हूँ। हिन्दुस्तानने आजाद हिंद फौजके छूटे हुए लोगोंका शाहीशान से स्वागत किया है। ऐसा लगता है कि जनताकी भावनाके उठते ज्वारमें सब कोई बह गये। लेकिन मुझे साफ-साफ यह कबूल कर लेना चाहिये कि इस तरहकी विवेक-रहित पूजामें मैं शरीक नहीं हो सकता। मैं आजाद हिंद फौजकी, और नेताजी बोसकी कारगुजारी, कुरबानी और देश-प्रेमकी सराहना करता हूँ, लेकिन उन्होंने जिस तरीकेको अपनाया था, उससे मैं सहमत नहीं हो सकता। कांग्रेसने पिछले पचीस सालोंसे जो तरीका अपना रखा

है, उससे इसका मेल नहीं बैठता।" आगे चलकर महात्माजीने यह भी कहा—"आजाद हिंद फौजके नजरबन्द लोगोंसे मिलना मेरे लिये शुद्ध कर्त्तव्य रूप था। उनसे मिलकर मुझे बहुत ही सन्तोष हुआ और उन्होंने भी जिस प्रेमसे मेरा स्वागत किया, उसे मैं कभी भूल नहीं सकूंगा। उनके इस स्वागतका मैं यह मतलब लगाता हूँ कि उन्होंने मुझे देशका एक निष्ठावान सेवक माना है। नेताजी मेरे लिये मेरे पुत्रके समान थे। स्व० देशबन्धु दासके नेतृत्वमें काम करनेवाले एक होनहार कार्यकर्त्ताके रूपमें मैंने पहले-पहल उनको जाना था। आजाद हिंद फौजके लिये उनका आखिरी संदेश यह था कि परदेशमें वे हथियारोंसे लड़ रहे हैं, लेकिन हिन्दुस्तान लौटनेपर उन्हें कांग्रेसके नेतृत्वमें अहिंसाका सिपाही बनना है और उस नाते देशकी सेवा करनी है। हिन्दुस्तानके लिये आजाद हिंद फौजका संदेश यह नहीं है कि आपसी झगड़ोंको मिटानेके लिये हम हथियार चलानेके तरीकोंको अपनायें—क्योंकि उसकी आजमाइश हो चुकी है और वह कच्चा साबित हुआ है—बल्कि संदेश तो यह है कि अपने बीच अहिंसा, एकता, मेलजोल और संगठनको बढ़ायें। जो कि आज़ाद हिंद फौज अपनी तुरत की मुरादोंको पूरा नहीं कर पायी, तो भी उसने बहुत-सी ऐसी बातें की हैं जिनके लिये उसे नाज़ (गर्व) हो सकता है। हिन्दुस्तानके सभी धर्मों और सभी कौमोंके लोग एक ही झंडेके नीचे एकत्र हुए और कौमी या उस ढंगकी दूसरी किसी भी संकुचित भावनासे दूर रहकर वे सब लोगोंमें एकताकी भावना पैदा कर सके, यह उसका

बड़े-से-बड़ा काम था हम सबको उसका अनुकरण करना चाहिये। अगर उन्होंने लड़ाईके जोशमें ही यह सब किया हो, तो उसकी बहुत कीमत नहीं। शांतिके दिनोंमें भी यह चीज इसी तरह चलनी चाहिये। इसमें शक नहीं कि यह काम ज्यादा ऊँचा और ज्यादा मुश्किल है। इसके लिये जरूरत इस बातकी है कि हम अपने भीतर गीतामें कहे गये स्थित-प्रज्ञके गुणोंका विकास करें। तलवारकी ताकतसे सत्याग्रहकी ताकत कहीं ज्यादा जोरदार है आजाद हिन्द फौजके लोगोंसे मैंने यह बात कही और उन्होंने खुशीके साथ मुझसे कहा कि वे इस चीजको समझ चुके हैं और अबसे आगे वे कांग्रेसके झंडेके नीचे अहिंसाके सच्चे सिपाही बन-कर हिन्दुस्तानकी सेवा करनेकी कोशिश करेंगे। उनकी यह बात सुनकर मुझे भी खुशी हुई।” कहनेकी आवश्यकता नहीं कि नेहरूजी तथा कांग्रेसके अन्य सभी नेताओंका भी आजाद हिंद फौजके सम्बन्धमें यही भाव था।

आजाद हिन्द फौजके लोगोंके प्रति लोकमत जागृति करनेमें नेहरूजीको इतनी अधिक सफलता हुई कि कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटी से उन्होंने दो प्रस्ताव पास कराये थे। ये प्रस्ताव कमेटीकी उस बैठकमें पास किये गये थे, जो १९४५ में ७ से ११ दिसम्बर तक हुई थी। एक प्रस्ताव इस आशयका था—चूंकि आजाद हिंद फौजके लोगोंकी कानूनी पैरवीके लिये नियुक्त की गयी कमेटीके बाद भी उनके सम्बन्धकी कितनी ही समस्याएँ और हैं, इसलिये एक और कमेटी नियुक्तकी जाती है, जो

'आजाद हिंद फौज जाँच और सहायता कमेटी' कहलायेगी इस कमेटीका काम उन लोगोंके सम्बन्धमें सूचनाएँ प्राप्त करना और उन्हें आवश्यक सहायता पहुँचाना होगा। यह कमेटी आजाद हिंद फौजकी सेवामें मरे हुए लोगोंके आश्रितोंके सम्बन्धमें भी पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी व्यवस्था करेगी। उनको सहायता प्रदान करनेका तरीका, जरूरी और तात्कालिक उद्देश्योंके लिये छोड़ कर, उनके लिये उत्पादनके कार्यकी व्यवस्था करना होगा। इस कमेटीके अध्यक्ष सरदार पटेल बनाये गये थे और सदस्योंमें सर्वप्रथम नाम नेहरूजीका था। परन्तु वर्किङ्ग कमेटी ने इसके साथ ही अपनी इसी बैठकमें एक प्रस्ताव इस आशयका भी पास किया था,—"यद्यपि कांग्रेस उस आजाद हिंद फौज द्वारा प्रदर्शित बलिदान, अनुशासन, देशभक्ति, वीरता और एकताकी भावनाके लिये अवश्य गर्व अनुभव करती है, जो श्री सुभासचन्द्र बोस द्वारा विदेशोंमें अभूतपूर्व अवस्थाओंमें विदेशोंमें संगठित की गयी थी और यद्यपि कांग्रेसके लिये यह ठीक और उचित है कि वह उस संगठनके उन लोगोंके मामलोंकी पैरवी करे, जिन पर मुकदमे चल रहे हैं और उसके उन लोगोंकी सहायता करे, जो कष्टमें हैं। पर कांग्रेसजनोंको यह भूलना नहीं चाहिये कि उनकी सहायता और सहानुभूतिका अर्थ यह कदापि नहीं कि कांग्रेस किसी प्रकार अपनी उस नीतिसे हट गयी है, जो उसने शांतिपूर्ण और उचित साधनोंसे स्वराज्य प्राप्त करनेके लिये बना रखी है।" स्वयं नेहरूजीने भी यह कहा था कि कांग्रेस द्वारा निर्धारित

आजाद हिंद रक्षा-कमेटीका विशेष कार्य उन लोगोंकी रक्षा करना है, जिन पर मुकदमा चलेगा। लेकिन हम लोगोंको स्वभावतः आजाद हिंद फौजके सभी सदस्योंके भाग्यकी चिन्ता है। उस फौजके जो सदस्य मर गये हैं अथवा जो काम करने योग्य नहीं रहे हैं, उनकी हम लोगों पर विशेष जिम्मेवारी है।

नेहरूजी द्वारा लोकमत जाग्रत किये जानेके पूर्व आजाद हिंद फौजके कितने ही लोगोंको सरकारके हाथों कितने ही प्रकारकी यंत्रणाएँ झेलनी पड़ी थीं, पर जब कांग्रेस उस फौजके आदमियों की मदद पर खड़ी हो गयी, तब दिन पर दिन उनके कष्टों और शिकायतोंमें कमी होती गयी और जिन पर कोर्ट-मार्शलमें मामले चलाये गये, उनकी पैरवी देशके नामीसे नामी वकीलोंने की। आजाद हिंद फौजके एक-दो को छोड़, बाकी सभी आदमियोंने अपने मामलेकी पैरवी कांग्रेसकी रक्षा-कमेटी द्वारा करानेके पक्षमें राय प्रकट की थी और यद्यपि मुसलिम लीगने भी मुसलिम मेम्बरोंकी पैरवी करनेके लिये अपनेको तैयार बताया था, पर एक-दो के सिवा उस साम्प्रदायिक संस्थाकी सहायता लेनेके लिये कोई तैयार नहीं हुआ था। कांग्रेसको आजाद हिंद फौजके लोगोंकी पैरबी पर देख सरकारको भी अपनी नीति अन्तमें यह बनानी पड़ी थी कि जिन आदमियोंके विरुद्ध युद्ध-कैदियोंके प्रति निर्दयता एवं पाशविकताके अपराध करनेका अभियोग है, उनके विरुद्ध ही मुकदमे चलाये जायँगे और किसी पर केवल इसलिये कोई कार्रवाई नहीं की जायेगी कि वह फौजमें भर्त्ती था। पहला और सबसे

महत्वपूर्ण मामला वह था, जो आजाद हिंद फौजके मेजर-जेनरल शाहनवाज, कप्तान सहगल और ढिल्लन पर चलाया गया था। इनको छोड़ देनेके लिये देश भरमें विराट प्रदर्शन हुए थे और स्वयं नेहरूजीने भारतके प्रधान सेनापति जेनरल सर आचिनलेकसे मिल कर आजाद हिंद फौज वालोंके सम्बन्धमें नरम नीति काममें लानेका अनुरोध किया था। मामला नियमपूर्वक चला और अन्तमें कोर्टमार्शलने तीनों अभियुक्तोंको अपराधी ठहराते हुए आजीवन कालापानीकी सजा दी थी। पर वह सजा सुनायी नहीं गयी और न किसी पर प्रकट ही की गयी, क्योंकि कोर्टमार्शल की दी हुई सजा जब तक प्रधान कमाण्डर द्वारा स्वीकार न कर ली जाय, वह सुनाई नहीं जाती। जेनरल सर आचिनलेकने कोर्ट-मार्शलके फैसले पर विचार कर कालापानीकी सजा तो रद्द कर दी, किन्तु सेनासे उनके बर्खास्त किये जाने और बकाया बेतन तथा अलाउंसकी जब्तीका हुक्म बहाल रखा। इस तरह वे तीनों आदमी ३ जनवरी १६४६ को छोड़ दिये गये और उनके छूट जाने पर देश भरमें असाधारण प्रसन्नता प्रकट की गयी। उस अवसर पर नेताजी सुभाषबोसके कलकत्तेके एलगिन रोड स्थित घरसे ६ जनवरीकी रातको जो तीन तार भेजे गये थे, उनमेंसे एक तो उन छूटे हुए तीनों व्यक्तियोंके नाम और दूसरा पैरवी कमेटीके नाम बधाई सूचक था। तीसरा तार पैरवीके लिये सबसे अधिक उद्योगी पं० जवाहरलाल नेहरूके नाम इस आशयका था,—"देश को जाग्रत करनेके आपके प्रारम्भिक प्रयाससे ही इन लोगोंकी जीवन-रक्षा हुई हैं। जय हिंद।" इसमें सन्देह नहीं कि नेहरूजी ने आजाद हिन्द फौजके अभियुक्तोंको छुड़ानेमें देशमें इस प्रश्नको लेकर जैसा जाग्रत लोकमत तैयार कराया, उससे नेहरूजीकी महानता सारे संसारमें फैल गई।

एशियाई सम्मेलन और नेहरूजी

"एशियामें एक नया जीवन लहरें मार रहा है और एक पुराना युग समाप्त हो रहा है। अब एक नया युग आरम्भ हो रहा है। अब सदियों बाद फिर भारत अपने पड़ोसी देशों और मित्रोंके लिये अपने दरवाजे खोल रहा है, जिससे वह अपनी इस प्राचीन भूमिपर उन सब देशोंके प्रतिनिधियोंसे मिलकर उनके साथ फिरसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर सके। शान्ति, स्वतंत्रता और प्रगतिके हेतुको सामने रखते हुए इस दिशामें पहिला कदम उठाते हुए भारतवर्ष अपनेको गौरवान्वित अनुभव करता है। इस सामान्य हेतुसे प्रेरित होकर एशियाके विविध भागोंसे बहुतसे महत्वपूर्ण व्यक्ति हमारे देशमें आरहे हैं। पिछले कटु अनुभवने उनको सिखला दिया है कि कोई भी एक देश अन्य देशोंसे सहयोग किये बिना न तो अपनी रक्षाही कर सकता है और न अपनी स्वतन्त्रताको ही कायम रख सकता है—"

एशियाई सम्मेलनके अवसरपर पंडित जवाहरलाल नेहरूका संदेश भारतकी राजधानी—पुराने किले-में जहाँ भारतीय इतिहास का उदय हुआ था और जो अपने गर्भमें इतिहासके न जाने

कितने मीठे और कड़वे तथ्योंको छिपाये हुए है, एशियाई सम्मेलन ता० २३ मार्च १९४७ से आरम्भ हुआ। यह सम्मेलन भारत तो क्या समस्त एशियामें अपने ढंगका एक ही हुआ। दिल्ली अपने सम्मान्य अतिथियोंका स्वागत करनेके लिये तथा उनके हृदयोद्गारों को सुननेके लिये उलट पड़ा था। सम्मेलन जिस वाताकरणमें प्रारंभ हुआ, वह अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक था। सम्मेलनके प्राण पंडित जवाहरलाल नेहरूके निमंत्रणका एशियाई देशोंकी ओर से आशातीत प्रत्युत्तर मिला—ऐसा, शायद जिसकी कल्पना स्वयं पंडित जवाहरलाल नेहरूने भो न की होगी। इस अवसर एशिया ही नहीं वरन् संसारके एकमात्र महानतम व्यक्ति महात्मा गांधी भी अतिथियोंके विशेष आग्रहपर चन्द मिनिटोंके लिये पधारे थे। लार्ड माउन्ट बैंटनने बड़े ढंगसे उन्हें पहिली बार मुलाकात करनेके लिये दिल्ली बुलाया था। महात्मा गांधीकी आदिसे अन्त तक सम्मेलनमें सम्मिलित न होनेकी असमर्थताका पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा सम्मेलनकी अध्यक्षा श्रीमती सरोजिनी नायडू तकने अपने भाषणोंमें बड़े ही मर्म स्पर्शी शब्दोंमें वर्णन किया था।

एशियाई देशोंको एक दूसरेके निकट लानेकी कल्पना कई वर्षों-से विचार जगतमें भ्रमण कर रही थी, किन्तु उसके व्यवहारिक रूप धारण करनेके लिये अनुकूल समय और परिस्थितिकी आवश्यकता थी। वह अनुकूल समय भी आया और दिशामें पहिला कदम उठानेका गौरव भारतवर्षको ही प्राप्त हुआ। परम देशभक्त स्वर्गीय देशबन्धु श्री चित्तरंजन दासकी यह प्रथम प्रिय कल्पना

थी। इस ऐतिहासिक अवसरको देखनेके लिये काश वे जीवित होते! एशियाका भूतकाल महान था, किन्तु पिछली कुछ शताब्दियों से वह पश्चिमके लोलुप राष्ट्रोंकी अर्थ लिप्साका शिकार हुआ और राजनीतिक बन्धनोंमें जकड़ा जाकर शोषणकी क्रीड़ास्थली बन गया।

अब एशियाकी कालरात्रिका अन्त हो गया है। उसके राजनीतिक बन्धन या यो टूट चुके हैं या टूट रहे हैं। वह अब अपनी जड़ता और स्थिरताको छोड़कर आगे कूच करनेके लिये कटिवद्ध हो रहा है। नेहरूजीके शब्दोंमें "अब वह जमाना गुजर चुका जब ऐशियाई देश पश्चिमी राष्ट्रोंकी चांसलरीमें आवेदन कर्त्ताके रूपमें खड़े नजर आते थे। अब उन्हें शतरंजके मुहरे नहीं बनाया जा सकता। उनका अपना अस्तित्व और व्यक्तित्व होगा और वे विश्वकी रचना और निर्माणमें अपनी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओंके अनुसार भाग लेंगे।

वह कौनसा आदर्श है जो नव जागृत एशियाको प्रेरित और अनुप्राणित कर रहा है? और जिसकी अभिव्यक्ति नेहरूजी, श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा अन्य एशियाई प्रतिनिधियों और नेताओंके भाषणोंमें हुई है। वह है एक मात्र—विश्व ऐक्यका आदर्श! एशियाई देशोंके नव जागरणमें राष्ट्रवादका अपना स्थान रहा है किन्तु जिस प्रकार यह राष्ट्रवाद विश्व हितका अविरोधी रहा है उसी प्रकार यह ऐशियाई संगठन भी रहेगा। संयुक्त एशिया विश्व एकता और विश्व सहयोगके लिये कार्य करेगा।

वह विश्वसे शोषण, अन्याय और अत्याचारका उन्मूलन करनेकी कोशिश करेगा और इन विषमताओंसे शून्य विश्वमें ही शान्ति-वास्तविक शान्ति-सुरक्षित हो सकती है। अतः एशियाकी एकता और संगठनसे किसीको भयभीत अथवा आशंकित होनेकी आवश्यकता नहीं। एशिया अपना मैत्रीका हाथ आगे बढ़ा रहा है और यह अन्य महाद्वीपके राष्ट्रों पर निर्भर करता है कि उसके इस हाथको ग्रहण करें और समान उत्कर्षके ठोस आधार पर सह-योग करनेको उद्यत हों।

एशियाई सम्मेलन द्वारा एशियाकी एकताकी नींव रखी जा चुकी है, किन्तु एशियाई देशोंका पथ अब भी कंटकाकीर्ण है। उनको पुनर्निर्माणका महान काम करना है, जैसा कि पंडित जवा-हरलाल नेहरूने कहा है—"उन्हें जन साधारणकी ओर ध्यान देना होगा, और उनके चतुर्मुखी विकासका मार्ग प्रशस्त करना होगा, जिनकी अब तक बहुत ही उपेक्षा की गई है।" श्रीमती नायडूके शब्दोंमें "उन्हें जनसाधारणका शोक, दुःख, शोषण, कष्ट, दरिद्रता, अज्ञान, विनाश और मृत्युके मुखसे उबारना होगा, तभी वे नये विश्वकी रचना करनेमें अपना उचित योग दे सकेंगे।" जनसाधा-रणका उत्थान ही प्रगतिकी कसौटी होगी। इसी महत्वपूर्ण लक्ष्यको सामने रखकर ही पंडित जवाहरलाल नेहरूने एशियाई सम्मेलनकी बुनियाद डाली।

२३ मार्च १६४७ को एशियाई सम्मेलनका उद्घाटन भारतके प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरूके कर कमलों द्वारा हुआ।

इस ऐतिहासिक एवं अभूत पूर्व सम्मेलनमें एशियाके प्रायः समस्त राष्ट्रोंके प्रतिनिधि आये थे। सभीने एक दूसरेका खुले हृदयसे अभिवादन किया। यह पहला ही अवसर था जब संसारकी आधीसे भी अधिक जनताके लगभग २५० प्रतिनिधि अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक उन्नतिके साधनों पर विचार करनेसे लिये भारतकी पवित्र भूमिमें एकत्रित हुए थे।

एक विशाल रंगमंच पर एशियाका विशाल मानचित्र दमक रहा था और उसके दोनों कक्षोंमें विभिन्न देशोंकी रंग-बिरंगी पताकाएँ थीं। अध्यक्षका पद भारतकी कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडूने ग्रहण किया था जो इस बातका द्योतक था कि भारतवासी ही नहीं, एशियावासी भी स्त्री-जातिका कितना सम्मान करते हैं।

उपस्थित व्यक्तियोंमें पटियाला तथा बीकानेरके महाराजाओंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी उपस्थिति इस बातकी परिचायक थी कि एशियाकी सर्वाङ्गीण समृद्धिमें भारतका नरेश-मण्डल भी सहायक बननेको उद्यत है। भारतके तत्कालीन प्रधान सेनापति सर क्लाड आर्किनलेक भी सम्मेलनमें उपस्थित थे।

सम्मेलन २३ मार्चकी शामको ५ बजे आरम्भ हुआ। ज्योंही विशाल तोरणके नीचेसे विभिन्न देशोंके प्रतिनिधियोंने पण्डालमें प्रवेश किया कि सारा मण्डप गगनभेदी करतल ध्वनिसे गूंज उठा।

श्रीमती सरोजिनी नायडूने अध्यक्षपद ग्रहण करते ही बड़े मनोरंजक ढंगसे पंडित जवाहरलाल नेहरूको मंचपर लाकर सहायता प्रदान करनेको कहा। नेहरूजीके मंचपर आते ही पुनः

गगनभेदी करतल ध्वनि हुई। अध्यक्ष महोदयाने विभिन्न देशोंके प्रतिनिधियोंके नेताओंके नाम लिये और उन्होंने मंचपर आकर अध्यक्ष महोदयासे हाथ मिलाया तथा जनताको इस रूपमें अपना दर्शन और परिचय भी दे दिया।

इसके बाद सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष सर श्रीरामने एक संक्षिप्त किन्तु सुन्दर भाषणके द्वारा प्रतिनिधियोंका स्वागत किया। उन्होंने कहा कि—

"यह सम्मेलन एक महान भावी कल्याणका सूचक है और ऐसे ही अनेक भावी सम्मेलनोंका अग्रदूत है। सम्मेलन एशियाई राष्ट्रोंकी सरकारोंके तत्वाधानमें नहीं हो रहा है, बल्कि सभी देशोंने अपनी-अपनी समस्याओंपर विचार करनेके लिये स्वेच्छासे अपने प्रतिनिधि भेजे हैं। आशा है कि सम्मेलन द्वारा किये गये निर्णय गैर सरकारी होते हुए भी विभिन्न एशियाई राष्ट्रोंकी सरकारोंको ग्राह्य और मान्य होंगे।

"एशियाके विभिन्न देशोंके लिये मिलकर काम करनेको एक महान क्षेत्र पड़ा है। उनकी आवश्यकताएँ एक न होते हुए भी समान हैं, इसके लिये उसके लिये किये जानेवाला उद्योग भो समान ही होना चाहिये। आशा है कि विभिन्न देशोंके प्रतिनिधि सम्मेलनके बाद भी भारतमें कुछ दिन रहेंगे और यहाँके लेखकों, कलाकारों, सामाजिक तथा धार्मिक नेताओं आदिसे विचार विनिमय करेंगे।"

इसके उपरान्त अध्यक्ष महोदयाने पंण्डित जवाहरलाल नेहरूसे सम्मेलनका उद्घाटन करनेके लिये कहा और नेहरूजीने कुछ समयके लिये हिन्दुस्थानी और बादमें अङ्गरेजीमें भाषण दिया। हिन्दुस्तानीमें बोलते हुए नेहरूजीने कहा—

"किसकी पुकार सुनकर आप यहां दूर-दूरसे आये हुए हैं? डरते-डरते हमने आपके पास दावतनामा भेजा था, लेकिन उसके जो जवाब मिले, उनसे पता चल गया कि आपको दावतनामोंकी दरकार नहीं थी। आपके दिलोंमें एक पुकार थी और वह पुकार यह थी कि हम सब एक साथ एक जगह मिलें। हमारा यह मिलना वक्तका तकाजा था। तवारीखमें आज तक बड़े-बड़े सम्मेलन हुए, लेकिन इस तरहका सम्मेलन पहिले कभी भी नहीं हुआ। यह पहला मौका है—बिलकुल ही पहला मौका है—जब एशिया के करीब-करीब हर राष्ट्रके लोग यहाँ जमा हुए हैं। कोई न कोई बात थी जो उन्हें यहाँ ले आई। कोई न कोई ख्वाब था जिसे देख कर वे यहाँ आये, वरन् हमारी दावतमें क्या ताकत थी जो उन्हें खींच लाती!

"एक जमाना खत्म हो रहा है और दूसरा शुरू हो रहा है। बीचमें हम खड़े हैं, और यह कान्फरेन्स उस नये जमानेकी ओर अगला कदम है। एशिया आज पहली बार अपने कदमपर खड़ा हो रहा है, लड़नेके लिये नहीं, बल्कि अपनी पुरानी शानसे मिल-जुल कर दुनियाको आगे बढ़ानेके लिये। हम और आप अपने मुल्कोंमें छोटे-छोटे झगड़ोंमें पड़े हुए हैं, लेकिन अगर आप दूर तक

देखें तो आप पायेंगे कि उनके पीछे बड़े-बड़े इन्कलाब हो रहे हैं, दुनिया बदल रही है, एशिया बदल रहा है, सैकड़ों बर्षोंसे यह बिलकुल पड़ा रहा है, उसके हाथ पैर अब जरा-जरा खुल रहे हैं। ऐसी हालतमें किसकी हिम्मत है, जो इसका सामना करे। एशियामें ऐसी ताकतें खुल रही हैं, जो छोटोंको मजबूत बनाती हैं। आज हम एक चीजकी तलाशमें मिले हैं और मुझे उम्मीद है कि उसकी तलाशमें हम दूर तक पहुँच जायेंगे। मुबारक हो आपका आना और मुबारक हो नये सालका दिन! याद रहे कि हमारे यहाँ आज ही से नया साल आरम्भ होता है। यह नये सालका ही आरम्भ नहीं—बल्कि नये जमानेका आरम्भ है। हमें आपको सिर्फ एक दूसरेसे मिलना ही नहीं है, बल्कि हमें बड़े-बड़े काम भी करने हैं, बड़े-बड़े बोझ भी उठाने हैं। जब हमें बड़े-बड़े काम करने होते हैं तो हमें चाहिये कि हम छोटे-छोटे झगड़े भूलकर आसमान और तारोंको देखकर बढ़ें। तभी हमारा मिलना और ज्यादा मुबारक होगा।"

इसके बाद नेहरूजीने अंग्रेजीमें बोलना आरम्भ किया। आपने कहा—"आज हम अपने लम्बे अतीत पर दृष्टि डाल सकते हैं और उस भविष्यकी ओर देख सकते हैं, जिसका आज हमारी आँखोंके सामने एशियामें निर्माण हो रहा है। बहुत दिनों तक अंधेरेमें छिपे रहनेके बाद एशिया एक बार फिर एकाएक दुनियाकी आँखों में अहम बन गया है। अगर हम तवारीख पर नजर डालेंगे तो देखेंगे कि हमारा इस देशमें, जिसका कि मिस्र (Egypt) से

हमें याद दिलाती है कि आजादी उपहारकी शक्लमें नहीं मिला करती, उसे जीतना और हासिल करना पड़ता है। तुर्कीमें उसके महान नेताने एक नया जीवन ला दिया है और एशियाके रूसी प्रजावादी देशोंमें हमारे ही देखते-देखते बड़ी तीव्र उन्नति हुई है, और उनसे हमें बहुतसे सबक सीखने हैं। अफगानिस्तान, तिब्बत, नेपाल, भूटान, बर्मा और लङ्का हमारे बिल्कुल निकट हैं और उनसे हमें घनिष्ठ मित्रताकी आशा है। इसी प्रकार कोरिया, मंगोलिया, श्याम, मलाया और फिलीपाइन्ससे भी हमें अनेक आशाएँ हैं।

"इस प्रकार आप देखेंगे कि उत्तर पश्चिम, उत्तर पूर्व, पूर्व और दक्षिण पूर्व सभी ओरके देशोंसे भारतका घनिष्ठ सम्बन्ध टूट गये और भारत शेष एशियासे बिल्कुल अलग-सा हो गया। पुरानी सड़कें बन्द हो गयीं और समुद्री रास्ते केवल इंग्लैण्डके लिये खुले रहे। यही दशा एशियाके अन्य देशोंके साथ भी हुई। उनकी आर्थिक स्थिति यूरोपियन साम्राज्यवादके सूत्रमें बँध गई और संस्कृति तकके लिये वे यूरोपका मुंह ताकने लगे। वे अपने पड़ोसियोंको भूल गये जिनसे उन्होंने अतीतमें इतना पाया था। किन्तु आज यह एकाकीपन दूर हो रहा है और साम्राज्यवादका अन्त हो रहा है। स्वयं यह सम्मेलन इस बातका प्रमाण है कि इस एकाकीपनके रहते हुए भी हमारे हृदयोंमें मिलनकी एक गहरी इच्छा लहरें लेती रही है और यूरोपियन प्रभुताके नीचे दबी हुई भी क्रमशः बराबर प्रगति पथपर बढ़ती रही है। आज जब वह प्रभुता नष्ट हो रही है, हमारे चारों ओरसे जेलकी दीवारें टूट-टूटकर गिर रही

हैं और हम एक बार फिर पुराने मित्रोंकी हैसियतसे मिलनेके लिये एक जगहपर एकत्रित हुए हैं।

"हमारा ध्येय आक्रमणकारी नहीं है। लोग यह समझ रहे हैं कि हम अमेरिका या यूरोपके विरुद्ध एक अखिल एशियाई गुट बन्दी करते हैं। लेकिन मैं यह बता देना चाहता हूं कि हमारी ऐसी कोई योजना नहीं है। हमारी एकमात्र महान योजना सारे संसारमें शांतिकी वृद्धि करना और उसे समृद्धिशाली बना देना है। हम विदेशोंका काफ़ी मुंह देख चुके हैं। अब हम पैरों पर खड़े होना चाहते हैं और उन लोगोंके साथ सहयोग करना चाहते हैं जो हमसे सहयोग करनेको तैयार हैं। अब हम दूसरों के हाथके खिलौने बनना नहीं चाहते।

"परमाणु बमके इस युगमें एशियाको शान्तिकी स्थापनाके काममें अपना भाग पूरी तत्परताके साथ लेना होगा। जब तक एशिया अपना काम पूरा नहीं करेगा तब तक शान्ति नहीं हो सकती। आज हम अपने छोटे-छोटे झगड़ोंमें जरूर फंसे हुए हैं। लेकिन हमें विश्वास है कि एशियाका संसारकी शान्ति पर बड़ा गहरा असर पड़ेगा। हमें संयुक्त राष्ट्रसंघके इसी सिद्धान्तके सफलता पूर्वक कार्यान्वित होनेमें अवश्य ही सहायता देनी चाहिये।

"यह सम्मेलन कई कमेटियों और समूहोंमें बंट जायेगा। ये कमेटियाँ और समूह हमारे समान हितोंसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओंपर विचार करेंगे। मुझे इस बातकी आशा है कि यह

सम्मेलन एक ऐसी स्थायी एशियाई संस्थाका अग्रदूत बनेगा जो हमारी समान समस्याओंका अध्ययन करेगी, जो हमें एक दूसरेके और भी निकट लायेगी और एशियाई विषयोंकी पाठशाला बनेगी।

"हम संकीर्ण राष्ट्रीयता नहीं चाहते। राष्ट्रीयताका सभी देशोंमें होना आवश्यक है। किन्तु वह ऐसी नहीं होनी चाहिये जो आक्रमणकारी रूप ग्रहण करे या अन्तर्राष्ट्रीय उन्नतिके रास्तेमें रोड़ा अटकाये। एशिया अपनी मित्रताका हाथ यूरोप, अमेरिका और साथ ही साथ अफ्रीकामें कष्ट पानेवाले अपने भाइयोंकी ओर भी बढ़ाना चाहता है। हमें एक ऐसी मानवीय स्वतंत्रताके लिये काम करना है, जो सब लोगोंको सब जगहोंपर प्राप्त हो सके और जिसके विकासके लिये सबको पूर्ण अवसर प्राप्त हो।

"एशियाके महान निर्माताओं—श्री सनयात सेन, जगलुल पाशा और अतातुर्क कमालपाशा—के प्रयासके सुफल ही आज एशिया चख रहा है। इनके अलावा एक ऐसी भी महान आत्मा है जिसके श्रम और प्रेरणासे भारत आज स्वतंत्रताके द्वारपर पहुंच सका है। यह महान व्यक्ति—महात्मा गांधी—आज जनताकी सेवा करनेमें लीन है।"

नेहरूजीके भाषणके उपरान्त सम्मेलनकी अध्यक्षा श्रीमती सरोजिनी नायडूने अपना प्रभावशाली भाषण देते हुए एशियाके उत्थानका बहुत ही प्रभावशाली एवं कवित्वमय भाषामें उल्लेख

किया। उन्होंने सम्मेलनमें भाग लेनेके लिये आये हुए शिष्ट मण्डलके प्रति कहा—

"मैं अपने देशमें आपके आगमनका स्वागत करती हूं जिससे आप अपनी महानताको फिरसे याद कर सकें तथा हम और आप सम-विचार रख सकें। एशिया विश्वको मुक्ति देगा। एशिया शत्रुओंकी युद्धभूमि नहीं होगा, बल्कि वह विश्वके लिये मित्रोंका स्थान होगा। हम तथा आप विश्व तथा एशियाकी स्वतंत्रताके लिये एक समान अधिकार पत्र तैयार करें। मैं आपको अनन्त निद्रासे जगानेके लिये आह्वान करती हूं। मैं तुमसे पुकार कर कहती हूं कि मृत्यु कोई चीज नहीं है। हम एशियावासी विरोधों तथा कठिनायोंसे न घबरा कर अपने सम्मुख उपस्थित होनेवाली समस्त आपत्तियोंका सामना करते हुए साथ-साथ आगे बढ़ेंगे। हमारे धर्मका यह विश्वास है कि अच्छी वस्तुका अन्त नहीं होता।"

श्रीमती नायडूने आगे चलकर कहा—

"जब मेरे पिताकी मृत्यु समीप थी तो उनके अन्तिम शब्द थे—'मृत्यु तथा जन्म कुछ नहीं हैं। केवल एक आत्मा ही है जो जीवनको उत्थानकी ओर ले जाती है।'—इसीमें एशिया तथा भारतका इतिहास निहित है। हम आगे बढ़ते जाते हैं, जब तक कि हमें ऊपर चढ़नेकी सीढ़ी नहीं मिल जाती। हमें नक्षत्रोंकी ओर उठना चाहिये, हमारे इस उत्थानमें कौन वाधा डाल सकता

है ? हम चन्द्रमाके लिये नहीं पुकारते। हम तो उसे आकाशसे तोड़कर एशियाई स्वतंत्रताके हीरोंके बीच पहिनते हैं।"

अध्यक्षा महोदयाने एशियाई देशोंको संगठनकी शपथ लेनेको कहा, "जिससे आजका विध्वस्त विश्व दारुण दुःखों, पीड़ाओं गरीबी, निरक्षरता, बर्बादी तथा मृत्युसे बचाया जा सके। एशियाके लिये एक चीज़ है जो उसके समस्त राष्ट्रोंको मिलाती है। वह है—शान्तिका समान सिद्धान्त। यह शांतिका सिद्धान्त एक वीरका है, न कि पराजित हुए किसी व्यक्तिका।

"महात्मा गांधीने हमें सिखाया है कि विश्वकी मुक्ति, युद्ध, घृणा या क्रोधसे नहीं होगी बल्कि शांतिसे होगी—क्षमासे ही होगी। यह हमारे देश एशियाका प्राचीनतम सन्देश है। आज भारतने एशियाके अन्य देशोंको विश्वके लिये आशाके नये सन्देश पर विचार करनेके लिये बुलाया है। हमारे रीति-रिवाजों, खाद्य तथा अन्य तरीकोंकी भिन्नतासे एशियाका हृदय नहीं बांटा जा सकता। हमारे विभिन्न रीति रिवाजोंसे ही हमारी संस्कृतिका जन्म हुआ है। सामान्य तथा फीकी संस्कृति कौन चाहेगा ? कभी कभी संस्कृतिकी मित्रता भी वास्तविक एकता स्थापित करने-का साधन होती है। मै, महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा भारतीय जनता यही चाहती है।"

अध्यक्षा महोदयाके भाषणके बाद सर तेजबहादुर सप्रू, जनरल आग सान, अरब लीगके अध्यक्ष अब्दुल रहमान, चीनी

विद्यार्थी संघ, इन्डोनेशियन प्रजातन्त्रके अध्यक्ष आदिके संदेश पढ़े गये।

सन्देशोंकी समाप्तिके बाद सम्मेलनमें आये हुए प्रमुख प्रतिनिधियोंके भाषण हुए। सर्वप्रथम अफगान शिष्ट मण्डलके नेता डाक्टर अब्दुल मजीदने—जो काबुल विश्वविद्यालयके चांसलर हैं—बताया कि—

"कुछ वर्षोंकी स्थितिपर गौर करके यह आवश्यक जान पड़ता है कि यदि हमें जीवित रहना है तो यह जरूरी है कि हम सब मिल जुलकर रहें। इस वर्तमान सम्मेलनकी भांति विभिन्न स्थानोंपर वार्षिक सम्मेलन करनेसे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध सुधारे जा सकते हैं। अनन्त कालसे भारत तथा अफगानिस्तानके बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। हमारा विश्वास है कि सम्मेलनका कार्य सफल होगा तथा इससे हम अच्छा जीवन बितानेके योग्य हो सकेंगे।"

रूसी जनतन्त्र स्थित अरीमिनियाके शिष्ट मण्डलके नेताने अपनी भाषामें बोलते हुए बताया कि—

"हमारा देश एशियामें एक ऐसा देश है जिसे भारी मुसीबतें उठानी पड़ी हैं। अरमीनियाकी जनता जबतक रूसी जनतंत्रमें सम्मिलित नहीं हुई, तबतक वह बहुत ही पिछड़ी हुई रही। इसके पश्चात् हमारे देशके दुःखके दिन सदाके लिये समाप्त हो गये। उन्होंने एशिया तथा विश्वके देशोंसे अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के सम्बन्धमें अपने देशकी जनताकी इच्छाको प्रकट किया।"

अजरबैजानके शिष्टमण्डलके नेताने भी अपनी ही भाषामें भाषण देते हुए कहा—"एशियाके देश अपने जीवनकी आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नतिके लिये—जिससे वे विश्वकी अन्य संस्कृति तथा सभ्यताओंके स्तर तक उठ सकें—अपने देशकी स्वतन्त्रताकी प्राप्ति चाहते हैं और इसके लिये वे उतावले हो रहे हैं। यह बात हमारे देशके उदाहरणसे ही सिद्ध हो जाती है, क्योंकि हमारा देश रूसी क्रान्तिसे पहिले विश्वके पिछड़े हुए देशोंमें से था। आज हमारा देश प्रगतिकी ओर है। हमारे जनतंत्रमें काफी विश्वविद्यालय तथा अनुसंधान सन्बधी संस्थायें हैं। अजरबैजान की इस प्रगतिके साथ एशियाके अन्य देशोंका सम्पर्क स्थापित होना बहुत ही लाभप्रद है। मुझे पूर्ण आशा है कि सम्मेलन इस कार्यमें सफलता प्राप्त करेगा।"

भूटानके शिष्ट मण्डलके नेताने भी सम्मेलनके सफल होनेकी आशा प्रकट करते हुए कहा—"मैं अपने देशसे इस महत्वपूर्ण अवसरके लिये हिमाचलकी शीतल वायुके समान शुभ सन्देश लाया हूँ।"

बर्मी शिष्ट मण्डलके नेता श्री कजावमिन्त—जो रंगून हाईकोर्ट के एक जज हैं—ने अपने भाषणमें सन् १९३१ का उल्लेख किया जब कि वे भारतीय असहयोग आन्दोलन तथा गांधी इरविन पैक्ट के समय भारत ही में थे। उन्होंने बताया—

"भारत तथा बर्मा भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा सामीप्यकी दृष्टिसे एक दूसरेसे बंधे हुए हैं।" इसके बाद उन्होंने जनरल

आंगसानका एक सन्देश भी पढ़ा, जिसके द्वारा बर्मी सरकार तथा बर्मी जनताकी सम्मेलनके लिये शुभ कामनाएँ भेजी हैं। सन्देशमें कहा गया है कि एशियाके राष्ट्र अपने सामनेकी कठिनाइयोंका सामना करनेको जो अब तैयार हुए हैं, यह उसके लिये शुभ लक्षण हैं।

लङ्काके शिष्ट मण्डलके नेता श्री बन्दरा नायकने अपने भाषण में बताया कि "यह सचमुच एक बड़े सौभाग्यकी बात है कि हम ऐसे अवसर पर मिल रहे हैं जब कि दुर्दिनोंका अन्त समीप दिखाई देता है। स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् हम अपने दायित्वोंको ठीक समझ सकेंगे। तभी हम आध्यात्मिक हितोंकी बातें सोच सकेंगे। दरिद्रता, बीमारी तथा निरक्षरतासे मुक्ति पानेकी राह पर भी गौर कर सकेंगे और हम अपनी शक्तिके अनुसार सबको समान अवसर दे सकेंगे और भयसे मुक्ति पा सकेंगे। इतना ही नहीं, हम अपनी भाषा, साहित्य, तथा कलाकी प्रगतिके बारेमें भी सोच सकेंगे।"

"नये विश्वकी स्थितिको सुलझाना, एशियाके ही हाथोंमें होगा जो भावी संग्रामोंके अन्त करनेका एकमात्र आधार होगा। यदि एशिया स्वतन्त्र, शक्ति-शाली तथा संयुक्त हो जाय तो भावी युद्धोंका अन्त किया जा सकता है। परन्तु यदि वह संयुक्त नहीं रहेगा तो फिर विश्वके हितके लिये अधिक आशा नहीं की जा सकती। अतः हमारे लिये आवश्यक है कि हम एशियामें संगठन स्थापित करनेका भरसक प्रयत्न करें।"

चीनी शिष्ट मण्डलके नेता श्री चेंगचीन फूनने अपने भाषणमें कहा—"यह आवश्यक है कि यह सम्मेलन सफल हो, तथा हमारी आपसी बातचीतों और कारवाइयोंमें स्पष्टता तथा मैत्रीका वातावरण रहे। हमारा उद्देश्य एशियाई सीमाओं तक ही सीमित नहीं होना चाहिये। विश्व हमारा स्थल है। अतः हम सब एशिया निवासियोंका यह कर्त्तव्य है कि विश्वको खुशहाल बनानेके लिये हम सब अपना भरसक योग दें। हमारा उद्देश्य समस्त मानव जातिकी भलाई होना चाहिये। इसीसे एशियामें शान्ति हो सकेगी, तथा तभी विश्व, युद्धका अखाड़ा न बन कर हम सबका घर बन सकेगा।"

मिश्री शिष्ट मण्डलके नेता श्री मुस्तफा मोननने अपने भाषणमें बताया कि—"हमारे देशकी जनताकी आँखें इस विशाल देशकी राजधानी दिल्ली पर लगी हुई हैं, विश्वको एशियामें एक नया प्रकाश युग देखना है। हमें संगठित होकर अपनी बातोंकी रक्षा करनी चाहिये। हमारी मुक्ति एकतामें ही है।"

२४ मार्चका कार्यारम्भ चीनके एक सन्देशसे आरम्भ हुआ, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया था कि संसारकी मुक्तिका एकमात्र मार्ग महात्मा गांधीकी अहिंसा ही है।

इसके बाद जार्जियाके प्रतिनिधिने अपना एक संक्षिप्त भाषण दिया। इसके अनन्तर इन्डोनेशिया प्रजातंत्रके अध्यक्ष डाक्टर सोकर्नोका संदेश पढ़ कर सुनाया गया।

ईरानके प्रवक्ता डाक्टर गुलाम हुसैन सिद्दीकीने अपने भाषणमें भारत और ईरानके पुराने सांस्कृतिक सम्बन्धों पर सुन्दर प्रकाश डालते हुए भारतकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उनके बाद कज़ाकिस्तानके प्रतिनिधिने भी अपने देशका सन्देश सुनाया।

मलाया देशके प्रतिनिधिको भाषण देनेके लिये आमंत्रित करके श्रीमती सरोजिनी नायडू अस्वस्थ होनेके कारण अध्यक्ष-पदसे हट गयीं और उनके अनुरोध पर डाक्टर राधाकृष्णनने उनका स्थान ग्रहण किया।

मलाया, नेपाल, फिलस्तीन, स्याम और ताज़िकिस्तानके प्रतिनिधियों द्वारा भाषण दिये जानेके बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू मंडपमें आये और उनके आते ही दर्शकोंने उनका गगन-भेदी करतल-ध्वनिसे स्वागत किया।

नेहरूजीके मंच पर पहुँचते ही सर राधाकृष्णनने अध्यक्ष-पद त्याग दिया और उस पर नेहरूजी आसीन हुए। नेहरूजीकी अध्यक्षतामें तिब्बत, तुर्की तथा उजबेकिस्तानके प्रतिनिधियोंने मैत्रीके संदेश सुनाये और उज़बेक प्रवक्ताओंने नेहरूजीको अपने देशका लिबास पहनाया।

आजके अधिवेशनमें दो नये देशोंके प्रेक्षकोंने भाग लिया। वियेटनमी प्रेक्षकने अपने स्वतंत्रता संग्रामका उल्लेख करते हुए एशियाई देशोंसे घनिष्टतम सम्पर्ककी अपील की और सात अरब राज्योंका प्रतिनिधित्व करने वाले अरब संघके प्रेक्षकने भी कहा

है कि,—"वे भारतको शीघ्रसे शीघ्र स्वतंत्र देखना चाहते हैं, क्योंकि भारतकी स्वतंत्रता पर ही अरब राज्योंकी स्वतंत्रता निर्भर है।"

इसके बाद ही अरब महिला-आन्दोलनकी प्रवक्ता कुमारी करीमा सैयदने नेहरूजीकी अनुमति लेकर अपने भाषणमें बताया कि,—

"आपसी सहयोग स्थापित करनेके लिये इस सम्मेलनका आयोजन करने वालोंके प्रयासकी हम भारी सराहना करते हैं। भारत तथा मिस्र राष्ट्रीय जागृतिके बन्धनसे बंधे हुए हैं, वे दोनों स्वातन्त्र्य संघर्षमें साथ-साथ खड़े हुए हैं। युद्धके दौरानमें मिस्र मध्य पूर्वमें सैनिक कार्रवाइयोंका सबसे महत्वपूर्ण स्थल रहा है। मिस्रने मित्र राष्ट्रोंकी सहायता स्वतंत्रता मिलनेकी आशासे की। आज ब्रिटेन, भारत तथा मिस्रमें अपनी जो शानदार शक्ति बनाये हुए है, वह अब और आगे नहीं रह सकती। युद्धके समय अंग्रेज पूर्वी देशोंके सहयोगकी बात करते थे, परन्तु आज उनका रवैया कुछ और ही हो गया है। वे मिस्र तथा अन्य स्थानोंमें, गृह-युद्ध तथा आपसी झगड़ोंके बीज बोनेका प्रयास कर रहे हैं। एशिया वालोंके लिये यही उपयुक्त समय है, जब वे एकताके मूल्य को समझें। मिस्रकी जनता साम्राज्यवादके विरुद्ध लड़नेके लिये एशियाके अन्य राष्ट्रोंके साथ आगे बढ़नेको तैयार है।"

चीनी प्रजातंत्रकी व्यवस्थापिकाके अध्यक्ष डाक्टर ताई ची ताओ ने सम्मेलनके लिये सन्देश भेजा था, जिसे श्रीमती विजया-लक्ष्मी पंडितने पढ़कर सुनाया। इस सन्देशमें कहा गया था कि

एशियाई देशोंको सतर्क तथा आत्म-निर्भर रहने तथा आत्म-सम्मानकी रक्षा करनी चाहिये। हमें आपसी मेल द्वारा मानव जातिका कल्याण करना चाहिये।

जार्जियाके रूसी जनतन्त्रके प्रतिनिधि श्री कुपराजडेने सम्मेलन की सफलताके प्रति अपने देशकी सद्भावना प्रकट करते हुए बताया कि—

"इस सम्मेलनमें राष्ट्रीय जीवन, एशियाई देशोंकी संस्कृति, एशियाई देशोंमें भविष्यके लिये आपसी सम्बन्ध स्थापित करनेकी समस्याओं पर जो विचार किया जायेगा, उससे एशियाकी प्रजा-तन्त्र सम्बन्धी समस्याएँ सुलझानेमें बहुत योग मिलेगा। इस सम्मेलनमें हम एशिया वासियोंके बीच जो सम्बन्ध एवं सम्पर्क स्थापित होगा वह आगे और गहरा हो सकेगा।"

इन्डोनेशियाके शिष्ट मण्डलके नेता डाक्टर अबू हनीफाने भाषण देते हुए कहा कि—

"इन्डोनेशियाके निवासी विश्वकी शान्तिके लिये कार्य करनेको तैयार हैं, परन्तु स्वतन्त्र इन्डोनेशिया ही अपने इस कार्यको पूरा कर सकेगा। हमारे देशमें डच तथा जापानी लोग बुरी नीयतके साथ आये और उन्होंने हमारे देशकी धन दौलत लूट ली। परन्तु हम फिर भी शान्ति प्रिय हैं। हमें स्वतन्त्र राष्ट्र स्वीकार कर लिया जाय, यही हम डचोंसे चाहते हैं। इस सम्मेलनमें संयुक्त रूपसे जो निर्णय होगा, उसका प्रभाव हमारे देशके आन्दोलन पर पड़ेगा।"

इसके बाद डाक्टर हनीफाने डाक्टर सुकार्नोका सन्देश पढ़ा जिसमें कहा गया था कि एशियाई देशोंके पुनर्निर्माणका कार्य महत्वपूर्ण है, अतः इस सम्मेलनमें हमारी बहुत सी समस्याएँ सुलझानेमें सहयोग मिलेगा।

ईरानी शिष्ट मण्डलके नेता डाक्टर गुलाम हुसैन सिद्दीकीने अपने भाषणमें कहा—

"दिल्ली जो एशियाका केन्द्र है,—ने अपना भाग खूब अदा किया। अब हम पर अपने कर्त्तव्य करनेका भार आ जाता है कि अपने-अपने देशोंको दूसरे अपने समस्त एशियाके प्रति कर्त्तव्य निभायें। आजके वैज्ञानिक युगको देखते हुए हम एशिया वालोंके लिये यह आवश्यक है कि वे आपसमें सभी अच्छे मित्र बनें। अब हमारे लिये अपनी लम्बी नींदसे जागनेका समय आ गया है।"

रूसी कजाकिस्तानके प्रतिनिधि श्री साह रीफाने बताया—
"रूसके पुराने शासनमें न उसका उद्योग था और न जनता ही शिक्षित थी। आज हम जाग उठे हैं। इस सम्मेलनसे अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा समझौता होनेमें योग मिलेगा।"

मलाया शिष्टमण्डलके नेता डाक्टर बरहानुद्दीनने कहा कि—

"एशिया एक है तथा एशियाकी जंजीरमें मलाया उसकी एक कड़ी है। इस सम्मेलनमें भाग लेनेवाले प्रतिनिधिगण विभिन्न सरिताओंके समान हैं तथा वे सभी भारत रूपी सागरमें आ मिले हैं। महान भारतके लिये यह आवश्यक है कि वह एशियाई संगठनके कार्यका नेतृत्व करे।"

नेपाली शिष्ट मंडलके नेता सर शमशेर जङ्गबहादुर राणाने अपने भाषणमें कहा कि "गत दो विश्व युद्धोंने सभ्यताका नाश कर दिया है। यद्यपि अब शांति हो गई है तथापि युद्धके घाव हमारे बदनोंपर अब भी मौजूद हैं। आज एशिया बहुत-सी समस्याओं में उलझा हुआ है। यद्यपि हमें सम्मेलनमें इन समस्याओंके सुलझानेमें कुछ योग मिल सका तो फिर हमारे इस सम्मेलनका महत्व और भी बढ़ जायेगा।"

अन्तमें सर शमशेर बहादुरने पं० जवाहरलाल नेहरू व सरोजिनी देवीको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि—"एशिया ही महान धर्मोंका उद्गम है।"

फिलस्तीनके यहूदी शिष्ट मण्डलके नेता प्रोफेसर सैम्यूअल वर्गमैनने अपने भाषणमें कहा कि—"मैं एशियाके इन पुराने लोगोंका शुभ सन्देश लाया हूं जिन्हें उनके एशियाई घरसे १८०० वर्ष पहिले खदेड़ दिया गया था। हमारा प्रत्येक स्थानपर अल्पसंख्यकों के रूपमें घोर दमन किया गया। युद्धके दौरानमें हमें सताया गया तथा मारा गया। हम अपने विशेषज्ञोंकी सहायता सम्मेलन को देनेके लिये हमेशा तैयार हैं।"

अरब लीगके प्रेक्षक श्री थकरुद्दीनने बताया कि—"भारतीय स्वतंत्रता हमारी स्वतंत्रताके लिये परमावश्यक है।"

सर राधाकृष्णनने भारतकी ओरसे प्रतिनिधित्व करते हुए अपने महत्वपूर्ण भाषणमें बताया कि—

"अवसर मिलनेपर एशियाके देश विश्वके उत्थानके लिये आशासे अधिक योग दे सकते हैं। हमारी यह सहायता पश्चिम की सहायतासे एकदम भिन्न होगी। एशिया विज्ञानको बरबादीके लिये नहीं, बल्कि विश्वको एक करनेके लिये काममें लायेगा। फ्रांस तथा हालैंड जैसे साम्राज्यवादी देशोंको भी ब्रिटेनका उदाहरण अमलमें लाना चाहिये। स्वतंत्र भारत एशियाके अन्य गुलाम देशोंको स्वतंत्र करानेका भरसक प्रयत्न करेगा।"

श्यामी शिष्ट मण्डलके नेताने कहा कि—"इस महान कार्यके लिये उनके देशको जो निमंत्रण भेजा गया उसके लिये मैं अपने देशकी ओरसे सम्मेलनको धन्यवाद देता हूं तथा इसकी सफलताकी कामना करता हूं।"

अन्तमें पं० जवाहरलाल नेहरूने एशियाके समस्त देशोंके संगठन और समान हितोंके कार्योंपर विचार करनेके लिये एशियाई सम्मेलनमें भिन्न-भिन्न देशोंसे पधारे हुये प्रतिनिधियोंके सामने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषणमें कहा :—

"संसारमें स्थायी शान्तिके नाम पर संयुक्त राष्ट्रों द्वारा प्रयत्न किया जा रहा है, जिसमें यूरोपके राष्ट्रोंकी ओर ही मुख्य ध्यान दिया जाता है, परन्तु संसारमें स्थायी शान्ति तब तक असम्भव है, जब तक एशियामें शान्ति न हो। यदि हम संसारमें शान्ति चाहते हैं, तो गुटबन्दीसे दूर रहकर हमें संसारके और विशेषतः एशियाके देशोंका सङ्गठन करना होगा और संकुचित राष्ट्रीयतासे दूर रहना होगा। यद्यपि

प्रत्येक देशके निजी मामलोंमें राष्ट्रीयताके लिए स्थान है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विकासके मामलोंमें राष्ट्रीयताके लिए कोई स्थान नहीं है। राष्ट्रीयताका प्रत्येक देशके जीवनमें एक विशिष्ट स्थान है और प्रत्येक देशके व्यक्तिगत मामलोंमें राष्ट्रीयताको प्रोत्साहन देना सर्वथा उचित है। परन्तु किसी देशकी राष्ट्रीयताको इतना उग्ररूप नहीं धारण करना चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय विकासमें वह रोड़े अटका सके।"

"इस समय हम प्राचीन युगको समाप्तकर नवीन युगके द्वार पर खड़े हैं। एशियाके दीर्घकालीन स्थिरताके उपरान्त सहसा अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्तकर लिया है। एशिया के इस महाद्वीपने, जिसमें मिस्र इत्यादि सभी देश शामिल हैं मानवताके विकासमें अपना प्रमुख योग दिया है। यह एशिया ही है जहाँ सभ्यताका जन्म हुआ था और जहाँके निवासियोंने मानव जीवनके अत्यन्त साहसपूर्ण कार्य किये हैं। यही मानव मणिने अनवरतरूपसे सत्यका अनुसन्धान किया था और मानवताकी आत्मा आकाश-दीपकी भांति इतने वेगसे प्रज्वलित हुई थी कि उसने सम्पूर्ण संसारको प्रकाशमय कर दिया था। परन्तु कालान्तरमें वही एशिया, जहाँसे सभ्यता और संस्कृतिकी प्रचंड धाराएँ समस्त दिशाओंमें प्रवाहित हुई थीं, क्रमशः परिवर्तन-शून्य होने लगा और उसका समस्त विकास रुक गया। इसका परिणाम स्वभावतः यह हुआ कि अन्य महा-देशों और विशेषतः यूरोपके लोग शक्ति-सम्पन्न होकर रङ्ग-मञ्च

पर आ धमके और उन्होंने विश्वके समस्त देशोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और वह महादेश एशिया, यूरोपकी साम्राज्यवादी शक्तियोंके लिये अखाड़ा बन गया। यही नहीं शनैः शनैः दशा यहाँ तक पहुंची कि यूरोपीय देशोंने एशियाई देशोंका मनमाना शोषण किया और एशिया यूरोपका क्रीड़ा-स्थल बन गया। परन्तु अब समयने फिर पलटा खाया है और एशिया अपनी पूर्व स्थितिपर फिर पहुँचनेके लिये कटिवद्ध है। यूरोप और अमेरिकाके नियंत्रण और बन्धनसे मुक्त होकर वह अपने समस्त साधनोंका उपयोग अपने देशोंके निवासियोंके लिये चाहता है।"

"ऐसे महान अवसरपर हमलोग यहाँ एकत्र हुए हैं और निस्सन्देह भारतवासियोंके लिये यह महान् गौरवका विषय है कि हमें दूर देशोंसे आये हुये अपने सहयोगी एशियावासियों का स्वागत करने और उनसे वर्त्तमान एवं भविष्यके सम्बन्धमें परामर्श करनेका अवसर मिला है।"

यूरोप और अमेरिकाको आश्वासन देते हुए नेहरूजीने कहा कि—"किसी राष्ट्र-विशेषके विरुद्ध हमारी कोई योजना नहीं है। हमारी महान् योजनाका लक्ष्य विश्वमें सुख, शान्ति, उन्नति और समृद्धिका साम्राज्य स्थापित करना है। हमारा विचार अपने पैरों पर खड़े होने तथा उन अन्य लोगोंको सहयोग प्रदान करनेका है, जो हमारा साथ देनेको तैयार हों।"

एशियाई सम्मेलनके सम्बन्धमें नेहरूजीने कहा कि—"इस

सम्मेलनमें न तो कोई नेता है और न कोई अनुयायी। समस्त एशियाई देशोंको समान रूपसे समान कार्यके लिये एक साथ कार्य करना है। भारत भी एशियाके विकासमें महत्वपूर्ण योग देना चाहता है। यद्यपि भारत स्वतः अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर रहा है, किन्तु इस तथ्यके बावजूद वह एशियामें काम करनेवाली अन्य शक्तियोंके साथ कार्य करनेको कटिबद्ध है और वह एशियाकी प्रगतिमें महत्वपूर्ण भाग लेगा।"

"विश्व इतिहासके इस सङ्कट-कालमें एशियाको अनिवार्य रूपसे महत्वपूर्ण कार्य करना है। अब एशियाई देशोंको कठपुतली बनाकर यूरोप तथा अमेरिका अपना कार्य नहीं सिद्ध कर सकते। एशियावासियोंको विश्वके मामलोंमें अपनी नीति स्वयं ही निर्धारित करनी है। हम एशियावासी स्वयं ही अपनी तकलीफों से पीड़ित हैं, किन्तु फिर भी सम्पूर्ण एशियाकी आत्मा एवं दृष्टिकोण शान्तिमय है और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंके क्षेत्रमें आकर एशिया विश्व-शान्तिकी स्थापनाके सम्बन्धमें अपना गहरा प्रभाव अवश्य डालेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

"संसारमें स्थायी शान्ति तभी हो सकती है, जब समस्त संसारके सभी राष्ट्र स्वतन्त्र हो जायँ और सभी प्राणियोंको स्वतन्त्रता एवं व्यक्तिगत सुरक्षा प्राप्त हो। अतः शान्ति तथा स्वतन्त्रताके प्रश्न पर विचार करते समय हमें सभी लोगोंके राजनीतिक एवं आर्थिक पहलुओं पर भी ध्यान देना होगा। एशियाके देश बहुत पिछड़े हुए हैं और उनके जीवनका मान अन्य महा-

देशोंके लोगोंके समान नहीं है। इन असमानताओंके प्रश्नका हमें तत्काल हल करना होगा। हमें सभी मनुष्योंके लिये समान आदर्श रखकर अपने राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक ढांचेको खड़ा करना होगा, ताकि वे उन समस्त भारोंसे मुक्त हो जायँ उनसे जिनका व्यक्तित्व दबा हुआ है"

अपने भाषणके अन्तमें नेहरूजीने कहा—"इस समय एशियाके हम सर्वत्र कष्टों और मुसीबतोंका सामना कर रहे हैं। भारतमें भी झगड़े-फसादका वातावरण कायम है। परन्तु इससे हमें हतोत्साह नहीं होना चाहिये। महान् संक्रान्ति-कालमें ऐसी घटनाओंका होना स्वाभाविक है। एशियाके लोगोंकी नसोंमें अब नवस्फूर्ति संचारित हो गयी है। जनता जाग्रत अवस्थामें है और अपना वैध अधिकार माँग रही है। समस्त एशियामें परिस्थितियाँ अत्यन्त गंभीर हैं, किन्तु हमें उनसे भयभीत नहीं होना चाहिये बल्कि उनका स्वागत करना चाहिये, क्योंकि उन्हींके सहारे हमें नवएशियाका निर्माण करना है।"

एशियाई सम्मेलनमें आये हुए प्रतिनिधियोंको दी गयी दावतमें भाषण करते हुए नेहरूजीने कहा कि—"एशियाई सम्मेलनका बहुत बड़ा महत्व है। एशिया बहुत बड़ा महाद्वीप है और यद्यपि उसके विभिन्न भाग एक दूसरेसे बहुत भिन्नता रखते हैं, किन्तु फिर भी इनमें एक ऐसा समानभाव है जिसने सबको एक दूसरेके साथ बाँध रखा है, जिसका प्रमाण यह है कि एक साधारण निमंत्रण पर

एशियाई देशोंके इतने अधिक प्रतिनिधि यहाँ आकर एकत्र हो गये।"

"दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस सम्मेलनसे भारतमें बड़ा उत्साह पैदा हुआ है। सम्मेलनमें राजनीतिक मामलोंको अलग रखकर केवल आर्थिक और मजदूरोंके मामलोंपर विचार हुआ है। इस सम्मेलनके फल-स्वरूप एशियाई सम्बन्ध सम्मेलन नामक एक संस्था स्थापित हुई है और मुझे आशा है कि यह संस्था बराबर उन्नति करेगी।"

भारतके सम्बन्धमें नेहरूजीने कहा कि—"भारत और एशियाके अन्य देश इस समय सभी तरहकी कठिनाइयोंसे गुजर रहे हैं, परन्तु सभी जगह महान् रचनात्मक शक्तियां काम कर रही हैं। भारतको पंजाब तथा अन्य स्थानोंके भयानक उपद्रवोंके कारण वहाँसे आये हुए ३० लाख शरणार्थियोंका फिरसे बसाने और उनके लिये सभी व्यवस्थाएँ करनेका काम करना पड़ा है और लगभग इतनी ही संख्यामें भारतसे मुसलमानोंको पाकिस्तान भेजनेका प्रबन्ध करना पड़ा है। यह कार्य ऐसा था, जिसमें भारतकी सरकारको बहुत शक्ति और साधन खर्च करने पड़े हैं। यदि इन शक्तियों और साधनोंका ह्रास इस काममें न होता तो भारत अपनी नयी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके बाद जनताके हितके बहुत रचनात्मक कार्य कर सकता था। परन्तु इस कठिनाईके होते हुए भी हमें देशका उत्पादन और उसकी समृद्धि बढ़ानेकी योजनाएँ पूरी करनी हैं। इस तरहसे भारतको अनेक समस्याएँ

हल करनी हैं। कुछ समस्याएँ तो ऐसी हैं जिन्हें कई पीढ़ी पहिले ही हल कर लेना चाहिये था। परन्तु हमें उन समस्याओंका हल कर लेना है। हमारा विश्वास है कि भारत वर्तमान सभी बाधाओं और कठिनाइयोंको दूरकर अपना पूर्व गौरव-पूर्णपद प्राप्त करेगा और साथ ही एशियाके अन्य देशोंके साथ सहयोग करते हुए एशियाके उत्थानमें पूरा भाग लेगा।"

"एशियाने प्राचीन समयमें अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। इधर पिछले ३०० वर्षोंसे उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया था। परन्तु अब उसकी यह निष्क्रिय दशा समाप्त हो रही है और अब फिर वह शक्तिशाली ढंगसे कार्यक्षेत्रमें आगे बढ़नेको तैयार है। एशियाके सभी बड़े और छोटे देश अँगड़ाई ले रहे हैं और उस स्थिति पर पहुँच रहे हैं जब कि पश्चिमके देश एशियाको अलग रखकर कोई भी समस्या हल नहीं कर सकेंगे।"

कहना नहीं होगा कि नेहरूजीके इस महत्वपूर्ण भाषणसे उपस्थित जन समूह पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा और सभी दृष्टियोंमें एशियाई सम्मेलनका दिल्ली स्थित प्रथम सम्मेलन बड़ा ही सफलता पूर्वक समाप्त हुआ।

भारतके प्रधान मन्त्री नेहरूजी

आज तो भारतका बच्चा-बच्चा यह जानता है कि हमारे स्वतन्त्र भारतके प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलालजी हैं हाँ, वही जवाहरलालजी, जिन्हें महात्मा गांधी 'भारतके जवाहर' ही नहीं कहा करते थे, बल्कि यहाँ तक उन्होंने कह दिया था कि, "मेरे राजनीतिक उत्तराधिकारी पं० जवाहरलालजी होंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि जब मैं यहाँसे उठ जाऊँगा, तब जवाहरलालजी मेरे उठाये हुए कार्योंको पूरा करेंगे। वे बहादुर और साहसी आदमी हैं।" परन्तु संक्षेपमें यह जान लेना जरूरी जान पड़ता है कि भारतकी स्वतन्त्रताके लिये जिस महापुरुषने सदा साम्राज्यवादी अंग्रेजोंसे जोरोंसे युद्ध किया और अपने मुकदमेमें बयान देते हुए अंग्रेज सरकारकी अदालतके सामने यह कहनेका ही साहस नहीं किया था कि मैं अदालतको नहीं मानता हूँ—बल्कि यहां तक कहा था कि "मैं किसी बादशाहको नहीं मानता हूँ," उन्हींके हाथोंमें बादशाहने अन्तमें भारतकी शासन-व्यवस्था सौंपनेका निश्चय कैसे किया और पीछे कुछ ही महीने बाद वे ही नेहरूजी स्वतन्त्र भारतके प्रथम प्रधान मन्त्री कैसे बने। यह तो सभीको मालूम ही है

कि जिस राष्ट्रीय कांग्रेसने १९४२ के अगस्तमें अंग्रेज शासकोंसे 'भारत छोड़ो' कह कर उसके लिये अंतिम आन्दोलन छेड़नेका पूर्ण अधिकार राष्ट्रपिता महात्मा गांधीको सौंपा था, उसके नेहरूजी इधर बहुत वर्षोंसे स्वयं महात्माजीके बाद प्रधान नेता रहे हैं, वैसे ही यह भी सभीको मालूम है कि विदेशी शासकोंने भी यह पक्का निश्चय कर लिया था कि वे ऐसे आन्दोलनको हर्गिज-हर्गिज न छेड़ने देंगे और उसका निश्चय करने वाली राष्ट्रीय कांग्रसको सदाके लिये कुचल डालेंगे। वह युद्धका समय था और इस देशके भीतर उन विदेशी शासकोंने लाकर बहुत बड़ी सेनाएँ मुख्य कर जापानसे लड़नेके लिये एकत्र कर रखी थीं। अंग्रेज उन्हींके बल पर कांग्रेस और उसके आन्दोलनको सदाके लिये कुचल डालनेका स्वप्न देख रहे थे, इसलिये उन्होंने आन्दोलन छेड़नेके पहले ही कांग्रेसके सभी नेताओं और प्रमुख कमेटियोंको एक साथ ही गिरफ्तार कर लेने और कांग्रेसको गैर कानूनी संस्था घोषित कर उसका नाम निशान मिटा डालनेका आयोजन कर लिया था। यहाँ पर सन् ४२ की उनके काले कारनामोंका वर्णन करनेको न तो यथेष्ट स्थान ही है और न उसकी कोई आवश्यकता ही। तब इतना तो अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस लोकतंत्रके नाम पर अंग्रेज और उनके साथी जर्मनी और जापानकी फेसिस्ट शक्तियोंसे घनघोर संग्राम कर रहे थे, उसीके सारे सिद्धान्तोंकी हत्या उन्हीं अंग्रेज साम्राज्यवादियोंने भारतकी सबसे बड़ी लोकतंत्री संस्था कांग्रेसको कुचल डालनेके लिये इस उद्देश्यसे कर डाली, जिससे यह अपने

देशको स्वतन्त्र करनेके लिये प्रयास न कर सके। इस तरह थोड़े समयके लिये अंग्रेज शासकोंको प्रकटमें सफलता मिली तो मालूम पड़ने लगी थी, किन्तु नेता-विहीन होते हुए भी भारतकी जनताने जैसे जीवटका परिचय दिया, उसीसे उन विदेशी शासकोंको यह निश्चय भी हो गया कि अब और अधिक समय तक भारत पर अंग्रेजी शासनको बनाये रखना असम्भव-सा होगा। यही कारण है कि युद्धकी समाप्तिके बाद ही ब्रिटेनके सभी दल भारतको स्वशासनाधिकार सौंप देनेके प्रश्न पर सहमत हो गये थे और जब वहाँके साधारण निर्वाचनके फलस्वरूप मजूर दलकी विजय हुई और उसके हाथमें शासनकी बागडोर आयी, तब तो भारतको अधिकार सौंपनेके उद्योगमें खास तौर पर तेजी आ गयी।

जापानके विरुद्ध लड़ाईमें भारतवासियोंका पूरा सहयोग प्राप्त करनेकी स्थितिमें होनेके लिये प्रयत्न तो १९४५ के जून महीनेमें ही प्रारम्भ हो गया था, वायसराय लार्ड वावेल शिमलामें सभी दलों की कानफरेंसकी थी। उसका प्रधान लक्ष युद्धोद्योगमें सहयोगके सिद्धान्तके आधार पर केन्द्रमें सर्वदली सरकारकी स्थापना करना था। यद्यपि प्रारम्भमें तो वह कानफरेंस सफल होती मालूम पड़ी थी, किन्तु अन्तमें मुस्लिम लीगके नेता मि० जिन्नाकी जिद और साम्प्रदायिक भावनाने उसे सफल नहीं होने दिया। पीछे जब ब्रिटेनका शासन मजूर दलके हाथमें आया, तब उसने अपने मंत्रि-मण्डलके तीन प्रतिष्ठित सदस्योंका एक कमीशन भारतको इस उद्देश्य से भेजनेके निश्चयकी घोषणा की कि वहाँ वह वायसरायके साथ

मिल कर भारतके प्रमुख दलोंसे समझौतेकी बातचीत करे। वह मिशन भारतमें २३ मार्च १९४६ को पहुँचा और जूनके अन्त तक तीन महीनेसे अधिक समय तक कांग्रेस और लीगको किसी एक योजना पर सहमत बनानेके उद्योगमें लगा रहा। उसका प्रधान लक्ष्य रक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंके लिये भारतकी एकता बनाये रखना था, इसीसे उसने १६ मईको जो योजना प्रस्तुत की थी, उसमें मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी मांगको अव्यवहारिक बताते हुए स्पष्ट शब्दोंमें अस्वीकार कर दिया गया था। फिर भी कतिपय प्रदेशोंको समूहबद्ध करनेकी जो योजना उसने प्रस्तुत की थी, उससे भारतके उत्तर-पश्चिमी और वैसे ही उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों पर मुसलमानों का नियंत्रण होनेकी मांगकी पूर्त्ति होती थी। जब जूनके अन्तमें मंत्रिमण्डलके मिशनने भारतसे प्रस्थान किया था, तब अवस्था यह थी कि कहनेको तो कांग्रेस और लीग दोनों ही की ओरसे उसकी दीर्घकालीन योजनाको स्वीकार करनेकी बात कही जाती थी, किन्तु मनमें कुछ ही और विचार थे। मि० जिन्नाने तो प्रान्तोंके समूहबद्ध किये जानेकी योजनाको यह कह कर स्वीकार करनेके लिये लीग वालोंको सलाह दी थी कि इससे पाकिस्तानकी नींव पड़ जाती है और दो वर्षके भीतर ही पूर्ण पाकिस्तान प्राप्त हो जायेगा, पर नेहरूजी तथा अन्य नेताओंने उस योजनोंके कार्यान्वित किये जानेमें किसी प्रान्त या प्रान्तके किसी भागको उसके निवासियों की इच्छाके विरुद्ध जबर्दस्ती किसी समूहमें न रखने यानी स्वभाग्य निर्णयके सिद्धान्त पर जोर दिया था। केन्द्रमें संयुक्त दली सरकार

बननेमें इसलिये रुकावट खड़ी हुई कि मि० जिन्नाकी यह जिद थी कि उसमें सभी मुसलमान हिस्सेके जितने प्रतिनिधि हों वे तो सारेके-सारे केवल मुस्लिम लीगके होने ही चाहिये, कांग्रेसके हिस्से के भी जितने मुस्लिम प्रतिनिधि हों, उनमें भी उसे किसी मुसलमानोंको रखनेकी स्वतंत्रता न हो। उस समय ब्रिटिश सरकारको यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि भारतमें कोई ऐसी सरकार सफल नहीं हो सकेगी, जिसे जनताका विश्वास और सहयोग न प्राप्त हो, इसलिये लार्ड वावेलने उद्योग जारी रखा और अन्तमें एक लोकप्रिय सरकार बनानेका मार्ग निकल ही आया। लार्ड वावेलको मि० जिन्ना की उस जिदका अनौचित्य मालूम हो गया, जो वे कांग्रेसकी ओरसे लिये जाने मेम्बरोंमें भी कोई गैर लीगी मुसलमान न होनेके लिये कह रहे थे, इसलिये उन्होंने कुछ देरके लिये विश्राम करनेकी बात कहकर पचड़ेको वहीं छोड़ दिया। अपनी जिद नहीं मानी गई, यह सोच मि० जिन्ना एकदम आग बबूला हो गये और उन्होंने मिशनकी सम्पूर्ण योजनाको अपनी लीगसे अस्वीकार करा दिया। पीछे लार्ड वावेलने ऐसी अस्थाई या मध्यकालीन सरकार बनानेका निश्चय प्रकट किया जिसमें उन्हीं दलोंके आदमी लिये जायँगे। जिसे १६ मई वाली दीर्घकालीन योजना स्वीकार होगी। कांग्रेसको वह स्वीकार ही थी इसलिये उस समयके कांग्रेसके अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरूसे, जो मौलाना आजादके इस्तीफा दे देने पर कांग्रेसके अध्यक्ष हुये थे, सलाह लेकर वायसरायने २ सितम्बरको नेहरूजीके नेतृत्वमें अस्थायी

मन्त्रिमण्डल नियुक्त करनेकी घोषणा कर दी। जब कांग्रेस और लीगमें समझौता सम्भव नहीं हुआ, तबतो वायसराय के सामने तीन ही मार्ग रह गये थे। या तो केवल लीगी सरकार बनती या केवल कांग्रेसी अथवा पहलेकी तरह सरकारी। सरकार की परीक्षा जुलाई ४६ में की जा चुकी थी। इतने आगे बढ़ चुकने-पर फिर पीछे पैर हटाना इंगलैंडका लोकमत सहन नहीं कर सकता था और न अब सरकारी मंत्रिमण्डलका समय.हीं रह गया था, क्योंकि उपस्थित समस्याएँ ऐसी थीं कि कोई सरकार जो जनताकी विश्वासपात्र न हो, उन्हें सुलझा ही नहीं सकती थी। फिर प्रदेशोंमें जो सरकारें निर्वाचनमें कांग्रेसके विजयके बाद बनी थीं, उनके विरोधका सामना करना पड़ता। खांटी मुस्लिम लीगी सरकार बनायी जाती तो वह कांग्रेसके विरोधके कारण टिक नहीं सकती थी या टिकती भी तो घोर दमन नीतिके बलसे ही, जिसमें उसे अंग्रेजी सेनासे मदद लेनी पड़ती। इसीसे कांग्रेसी अस्थायी सरकार बनायी गयी। परन्तु यह स्पष्ट था कि बिना राजनीतिक निपटारेके वह भी अधिक समयतक टिकी न रह सकेगी और न विशेष कार्य ही कर सकेगी। इसलिये किसी तरह मुस्लिम लींग-को भी उसके भीतर लानेकी आवश्यकता समझी जाती रही। जब कांग्रेसी सरकार बनानेका निश्चय रहा तब प्रश्न यह था कि किसके नेतृत्वमें उसका निर्माण हो। महात्मा गांधी उसके लिये तैयार नहीं हो सकते थे, इसलिए नेहरूजी पर दृष्टि पड़नी स्वाभाविक थी और वे ही उस समय कांग्रेसके अध्यक्ष भी थे। उनकी सलाह

से वायसरायने नयी सरकार बनायी, जो नेहरूजीको उप-सभापति बनाये जानेके कारण कांग्रेसी सरकार ही समझी जायगी, यद्यपि नेहरूजीने उसके भीतर ऐसे आदमी भी रखे थे, जो कांग्रेसी नहीं थे। पद ग्रहणके लिये राजधानीमें जानेके पूर्व नेहरूजी मि० जिन्नाको समझानेके लिये एक बार फिर सचेष्ट हुए और उनसे जाकर मिले थे, किन्तु साम्प्रदायिक मि० जिन्ना टससे मस नहीं हुए। इस नेहरू-सरकारमें नेहरूजीने वैदेशिक विभाग संभाला, सरदार बलदेव सिंहको रक्षा-विभाग, सरदार बल्लभभाई पटेलको गृह-विभाग मिला, जिसके साथ ही सूचना और काष्टिंग विभाग भी था, डा० जान मथाईको अर्थ-विभाग मिला ; श्री आसफअली, डा० राजेन्द्र प्रसाद, श्री जगजीवनराम, सर शफात अहमद खां, सैयदअली जहीर, श्री राजगोपालाचारी, श्री शरत्‌चन्द्र बोस और श्री भाभाको विभिन्न भाग सौंपे गये थे। नेहरू-सरकारने २ सितम्बर १९४६ को कार्य संभाला।

नेहरू-सरकारके पद भार ग्रहण करते ही पञ्जाबमें लीगके आन्दोलनके फलस्वरूप भारी अशांति पैदा हो गयी और जब उसे संयुक्त दली मिनिस्ट्रीका अंत करनेमें सफलता मिल गयी, तब सीमा प्रांतकी कांग्रेसी मिनिस्ट्रीको गिरानेके लिये भी प्रचंड आन्दोलन छेड़ा गया। कलकत्तेमें तो १६ अगस्तसे ही साम्प्रदायिक मार-काट चल रही थी। अन्तमें मुष्लिम लीगको भी केन्द्रीय सरकार में सम्मिलित होनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई और १५ अक्टूबर १९४६ को वायसरायने घोषणा की कि बादशाहने मेसर्स लिया-

कतअली, चुन्द्रीगर, अब्दुर्रबनिश्तार, गजनफर अली खां और योगेन्द्रनाथ मण्डलको भी केन्द्रीय सरकारमें नियुक्त किया है। इनके लिये स्थान बनानेके उद्देश्यसे सर्व श्री शरच्चन्द्रबोस, शफात अहमद खां और सैयदअली जहीरने अपने स्थान खाली कर दिये। वायसरायने नेहरूजीको लिखे हुए अपने २३ अक्टूबरके पत्रमें स्पष्ट कर दिया था कि मि० जिन्नासे साफ शब्दोंमें कह दिया गया है कि मुस्लिम लीगके सदस्य मन्त्रिमंडलमें इस शर्त्तपर लिये गये हैं कि लीग मंत्रिमंडलके मिशनकी मई वाली योजनाको स्वीकार करेगी। इसलिये उनसे लीगसे उसे स्वीकार करानेके लिये उसकी कौंसिलकी बैठक शीघ्र की जानी चाहिये। यद्यपि केन्द्रीय सरकार-में कांग्रेस और लीग दोनोंके प्रतिनिनिधि हो गये थे, पर मिलजुल कर काम करनेके स्थानमें लीगी मेम्बर अड़ंगेकी नीति ही ला रहे थे, जिससे सारा काम रुक सा गया था। अब उन्हें निकालनेसे देशकी अशांति पूर्ण परिस्थिति और भी अधिक बिगड़ जाती, इसलिए भीतर ही भीतर कांग्रेस और लीगमें कोई समझौता करानेकी चेष्टा हो रही थी। लीग सरकारमें शामिल हो जानेपर भी विधान परिषद्में भाग लेनेवाले तैयार नहीं हुई और पाकिस्तान तथा उसकी अलग विधान-परिषद्के लिये उसकी मांग जारी रही। १९४७ के मार्चमें लार्ड वावेल चले गये और लार्ड माउन्ट बैटन उनके स्थानपर वायसराय बनाकर भेजे गये। ब्रिटिश सरकारने मिशनवाली योजनाको त्याग दिया और लार्ड माउन्ट बैटनके प्रयत्नों से अन्तमें कांग्रेस और लीग दोनोंही को देशका विभाजन करनेके

लिये राजी होना पड़ा और १५ अगस्त १९४७ को भारत और पाकिस्तान नामके दो पृथक् उपनिवेश बनानेका निश्चय हो गया। बीचमें नेहरूजीको ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके निमन्त्रण पर लन्दन भी जाना पड़ा था, पर वहां भी लीगी प्रतिनिधियोंके साथ समझौतेका कोई मार्ग नहीं निकल सका तब नेहरूजीको ९ दिसम्बरसे आरंभ होनेवाली विधान परिषद्‌की बैठकके लिये लन्दनसे शीघ्र लौट आना पड़ा। १९४७ के १५ अगस्तको पं० जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्र भारतके प्रधान मंत्री हुए और उन्होंने अपना मंत्रिमण्डल बनाया। लार्ड माउंट बैटनको ही स्वतंत्र भारतका भी गवर्नर जेनरल बनाये रखनेका निश्चय महात्मा गांधी और नेहरूजीने किया और उनके अनुरोधको कुछ समयके लिये स्वीकार कर लेनेको वे तैयार भी हो गये। महात्मा गांधीने अपने एक वक्तव्यमें यह रहस्योद्‌घाटन किया था कि पहले मि० जिन्ना भी इस बातपर राजी हुए थे कि कुछ समयके लिए भारत और पाकिस्तान दोनों ही उपनिवेशोंके गवर्नर जेनरल लार्ड माउंट बैटन ही रहे, पर पीछे मि० जिन्नाका विचार बदल गया और उन्होंने पाकिस्तानके गवर्नर जेनरल पदके लिये स्वयं अपने नामका प्रस्ताव रखा, जिसे बादशाहने स्वीकार कर लिया। यहांपर यह उल्लेखकर देना अप्रासंगिक न होगा कि नेहरूजी जब मार्च १९४६ में मलाया गये थे तो १८ मार्च को सिंगापुर पहुँचने पर इन्हीं माउण्ट बैटनके अतिथि बने थे, जो उस समय एडमिरल माऊंटबैटनके नामसे प्रसिद्ध थे। वहांसे नेहरूजी २० मार्चको भारत लौटे थे। इस प्रकार दोनों एक दूसरेसे पहले ही सुपरिचित हो गये थे और इससे दोनोंको भारतीय शासनके पदोंपर काफी सहूलियत हुई होगी।

विधान परिषद और नेहरूजी

भारतकी विधान-परिषद्के अधिवेशनमें मुसलिम लीग वाले तो सम्मिलित नहीं हुए थे, किन्तु उनके अतिरिक्त और सभी निर्वाचित सदस्य उसमें उपस्थित थे। डा० राजेन्द्र-प्रसाद सभापतिके आसन पर विराजमान थे। नेहरूजीने परिषद के उद्देश्य और लक्ष्यके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव उपस्थित किया, उस पर उन्होंने अत्यन्त महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया था। प्रस्तावमें भारत का लक्ष्य 'सम्पूर्ण सत्ताधिकारी प्रजातंत्रात्मक गण राज्य' बताया गया है। उसको उपस्थित करते हुए नेहरूजीने इस आशयकी बातें कहीं,—"हम जो शासन-विधान बनाने जा रहे हैं, यह प्रस्ताव उसका भाग नहीं है। इसलिये इसे उसका भाग समझ कर विचार करना ठीक नहीं होगा। इस परिषद्को चाहे जैसा विधान बनानेकी पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है और जो लोग इसमें सम्मि-लित नहीं हुए हैं, उन्हें भी जब वे परिषद्में शामिल हों, पूरा हक होगा कि वे विधानको चाहे जैसा रूप दें, यह प्रस्ताव महत्वपूर्ण मौलिक आधारको उपस्थित करता है, जिसके विषयमें किसी दल

या व्यक्तिको शायद कोई आपत्ति न होगी। यह परिषद्के आगेके कामोंमें किसी तरह दखल नहीं देता और न यह दो दलोंके किसी वार्त्तालापमें ही बाधा उपस्थित करता है। एक तरह से यह हमारा काम सीमित करता है, अगर आप इसे सीमित करना कह सकें। वह यह कि प्रस्तावमें जो आधारभूत सिद्धान्त निहित हैं, हम उन्हें मानते है। मैं विश्वास करता हूं कि वे किसी प्रकार विवादास्पद नहीं हैं। भारतमें कोई उन्हें चुनौती नहीं देता और यदि कोई देता है, तो हम उसे स्वीकार करते हैं। जो नयी दिक्कतें सामने आ गयी हैं, वे इसलिये उठ खड़ी हुई हैं कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल और जो इस समय अधिकार पूर्वक बोल सकते हैं, उन्होंने हालमें ही खास तरहके वक्तव्य दिये हैं। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि ये दिक्कतें हमारा रास्ता बंद न कर सकेंगी और हम जो यहां इस समय उपस्थित है और जो अभी यहां नहीं हैं, उन सबों के सहयोगसे आगे बढ़नेमें समर्थ होंगे। हममेंसे अधिकांश, पिछले वर्षोंमें—एक पीढ़ीसे अधिक समय तक मृत्यु-छायाकी दुर्गम घाटीसे गुजर चुके हैं और जरूरत हो तो फिर उसी रास्तेसे गुजरनेके लिये तैयार हैं।"

"उस विकट समयमें भी हम यह सोचते थे कि युद्ध करने और विध्वंस करनेके उपरांत रचना और विकासका भी अवसर आयेगा। अब ऐसा लगता है कि स्वतंत्र भारतमें निर्माण-कार्य का समय सामने आ रहा है। हम इस शुभ मुहूर्त्तका उत्साहसे स्वागत करते हैं। हमारे सामने पिछले महीनोंमें जो कठिनाइयां

सामने आयी हैं, उनके होते हुए भी हमने पारस्परिक सहयोगका वातावरण उत्पन्न करनेकी ईमानदारीसे काफी चेष्टा की है। हम तो अपनी चेष्टा बराबर जारी रखेंगे, लेकिन भय है कि यदि दूसरी ओरसे हमारे प्रयत्नोंका अनुकूल उत्तर न मिला, तो वातावरण बिगड़ जायेगा। फिर भी हम एक महान् कार्यकी सिद्धिके लिये कृतसंकल्प हैं, अतः अपना प्रयत्न जारी रखेंगे और मुझे आशा है कि बराबर प्रयत्नशील रहनेसे अन्तमें सफल भी होंगे। हाँ, हमें प्रयत्न यह देख कर भी जारी रखना चाहिये कि हमारे कुछ भाइयोंने गलत रास्ता पकड़ लिया है। कारण, हमें इस देशमें ही एक साथ रहना है और एक साथ ही काम करना है, आज नहीं तो कल या परसों सही। इसलिये उन बातोंसे हमें दूर रहना चाहिये, जो उस भविष्यके निर्माणमें कोई नयी कठिनाई पैदा करे, जिसके लिये हम श्रम कर रहे हैं। जहां तक हमारा अपने देशवासियोंसे सहयोगका सम्बन्ध है, हमें उनका अधिकाधिक सहयोग पानेके लिये अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिये। लेकिन सहयोगके माने यह नहीं हो सकते, न हैं और न होंगे कि हम जिन आधारभूत सिद्धान्तों पर खड़े हैं, जिन पर राष्ट्रको खड़ा रहना चाहिये, हम उन्हींको त्याग दें। इस सहयोगके सिवा इस हालतमें भी हम इंग्लैण्डका सहयोग चाहते हैं। हम अनुभव करते हैं कि अगर इंग्लैण्डने सहयोग देना अस्वीकार किया, तो वह भारतके लिये कुछ हानिकर होगा ही, स्वयं इंग्लैण्डके लिये भी हानिकर होगा और किसी अंश तक सारी दुनियाके लिये भी।"

"एक महायुद्धसे छुट्टी पानेके पश्चात् हम अब ऐसे जमानेमें आ रहे हैं, जब लोग भावी युद्ध विषयमें अस्पष्ट, किन्तु जोरोंसे चर्चा करते हैं। ऐसे ही समयमें नव-भारतका जन्म हो रहा है। विश्वकी अशान्तिके बीचमें ही नव भारतका नवाभ्युदय शायद श्रेयस्कर है। लेकिन इस अवसर पर हमारी दृष्टि साफ होनी चाहिये। हमारे सामने विधान बनानेका महान् कार्य है। हमें वर्त्तमानके महान् दायित्वको भी संभालना है और भविष्यके कठिन दायित्वको भी निभाना है। ऐसे अवसर पर हमें इस या उस दलके छोटे-मोटे लाभमें अपने आपको नहीं भुला बैठना है।"

कुछ लोगोंने मेरा ध्यान इस बातकी ओर खींचा कि प्रस्तावमें 'रिपबलिक' (प्रजातन्त्र) शब्दका होना भारतकी देशी रियासतोंके शासकोंको शायद कुछ नाराज कर दे। हो सकता है कि इस शब्दसे वे नाराज हों। लेकिन मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं व्यक्तिगत तौरसे कहीं भी राजतन्त्रको पसन्द नहीं करता और आजके संसारमें राजतन्त्र तेजीसे मिटता जा रहा है। लेकिन इस विषयमें मेरे व्यक्तिगत विचारका प्रश्न नहीं उठता। रियासतों के विषयमें वर्षोंसे हमारी यह सर्वोपरि राय है कि आनेवाली स्वाधीनतामें रियासतोंकी जनताको भी हिस्सेदार होना चाहिये। यह कैसे हो सकता है कि विभिन्न रियासतोंकी प्रजाओंमें स्वाधीनताकी मात्रा और रूपमें भारतकी जनताके मुकाबले विभिन्नता हो? रियासतें भी हमारे संघका अंग होंगी। हम चाहे विधानमें लिख दें या आपसमें सहमत हो जायँ कि स्वाधीनता

का रूप देशी रियासतों और भारतमें समान होना चाहिये, लेकिन व्यक्तिगत रूपमें मैं यह पसन्द करता हूँ कि भावी रियासती सरकारोंकी रचना और रूप भी एक सा हो। यह ऐसा प्रश्न है कि जिसपर देशी रियासतोंसे बातचीत की जायेगी और उनके सहयोगसे यह हल किया जायेगा। मैं नहीं चाहता और मेरा अनुमान है कि यह परिषद् भी नहीं चाहेगी कि देशी रियासतोंकी इच्छाके विरुद्ध कोई चीज उन पर लादी जाय। अगर किसी खास रियासतकी प्रजा किसी खास तरहका शासन चाहती है, तो फिर वह शासन चाहे राजतन्त्री क्यों न हो, यह वहांकी प्रजाकी मर्जी पर है कि वह वही शासनतन्त्र अपनाये।"

"परिषद् जानती है कि बहुतसे सदस्य अनुपस्थित हैं। हमें इसका दुःख है, क्यो कि हम भारतके अधिकसे अधिक भागों और अधिकसे अधिक दलोंके प्रतिनिधियोंसे मिलना चाहते हैं। हमने एक महान् कार्यका उत्तरदायित्व ग्रहण किया है और इसमें हम सबोंका सहयोग चाहते हैं, क्योंकि भारतके जिस भविष्यकी कल्पना हमने की है, वह किसी धार्मिक, प्रान्तीय या अन्य प्रकारके दल विशेषकी नहीं है। जिसमें भारतकी सम्पूर्ण जनता है। इसलिये हमें कुछ स्थानोंको खाली देखकर दुःख होता है। फिर भी हमारा यह पवित्र कर्त्तव्य है कि हम अनुपस्थित सदस्योंका सदैव ध्यान रखें और यह स्मरण रखें कि यहां पर हम किसी एक दलके लिये कार्य करनेको नहीं हैं, बल्कि हमें सदा समस्त भारतका ख्याल रखना है और हर काम भारतके चालीस

करोड़ निवासियोंकी दृष्टिमें रखते हुए करना है। मैं समझता हूँ कि अब वह समय आ गया है, जब हम इस परिषद्के कार्यमें, जहां तक हमसे हो सके, अपने दलगत और व्यक्तिगत भेद्भावसे ऊपर उठकर रहें और हमारे सामने जो समस्याएं उपस्थित हैं, उन पर व्यापक दृष्टिसे, सहिष्णुतापूर्वक उत्तम ढंगसे विचार करें, जिससे हम जो भी रचना करें, वह भारतके अनुकूल हो और दुनिया इस बातको मान ले कि इस महन् अवसर पर हमने वैसा ही कार्य किया, जैसा हमें करना चाहिये था।"

महात्मा गांधी की अनुपस्थितिकी चर्चा करते हुए नेहरूजीने कहा कि—"एक और पुरुष अनुपस्थित है। यद्यपि जैसे वह मेरे दिलोदिमागमें हैं, वैसे ही बहुतोंके दिलोदिमागमें होंगे। वह पुरुष हमारी जनताका महान् नेता, हमारे राष्ट्रका पिता, इस परिषद्का जनक और जो बीत चुका तथा जो बीतनेवाला है, उसका सिरजनहार है। वह हमारे बीचमें आज यहां नहीं है, क्योंकि अपने आदर्श की प्राप्तिमें वह भारतके एक सुदूर कोनेमें कार्यरत है लेकिन मुझे तनिक भी शक नहीं कि उसकी आत्मा हमारे साथ है और हमारे कार्यको आशीर्वाद दे रही है।"

"हम भारतके लिये एक शासन-विधान बनाने जा रहे हैं। यह प्रत्यक्ष है कि हम भारतमें जो कुछ करने जा रहे हैं, बाकी दुनिया पर उसका काफी असर होगा। आज भी जब कि हम स्वाधीनताके दरवाजे पर ही हैं, भारत संसारके मामलोंमें महत्वपूर्ण भाग लेने लग गया है। दिनोदिन इसमें वृद्धि होगी, इसलिये

भारतका विधान रचनेवाले विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखें, यह आवश्यक है। हमारा समस्त संसारमें विश्व बंधुत्वका नाता है। हम सब देशोंके साथ मित्रता चाहते हैं, अतीतमें संघर्षका लम्बा इतिहास रहते हुए भी हम इंगलैंडके साथ भी मित्रता चाहते हैं।"

यहीं यह मालूम हो जाना चाहिये कि पाकिस्तान बन जानेके बाद मुसलिम लीगके नेताओंने भारतकी विधान-परिषद्के लिये निर्वाचित लीगी प्रतिनिधियोंको परिषद्की कारवाइयोंमें भाग लेनेके लिये स्वतंत्रता दे दी और स्वयं इन लोगोंको भी परिषद्से अनुपस्थित रहनेमें हानि मालूम पड़ी, इसलिये वे उसकी कार्रवाइयोंमें भाग लेने लग गये। परिषद्की सबसे बड़ी कांग्रेस पार्टीके नेताकी हैसियतसे नेहरूजी विधान-निर्माणके कार्यमें प्रमुख भाग लेते रहे हैं। भारतीय शासन-विधानकी पांडुलिपि तैयार होनेके पश्चात् परिषद् जब उसमें आवश्यक संशोधन करके उसे पास करनेके लिये उस पर विचार कर रही है, तब नेहरूजीकी बहुमूल्य सलाहसे वह पूरा लाभ उठा रही है।

"इस गम्भीर अवसर पर, जब भारतकी जनताने कष्ट-सहन और बलिदान द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त की है, मैं......भारतकी विधान-परिषद्‌का एक सदस्य होनेके विनम्र-भावसे भारत और उसकी जनताकी सेवामें अपनेको इस उद्देश्यसे अर्पण करता हूँ कि यह प्राचीन देश विश्वमें अपने यथोचित स्थानको प्राप्त हो और विश्व-शान्ति तथा मानव-जातिके कल्याणकी वृद्धिमें पूर्ण रूपसे और स्वेच्छा पूर्वक योग दान करे।"

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके स्वर्ण अवसर पर भारतके प्रथम प्रधान मंत्री नेहरूजीने राष्ट्रको यह सन्देश दिया :—

"निर्धारित दिवस आ गया है—वह दिवस, जो प्रारब्ध द्वारा निर्धारित हुआ है। लम्बी निद्रा एवं संघर्षके पश्चात् भारत आज जाग्रत, जीवित, स्वतन्त्र एवं स्वाधीन होकर फिर खड़ा हुआ है। भूतकालकी कुछ बातें अब तक हमसे चिपकी हुई हैं और हम जो प्रतिज्ञाएँ कर चुके हैं, उनको पूरा करनेके लिये हमें अभी बहुत कुछ करना है। तथापि अवस्था बदल चुकी है। हमारे लिये इतिहास फिर नये सिरेसे शुरू हो रहा है, वह इतिहास जिसमें हम रहेंगे और कार्य करेंगे और जिसके विषयमें भावी इतिहासकार लिखेंगे।

"यह अवसर भारतमें हम लोगोंके लिये, समस्त एशियाके लिये और विश्वके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक नये नक्षत्रका उदय हो रहा है। यह पूर्वमें स्वतन्त्रताका नक्षत्र है। एक नयी आशा साकार हो रही है। और बहुत दिनोंका स्वप्न चरितार्थ हो

गया है। आज हमारी यही कामना है कि यह नक्षत्र कभी अस्त न हो और आशा कभी भंग न हो।

"हम इस स्वतन्त्रतामें आनन्द अनुभव कर रहे हैं, यद्यपि हमारे सभी ओर बादल घिरे हुए हैं और हमारे बहुतसे देशभाई शोकाकुल हैं और कठिन समस्याएँ हमें सभी ओरसे घेरे हुए हैं। किन्तु स्वतन्त्रताके साथ उत्तरदायित्व और भार भी आते हैं और हमें स्वतन्त्र अनुशासनशील राष्ट्रकी भांति उन्हें वहन करना है।

"आजके दिन हमारा ध्यान सर्वप्रथम इस स्वतंत्रताके निर्मता-की ओर जाता है, जो हमारे राष्ट्रके पिता हैं, जिन्होंने भारतकी प्राचीन आत्माकी साकार प्रतिमाके रूपमें स्वतन्त्रताकी मशाल सदा ऊँची रखी और हम जिस अन्धकारसे घिरे हुए थे, उसके बीच प्रकाश फैलाया। हम बहुधा उनके अयोग्य अनुयायी रहे हैं और उनके सन्देशसे भटक जाते रहे हैं, किन्तु केवल हम ही नहीं, आनेवाली पीढ़ियाँ भी इस संदेशको स्मरण रखेंगे और उनके हृदयों पर भारतके इस महान् पुत्रके संदेशको सदा छाप रहेगी, जो अपने बिश्वास, शक्ति, साहस और नम्रतामें इतना विभूतिमान् है। हवा चाहे कितने ही वेगसे क्यों न चले या आँधी चाहे जितनी प्रचंड हो, हम स्वतंत्रताकी मशालको कभी बुझने नहीं देंगे।

"हमारा ध्यान स्वतन्त्रताके उन अज्ञात सैनिकों एवं स्वयंसेवकों की ओर जाती है, जिन्होंने बिना किसी प्रशंसा या पुरस्कारकी आशाके भारतकी सेवाकी और अपने प्राणतक उत्सर्ग कर दिये।

"हमें अपने उन भाइयों और बहनोंका भी ध्यान आता है। जो राजनीतिक सीमाओं द्वारा हमसे अलग हो गये हैं और जो दुर्भाग्यसे इस समय आयी हुई स्वतन्त्रतामें भाग नहीं ले सकते हैं। चाहे जो हो, वे हमारे हैं और हमारे बने रहेंगे और हम उनके सौभाग्य और दुर्भाग्यके एक समान भागी होंगे।

"भविष्य हमारी ओर देख रहा है। हम किस ओर जायेंगे और हमारा प्रयत्न क्या होगा? हमें सर्वसाधारणके लिये, या भारतके किसानों और श्रमजीवियोंके लिये स्वाधीनता एवं अवसर लाना है। गरीबी, अज्ञान और रोगोंसे लड़ना और इनका अन्त करना है। एक समृद्धिशाली, प्रजातन्त्रात्मक और प्रगतिशील राष्ट्रका निर्माण करना है और ऐसी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाएँ बनानी हैं, जो प्रत्येक नर-नारीके लिये न्याय और जीवनकी पूर्णताको निश्चित बनायेगी।

"हमारे आगे कठिन काम करनेको हैं। जबतक हम अपनी प्रतीक्षा पूर्ण रूपसे पूरी न कर लें और जब तक भारतके सभी निवासियोंको वैसा न बना लें, जैसा प्रारब्ध उसे बनाना चाहता है, तबतक हममेंसे किसीको विश्राम नहीं करना है। हम एक महान् देशके नागरिक हैं, जिसे साहसके साथ आगे बढ़ना है और हमें उस उच्च आदर्शके अनुसार जीवन यापन करना है। हम चाहे जिस धर्मके अनुयायी हों, हम सब एक समान भारतकी सन्तान हैं और हम सबोंके अधिकार, असमान्याधिकार एवं उत्तरदायित्व समान हैं। हम साम्प्रदायिकता या संकीर्णताको

प्रोत्साहन नहीं दे सकते, क्योंकि जिस राष्ट्रके लोग बिचार या कार्य में संकीर्ण हो, वह कदापि महान् नहीं हो सकता।

"हम संसारके सभी राष्ट्रों और उनके निवासियोंका अभिवादन करते और शांति, स्वतन्त्रता एवं प्रजातन्त्रवादको आगे बढ़ानेमें उनसे सहयोगकी प्रतिज्ञा करते हैं।

"हम भारतको, अपनी बड़ी प्यारी मातृभूमिको, जो प्राचीन, अनन्त एवं चिर-नवीन है, अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और उसकी सेवामें अपने जीवनको लगा देनेकी फिरसे प्रतिज्ञा करते हैं।" 'जय हिन्द'

स्वतंत्रता-प्राप्तिके इस ऐतिहासिक अवसरपर ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० एटलीने अपनी और मंत्रिमंडलके अपने साथियोंकी ओरसे नेहरूजीके पास अभिवादन एवं शुभ कामनाका जो संदेश भेजा था, उसके उत्तरमें नेहरूजीने उन्हें यह सन्देश पठाया था—

"भारत सरकारके अपने सहकारियों तथा अपनी ओरसे मैं आपको अभिवादनके उस संदेशके लिये आपको कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद देता हूं, जो इस ऐतिहासिक दिवसपर आपने भेजा है, जब भारत स्वतंत्र बन रहा है। इस स्वतंत्रताका अर्थ हमारे लिये बहुत है, किन्तु यह एशिया और विश्वके लिये भी बहुत अर्थ रखता है। हम इस स्वतंत्रताका उपभोग जैसे अपने देशवासियों की उन्नतिके लिये, उसी प्रकार विश्वकी शांति और समृद्धिको उन्नत बनानेके लिये करनेकी आशा करते हैं। इस कठिन कार्योंमें हम आपकी गवर्नमेंटके साथ घनिष्ट सहयोगकी आशा करते हैं।"

नेहरूजी : गवर्नर जेनरल राजगोपालाचार्यके साथ

१५ अगस्त १९४८ ई० को भारतके प्रधान मंत्री नेहरूजीने राष्ट्र को यह सन्देश सुनाया था—

"१५ अगस्तकी तारीख आयी और देशने विभाजनकी पीड़ा होनेपर भी अपनी स्वल्पी स्वतंत्रताकी प्राप्तिपर आनन्द मनाया। हम स्वतंत्रताके सूर्योदय और स्वतंत्रता द्वारा लाये जाने वाले अवसरकी ओर दृष्टि लगाये हुए थे। किन्तु, यद्यपि सूर्यका उदय हुआ, वह काले बादलोंसे आच्छादित होनेसे दृष्टिगोचर नहीं हुआ और हमारे लिये वह ऊषाकाल ही बना रहा। यह उषाकाल लम्बा हुआ है और दिवसका प्रकाश अब भी आनेको ही है। कारण, स्वतंत्रता केवल राजनीतिक निर्णय या नये शासन विधानका ही विषय नहीं है और न वह और भी अधिक महत्त्व-वाली आर्थिक नीतिका ही विषय है। यह तो मस्तिष्क और हृदयका विषय है और यदि मस्तिष्क अपनेको संकीर्ण और धुंधला बना लेता है और हृदय कटुता एवं घृणासे परिपूर्ण है, तो स्वतंत्रता कहाँ।"

'एक बार फिर १५ अगस्तकी तारीख आयी है और अतीतकी सारी घटनाओंके होते हुए भी हमारे लिये यह दिवस गम्भीर और पवित्र है। इस वर्षके भीतर बहुत-कुछ सफलता प्राप्त हुई है और हमें जो लम्बा मार्ग पूरा करना है, उस पर कुछ दूरतक हम आगे बढ़े हैं। किन्तु यह वर्ष असुख एवं मान हानि और उस भावनाके परित्यागसे भी परिपूर्ण है, जो भारतके लिये मुक्ति-दायक विशेषता रही है। इस वर्षने राष्ट्रपिताकी हत्यामें पापकी

विजय देखी है और इससे अधिक लज्जा और दुःख हममेंसे किसी के लिये और क्या हो सकता था !

"हम यह पवित्र दिवस उसी तरह मना रहे हैं, जैसा मनाना चाहिये। किन्तु इस अवसरपर हमें न तो व्यर्थकी शेखी बघारनी चाहिये और न कोरी निरर्थक बात ही करनी चाहिये। आज हमें अपने दिलको टटोलना चाहिये, और फिरसे अपने महान कार्यके लिये अपनेको अर्पित करना चाहिये। हमें उतना उसका विचार नहीं होना चाहिये, जो हम कर चुके हैं, विचार तो होना चाहिये उसका, जो हम कर नहीं पाये हैं और उसका, जिसे ठीकसे नहीं किया है। हमें उन लक्ष-लक्ष शरणार्थियोंके सम्बन्धमें विचार करना चाहिये। जो अपने सर्वस्वसे वंचित हो जानेसे बेघर द्वारके अभी तक होकर भटक रहे हैं। हमें भारतके जनसाधारणके सम्बन्धमें सोचना चाहिये, जो आज भी कष्ट झेल रहे हैं, जिन्होंने हमारी ओर आशा-भरी दृष्टि से देखा है और अपने असुखी भाग्यके सुधरनेके लिये धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा की है। हमें भारतके उन बड़े साधनोंका भी विचार करना चाहिये, जिनको ठीकसे तैयार कर जन-कल्याणके लिये उनका उपयोग किया जाये, तो वे भारतको कुछका-कुछ बना दे सकते और इसे महान् एवं समृद्धिशाली बना सकते हैं। आइये, हम सब अपनी सारी शक्तिके साथ इस महान् कार्यमें जुट जायें। लेकिन सबसे अधिक हमें महात्मा गांधीके सिखाये हुए पाठोंका स्मरण होना चाहिये और उन आदर्शोंका ध्यान होना चाहिये,

जिन्हें उन्होंने हमारे लिये ऊँचा रखा था। यदि हम उन पाठों और आदर्शोंको भुला देंगे, तो अपने महान् कार्य और देशके प्रति विश्वासघात करेंगे।

"अतएव अपनी स्वतन्त्रता इस वर्ष-दिवसके अवसर पर हम स्वतन्त्र भारत और इसकी जनताके महान् कार्यके लिये फिरसे अपने को अर्पित करते हैं। हमारी कामना है कि हम योग्य सिद्ध हों।"
'जय हिन्द'

नेहरूजी और लार्ड माउंट बैटन

जिस रात्रिमें ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० एटलीके निमन्त्रण पर भारतके प्रधान मंत्रीकी हैसियतसे राष्ट्रमंडलके प्रधान मंत्रियोंकी कानफरेन्समें भाग लेनेके लिये नेहरूजी लन्दन पहुँचे थे, ठीक उसी दिन—उनके वहां पहुंचनेके कुछ ही घंटे पहले—स्वतंत्र भारतके भूतपूर्व प्रथम गवर्नर-जेनरल लार्ड माउंट बैटनने लन्दन वालोंको उनका परिचय अत्यन्त प्रभावपूर्ण शब्दोंमें दे दिया था। ६ अक्टूबर १६४८ की तारीख थी। लार्ड माउंट बैटनने रायल एम्पायर सोसाइटीके समक्ष भारतके अपने कार्यकालके अनुभवों पर संक्षेपमें प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा,—"पं० नेहरूसे बड़े किसी राजनीतिज्ञसे मेरी भेंट कभी नहीं हुई है।" इतना ही नहीं, उन्होंने यहां तक कहा कि,—"जब आप उन समस्याओं और उलझनोंकी बहुलताका ध्यान करेंगे, जिनका नेहरूजीको सामना करना पड़ा, तब जो सफलता अब तक उन्होंने प्राप्त की है, उसे मुक्तकंठसे स्वीकार करेंगे। मैं यह नहीं कहता हूं कि वहां जो कुछ भी किया गया है, वह सब ठीक ही हुआ है, पर इतना

लार्ड माउन्ट बेटन और पं० जवाहरलाल नेहरू

अवश्य कहता हूँ कि नेहरूजीकी सरकारने बड़ी कड़ी कठिनाइयोंके होते हुए भी असाधारण रूपमें अच्छा किया है। यह बहुत अधिक महत्वकी बात है कि जो भारतको ऐक्यबद्ध बनाये हुए हैं और जो यह निश्चय करेगा कि भारत ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल (कामनवेल्थ) के भीतर रहेगा या नहीं, वही राष्ट्रमंडलके प्रधान मंत्रियोंकी कानफरेन्समें भाग लेनेके लिये आज रात्रिमें इंग्लैण्डमें उतरेगा।" आगे चल कर लार्ड माउंट बैटनने नेहरू-सरकारकी कठिनाइयोंकी चर्चा करते हुए यह कहा,—"मैं आश्चर्य करता हूँ कि जिस प्रकार वह शासन-कार्य चला रही है और कितनी नयी वस्तुतः पुरानी सरकारें भी वैसा कर सकती थीं। इस सरकारको ऐसी अवस्थाके भीतर कार्य करना पड़ा जो आम हड़तालकी ही नहीं, बल्कि ऐसी थी कि कुछ भी काम इस भयसे नहीं हो रहा था कि लोगोंको अपने जीवनके लिये भय हो रहा था। यह तथ्य कि विभाजनका कार्य पूरा किया गया, इसीसे भारतीयोंकी योग्यता अत्यधिक प्रकट हो जाती है। यह कार्य प्रायः सम्पूर्ण-रूपेण भारतीय असैनिक अफसरों और भारतीय मंत्रियों द्वारा ही पूरा हुआ है। जब मैं भारत गया था, तब उन कठिनाइयोंको नहीं समझा था, यदि वे मुझे मालूम हुई होतीं, तो संभव है कि मैं गया ही न होता।" नेहरूजी और उनकी सरकारका उचित बखान करनेके साथ ही लार्ड माउंट बैटनने भारतकी पांच सौ पैंसठ देशी रियासतोंकी चर्चा भी की और बताया कि किस तरह तीनके अतिरिक्त अन्य सभी राज्योंने नेहरू-सरकारके तैयार किये

सम्मति-पत्र पर सही बनायी है। उन्हींके मुँहसे सुनिये,—"उन रियासतोंको वैसा करनेको लाचार करनेके लिये मेरे पास कोई अधिकार नहीं था। किसी प्रकारका दबाव या बरजोरी काममें नहीं लायी गयी। जो तीन रियासतें न तो भारतमें सम्मिलित हुईं और न पाकिस्तानमें, उनके नामकी चर्चा घर-घर होने लगी थी। एक तो जूनागढ़की रियासत थी। उसका नवाब एक विचित्र पुरुष था। वह कुत्तोंका बड़ा शौकीन था और उसके पास खास राजमहलमें ही छः सौ कुत्ते थे। दूसरी रियासत काश्मीरके महाराज मेरे पुराने मित्र हैं। मैं १६४७ के जुलाईमें उनके पास गया, यह जोर देकर समझानेके लिये कि वे अपने प्रजा-जनोंकी इच्छा—जानें कि वे किस अधिराज्य (उपनिवेश) में सम्मिलित होनेके पक्षमें हैं। उन्होंने वैसा नहीं किया, यद्यपि यह तथ्य है कि यदि वैसा किया होता, तो वहां कोई संकट न खड़ा होता। यदि वे पाकिस्तानमें सम्मिलित हो गये होते, तो भारत कोई संकट न खड़ा करता। यदि वे भारतके साथ मिल गये होते, तो अच्छा होता। तब पाकिस्तानका अस्तित्व नहीं था, इससे वहां कोई संकट न खड़ा होता। उन्होंने कुछ न करके गलती की, जिससे वर्त्तमान संकट खड़े हो गये, जिसका अन्त अभी तक नहीं हुआ है।"

नेहरू-सरकारकी उदारताका बखान लार्ड माउंट बैटनने सबसे अधिक तीसरी रियासत हैदराबादके सम्बन्धमें किया है। यहां भी उन्हींके मुंहसे सुनना अधिक अच्छा होगा—"यह हैदराबाद

का सौभाग्य था कि उसे सर वाल्टर मांकटन वैधानिक परामर्श-दलके रूपमें मिले हुए थे। वे मेरे मित्र थे, यह सौभाग्य मेरा था। हम लोगोंने स्वतंत्रतापूर्वक और खुले दिलसे आपसमें विचार किया, दोनों पक्षोंके स्वीकार-योग्य सुलझाव प्राप्त करनेके लिये उन्होंने कठोर श्रम किया और ११ जून तक ऐसा लगा कि हम लोगोंको वह प्राप्त हो गया है। निश्चय ही नेहरू-सरकारने अपने रास्तेसे बाहर जाकर उदारतापूर्ण शर्त्तें दीं और मैंने सोचा कि निजामको वे स्वीकार होंगी। भारतसे मेरे चले आनेके पीछे जो कुछ हुआ, उसके सम्बन्धमें कुछ कहना मेरा काम नहीं है, लेकिन १५ अगस्तके पश्चात् भारत-सरकारने जिस ढंगसे काम किया, उनके लिये मैं उसकी प्रशंसा करूंगा।" अपने इसी भाषण में लार्ड माउंट बैटनने इस बातसे आश्चर्य भी प्रकट किया है कि उन्हें वैधानिक गवर्नर-जेनरलकी भांति बने रहनेके लिये कहा गया।

सच तो यह है कि जब ब्रिटिश वायसराय लार्ड माउंट बैटन से १५ अगस्तके पश्चात् भी वैधानिक गवर्नर-जेनरल बनकर भारतमें बने रहनेके लिये कहनेका निश्चय किया गया था, उस समय राष्ट्रपिता गांधीजी जीवित थे। जब कांग्रेस और मुस्लिम लीगके समझौतेसे पाकिस्तानका पृथक् उपनिवेश बनानेके लिये देशका विभाजन करना तय होगया था, तब उसी समय सम्भवतः कांग्रेसके प्रधान नेता नेहरूजी, लीगके सर्वेसर्वा मि० जिन्ना, ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि स्वयं लार्ड माउंट बैटन और भारतकी स्वतंत्रता

के प्रधान निर्माता महात्मा गांधीके बीच यह भी सर्व सम्मतिसे निश्चित हो गया था कि विभाजनके पश्चात् दो उपनिवेश बन जाने पर भी अभी कुछ दिनोंतक दोनोंके लिये एक ही गवर्नर जेनरल लार्ड माउंट बैटन बने रहें। पीछे न जाने क्या सोचकर मुस्लिम लीगके प्रतिनिधि मि० जिन्नाने अपना विचार बदल दिया और लीगके ही नेताकी हैसियतसे उन्होंने पाकिस्तानके गवर्नर-जेनरल पदके लिये स्वयं अपने ही नामकी सिफारिश की। बादशाहको तो उस सिफारिशको स्वीकार कर लेना ही था इसलिये जब मि० जिन्नाकी सिफारिश और बादशाह द्वारा उसकी स्वीकृतिका पता महात्मा गांधीकी चला, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ था, जिसे उसी समय स्पष्ट शब्दमें प्रकट कर देनेमें उन्हे कुछ भी हिचकिचाहट नहीं मालूम हुई थी। इस तरह मि० जिन्नाका विचार बदल जानेपर भी महात्मा गांधी और नेहरूजी अपने पूर्व निश्चय पर ही बने रहे और उन्होंने स्वतन्त्र भारतका प्रथम वैधानिक गवर्नर-जेनरल लार्ड माउंट बैटनको ही नियुक्त करनेके लिये बादशाहसे सिफारिश की थी। वह कितनी दूरदर्शितापूर्ण थी, यह उस बहुमूल्य सहायतासे भलीभांति प्रकट हो गया, जो इतने अधिक देशी राज्योंको समझा-बुझाकर भारत-संघमें सम्मिलित होनेको राजी करनेके असंभव समझे जानेवाले कार्यको पूरा करनेमें नेहरू-सरकारके सुयोग्य गृह-सचिव सरदार पटेलको उन लार्ड माउंट बैटनसे प्राप्त हुई थी। अन्य समस्याओंको सुलझानेमें भी उनका सहयोग निश्चय ही भारत सरकारके प्रधान मन्त्री नेहरूजी के लिये बहुमूल्य सिद्ध हुआ है।

जब लार्ड वावेलका स्थान ग्रहण करनेके लिये लार्ड माउंट बैटन भारत भेजे गये थे, तब भारतको एक निश्चित तारीख तक शासन सौंप देनेका निश्चय ब्रिटिश मंत्रिमंडल अपनी पार्लमेंटकी पूरी स्वीकृतिसे कर चुका था और वह शासन-भार भारतवासियोंके हाथमें सौंपनेका महान् कार्य करनेके लिये ये ही मुख्यकर इस विचारसे चुने गये थे कि इनका इंगलैंडके वर्त्तमान राजवेशसे सम्बन्ध है। भारतमें मुख्यकर कांग्रेस पार्टीके नेता नेहरूजीसे उनको शायद सबसे अधिक काम पड़ता था, क्योंकि केन्द्रमें बीचके समयके लिये जो अस्थायी सरकार लार्ड वावेलके समयमें बनी थी, उसके उपाध्यक्ष और निर्माता वे ही तो थे, यह भी कुछ कम विचित्र संयोग नहीं था कि वे नेहरूजी लार्ड माउंट बैटनके लिये कोई सर्वथा अपरिचित या नये व्यक्ति नहीं थे। कारण, सन् १९४६ के मार्चमें जब नेहरूजीने मलायाकी यात्राकी थी, तब सिंगापुरमें वे इन्हीं माउंटबैटनके अतिथि बनकर १८ मार्चसे २६ मार्चतक इनके यहां ठहरे थे, जो उस समय एडमिरल माउंटबैटन के नामसे प्रसिद्ध थे। इस प्रकार दोनों महानुभाव एक दूसरेसे सुपरिचित थे और नेहरूजीकी सहायता एवं सहयोगसे भारतके गवर्नर-जेनरलकी हैसियतसे उन्हें भारतके इतने पेचीले प्रश्नको जो व इतनी सफलताके साथ सुलझा सके, इसमें नेहरूजीके साथ उनका वह पूर्व परिचय और सम्पर्क कुछ कम सहायक नहीं हुआ होगा। उस प्रश्नको लार्ड माउंट बैटनने कैसी कुशलतासे सुलझाया था, यह उन्होंने अभी गत् १७ अक्टूबरको-नेहरूजीके लन्दन

पहुँचनेके बाद —विनचेस्टर स्थान पर बताया था। स्वयं उन्हींके मुंहसे यह भी सुन लीजिये—"देशका विभाजन करनेके पहले मैं भारत उपमहादेशके भीतर बसनेवाले लोगोंका मत इसके लिये जान लेना चाहता था। किन्तु मुझे बताया गया कि मतदाताओं की सूची तैयार करनेमें वर्षों का समय लग जायेगा। तब किया मैंने यह कि जिन बातोंपर सभी सहमत हैं, उनको ढूंढ़ लिया और उनके आधारपर काम करते हुए मतभेदकी बातोंपर उनको शांत करनेका प्रयत्न करने लगा। इसलिये मैंने ऐसे ढंगसे काम लिया, जो भारतमें पहले अज्ञात था। वह था खुले तौरपर मिलाप करने का ढंग। एक पक्षने मुझसे जो कुछ कहा था, उसे दूसरे पक्षसे मैंने कभी नहीं छिपाया। कोई गुप्त व्यवस्था मैंने कभी नहीं की। हमने एक सौ सत्तर वर्ष भारतका शासन हथियारके बलपर किया था। हथियारोंके बलसे सीधे शासन करनेके स्थानपर आज मित्रता और सद्भावनाकी लड़ी है।"

यह एक प्रकट रहस्य है कि लार्ड माउण्टबैटनके विरुद्ध पाकिस्तान वालोंको बहुत बड़ी शिकायत है। मुसलिम लीगके प्रमुख अङ्गरेजी पत्रने तो यहाँ तक लिख डाला है कि लार्ड माउंट बैटन ही पंजाबके मुसलमानोंपर आयी हुई सारी आपदाओंके लिये जिम्मेदार थे। पाकिस्तानियोंकी यह शिकायत स्वतंत्र भारतके गवर्नर-जेनरल लार्ड माउण्ट बैटनके विरुद्ध नहीं, बल्कि अविभक्त एवं संयुक्त भारतके गवर्नर-जेनरल और वायसराय लार्ड माउण्ट बैटनके विरुद्ध है। उनका कहना है कि लार्ड माउण्ट बैटनसे

मुसलिम लीगके नेता बराबर ही यह कहते रहे कि सिक्ख नेता पञ्जाबसे मुसलमानोंका नाम-निशान तक मिटा डालनेके लिये तैयारिया करनेमें लगे हुए हैं, इसलिए भावी अनर्थको रोकनेके लिये उन्हें गिरफ्तार किया जाये और शस्त्रास्त्रोंका जो संग्रह किया जा रहा है उसे अविलम्ब रोका जाये। परन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं किया। पाकिस्तानी लीगियोंकी इस शिकायतसे और अधिक उत्तम प्रमाण इस बातका शायद नहीं हो सकता कि लार्ड माउंट बैटनने भारतमें अपने पदका भार संभालनेके समयसे ही अपनेको ठीक रास्तेपर रखनेका ध्यान रखा था। रहे पाकिस्तानी नेता, उन्होंने तो अपने भाव और आचरणसे यही सिद्ध किया है कि जो गवर्नर-जेनरल या गवर्नर उनकी साम्प्रदायिकताका समर्थन करनेको तैयार नहीं होता था, उसे ही वे मुसलमानोंका विरोधी कहने लगते थे, जैसा कि उन्होंने पंजाबके तत्कालीन अंगरेज गवर्नर के विरुद्ध आन्दोलन करके उन्होंने प्रकट किया था। मध्यकालीन अस्थायी सरकारके उपाध्यक्ष नेहरूजीके साथ लार्ड माउंट बैटनकी पटरी ठीक बैठती थी, यह तो इसीसे प्रकट है कि उनके कार्यकालके भीतर उन्हें उनके विरुद्ध कभी कोई शिकायत नहीं हुई और स्वयं नेहरूजी भी अपनी ओरसे कोई ऐसी बात कभी नहीं होने दी, जिससे लार्ड माउंट बैटनके उस कार्यमें तनिक भी बाधा उपस्थित होती, जिसके लिये वे गवर्नर-जेनरल बनाकर यहाँ भेजे गये थे। नेहरू-सरकारके भीतर येनकेन प्रकारेन प्रवेश करनेके पश्चात् लीगी मेम्बरोंने जिस प्रकारकी अड़ंगेकी नीतिसे काम लिया था, वह

किसी भी सरकारके प्रधानके धैर्य और सहनशीलताको नष्ट कर देनेके लिये पर्याप्त था, किन्तु नील कंठ महादेवकी भाँति महामन्त्री नेहरूजी उस विषको बिना कुछ कहे सुने पीते रहे, यह उनकी विमल देशभक्ति एवं वास्तविक महानुभावताका प्रत्यक्ष एवं सर्वोत्तम प्रमाण है। इसीसे लार्ड माउण्ट बैटनको भी प्रत्येक उपयुक्त अवसरपर प्रधान मन्त्री नेहरूजीकी उच्च कोटिकी राजनीतिज्ञता और दूरदर्शिताकी सराहना ही करनी पड़ी है।

लार्ड माउण्ट बैटनके साथ ही उनकी पत्नी लेडी माउण्ट बैटन से भी नेहरूजीका पूरा स्नेह हो गया था और सच पूछिये, तो भारतका विभाजन हो जानेके बाद पंजावके भयंकर नर-संहारके पश्चात् पूर्वी और पश्चिमी पंजाबके बीच आबादीकी अदला-बदली का जो महाविकट प्रसङ्ग उपस्थित हुआ, उस समय लेडी माउण्ट बैटनने बहुत ही महत्वकी सेवा की थी। उसकी चर्चा स्वयं लार्ड माउण्ट बैटनने विनचेस्टरके अपने उपर्युक्त भाषणमें इस भाँति की थी—“भारतमें साम्प्रदायिक सङ्कटके बीच शरणार्थियोंकी सहायता पहुंचानेके कार्यका सङ्गठन और सञ्चालन करनेमें लेडी माउण्ट बैटनका काम चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने भारतमें शक्ति एवं मित्रताके उस सोतेसे काम लिया, जिससे तब तक किसीने नहीं लिया था—वह स्रोत था भारतकी स्त्रियोंका।” लार्ड माउण्ट बैटन अब भूमध्य सागर-स्थित प्रथम क्रूजर स्काड्रनके कमांडर है।

गत २१ अक्टूबरको इस पदका भार सम्भालनेके लिये जब वे लन्दनसे प्रस्थान कर रहे थे तब वहाँके विद्यार्थियोंसे विदा

होनेके उस अवसरपर स्वयं लेडी माउण्ट बैटनने भारतके अपने दिनोंका स्मरण करते हुए यह कहा था—"जब मैं और मेरे पति भारतमें थे, तब हममें जैसा विश्वास प्रकट किया गया, जैसी उदारताकी भावना दिखायी गई और हमारे प्रति जैसी निराली मित्रता प्रकट की गयी, उसके लिये हम दोनों सदा कृतज्ञ रहेंगे। भारतको चिकित्साके साज सामान, डाक्टरों और नर्सोंकी जितनी बड़ी आवश्यकता है, उतनी संसारके और किसी देशको नहीं और मैं इस बातका अभियान करती हूं कि भारतके स्वास्थ्य-विभागका भार एक महिलाके हाथमें है। भारतकी स्त्रियाँ, जो स्वतंत्रताकी लड़ाईमें नीचे थीं, वे ही अब उठकर—चोटीपर पहुंच गई हैं और आज आपको आधुनिक भारतका प्रतिनिधित्व करनेवाली एक महिला मंत्रिमण्डलमें मंत्रिणी, दूसरी राजदूतके पदपर और तीसरी एक प्रान्तके गवर्नरके पदपर प्रतिष्ठित दिखाई देती हैं।" सच तो यह है कि लार्ड और लेडी माउण्ट बैटन भारतमें जब तक रहे, सदा ही नेहरू-सरकारको पूरा सहयोग देते रहे। विशेषकर साम्प्रदायिक उपद्रवोंके समय लेडी माउण्ट बैटनने लक्ष-लक्ष शरणार्थियोंको सहायता पहुंचानेके आयोजनोंमें अथक श्रम किया था। उनके कैम्पोंमें बराबर जा-जाकर वे उन सङ्कट ग्रस्त जनोंसे जिस तरह मिलते और उनके साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्हें ढाढ़स बंधाते थे, उसके लिये लार्ड और लेडी माउण्ट बैटनकी उदार हृदयताको इस देशके लोग कभी नहीं भूलेंगे। अपहृता-नारियोंके उद्धार-कार्यमें भी लेडी माउण्ट बैटनने

पूरा हाथ बटाया था। इस प्रकार नेहरूजी और उन लोगोंमें बहुत ही घनिष्ठता स्थापित हो गई।

राष्ट्रमण्डलके प्रधान मंत्रियोंकी कानफरेंसमें भाग लेनेके लिये जब नेहरूजी लन्दन गये थे, तब ब्रिटिश सरकारके अतिथि होनेपर भी उन्होंने फुर्सतका अपना सारा समय लार्ड माउण्ट बैटनके देहातवाले गृहमें ही बितानेका निश्चय किया था। लन्दन पहुंचने पर हवाई जहाजके अड्डे पर उनके स्वागतार्थ जो प्रसिद्ध पुरुष एकत्र हुए थे, उनमें लार्ड माउण्ट बैटन भी थे और इसी प्रकार जब नेहरूजी भारत लौटनेको हवाई जहाजपर सवार हुए थे तब भी वे उन्हें विदा करनेके लिये वहाँ उपस्थित थे। लन्दन पहुँचनेके दूसरे ही दिन नेहरूजी लार्ड माउण्ट बैटनके हैम्पशायर-स्थित गृह, ब्राडलैंड्स चले गये थे। पीछे जब उक्त कानफरेंसके लिये उन्हें लन्दन जाना पड़ा था, तो वहाँ पन्द्रह दिन तक प्रधान मंत्रियोंसे विविध विषयोंपर वार्त्तालाप करने एवं अनेक समारोहोंमें भाग लेनेके बाद जब विश्रामके लिये कुछ अवकाश मिला, तब पुनः वे अपने मित्र माउण्ट बैटनके ही उक्त गृहमें अतिथि बने थे। लन्दनसे अस्सी मीलकी दूरीपर वह स्थान है। उनके अतिथिके गृहपर स्वयं लार्ड माउण्ट बैटनके परिवारके लोगोंके सिवा और कोई नहीं होता था, इस तरह वहाँ नेहरूजीको अपने माननीय मित्रसे महत्वपूर्ण प्रश्नोंपर वार्त्तालाप करनेके लिये यथेष्ट समय उपलब्ध था।

भारतका विभाजन और सांप्रदायिक दंगे

पं० जवाहरलाल देशके विभाजनके सदा घोर विरोधी रहे हैं। उन्होंने अहमदनगरके किलेमें बैठे-बैठे १६४४ ई० में ही मुसलिम लीगकी पाकिस्तानके लिये देशके विभाजनकी मांगके विषयमें यह लिखा था—"मजहबके आधार पर हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच हिन्दुस्तानका बंटवारा, जैसा कि मुसलिम लीग सोचती है, इन दो खास धर्मोंको माननेवालोंको अलग-अलग नहीं कर सकता, क्योंकि वे सारे देशमें फैले हुए हैं। यदि उन भागोंको भी अलग किया जाये, जहां एक वर्गका बहुमत है, तो उन भागोंमें अल्पसंख्यक बहुत बड़ी संख्यामें बच रहते हैं। इस तरह अल्पसंख्यकोंकी समस्याको हल करनेमें हम एककी जगह कई समस्याएं खड़ी कर लेते हैं। इससे धार्मिक वर्ग, जैसे सिक्ख अपनी इच्छाके विरुद्ध दो अलग सरकारोंमें बँट जायँगे। एक वर्गको अलग होनेकी स्वतंत्रता देनेसे दूसरे वर्गोंको जो उन भागोंमें अल्पसंख्यक हैं, अलग होनेकी स्वतंत्रता नहीं मिलती। उन्हें उनकी इच्छाके अत्यन्त विरुद्ध बाध्य किया जाता है कि अपने

आपको शेष भारतसे पृथक् कर लें। यदि यह कहा जाये कि जहां तक अलग होनेका प्रश्न है, हर हिस्सेमें (धार्मिक) बहुसंख्यकों की बात मानी जाये, तो फिर कोई कारण नहीं कि सारे भारतके प्रश्नको भी बहुसंख्यकोंकी दृष्टिसे क्यों न तै किया जाये। या प्रत्येक छोटा-सा भाग अपनी निजी हैसियतको अपने आप तै करे और इस तरह छोटी-छोटी रियासतोंकी एक बहुत बड़ी संख्या हो जायेगी। यह एक विचित्र और हास्यजनक बात होगी। इसके सिवा और किसी ढंगसे यह हो ही नहीं सकता, क्योंकि सारे देशमें अलग-अलग मजहबके आदमी हर जगह फैले हुए हैं और प्रत्येक भागकी आबादीमें घुले-मिले हुए हैं। जहां तक राष्ट्रीयताका प्रश्न है, इस तरहके मामलोंको बंटवारेसे हल करना बहुत कठिन होता है, लेकिन जहां कसौटी मजहबकी हो, वहां न्यायके आधार पर उसे हल करना असंभव है। यह तो मध्य-कालीन धारणाओंकी ओर वापस लौटना है और आजके संसारमें उसका मेल नहीं बैठाया जा सकता।"

फिर, "यदि भारतको दो या इससे अधिक भागोंमें तोड़ दिया जायेगा, और यदि वह एक आर्थिक और राजनीतिक इकाईकी भांति काम न कर सकेगा, तो उसकी उन्नति पर भारी प्रभाव होगा। एक तो स्वयं ही निर्बलता आयेगी, लेकिन इससे भी बुरी चीज वह मनोवैज्ञानिक लड़ाई होगी, जो भारतको अखंड बनाये रखनेको पक्षपातियों और उसके विरोधियोंमें होगी। नये स्थापित स्वार्थ पैदा हो जायँगे, जो परिवर्त्तन और उन्नतिको रोकेंगे।

नये दुस्कर्म भविष्यमें हमारा पीछा करेंगे। एक भूलसे हम दूसरी पर जा पहुंचते हैं। यही बात पहले हुई है और ऐसा ही भविष्यमें हो सकता है। फिर भी कभी-कभी बहुत बड़ी बुराईसे बचनेके लिये छोटी बुराईको अपनाना पड़ता है, राजनीतिकी यही एक विचित्र उलटी बात है। कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि आगे चलकर वर्त्तमान भूलसे, उस खतरेके मुकाबलेमें जिसका डर है, कम हानि होगी या अधिक। फूटकी अपेक्षा एकता सदा ही अच्छी है, किन्तु जबर्दस्तीसे लादी हुई एकता एक धोखा है और उसमें खतरा होता है और वह विस्फोटकी संभावनाओंसे भरी होती है। ऐक्य तो दिल और दिमागसे होना चाहिये। उसके लिये अपनेपनकी, संकटका मिलकर सामना करनेकी भावना होनी चाहिये। मुझे दृढ़ विश्वास है कि भारतमें वह मौलिक ऐक्य है, किन्तु इस समय दूसरी शक्तियोंके कारण उस पर पर्दा पड़ गया है, वह छिपा दिया गया है। ये शक्तियां झूठी और अस्थायी हो सकती हैं, लेकिन आज तो उनकी गिनती है और कोई भी आदमी उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।"

पाकिस्तानकी मांग लिये मुसलिम लीगी जो स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तकी दुहाई दिया करते थे, उसके विषयमें नेहरूजीने यह लिखा था—"एक और विचित्र उलटापन सामने आता है। स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तकी दुहाई तो दी जाती है, लेकिन इसे तै करनेके लिये वहांकी जनताका मत लेनेकी बात नहीं मानी जाती। यह कहा जाता है कि यदि राय लेनी है, तो केवल उन

भागोंके मुसलमानोंकी ही राय ली जाये। बंगाल और पंजाबमें मुसलिम आबादी चौअन प्रतिशत या इससे भी कम है। उनकी रायका अर्थ यह हुआ कि चौअन प्रतिशतके वोटसे शेष छियालीस प्रतिशत या इससे भी अधिक लोगोंके भाग्यका निर्णय हो और इन छियालीस प्रतिशत आदमियोंको उस मामलेमें कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं होगा। इसका यह परिणाम हो सकता है कि भारतके अठाइस प्रतिशत आदमी शेष बहत्तर प्रतिशत आदमियोंके भी भाग्यका निर्णय करें। समझमें नहीं आता कि किस तरह कोई समझदार आदमी ऐसा प्रस्ताव पेश कर सकता है और यह आशा कर सकता है कि दूसरे लोग उसे मान लेंगे।"

परन्तु अब तो यह ऐतिहासिक तथ्य है कि अन्तमें बड़ी बुराईके बदलेमें अखंड भारतके समर्थकोंको, जिनकी संख्या भारतकी कुल जनसंख्यामें बहत्तर प्रतिशतसे कम नहीं, उन मुसलिम लीगियोंकी पाकिस्तानकी मांगको छोटी बुराई समझते हुए स्वीकार कर लेनेकी लाचारी मालूम हुई, जिनका सभी मुसलमानोंका प्रतिनिधित्वका असत्य दावा भी क्षण भरके लिये ठीक मान लिया जाये, तो उनके साथ देशकी जनसंख्याका अठाइस प्रतिशतसे अधिक भाग कदापि नहीं हो सकता था। उसके फलस्वरूप वह मनोवैज्ञानिक लड़ाई छिड़ते तनिक भी देर नहीं लगी जिसका संकेत नेहरूजीके उपर्युक्त लेखमें था। हाँ, पाकिस्तानके लिये देशका विभाजन होनेके फलस्वरूप हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच जितनी भयंकर मारकाट और विनाशकांड देशके

इतने भागोंमें हुआ था, इतनेकी कल्पना पहले शायद किसीने भी नहीं की थी। पंजाबमें बिभाजन होते ही जैसा लोमहर्षक नर-संहार हुआ, इसका दृष्टान्त इतिहासके पृष्ठोंमें ढूंढ़नेसे भी नहीं मिल सकेगा। उसके सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध नेता मास्टर तारासिंहने साम्प्रदायिक दंगोंके उस भयावने समयमें अपने एक वक्तव्यमें पश्चिमी यानी पाकिस्तानी पंजाबके अधिकारियों पर यह भीषण अभियोग लगाया था कि उन्होंने अपने प्रान्तके सभी मुसलमानोंमें हथियार बांट दिये और पूर्वी सीमाके मुसलमानोंको शस्त्र दे दिये, जब कि हिन्दुओं और सिक्खोंसे वे सभी बंदूकें आदि हथियार ले लिये गये, जिनके लाइसेंस उनके पास थे। फल यह हुआ कि १५ अगस्त १९४७ को जब हम लोग स्वतंत्रता-प्राप्तिका उत्सव मना रहे थे, पश्चिमी पंजाबमें अल्पसंख्यक हिन्दू और सिक्ख अत्यन्त निर्दयतासे लूटे और मारे जा रहे थे। इसमें कुछ अत्युक्ति हो सकती है, किन्तु पंजाबके दोनों भागों पर साम्प्रदायिक कोपका जो पहाड़ टूटा, उसके भयंकर परिमाणोंसे अब सभी परिचित हो चुके हैं। यदि पाकिस्तानी लीगियोंका यह कहना ठीक मान लिया जाय कि पूर्वी पंजाबमें पांच लाखसे अधिक मुसलमान मौतके घाट उतारे गये, तो इसमें कोई संदेह हो नहीं सकता कि पश्चिमी पंजाबमें मारे गये हिन्दुओं और सिक्खोंकी संख्या इससे कहीं अधिक होगी।

सच तो यह है कि मि० जिन्नाके नेतृत्वमें मुस्लिम लीगके पाकिस्तानी नेताओंने हिंसात्मक साधनोंसे पाकिस्तान प्राप्त करनेका

दृढ़ निश्चय बहुत पहलेसे कर रखा था और उसके अनुसार कार्य करनेके लिये अपने सहधर्मियोंको बहुत बुरी तरह भड़कानेमें उन्होंने कोई कसर नहीं रखी थी। भारतके विभाजनका जोरोंसे विरोध करने वाली राष्ट्रीय कांग्रेससे उन्हें यह भय तो था ही नहीं कि वे बदला लेनेके लिये उनके मुक्कोंका जबाब घूंसोंमें देनेको तैयार होंगे, क्योंकि यह तो वे जानते ही थे कि अहिंसाके देवता महात्मा गांधी के कारण कांग्रेस किसी भी अवस्थामें हिंसाके साधनोंसे काम लेने के लिये तैयार नहीं होने पायेगी। इसीसे उन्हें इस तरह खुलकर खेलनेका इतना अधिक साहस हो गया था। लीगी नेता बहुत पहले ही से डंकेकी चोट यह कहने लग गये थे कि मुसलमान पाकिस्तानकी प्राप्तिके लिये सभी साधनोंसे काम लेंगे, क्योंकि वे अहिंसाके किसी सिद्धान्तसे बँधे नहीं हैं। उन्होंने एक साथ ही कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार दोनों ही से लड़ाई करनेकी बात खुले शब्दोंमें कहना आरम्भ किया था। पाकिस्तानको मांग नियमित रूपसे करनेके और अखण्ड भारतके पक्षपातियोंको भयभीत बनाने के अभिप्रायसे केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्था-सभाओंके सभी मुस्लिम लीगी मेम्बरोंकी एक कानफरेंस दिल्लीमें १९४६ के अप्रेलमें बुलायी गयी थी। वह स्वयं लीगके अध्यक्ष मि० जिन्नाके सभापतित्वमें हुई थी और उसमें बोलने वाले लीगी नेताओंने आग उगलनेमें कोई कसर नहीं रखी थी। उनके उन व्याख्यानोंके कुछ नमूने यहाँ यह दिखानेको दिये जाते हैं कि देशका विभाजन कराने को वे कहाँ तक तुले हुए थे। पाकिस्तान बन जाने पर मुस्लिम

लीगके अध्यक्ष मि० जिन्नाने डा० खां साहबकी कांग्रेसी मिनिस्ट्री का धींगा-धींगीसे अन्त कर जिस मि० अब्दुल कयूमको वहाँका प्रधान मंत्री बनाया है, उसीने उस कानफरेंसमें आग उगलते हुए यह कहा था—"जब मैं पेशावरसे आ रहा था, तब राहमें विद्यार्थियों और वर्दीधारी मुस्लिम अफसरोंने मुझसे मिल कर यह पूछा है कि लड़ाईके लिये कूच करनेका हुक्म कब मिलेगा। अगर ब्रिटिश गवर्नमेंट एक अखंड भारत सरकार या एक ही विधान-परिषद् कायम करनेके लिये मुसलमानोंको लाचार करेगी, तो मुसलमानोंके लिये अपनी तलवारें खींच लेनेके सिवा दूसरा और कोई रास्ता नहीं रह जायेगा। केन्द्रमें कोई कांग्रेसी सरकार एक दिन भी काम करनेमें समर्थ नहीं होगी। दस करोड़ मुसलमान बागी होंगे और उसे प्रथम अवसर आते ही उलट देनेको कृत-संकल्प होंगे। मैं आशा करता हूँ कि इस देशमें ऐसी सरकार स्थापित की जा सकनेके पहले ही मुस्लिम राष्ट्र तेजीसे प्रहार करेगी।" पंजाबी मुसलमानोंके एक नेता शौकत हयात खां ने यह कहा था—"मैदानमें सबसे पहले पंजाबी मुसलमान आयेंगे और लड़ेंगे। यह बात मैं पंजाबके सैनिकों, नौसैनिकों और उड़ाकोंकी ओर कह रहा हूँ, जो आपके लिये दममें-दम रहने तक लड़ेंगे।" मि० फीरोज खांनूनने तो यहाँ तक कहा था—"अगर हिन्दू हमें पाकिस्तान देते हैं, तो वे ही हमारे सबसे अच्छे दोस्त हैं। अगर अंग्रेज देते हैं, तो वे हमारे सर्वोत्तम मित्र हैं। लेकिन अगर इनमेंसे कोई नहीं देगा, तो रूस हमारा सर्वोत्तम मित्र है।"

नून मियांके इस कथन पर सारे उपस्थित लीगी मेम्बरोंने देर तक करतल ध्वनि की थी। और तो और, बेगम ऐजाज रसूलने भी पाकिस्तानके लिये छेड़ी जाने वाली लड़ाईमें युक्तप्रान्तकी मुस्लिम स्त्रियोंकी सहायताका आश्वासन दिया था। सबोंके सरगना स्वयं मि० जिन्नाने पाकिस्तानसे ही मुसलमानोंकी मुक्ति बताते हुए इस कानफरेंसमें यह आश्वासन दिया था कि, "अगर हिन्दुस्तानमें अल्पसंख्यक मुसलमानोंके साथ दुर्व्यवहार होगा, तो पाकिस्तानकी सरकार निष्क्रिय नहीं बनी रह सकेगी। अगर ग्लैडस्टनके समय अंग्रेज अर्मीनियनोंकी मदद पर जा सकते थे, तो निश्चय ही पाकिस्तान उस वक्त अलग खड़ा नहीं रहेगा, जब हिन्दुस्तानमें मुस्लिम अल्पसंख्यकोंके साथ बुरा वर्त्ताव किया जायेगा।" इस कानफरेंसमें मुसलमानोंके कल्याणके लिये पाकिस्तानको अत्यावश्यक बताते हुए प्रत्येक उपस्थित मेम्बरने शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा की थी कि मुसलिम लीग पाकिस्तानकी प्राप्तिके लिये जो भी आन्दोलन छेड़ेगी, उसमें मैं उसके सभी आदेशोंका पालन करूँगा और प्रत्येक खतरे, अग्नि-परीक्षा या बलिदानके लिये तैयार होऊँगा। तब आश्चर्य ही क्या कि जब आगे चल कर पाकिस्तान की प्राप्तिके लिये सीधी लड़ाई (प्रत्यक्ष संघर्ष) छेड़नेका निश्चय किया और १६ अगस्त (१९४६) को देश भरमें प्रत्यक्ष संघर्ष दिवस मनानेका आदेश मि० जिन्नाने निकाला, तो उसी दिन कम-से-कम कलकत्तेमें तो सीधी लड़ाई ही मुस्लिम लीगियों और उनके नेशनल गार्डों द्वारा छेड़ दी गयी? वह लड़ाई सचमुच तब तक उनके

द्वारा जारी रखी गयी, जब तक यानी १५ अगस्त १९४७ को पाकिस्तानकी स्थापना नहीं हो गयी।

कलकत्तेमें तलवार-बहादुर मुस्लिम लीगियोंका जब भयङ्कर हत्याकाण्ड करनेके बाद भी पेट नहीं भरा, तब उन्होंने नोआखाली और त्रिपुरा जिलोंमें पहुँच कर वहाँके निरीह एवं निस्सहाय अल्पल्प संख्यक हिन्दुओं पर गजब ढाना शुरू किया और अगणित अमानुषिक अत्याचार उन पर किये गये, उस समय बंगालमें मुस्लिम लीगी सरकार थी ही, इसलिये उपद्रवी लीगियोंको कोई भी अत्याचार करनेमें डर ही क्या था? यद्यपि २ सितम्बर ४६ को पं० जवाहरलाल नेहरूजीकी बनायी हुई मध्यकालीन अस्थायी सरकारने केन्द्रमें शासन भार सम्भाल लिया था, पर विभिन्न प्रान्तोंकी लीगी मिनिस्ट्रियों द्वारा उसका अधिकार न माने जानेकी बातें कही जाती थीं और वस्तुतः उसकी कोई परवाह वे नहीं करती थीं। फिर उसमें लीगने अपने प्रतिनिधि देनेसे इनकार कर दिया था, इसलिये नेहरू-सरकारको परेशान करना और अन्तमें संभव हो, तो उसका अन्त कर डालना लीगियोंने अपना मूलमंत्र बना लिया था। यही कारण है कि केन्द्रीय शासन नेहरू-सरकारके हाथमें आ जाने पर भी बंगालकी लीगी मिनिस्ट्रीके शासनके भीतर कलकत्तेमें लीगियोंका उपद्रव तो पूरे वर्ष भर जारी रहा और नोआखालीमें यद्यपि उपद्रव अल्पकालीन था, तो भी कई बातोंमें वहाँके हिन्दू अल्पसंख्यकों पर लीगियोंके राक्षसी अत्याचार कलकत्तेसे भी

आगे बढ़ गये थे। पीछे १५ अक्टूबरको यद्यपि मुस्लिम लीगके आदमी भी नेहरू-सरकारमें शामिल हो गये थे, लेकिन वे तो जान बूझकर उस सरकारके भीतरसे उसका कार्य असम्भव बना देने और अड़ंगेबाजीके घोषित उद्देश्यको लेकर उसमें घुसे थे। इसीसे केन्द्रीय सरकार एक प्रकारसे प्रभावरहित बना दी गयी थी और वह साम्प्रदायिक दंगोंको अन्त करनेके लिये कुछ विशेष कार्य नहीं कर सकी थी। इस प्रकार जब देशके उन लोगोंने अपनेको एकदम असहाय देख, जो लीगी आततायियों द्वारा अत्याचारके शिकार बनाये जा रहे थे, तब आत्म रक्षाके लिये उन्हें स्वयं ही खड़े होनेकी आवश्यकता अधिकाधिक प्रतीत होने लगी। नोआखालीके अवर्णनीय अत्याचारोंके समाचारसे बिहारके कुछ हिन्दू क्रोधसे पागल हो उठे और उन्होंने कुछ स्थानों पर वहांके मुसलमानों पर गजब ढाया। बिहारके साम्प्रदायिक उपद्रवकी रिपोर्ट दिल्ली पहुँचते देर नहीं हुई कि नेहरूजी अविलम्ब घटनास्थलों पर पहुँच गये और उपद्रवियोंको बड़ी करारी फटकार सुनानी शुरू कर दी। बहुसंख्यकोंको अल्पसंख्यकों पर अत्याचार करनेसे रोकते हुए नेहरूजीने साफ शब्दोंमें कह दिया कि कलकत्ता या नोआखालीमें हिन्दुओं पर किये गये अमानुषिक अत्याचारोंका बदला यहाँ बिहारके निरपराध अल्पसंख्यक मुसलमानोंसे लेना नितांत अनुचित है। उपद्रवियोंको कड़ीसे कड़ी चेतावनी सुनाते हुए नेहरूजीने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि वे अपनी शरारतसे बाज नहीं आयेंगे, तो आवश्यक होनेसे हवाई जहाजोंसे भी उप-

द्रवियों पर गोले बरसा कर उपद्रवका दमन किया जायेगा और सेना तथा पुलिसकी सारी शक्ति इस काममें लगा दी जायगी। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि नेहरूजीके उस सामयिक हस्तक्षेपसे बिहारके सारे उपद्रवोंका अन्त कई दिनोंके भीतर ही हो गया था। परन्तु मि० जिन्ना या अन्य लीगी नेताओंने तो कभी अपने उपद्रवियोंकी शैतानियोंके विरुद्ध एक शब्द भी कहना उचित नहीं समझा—वे कहते कुछ तो तब न, जब स्वयं उन्होंने ही अपने अनुयायियोंकी धर्मान्धताको उभाड़ कर उन्हें पाकिस्तानकी प्राप्तिके लिये सीधी लड़ाई छेड़नेको तैयार हो आगे कदम बढ़ानेके लिये उत्तेजित न किया होता। तानाशाही मिजाज वाले मि० जिन्नाने कलकत्ते और नोआखालीके अपने आदमियोंके उपद्रवोंकी निन्दामें कभी एक शब्द भी नहीं कहा, इससे यदि 'मौनं सम्मति लक्षणम्' की याद बार-बार आ जाती थी, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात थी?

भारतकी कठिन समस्याको सुलझानेके उद्देश्यसे भारत-मन्त्री लार्ड पेथिक लारेंसके नेतृत्वमें ब्रिटिशमंडलका जो मिशन यहां आया था, उसने जो योजना उपस्थित की थी, उसमें लीगकी पाकिस्तानकी मांगको अस्वीकार करते हुए साफ शब्दोंमें यह कह दिया गया था कि वह अव्यवहार्य है, इसलिये ब्रिटिश सरकार उसे स्वीकार करनेको तैयार नहीं हो सकती। जब कांग्रेसने मिशनकी प्रदेशोंको समूहबद्ध बनानेवाली योजनाके सम्बन्धमें प्रान्तोंकी स्वतन्त्रता पर जोर दिया और कई प्रान्तोंने उसे स्वीकार

करनेसे इनकार किया, तब मि० जिन्नाकी अनुचित जिद्के कारण ऐसी अवस्था पैदा हो गयी कि कांग्रेसके उस योजनाको स्वीकार करते हुए भी मुस्लिम लीगने अन्तमें अपना पूर्ण निर्णय बदल कर उस सारी योजनाको अस्वीकार कर दिया था और इसीसे नेहरू-सरकारमें अपना कोई आदमी नहीं भेजा था। ब्रिटिश अधिकारी अपनी घोषित तारीख तक भारतका शासनाधिकार एक या अनेक अधिकारी शक्तियोंको सौंप देनेका अटल निश्चय प्रकट कर रहे थे, जिससे यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि कोई समझौता न होने पर प्रान्तोंमें शासन व्यवस्था उन सरकारोंको ही सौंप दी जायेगी, जिनके हाथमें वहांकी शासन-व्यवस्था उस समय होगी, इसलिये लीगी नेताओंने पहले तो पंजाबकी संयुक्तदली मिनिस्ट्रीको गिरानेके लिये उस प्रान्तके भीतर प्रचण्ड हिंसात्मक आन्दोलन छेड़ कर उस मिनिस्ट्रीका अन्त धींगाधींगीसे कर दिया और जब अपने हथकंडों को वहां सफल होते देख लिया, तो पीछे पाकिस्तानका निश्चय होने पर उन्हींका प्रयोग सीमाप्रान्तमें भी आरम्भ कर दिया, जहांका शासन उस समय डा० खां साहबकी कांग्रेसी मिनिस्ट्रीके हाथमें था। अपनी हिंसापूर्ण कार्रवाइयोंसे लीगी आततायियोंने खास कर वहांके अल्पसंख्यकों और खुदाई खिदमतगारोंका जीवन एक-दम दूभर बना डाला। कांग्रेस और खुदाई खिदमतगारोंके नेताओंने भयंकर रक्तपात बचानेके लिये उस मत-संग्रहसे दूर रहने ही में कल्याण देखा, जिसका आयोजन ब्रिटिश सरकारकी प्रेरणा से वहांके लोगोंका मत इस सम्बन्धमें जाननेके लिये किया गया

था कि वे प्रांतको पाकिस्तानमें मिलाना चाहते हैं या भारतसंघमें। इन दोनों ही प्रान्तोंमें साम्प्रदायिक दंगोंका प्रारम्भ तो वास्तवमें उन्हीं दिनों हो गया था और जैसे-जैसे लीगी अपने हिंसात्मक आन्दोलनोंमें सफल होते गये, उनका साहस अधिकाधिक बढ़ता गया। १५ अगस्तको पाकिस्तान बन जानेके बाद तो उन्होंने उसके भीतर अपनेको मनमानी घरजानी करनेके लिये पूर्ण स्वतंत्र समझ लिया और पंजाब तथा सीमाप्रान्तमें लूट-मारका जो व्यापार लीगके भक्तोंने पहले ही से प्रारम्भ कर रखा था, उसे पराकाष्ठाको पहुंचा देनेका लोभ वे नहीं संवरण कर सके, इसीसे उन प्रान्तोंके अल्पसंख्यक सिक्ख और हिन्दू उनके असह्य अत्याचारोंसे ऊब कर घर-द्वार छोड़कर भागने लग गये। जो लोग वहां से भाग कर दिल्ली और पूर्वी पंजाबमें पहुंचे, उन्होंने पश्चिमी-पंजाबमें होने वाले अत्याचारोंकी बातें जब ब्योरेवार सुनायीं, तो वहां पर उनके जो इष्ट-मित्र, सगे-सम्बन्धी और उनकी यंत्रणाओं पर आंसू बहाने वाले थे, उनका रक्त एकदम उबल पड़ा और उन्होंने आपेसे बाहर हो प्रतिशोध लेना शुरू कर दिया। फल-स्वरूप सारा पंजाब जल उठा, लाहौर और अमृतसर जलाकर राख कर डाले गये और लोग ऐसे-ऐसे अमानुषिक अत्याचारोंके शिकार बनाये गये कि नेहरूजीका कोमल हृदय कांप उठा और उन्हें ऐसा लगने लगा कि यदि ये लोमहर्षक कांड नहीं समाप्त किये जा सकते तो अपने पदों पर बने रहनेका कोई अर्थ नहीं होगा।

नेहरूजीने साम्प्रदायिक उपद्रवोंके समय आदिसे अन्त तक

सदा ही साम्प्रदायिक पागलपनकी निन्दा की, कई बार तो दिल्लीमें निहत्थे ही वे अपनी मोटरसे कूदकर आततायियोंको निरीहजनों पर छुरे आदिसे आक्रमण करनेसे रोकनेमें भी कुछ कम नहीं किया। वे उन दिनों रात दिन मारकाटका अंत कराने, शरणार्थियों को कुशल पूर्वक ले आने और पाकिस्तान जानेको तैयार मुसलमानों को वहां भेज देने और घर आये हुए पचास लाखसे अधिक विपत्तिग्रस्त शरणार्थियोंको टिकाने तथा उनके लिये खान-पान आदिकी आवश्यक व्यवस्था करने आदि कार्योंमें ही लगे रहते थे। पश्चिमी पञ्जाबमें लक्ष-लक्ष हिन्दुओं और सिक्खोंपर जैसा गजब ढाया गया था, वह तो फिर भी समझमें आ जाता है, किन्तु शैतानोंने तो खास भारतकी राजधानी दिल्लीके भीतर ही हमारी नयी सरकारको उलट देनेके लिये बड़ी भारी तैयारियां कर ली थीं और भारतकी सेना तथा पुलिसमें जो मुसलमान थे, उनमें भी साम्प्रदायिकताका विष इस तरह भर दिया गया था कि जब शांति-रक्षार्थ उनकी आवश्यकता पड़ी, तो वे प्रायः सारेके सारे अपनी ड्यूटी छोड़कर लापता हो गये और बहुतसे तो लीगी आततायियोंके साथ मिलकर रक्षकसे भक्षक बन गये थे। पंजाब के दोनों भागोंमें और वैसे ही सीमाप्रान्तमें जैसे राक्षसी अत्याचार धर्मके नामपर किये गये उन सबका वर्णन करनेसे एक बहुत मोटी पोथी तैयार हो सकती है। उसके लिये न तो यहां स्थान ही है और न अब उसे देनेसे कोई लाभ ही। वह यहां देना अप्रासंगिक भी होगा। फिर भी राजधानी दिल्ली और भारतकी नेहरू-सरकारको

मिटा डालनेके लिये की गयी तैयारियोंका कुछ परिचय यहां हम इसलिये दे देना चाहते हैं, जिससे पाठकोंको यह देखने और विचारनेकी सामग्री मिल सके कि जिस रूपमें नेहरूजी और उनके मन्त्रिमण्डलके सभी सदस्योंको एक साथ ही उड़ानेकी तैयारियां की गयी थीं, उस समय उसका पता चल जाने पर भी नेहरूजीने अपना कर्त्तव्य कैसी शांति, किन्तु दृढ़ताके साथ पूरा किया था। कट्टरसे कट्टर मुसलमानोंको भी यह मुक्तकंठसे स्वीकार करना पड़ा है कि पंजाब और दिल्लीके उस महा भयंकर नरसंहार और विध्वंस के बीच भी नेहरूजी और महात्मा गांधी ही दो ऐसे महापुरुष थे, जिन्होंने साम्प्रदायिकतासे तो अपनेको एकदम अलग रक्खा और अपनी सारी शक्ति लगी हुई आगको बुझाने और शांतिकी स्थापनाके उद्योगमें ही लगा रखी थी।

दिल्ली और नेहरू-सरकारको उड़ाकर जन्म लेते ही भारतके स्वतंत्र राज्यका अन्त कर डालनेकी कैसी तैयारियाँ की गई थीं, उनके सम्बन्धमें हम १६४८ के अक्टूबरमें पत्रोंमें प्रकाशित सुप्रसिद्ध मनीषी डा० भगवान दासजीके उस वक्तव्यका एक अंश ही यहाँ उद्धृतकर देना पर्याप्त समझते हैं, जो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघके युवकोंके लिये अपनी सरकारसे सिफारिश करनेके लिये था। वक्तव्यका वह अंश यह है—"मुझे विश्वस्त सूत्रसे पता चला है कि दिल्लीके मुसलिम लीगियोंके विश्वासभाजन बनकर उनके भेदोंका पता लगानेके लिये संघके कुछ स्वयं सेवकोंने इसलाम धर्मको स्वीकारकर लेनेका बहाना तक किया था और इस प्रकार १०

फार्म उनसे भरा था। आने जानेवाले यात्रियोंको दुर्गन्धिके कारण नाक दबाकर लाशोंको रौंदते हुए जाना पड़ता था।"

पञ्जाबके दोनों भागोंमें जितना भी विनाश किया जा सकता था, कर डाला गया। पर आखिर वह कब तक जारी रखा जा सकता था। अन्तमें सरकारी अधिकारी कानफरेंसें कर-करके शीघ्रसे शीघ्र शांति स्थापित करने और शरणार्थियोंकी समस्यापर विचार करने लगे। एक ऐसी ही कानफरेंस अम्बालामें १६४७ के अगस्तमें हुई थी। उसके बाद १६ अगस्तको दिल्लीसे ब्राडकास्ट करते हुए नेहरूजीने जो कुछ कहा था, उससे उस समयकी अवस्था का कुछ आभास मिलता है। उन्होंने पंजाबकी स्थिति और अम्बाला कानफरेंसकी चर्चा करते हुए इस आशयकी बातें कही थीं—"हम लोगोंने अमृतसर और लाहौरमें वीभत्स कांडोंकी कहानी सुनी और हजारों हिन्दू, सिक्ख और मुसलिम शरणार्थियोंकी दयनीय दशा देखा। नगरमें अनेक स्थानोंपर अभी तक आग जलती दिखाई पड़ी। हालके उपद्रवोंकी खबरें मिलीं। हम सभी लोग सर्व सम्मतिसे इस निश्चयपर पहुंचे हैं कि वर्त्तमान स्थितिका सामना करनेके लिये दृढ़तापूर्वक कारवाई की जानी चाहिये। इस समयकी आवश्यकता यह है कि कोई भी मूल्य चुकाकर उपद्रवका अविलम्ब अन्त अवश्य करना चाहिये। अम्बालामें हमलोगोंने वर्त्तमान नृशंस हत्याओं और अग्निकाण्डका अन्त करनेके लिये शक्ति भर प्रयत्न करनेका वादा किया है। पूर्वी पंजाबकी सरकार नये प्रान्तमें आकर बसने वालोंको सभी प्रकारकी संभव सहायता

प्रदान करेगी, किन्तु वह सीमाके बाहर सामूहिक तौर पर पश्चिमी भागसे आकर बसने वालोंको प्रोत्साहन नहीं देगी, क्योंकि उससे सभी सम्बन्धित लोगोंके सामने महान् कष्ट और सङ्कट उपस्थित होगा। हम आशा करते हैं कि शीघ्र ही पूर्ण शान्ति कायम होगी और जनताको पूर्ववत् कार्य करनेकी पूरी सुविधा और सुरक्षाकी गारंटी दी जायेगी। हमारे लिये पंजाबकी समस्या खास तौर पर विचारणीय है और मैं शीघ्र ही अथवा आवश्यकता पड़ने पर पंजाब जानेका विचार करता हूँ।" नेहरूजीकी इन बातोंसे स्पष्ट है कि किस तरह दंगेकी अग्नि बुझ भी नहीं पायी थी, तभीसे नेहरूजी शान्ति स्थापित करनेके लिये दौड़-धूप करने लगे थे।

१४ अगस्तको नेहरूजीने पूर्वी पंजाबका दूसरी बार निरीक्षण करनेके सिलसिलेमें प्रान्तकी जनतासे शान्तिपूर्ण वातावरण पैदाकर सरकारको शान्ति और व्यवस्था स्थापित करनेमें सहयोग प्रदान करनेकी अपील की। नेहरूजीने कई अनियमित बैठकोंमें भाग लिया और सड़कोंके किनारे कई स्थानों पर नागरिकोंकी भीड़के सामने व्याख्यान दिये। उन्होंने कहा कि—'पश्चिमी पंजाबके कुछ भागोंसे, जहाँ अत्यन्त सङ्कटपूर्ण स्थिति पैदा हो गयी है, शोचनीय समाचार मिल रहे हैं। पश्चिमी पंजाबके अल्पसंख्यकोंकी जीवन रक्षाके लिये जनताको जो चिन्ता और व्यग्रता हो रही है, इसकी तो मैं सराहना करता हूं, लेकिन आप लोग यह याद रखें कि प्रति-शोधकी भावनासे स्थिति किसी भी रूपमें नहीं सुधरेगी। यदि पूर्वी पंजाबमें शान्ति स्थापित हो जायगी, तो सारी शक्ति पश्चिमी

पंजाबमें अराजकताका अंत करनेमें लगायी जायगी। नागरिकोंका कर्त्तव्य है कि वे ऐसी स्थितिकी स्थापनामें सहयोग प्रदान करें, जिससे उपद्रवियोंके कारनामें बर्दाश्त किये जा सकें। २८ अगस्त को एक प्रेस कानफरेंसमें नेहरूजीने इस आशयकी बातें कहीं—"प्रतिहिंसामें प्रतिद्वन्दिता अबांच्छनीय है। इस तरह भी प्रतिहिंसा की भावनासे ऐसे आदमियोंकी रक्षा नहीं की जा सकती, जिनकी हम वास्तवमें रक्षा करना चाहते हैं। मैं साहसकी बृद्धि नहीं कर रहा हूँ, किन्तु यदि प्रतिशोध या सजा सम्भव है, तो यह काम सरकारका है और उसका अर्थ है युद्ध। व्यक्तिगत प्रतिहिंसा और प्रतिशोधका अर्थ स्वयं अपनी सरकारको उचित कार्यवाही कर सकनेके अयोग्य प्रमाणित करना है। परन्तु यदि समस्याओंका उचित रूपमें समाधान मुख्य लक्ष्य है, तो सरकारोंके बीच पूर्ण सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। इस समयकी महत्वपूर्ण समस्या सर्वप्रथम पश्चिमी पंजाबके निरीह और बिखरे हुए अल्पसंख्यकोंकी सहायता तथा सुविधानुसार स्थानान्तर है। इस जटिल समस्या के समाधानके लिये विवेक, सहिष्णुता और शान्तिसे काम लेना परमावश्यक है। हमारी सरकारकी ओरसे बिल्कुल सीमित वक्तव्य ही प्रकाशित किये गये हैं। किन्तु करांची, लाहौर और अन्य स्थानोंसे प्रकाशित होने वाले विवरण निन्दनीय है। वक्तव्यों पर नियंत्रण होना इस समय बहुत आवश्यक है। पूर्वी और पश्चिमी पंजाबमें मारे गये लोगोंकी संख्याओंका वास्तविक अनुमान बिल्कुल कठिन है, यह निश्चय है कि हत्याएँ बड़े पैमाने पर हुई हैं।

आज वस्तुस्थिति वास्तवमें यह है कि पश्चिमी पंजाबकी तुलनामें पूर्वी पंजाबकी स्थितिमें बहुत सुधार हुआ है। आज मध्याह्नके समय आम्बालामें और तदुपरान्त लाहौरमें कानफरेंस होगी। मि० लियाकतअली खां और मैं पूर्वी और पश्चिमी पंजाबका दौरा करेंगे और सरदार बलदेव सिंह तथा पाकिस्ततानके एक मन्त्री अलग दौरा करेंगे। पंजाबमें जो कुछ हुआ है, वह बहुत ही खराब और शोचनीय है। मैं इसका अन्त करना चाहता हूँ, किन्तु इस दुर्भावना और उत्पातका अन्यत्र प्रसार होने और दूसरे स्थानोंका वातावरण विषाक्त बननेका खतरा दिखाई पड़ता है। पंजाबकी स्थिति कई दृष्टियोंसे अत्यन्त गंभीर है, अतः सरकारके प्रधानकी हैसियतसे शासन-संचालनकी दृष्टिसे हमारे ऊपर भारी जिम्मेदारी है। हम इस समस्याके समाधानमें अधिकाधिक शक्ति लगा रहे हैं। स्थिति सुधारनेके उद्देश्यसे हम प्रतिदिन बैठकका आयोजन कर अनवरत परिश्रम कर रहे हैं। अगस्तके आरम्भमें ही अमृतसर शहर और जिलेमें लाहौरके साथ-ही-साथ उपद्रव शुरू हुए। नृशंसता और निष्ठुरता चरमसीमा पर पहुँच गयी, ऐसी स्थितिमें यह स्पष्ट है कि बदला लेनेकी भावना गलत तरीका है। मैं इसकी नैतिकताके विषयमें नहीं, बल्कि इसके क्रियात्मक रूपके विषयमें कह रहा हूँ। हम पूर्व पंजाबमें अल्पसंख्यकोंको मदद करनेमें पहले आगे बढ़ेंगे। जहाँ आवश्यक होगा, उन्हें पहुँचायेंगे। हमारे लिये अपने इलाकेमें शान्ति कायम करना जरूरी है। परन्तु कठिनाई भी कम नहीं। १५ अगस्तसे ही पूर्व पंजाबका

तमाम यातायात रेलवे, टेलीफोन, तार, डाक—सभी कुछ बिल्कुल अस्त-व्यस्त हो गये हैं। सहयोग होता, तो इनके भंग करनेकी जरूरत न होती। लेकिन सहयोग नहीं था और यही उपद्रवकी जड़ थी। हम अमृतसर, जालंधर और दूसरी जगह टेलीफोन और तार भेजना चाहें तो नहीं भेज सकते। पश्चिमी पंजाबके समाचार नहीं मिल रहे हैं। अफवाहें अत्युक्ति पूर्ण हैं सही, पर यह सत्य है कि पश्मिी पंजाबके कुछ हिस्सोंमें भारी दुर्घटनाएँ घटी हैं। वहाँ शरणार्थियों पर भी हमले हुए हैं। सङ्कटग्रस्त लोगोंकी सहायताके लिये दोनों ही पंजाबकी सरकारोंके सहयोगकी आवश्यकता है।"

भारत और पाकिस्तानकी सरकारोंमें आबादीकी अदला-बदली का निश्चय तो पीछे हुआ था और लाखों शरणार्थियोंके स्थानांतर की जो व्यवस्था की गयी, उसे कार्यान्वित करनेके लिये जिस तरह रेल गाड़ियाँ, हवाई जहाज, मोटरें, लारियाँ आदि दोनों उपनिवेशों की ओरसे अधिकसे-अधिक संख्यामें दी गयी थी, उनका व्योरेवार वर्णन इस छोटे स्थानमें सम्भव नहीं। निश्चय यह हुआ था कि पूर्वी पंजाबसे सभी बचे हुए मुसलमान पश्चिमी पंजाबमें पहुंचाये जायें और पश्चिमी पंजाब और सीमाप्रान्तके सभी अव-शिष्ट हिन्दू और सिक्ख पूर्वी पंजाबको भेज दिये जायें। इस तरह कुल पचास लाख हिन्दू और सिक्ख पाकिस्तानसे भारत लाये गये और इतने ही के लगभग पूर्वी पंजाब तथा भारतके अन्य भागोंसे पाकिस्तान गये। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि कुल एक करोड़से

अधिक आदमियोंका स्थानांतर करने ही में दोनों ही उपनिवेशोंकी सारी शक्ति महीनों तक लगी रही। दोनोंके गवर्नर जेनरल, और वैसे ही उनके प्रधान मंत्री एवं अन्य मंत्री लोग और दोनोंकी सेनाएँ इतने अधिक शरणार्थियोंके स्थानांतरकी व्यवस्थाओंमें महीनों लगे रहे, तब कहीं जाकर काम पूरा हो सका है। दोनों उपनिवेशोंमें शरणार्थियोंको सकुशल हटानेके सम्बन्धमें समझौते तो कुछ पीछे हुए थे, पर पश्चिमी पंजाबके स्यालकोट, रावलपिंडी, गूजरांवाला, मुलतान, लायलपुर और मांटगोमरी जिले दूरके स्थानों में भारी खतरेमें पड़े हुए हिन्दुओं और सिक्खोंको वहाँसे हटानेके लिये नेहरू-सरकारने विमानोंकी व्यवस्था पहले ही कर दी थी। पहले इस काममें दस विमान लगाये गये थे। इस तरह सवा लाख के लगभग शरणार्थी तो दिल्ली शहरमें ही कुछ सप्ताहोंके भीतर ही पहुँच गये थे।

२ सितम्बरको महात्मा गांधी कलकत्तेसे नोआखाली जानेको थे, किन्तु उनके प्रयत्नसे पूरे एक वर्ष तक चलनेवाली कलकत्तेकी जो मारकाट १४ अगस्तको बन्द हो गयी थी और हिन्दू मुसलमान भाई-भाईकी तरह गले मिले थे, वह दृश्य एक बार फिर बदल गया और ३१ अगस्तकी रातमें फिर उपद्रव आरंभ हो गया। इसीसे महात्माजीने १ सितम्बरकी संध्यासे अनशन आरंभ कर दिया। वह अनशन तिहत्तर घंटे तक जारी रहनेके बाद हिन्दू मुसलिम नेताओंके आश्वासन देने पर ही भंग हुआ था। उसके बाद कलकत्ता पूर्णतया शांत हो गया, तब महात्माजी पंजाबकी आग

बुझानेके लिये वहांसे चलकर ६ सितम्बरको दिल्ली पहुंचे । तब तक दिल्लीमें भी भयंकर मारकाट मच गयी थी, इसलिये वहीं रुक जाना पड़ा। जब वे कलकत्तेमें अनशन कर रहे थे, उसी समय नेहरूजी पश्चिमी पंजाबकी आग बुझानेके लिये गये हुए थे। १ सितम्बरको लायलपुरमें हिन्दू, सिक्ख और मुसलिम प्रतिनिधियोंके सामने बोलते हुए उन्होंने कहा कि—"जब तक पंजाबमें शांति नहीं स्थापित हो जायेगी, मैं अपना अधिकांश समय यहीं पर बिताऊँगा।" साथ ही उन्होंने वहांके पांच लाख अल्पसंख्यकोंके तत्काल हटा ले जानेकी मांग की। पाकिस्तानके प्रधानमंत्री मि० लियाकत-अलीने अल्पसंख्यकोंसे अपील की कि अपने स्थान न छोड़ें और मुसलमानोंसे यह कहा कि तुम्हारा हित शांतिकी स्थापनामें है, नहीं तो पाकिस्तानकी नींव कमजोर हो जायेगी। निरीह व्यक्तियोंकी हत्या इसलाम एवं मानवताके विरुद्ध है। मैंने अधिकारियोंको आदेश दिया है कि वे किसी भेदभावके बिना उपद्रवियोंको दबायें। एक दर्जन हिन्दू महिलाओंने नेहरूजीसे मिलकर उनके हाथमें रक्षा बांधी और रक्षाके लिये विनय की। उन्हें आश्वासन देनेके बाद मुसलिम लीगके प्रतिनिधियोंके डेपुटेशनसे नेहरूजीने कहा कि अल्पसंख्यकोंमें विश्वास पैदा करें। पश्चिमी पंजाब ही पाकिस्तानका केन्द्र है, इसके बर्बाद होनेसे पाकिस्तान बर्बाद हो जायगा। पीछे वे मि० लिकाकत अलीके साथ कई नगरोंमें गये और उपद्रव शांत करनेके लिये लोगोंको समझाते रहे। अवस्था इतनी बिगड़ गयी थी कि स्वयं मि० जिन्नाको भी

अपनी मौन-मुद्रा भंग करनी पड़ी और उन्होंने भी यह कहना आरंभ किया कि, "पाकिस्तानमें पूर्ण शांति रहनी चाहिये, क्योंकि आरंभमें ही यदि इसके भीतर गैर-कानूनी कारवाइयां होने लगीं, तो पाकिस्तान नींवसे हिल जायेगा और इसका भविष्य बिगड़ जायेगा।" पीछे उन्होंने यहां तक कहा कि, "जहां कहीं मुसलमान बहुसंख्यक हैं, उन्हें बदला लेनेमें नहीं लगना चाहिये। प्रत्युत, उन्हें तो निर्बलकी रक्षा करनी चाहिये, जैसा कि इसलामने हमारे लिये आदेश दे रखा है।" क्या ही अच्छा होता कि मेसर्स जिन्ना और लियाकत अली कलकत्तेमें मारकाट आरंभ होनेके समय ही यही बात कहते कि मुसलमानोंका धर्म निरपराध व्यक्तियोंसे बदला लेना नहीं सिखाता और निर्बलकी रक्षा करनेका आदेश देता है। तब न तो कलकत्तेमें इस तरह वर्षभर रक्तकी नदियां बहतीं और न नोआखालीकी पाशविकताका प्रसंग आता। तब नोआखालीमें पाशविकताका नग्न नृत्य न होता, तो बिहारमें मारकाट न मचती और बिहारका बदला पश्चिमी पंजाबमें न लिया जाता। परन्तु मि० जिन्नाने तो पहले कभी एक शब्द भी अपने उपद्रवी अनुयायियोंके विरुद्ध नहीं कहा और उनकी निन्दामें शायद कभी उनके मुँहसे एक भी बात नहीं निकली।

महात्मा गांधीने दिल्लीकी भयंकर मारकाटसे खिन्न हो यहां भी 'करो या मरो' का अटल संकल्प किया और कहा कि मैं अवस्था शांत करनेका यथाशक्ति प्रयत्न करूंगा अथवा इसकी चेष्टामें प्राणोत्सर्ग कर दूँगा। वे बदला लेनेके विरुद्ध तो सदा ही आवाज

उठाते रहे और वैसे ही देशकी आवादीका परिवर्त्तन देशके लिये भारी घातक और विनाशकारी बताते रहे। प्रारंभमें तो नेहरूजी भी ऐसा ही कहते रहे, किन्तु जब देख लिया कि आबादीकी अदला-बदलीके सिवा अल्पसंख्यकोंकी प्राणरक्षा और शांतिकी स्थापनाके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है, तब उन्हें भी सरकारका प्रधान होनेके कारण उसके लिये राजी होना पड़ा था। ९ सितम्बरको नेहरूजीने मि० लियाकतअलीके साथ मिलकर एक संयुक्त वक्तव्य निकाला, जिसमें पंजाबके उपद्रवोंको कुचल डालनेके लिये कड़ीसे कड़ी कार्रवाई करनेकी घोषणा की गयी। शांतिके लिये अपील करते हुए इसमें कहा गया था कि कानून भंग करनेवालोंके विरुद्ध सरकारकी पूरी शक्तिका प्रयोग किया जायगा। खासकर हथियारबंद लोगोंके गिरोह गिरफ्तार कर जेलमें बन्द कर दिये जायँगे और अपराध करते हुए जो व्यक्ति देखे जायँगे, उन्हें गोली मार दी जायगी। साथ ही वह भी कहा गया कि शरणार्थियोंकी देखभालके लिये आवश्यक उपाय किये जायँगे। मुसलिम शरणार्थियोंको रक्षा मुसलिम सैनिकों और गैर-मुसलिम शरणार्थियोंकी गैर मुसलिम सैनिकों द्वारा की जायेगी। जायदाद पर गैर-कानूनी दखल नहीं माना जायेगा और वह उसके हकदारको वापस दी जायेगी। नेहरूजी अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें किस तरह तत्पर थे और किस तरह वे अपनेको बड़ेसे बड़े खतरेमें डालनेको तैयार थे, यह तो इसीसे प्रकट हो जायेगा कि ८ दिसम्बरको उन्होंने अपनी मोटरसे उतर झपटकर एक उपद्रवीके

हाथसे स्वयं नंगी तलवार छीन ली थी, जिससे वह निहत्थे व्यक्ति मारनेके लिये एकत्र हो रहे थे, वे सभी तितर-बितर हो भाग खड़े हुए। उसी क्षेत्रमें जब नेहरूजी कुछ और आगे बढ़े तो क्या देखते हैं कि कुछ उपद्रवी दिन दहाड़े एक दूकानको लूट रहे हैं। अपनी गाड़ी लेकर वे उनके बीच जा धमके और कुछ गुण्डोंको पकड़ बुरी तरह फटकारा।

राजधानी दिल्लीमें कई दिनोंतक कैसी भयंकर मारकाट मची रही, यह तो इसीसे प्रकट है कि महात्माजीको शांति-स्थापनाके लिये वहीं रुकनेको लाचार होना पड़ा। उपद्रवकी भयङ्करताके कारण सम्पूर्ण दिल्ली प्रांत भयङ्कर रूपसे उपद्रवग्रस्त क्षेत्र घोषित कर दिया गया। बात यह हुई कि पंजाबके भयङ्कर उपद्रवोंके कारण तबतक दो लाख शरणार्थी विभिन्न स्थानोंसे वहां पहुँच गये। वे जिस प्रकारकी रिपोर्टें लोगोंको सुनाते थे, उनसे लोगोंका भड़क उठना स्वाभाविक था। उपद्रव क्षेत्र घोषित करके कई कानून जारी किये गये और हत्याके साथ ही कई अन्य अपराधोंके लिये प्राणदंडकी व्यवस्था की गयी। इन अपराधोंमें किसीको उड़ा लेजाना, आग लगाना, डाका डालना आदि थे। सरकारी अफसरोंको अप-राधोंको रोकने और अपराधियोंको दंड देनेके लिये विशेष और व्यापक अधिकार दिये गये। बिना इजाजत लिये शहरके भीतर जीप गाड़ियोंको चलानेपर रोक लगा दी गयी और पुलिस तथा सैनिकोंको हुक्म दे दिया गया कि जब कानून तोड़नेवालों पर फैर करें, तो फैर मार डालनेके लिये की जायें, केवल घायल करनेके

लिये नहीं। ६ सितम्बरको महात्माजीके दिल्ली पहुंचनेके कुछ घंटे बाद नेहरूजीने इस आशयकी अपील देशवासियोंसे बड़े मार्मिक शब्दोंमेंकी थी—"आज हमारे नेता महात्माजी कलकत्तेसे यहाँ आये हैं। जब मैं उनके पास थोड़ी देरके लिये बैठा तो आसानीसे चार आँखें नहीं हुई। मुझे शर्म मालूम होती है कि मैं प्रधान मन्त्री की जिम्मेदारी पूरी तरहसे पूरी नहीं कर पाया। देशमें जहाँ भी जो कुछ हो रहा है, उसे मैं अपना कसूर मानता हूँ। जिम्मेदारी न पूरा करनेसे मुझे इस कुर्सीपर बैठनेका कोई हक नहीं। हिन्दुस्तानका वह बड़ा आदमी आज यहां क्या देख रहा है? कलकत्तेमें तो उनकी आश्चर्यजनक विजय हुई। वे यहां आये हैं और हम चाहते हैं कि जादूका प्रभाव यहां भी हो। आज पञ्जाबमें ही नहीं, दिल्ली तथा और जगहों पर भी लूट-मारका बाजार गर्म हो रहा है। हम नया हिन्दुस्तान बनानेकी सोचते थे, पर पंजाबकी बातोंसे हमारे मनमें गुस्सा भर गया। फिर भी देशकी उन्नतिके लिये हमें सब कुछ सोचना और समझना होगा। हमने अपने हाथ जल्द नहीं रोके, तो देश तबाह हो जाता। पश्चिमी पञ्जाबके मुसीबतोंमें पड़े हुए लाखों भाई-बहिनोंका सवाल हमारे सामने पहले है। इस तरह इस वर्बादीसे हमारे काममें रुकावट आ रही है। हवाई जहाजों, रेल और रास्तोंसे होकर दस लाख स्त्री पुरुष और बच्चे बचाये गये हैं और काममें रुकावट होती, तो और भी दस लाख अबतक आजाते। हमारी फौज इधर भटक रही है, हमारा दिमाग इधर लग रहा है और जरूरी काममें रुकावट हो रही है। ऐसी

अशांत स्थितिमें कोई देश या शासन नहीं चल सकता। हमें अपने भाई-बहिनोंको पहिले बचाना है। बहुत मारे गये, सम्पत्तियां बर्बाद हुई और जो बचे हैं, उन्हें हम इधरके झगड़ेके कारण नहीं बचा पा रहे हैं। जो हो, हम भारतको कदापि लुटेरोंका देश नहीं बनने देंगे। यह तमाशा देखनेका समय नहीं है। देशमें आज भी चारों तरफ भड़कानेवाले लोग घूम रहे हैं और लोगोंको दंगे करने को उकसा रहे हैं। लाखोंको लाचार होकर इधरसे उधर करना पड़ा। यह काम और भी तेजीसे करना है। परेशानियां बढ़ रही है, पर हम अपना कर्त्तव्य पूरा करेंगे। हमें स्वतन्त्रता बना रखनी है, तो शांति स्थापित करना जरूरी है। फौज और पुलिस पर भी बड़ी जिम्मेदारी है। कुछ शिकायत उनके विरुद्ध पक्षपातकी आरही है। अगर उनमेंसे किसीने अपनी जिम्मेवारी नहीं पूरी की, तो अपनी जगहसे उन्हें हटना होगा। हम वर्षोंकी कमाईको बर्बाद न होने देंगे।"

इस तरह स्पष्ट है कि दिल्लीके सम्बन्धमें नेहरूजीको कितनी चिन्ता हो रही थी। परन्तु उनके उक्त ब्राडकास्टका तुरन्त प्रभाव हुआ, जिन हाथोंमें हथियार चमक रहे थे, वे झुक गये और लुटती हुई दुकानें बच गयीं तथा अशान्तिका, जादूकी भांति अन्त होता स्पष्ट दिखाई देने लगा। नेहरूजी भी मि० जिन्नाकी भांति अपने आदमियोंके विरुद्ध कुछ न कहनेकी नीति ग्रहण करते, तो वैसा करनेको स्वतंत्र थे, पर ऐसा उन्होंने नहीं किया। उनके ये शब्द कितने हृदय हिलानेवाले है—"मैंने बहुत लोगोंको मरते देखा

है। मरना तो सभी लोगोंको किसी न किसी दिन अवश्य पड़ेगा ही। मृत्यु बुरी है, मृत्यु दुःखपूर्ण है, किन्तु आदमी मृत्युका आदी बन जाता है। लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं जो बहुत बुरी हैं और वे हुई हैं। मेरे आदमियोंने जो कुछ किया है, उसके लिये मैं शर्मिन्दा हूं और मुझे भय होता है कि इन पाप कर्मोंके परिणाम बहुत समय तक बने रहेंगे और वैसे ही उनके लिये हुई बदनामी भी। कारण पाप द्वारा पापका अन्त नहीं होता और आप हत्या द्वारा हत्याको नहीं रोक सकते। फिर भी हमारे आदमियोंमेंसे कुछने वैसा ही सोच लिया और यहाँके पागल बने लोग भयंकर दुर्घटनाओंके वृत्तान्तोंसे प्रभावित होते हुए एकदम पागल हो उठे और ऐसा आचरण किया है, जैसा कि केवल पागल आदमी ही कर सकते हैं।" साथ ही नेहरूजीने यह भी कह दिया कि, "उसके लिये गम जाहिर कर देने या अपनी किस्मतके लिये रंज करनेसे ही कोई भलाई कतई नहीं होगी। पहले हमें यह अनुभव करना चाहिये कि अवस्था कैसी है। यह बहुत ही गम्भीर सङ्कट की घड़ी है। यह इसीलिये नहीं कि उपद्रवों और अशान्तिका जोर है, बल्कि इसलिये और भी अधिक कि भारतकी स्वाधीनता संकटमें है। इतने अधिक वर्षों तक हम जिस स्वतंत्र भारतके लिये स्वप्न देखा करते थे, क्या यही उसकी प्राप्ति है?"

१४ सितम्बरको लाहौरमें भारत और पाकिस्तानके उच्च अधिकारियोंकी जो कानफरेंस हुई, उसमें नेहरूजी भी उपस्थित थे। यह निश्चय किया गया कि शरणार्थियोंके किसी भी काफले या

अस्थायी शिविरकी, जो पूर्वीसे पश्चिमी या पश्चिमीसे पूर्वी पंजाब जानेवाला हो, पुलिस अथवा फौज द्वारा तलाशी नहीं ली जायेगी। दोनों उपनिवेशोंने अपना यह निश्चय दुहराया कि शरणार्थी उपलब्ध यातायातके साधनोंका ध्यान रखते हुए स्वेच्छानुसार अपनी चल सम्पत्ति ले जा सकेगा, जिसमें लाइसेंस प्राप्त आग्नेयास्त्र और हथियार, मवेशी और मोटर भी शामिल हैं, बशर्त्ते कि चीजें सार्वजनिक व्यवहारके लिये न हों। पर महात्माजी बराबर ही हिन्दुओं और सिक्खोंको यही सिखावन देते रहे कि जो मुसलमान अपने घरोंके बाहर कर दिए गए हैं, उन्हें लौट आनेके लिये निमंत्रण दें। वे कहते थे कि यदि इस प्रकारकी साहसपूर्ण कार्यवाही की जा सके, तो शरणार्थियोंकी समस्या अविलम्ब अत्यन्त सरल हो जायेगी। इससे पाकिस्तानका ही नहीं, सारे विश्वका विश्वास प्राप्त करनेमें वे समर्थ होंगे। लाखों हिन्दुओं और सिक्खों तथा मुसलमानोंका स्थानान्तर मेरी कल्पनाके बाहरकी बात है। परन्तु जब परिस्थितिने बाध्य कर दिया, तब स्थानान्तरके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं रह गया। यहीं पर यह जान लेना भी अप्रासंगिक न होगा कि जब मि० जिन्नाने मुस्लिम शरणार्थियोंकी सहायताके लिये धनकी अपील की तो महात्माजी ने उसकी चर्चा करते हुए कहा था कि इस अपीलमें पाकिस्तानके मुसलमानोंके दुष्कार्योंका कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है, जब कि आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक सरकार अपने यहाँकी बहुसंख्यक जनताके अपराधोंको स्पष्ट रूपसे और साहसके

साथ स्वीकार करे। नेहरूजीने दंगोंको शांत करनेके लिये जिस प्रकार अथक परिश्रम उन दिनों किया था और महात्मा गांधीने दिल्लीके मुसलमानोंको जिस प्रकार हार्दिक आश्वासन दिया था, उसका सुपरिणाम बहुत ही शीघ्र सामने आया था, इसकी गवाहीमें हम मियाँ अब्दुल अजीज़को पेश करना चाहते हैं, जो उस समय भारतमें पाकिस्तानके स्थानापन्न हाई कमिश्नर थे। उन्होंने १८ सितम्बरको प्रेस-कानफरेंसमें कहा था कि मैं जितने मुसलमानोंसे मिला हूँ, उन्होंने बताया है कि वे दिल्ली छोड़ना नहीं चाहते। सभी मुसलमानोंका महात्मा गांधीपर पूर्ण विश्वास है। मुसलमान ऐसा विश्वास करते हैं कि महात्माजी, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री नियोगी तथा भारत सरकारके सभी सदस्य वर्त्तमान आतंकको दूर करनेकी हार्दिक इच्छा रखते हैं और शरणार्थि-शिविरोंकी उपयुक्त देखरेखके लिये पूरी व्यवस्था हो गयी है।

२६ सितम्बरको दिल्लीमें हिन्दुओं और मुसलमानोंकी विराट् सभामें प्रधान मन्त्री नेहरूजीने अपने जोरदार भाषणमें ये बातें कही थीं—"हर आदमीको जो भारतका भक्त है, इस देशमें रहनेका अधिकार है, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। उसकी और उसके हितोंकी सुरक्षा सरकारका कर्त्तव्य है और वह इसके लिये कोई कसर न रखेगी। ऐसे मुसलमान भारतमें आनन्द-पूर्वक रहें, जो इसे सचमुच अपना देश समझते हैं और बाहरसे किसी तरहकी सहयता पानेकी आकांक्षा

नहीं रखते। हां, जो आदमी देशके वफादार नहीं हैं, उनके लिये भारतमें कोई स्थान नहीं है और उन्हें उनकी पसंदके देश तक पहुँचनेके लिये सरकार पूरी सुविधा प्रदान करेगी। कांग्रेसने मुसलिम लीगके दो राष्ट्रके सिद्धान्तको माननेसे बराबर इनकार किया और जनताने उसके इस रुखका पूर्ण समर्थन किया। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि भारतकी जनता वही काम कर रही है, जिसके लिये उसने मुसलिम लीगको दोषी ठहराया था। भारत को हिन्दू-राज्य बनानेका मतलब है, मुसलिम लीगकी वास्तविक विजय—ऐसी विजय जिसकी तुलनामें पाकिस्तानकी स्थापना भी कम महत्वपूर्ण है। वह इज्जत और ख्याति, जिसे देशने शोषित लोगोंके अधिकारोंका खुलेआम समर्थन करनेके कारण प्राप्त किया, तेजीसे विलुप्त हो रही है। एशियाई जनताने भारतको अपना नेता और पथ-प्रदर्शक समझना शुरू कर दिया था, पर हालमें देशमें जो कुछ हुआ, उसने उन देशोंकी जनताओंकी आशाओं पर पानी फेर दिया और हम लोगों पर उनका जो विश्वास था, उसकी जड़ हिला दी। कुछ दिन पूर्व यहां एशिया सम्मेलन हुआ था, जिसमें सारे एशियाके प्रतिनिधियोंने भाग लिया था। भारत और अन्य देशोंके बीच मित्रताके नये सम्बन्ध स्थापित हुए थे। उन देशोंमें हिन्दू जनता नहीं हैं। हिन्द-एशिया जैसे बहुतसे देश मुसलिम राज्य हैं, तो भी भारतसे वे सशंक अथवा एक-दूसरेके विरोधी नहीं हैं। अगर देशमें शान्ति और सुरक्षा नहीं है, तो फिर स्वतंत्रताका क्या अर्थ? जब मैं अपने देशवासियोंके

अमानुषिक कार्योंको देखता हूं, तो मुझे शर्मसे सिर झुका लेना पड़ता है। अंग्रेजोंसे लड़ कर स्वतंत्रता प्राप्त करते ही हमने आपस में ही लड़ना शुरू कर दिया। देशमें शान्ति होने पर ही समाज-वादी प्रजातंत्र स्थापित हो सकता है। मार-काटसे कोई समस्या नहीं सुलझेगी। अंग्रेज-विरोधी संग्राममें हम सदा ही अहिंसक रहे। संसारकी सर्वश्रेष्ठ विभूति महात्मा गांधीने हमें शांत साधनों द्वारा ही स्वतंत्रताकी मंजिल तक पहुंचाया है। क्या अब आप उस सफलताको विफलतामें परिणत करना चाहते हैं? दिल्ली के उपद्रवोंके कारण करोड़ों रुपयेकी क्षति हुई है, जिसे दिल्लीकी जनताको पूरा करना होगा। दंगा-पीड़ितोंकी क्षतिपूर्तिकी रकम भी उसीसे ली जायेगी।

जब आबादीकी अदला-बदलीके लिये दोनों सरकारोंमें निश्चय हो चुका, तब जैसा कि ऊपर कहा गया है, कुल मिला कर एक करोड़से अधिक आदमी एक देशसे दूसरे देशको पहुँचाये गये। इस कार्यमें भारत और पाकिस्तान—दोनोंकी सरकारोंके सारी शक्ति और साधन लगा देने पर भी महीनों तक शरणार्थियों का गमनागमन जारी रहा, उस बीच जैसे पूर्वी पंजाबमें, वैसे ही पश्चिमी पंजाब और सीमाप्रान्तमें जहां अल्पसंख्यक भारी खतरेमें थे, वहांसे फौजी पहरेमें हटा कर वे निर्धारित कैम्पोंमें एकत्र किये जाते थे। उन कैम्पोंकी रक्षाके लिये समुचित व्यवस्था दोनों राज्योंकी ओरसे की जाती थी। शरणार्थियोंकी रक्षा हीं नहीं, उनको खिलाने-पिलानेकी व्यवस्था भी सरकारोंको ही करनी

पड़ती थी और वैसे ही उनके स्थानांतरके लिये भी सभी प्रकारकी सवारियोंका प्रवन्ध उन्हें ही करना पड़ता था। पचास-पचास, साठ-साठ मील तक लम्बे शरणार्थियोंके काफले पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहुत दूरसे आये थे और इसी प्रकार पूर्वसे भी हजारोंके काफले पश्चिमको जाते थे। सेनाकी देखरेख और पहरेमें सारा काम होता था, तो भी कितने ही स्थलों और अवसरों पर उन काफलों पर भी आक्रमण किये गये और अगणित आदमी मारे गये। लूट-मार करना उन दिनों एक बहुत ही साधारण बात हो गयी थी और शरणार्थियेंके कैम्प भी उपद्रवियेंके आक्रमणसे सदा सुरक्षित नहीं रह सके। फौजियोंके पहरेमें चलनेवाली शरणार्थियोंकी ट्रेनों पर भी हमले किये जाते थे और कई बार तो फौजियों पर भी घातक आक्रमण होते देखे गये थे। पीछे तो एक ऐसा समय भी आ गया था, जब दोनों ही देशोंमें रेलगाड़ियों में घुस-घुस कर उपद्रवियोंके यह दूसरे सम्प्रदायके व्यक्तियोंको निर्दयतापूर्वक चलती गाड़ीसे नीचे फेंक देते थे। कितनों ही की हत्या गाड़ीके भीतर ही कर डाली जाती थी। हजारों ही अबलाओंका अपहरण दोनों ही देशोंमें हुआ और लाख प्रयत्न करने पर भी सब अपहृताओंका उद्धार नहीं किया जासका, यद्यपि शांति स्थापित होनेके बाद बहुत समय तक दोनों राज्योंके अधिकारी प्रयत्नशील रहे। अबलाओंपर बलात्कारकी घटनाओंकी गिनती कौन और कैसे कर सकता है और जो जबर्दस्ती एक धर्मसे दूसरे धर्ममें मिलाये गये, उन्हींका लेखा कौन लगा सकता है? कितनी

नेहरूजी : महात्मा गांधी और सरदार पटेलके साथ किसी गंभीर विचारमें ध्यान-मग्न.

मसजिदें नष्टकर मन्दिर बना दी गयीं और कितने मन्दिरोंकी जगह मसजिदें खड़ी की गयी, यह भी कोई नहीं कह सकता। मन्दिरों और मस्जिदोंमें शरणार्थियोंको टिकानेका काम भी उपद्रवी खुले तौर पर करते थे और कोई कुकर्म करनेमें कुछ भी कसर नहीं रखी गयी। परन्तु उद्योग और कठिन परिश्रमसे शांति स्थापित हो सकी थी, यह बात निस्संकोच कही जा सकती है।

महात्मा गांधीको तब तक तो दिल्ली छोड़ना नहीं था, जब तक वहां हिन्दू और मुसलमान अपने दिलोंको साफ करके आपसमें मिल न जायँ। वे नित्य प्रति अपने उपदेशोंमें हिन्दू-मुसलिम एकता पर सबसे ज्यादा जोर देते थे और उनकी सलाहके अनुसार प्रधानमन्त्री नेहरूजी तथा उनकी सरकारके अन्य लोग शांतिकी स्थापना और लाखों शरणार्थियोंको टिकाने, खिलाने, पिलाने और काममें लगानेकी व्यवस्था करनेमें लग रहे थे। परन्तु दिल साफ नहीं थे। इसीसे महात्माजी दिल्लीमें साम्प्रदायिक मेलजोल कराने के उद्देश्यसे १३ जनवरी १६४८ को अनशन आरंभ किया। उस समय नेहरूजीको सबसे अधिक चिन्ता हुई थी और वे तथा उनके सहकारी अन्य मंत्री लोग हिन्दू और मुसलिम नेताओंको समझा बुझाकर ऐसा वातावरण तैयार करनेमें लग गये, जिससे महात्माजी यथासंभव शीघ्र अपना अनशन भंग करनेको तैयार हो सकें। अन्तमें जब सभी सम्प्रदायोंके नेताओंने मिलकर उन्हें आश्वासन दिया कि दिल्लीमें साम्प्रदायिक शान्तिकी जिम्मे-वारी वे लोग अपने ऊपर लेते हैं, तभी १८ जनवरीको महात्माजीने

अपना अनशन तोड़ा था। उस समयसे फिर दिल्लीमें किसी प्रकारकी साम्प्रदायिक अशांति नहीं देखी गयी और महात्माजीको दिये हुए आश्वासनके अनुसार सभी लोग मेलजोलसे रहने लग गये। इस तरह स्पष्ट है कि नेहरूजी और उनकी सरकारको स्वतंत्रता मिलनेके साथ ही कितनी भारी परेशानियोंमें पड़ना पड़ा है। नेहरू-सरकारको जैसी कठिन समस्याका सामना पड़ा, उसके विषयमें स्वयं नेहरूजीने ही यह कहा है—"भावी इतिहासकार यह लिखेंगे कि इस विराट और भयंकर समस्यासे किसी भी सरकारकी नींव हिल जाती और सामाजिक व्यवस्था भंग हो जाती।... किन्तु भारतकी जनताने इस समस्याका वीरतासे सामना किया, इसे सुलझानेकी चेष्टा की और राष्ट्रके कल्याणके लिये अन्ततः इस समस्याको सुलझा भी लिया।"
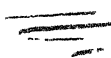
काश्मीर और नेहरूजी

पं० जवाहरलाल नेहरू काश्मीरी ब्राह्मण हैं, इसलिये काश्मीर के ऊपर उनका विशेष प्रेम होना सर्वथा स्वाभाविक है। यद्यपि उनके पिता पं० मोतीलालजीने अपने कार्य-क्षेत्र प्रयागको ही अपना घर बना लिया था और नेहरूजीका जन्म भी प्रयाग ही में हुआ था, इसलिये काश्मीरकी अपेक्षा प्रयागको ही अपनी जन्म-भूमि इन्हें मानना पड़ता है। परन्तु जैसा कि उस दिन अपनी वर्षगांठके अवसर पर (१६४८) नेहरूजीने दिल्लीमें काश्मीरियोंके बीच कहा है, वे काश्मीर और प्रयाग दोनों ही को अपना मानते हैं। स्वयं नेहरूजीके शब्द ये हैं—"काश्मीरको भारतसे अलग मानना भयंकर भूल है। काश्मीर भारत है और भारत काश्मीर है। मेरा काश्मीर और प्रयाग दोनों ही से घनिष्ठ सम्बन्ध है और इस प्रकार मैं दोनोंका संयोजक सूत्र हूँ।" तब उसी काश्मीर और वहांके निवासी अपने भाइयोंके लिये उनके हृदयमें क्यों न पूरी सहानुभूति हो? आज नेहरूजी भारतके प्रधान मंत्री हैं और काश्मीरमें जो लड़ाई छिड़ी हुई है, उसके प्रधान सूत्रधार भी ये ही

कहे जायेंगे। परन्तु बहुतोंको यह पता नहीं होगा कि शेरे काश्मीर शेख अब्दुला और उनकी नेशनल कानफरेंसके लोग क्यों नेहरूजीमें श्रद्धाभक्ति रखते हैं। आज शेख साहबकी जिस लोकप्रिय संस्थाका नाम नेशनल कानफरेंस है। १६३७ के अन्तिम दिनोंमें सीमाप्रान्तकी यात्राके सिलसिलेमें इस कानफरेंसके नेता शेख अब्दुल्लाकी पं० जवाहरलाल नेहरूसे पहले-पहल भेंट हुई थी। नेहरूजीके महान् व्यक्तित्वका उनपर इतना अधिक प्रभाव हुआ कि अपनी संस्थाका नाम मुस्लिमसे नेशनल (राष्ट्रीय) बना कर उन्होंने रियासतके भीतर हिन्दू-मुस्लिम एकताको दृढ़ करना आरम्भ कर दिया। १६३८ के मार्चमें उक्त कानफरेंसके अध्यक्षकी हैसियत से शेख अब्दुल्लाने जो भाषण किया था, उसमें उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानोंकी राजनीतिक एकता, संयुक्त निर्वाचन, वयस्क मताधिकार आदि विषयों पर विशेष रूपसे जोर दिया। फिर तो काश्मीर जनताका यह राष्ट्रीय आन्दोलन भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनके अधिकाधिक निकट आता गया। १६३८ के जूनके अन्तमें मुस्लिम कानफरेंसकी कार्य-समितिने प्रस्ताव पासकर कानफरेंसका नाम और विधान बदलनेकी सिफारिश की। इस तरह जब हिन्दू-मुस्लिम एकता बढ़ने लगी और प्रजाकी माँग जोर पकड़ने लगी, तब राज्यकी सरकारके कान खड़े हो गये। उस नव जागृति के दमनका निश्चय होनेमें फिर अधिक देर नहीं लगी। १६३८ में ५ अगस्तको कानफरेंसकी ओरसे राज्य भरमें 'जिम्मेदार सरकार दिवस' खूब उत्साहके साथ मनाया गया। बड़ी-बड़ी सभाएँ हुई

और जलूस निकले। उनमें हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख सभी शामिल हुए थे। २६ अगस्तको बारह हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख नेताओंके हस्ताक्षरसे सरकारके सामने यह मांग रखी गयी कि महाराज शीघ्रसे-शीघ्र उत्तरदायी शासन प्रदान करें। आन्दोलनका जोर बढ़ते देख राज्यकी सरकारने सभी नेताओंको गिरफ्तार कर लिया। दमनका दौर-दौरा शुरू हो गया। फिर तो हजारों आदमी जेलोंमें ठूंस दिये गये। जब दमनसे काम चलता नहीं दिखाई पड़ा, तब अन्य सभी नेता छोड़ दिये गये। १९३९ में १० जूनको जम्मू और काश्मीर मुस्लिम कानफरेंसका विशेष राज्यका दौरा कर शेख अब्दुल्लाने नये नामका अर्थ और महत्व समझाया। नेशनल कानफरेंसका प्रथम अधिवेशन १९३९ के अक्टूबरमें हुआ, जिनमें उत्तरदायी शासनके लिये प्रस्ताव पास हुआ। कानफरेंसने भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेसकी युद्ध-नीतिका समर्थन किया। १९४० ई० में जवाहरलालजी काश्मीर पहुँचे, तो वहाँ उनका खूब धूम-धामसे स्वागत हुआ। नेहरूजीकी यह यात्रा जहाँ नेशनल कानफरेंसका बल बढ़ाने वाली सिद्ध हुई वहाँ कांग्रेसके साथ उसकी घनिष्टता भी बढ़ने लगी। १९४२ में कांग्रेसके 'भारत छोड़ो' आन्दोलनका काश्मीर पर भी प्रभाव हुआ और १६ अगस्तको कानफरेंसने प्रस्ताव पास कर कांग्रेसकी मांगका समथन किया और अंग्रेज सरकारकी दमन नीत्तिकी कड़ी निन्दा की। १९४४ में श्रीनगरमें नेशनल कानफरेंसके वार्षिक अधिनेशनमें राज्यके भीतर समाजवादी सरकारकी स्थापना कानफरेंसका लक्ष्य घोषित की

गयी। 'नया काश्मीर' नामसे प्रकाशित अपनी घोषणामें कान-फरेंसने राजनीतिक प्रश्नके साथ ही आर्थिक प्रश्न भी रखा और इस तरह राज्यकी राजनीतिकी काया पलट गयी। महाराजने मंत्रि-मण्डलमें दो लोक प्रिय मंत्रियोंकी नियुक्तिकी घोषणा की तो कानफरेंस के प्रतिनिधिके रूपमें मिर्जा अफजल बेग लिये गये।

विघ्न सन्तोषी मि० जिन्नाकी छातीपर यह देखकर साँप लोट गया कि काश्मीरमें हिन्दू-मुसलिम एकताका प्रचार ही नहीं हो रहा है, राष्ट्रीय कांग्रेसका प्रभाव भी दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है, इसलिये अपने दो राष्ट्रके सिद्धान्तके प्रचारार्थ वे वहाँ भी पहुँच गये। कुछ साम्प्रदायिकोंने मुसलिम कानफरेंसका एक ढड्ढा उससे कुछ समय पहले ही खड़ा कर लिया था, जो मुसलिम लीग का ढर्रा पकड़े हुए थी। मि० जिन्ना भी काश्मीरमें गर्मी बिताने के प्रकट उद्देश्यसे हीं गए थे, पर अब यह एक प्रकट रहस्य है कि वे केसरकी क्यारियों और अंगूरकी लताओंसे परिवेष्टित इस भूस्वर्गमें भी अपनी साम्प्रदायिकताके विष बृक्षका बीज बपनकर इसे नर्क बनानेका मुख्य उद्देश्य रखते थे। जो हो, उनका स्वागत दोनों ही संस्थाओंकी ओरसे हुआ और जब शेख अब्दुल्लाकी नेशनल कानफरेंसके समारोहमें बोलने खड़े हुए, तब एक बार फिर उस पैनी बुद्धिवाले वकीलने अपनी पुरानी राष्ट्रीयतावाला चोगा धारण कर लिया था, इसलिये एकता और पारस्परिक प्रेमका राग अलापते देखे गये। लेकिन अपने असली रूपमें तो वे प्रकट हुए मुसलिम कान्फरेंसवाले समारोहोंमें, जहां उन्होंने पाकिस्तानी

चोगा पहिनकर उसी प्रकार विष उगला, जैसा वे अपने देशमें किया करते थे। शेख अब्दुल्लाको अपने मायाजालों फंसानेके लिये बातचीत करनेको बुलाया और उनसे नेशनल कानफरेंसका नाम पुनः मुसलिम कानफरेंस रखकर, यथानामः तथागुणः की उक्ति चरितार्थ करनेका प्रस्ताव किया। जब शेख अब्दुल्ला उनके फंदेमें नहीं फंसे, तब नेशनल कानफरेंसमें फूट पैदा करानेका प्रयत्न वह बूढ़ा बाघ करने लग गया, किन्तु कोई कहानीवाला ब्राह्मण देवता बननेको तैयार ही नहीं हुआ सभी मुसलमानोंका स्वयंभू नेता इसे कैसे चुपचाप सहन कर लेता? उसने जुम्मा मस्जिदमें होनेवाले मुसलिम कानफरेंसके अधिवेशनमें खुले शब्दोंमें शेख अब्दुल्लाके ऊपर अपना गुस्सा खूब उतारा और जितने भी अपशब्द सुनाते बना, उसमें कोई कसर नहीं रखी। शेख अब्दुल्ला में श्रद्धाभक्ति रखनेवाली काश्मीरी जनताको मि० जिन्नाकी वह दुष्टता इतनी असह्य हो उठी कि फिर किसी सार्वजनिक सभामें बोलना उनके लिये सर्वथा असम्भव हो गया और उन्हें वहांसे अविलम्ब भाग जानेमें ही कल्याण दिखाई पड़ा। राहमें बारामूला स्थानपर एक सभामें उन्होंने फिर बोलनेका प्रयत्न किया किन्तु वहाँ एकत्र जनसमूहके उग्रविरोधके कारण वह सम्भव नहीं हो पाया। इस तरह उन्हे काशमीरमें बहुत बुरी तरह निराश होकर ही वहाँसे लौटना पड़ा था।

१९४५ ई० में काश्मीरी पं० रामचन्द्र काक प्रधान मन्त्री हुए। इसी वर्ष सोपूरमें नेशनल कानफरेंसका वार्षिक अधिवेशन धूस-

धामसे हुआ और उसमें पं० जवाहरलाल नेहरूके साथ ही मौलाना आजाद और सीमाप्रान्तके गांधी खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ भी सम्मिलित हुए। उसकी भारी सफलता देखकर अङ्गरेज साम्राज्य-वादियोंकी नींद हराम हो गयी और उन्हींको सन्तुष्ट करनेके मुख्य उद्देश्यसे काक महाशयको नेशनल कानफरेंसका विरोधी बननेको लाचारी मालूम हुई, यद्यपि पहले वे उसके विरोधी नहीं थे। सबसे पहले तो मंत्रिमण्डलके नेशनल कानफरेंसवाले प्रतिनिधि मिर्जा अफजल बेगको पद त्याग करनेको बाध्य किया। यह १७ मार्च १९४६ की बात है। इसके बाद ही भारतमें जब ब्रिटिश मंत्रि-मण्डलका मिशन आया, तब नेशनल कानफरेंसने उसके सामने एक पत्र उपस्थितकर साफ शब्दोंमें यह प्रकट कर दिया था कि— "अब काश्मीरकी जनता केवल जिम्मेदार सरकारसे सन्तोष करनेको तैयार नहीं और वह स्वेच्छाचारी डोगराशाहीसे पूर्ण स्वतंत्रता चाहती है।" इस पत्रमें अमृतसरकी वह सन्धि माननेसे भी इन्कार कर दिया गया था, जिसके अनुसार १८४८ ई० में महाराज गुलाब सिंहने पचहत्तर लाख रुपयेमें काश्मीरका राज्य लिया था। इस तरह काश्मीरमें 'काश्मीर छोड़ो' आन्दोलनका सूत्रपात हुआ, जो 'भारत छोड़ो' आन्दोलनकी भांति ही उग्रसे उग्रतर होता गया। पीछे जब ब्रिटिश मिशन वालोंने मईमें काश्मीरकी यात्रा इस उद्देश्यसे की कि वहीं एकांतमें बैठ वे अपनी योजना तैयार करेंगे, तब सभी ओर उन्हें 'काश्मीरको छोड़ दो, बैनामा अमृतसर तोड़ दो' का ही नारा सुनाई पड़ता था। फिर

तो आन्दोलनको कुचलनेके लिये बड़े जोरोंसे दमन-चक्र चलाया गया और २० मईको, जब 'काश्मीर छोड़ो' आन्दोलनके प्रधान नेता शेख अब्दुल्ला नेहरूजीके बुलानेपर श्रीनगरसे दिल्ली जा रहे थे. तब राहमें गढ़ी नामक स्थान पर गिरफ्तार कर लिये गये। फिर क्या था, काश्मीर भरमें आतंकका राज्य छा गया, जिससे आन्दोलन उसी प्रकार गुप्त रूप धारण कर लिया, जैसे ब्रिटिश भारतमें 'भारत छोड़ो' आन्दोलनको पीछे गुप्त रूप ग्रहण करना पड़ा था। हजारों काश्मीरी देशभक्त गिरफ्तार किये गये, तो भी वह किसी न किसी रूपमें चलता ही रहा, इससे कांश्मीरके महाराजकी सरकार बहुत परेशान हुई। पं० जवाहरलाल नेहरू को काश्मीरके उस जन-आन्दोलनका इस प्रकार दमन विभाजन सर्वथा असह्य हो गया और इसीसे वे दिल्लीमें बेतरह कार्य व्यस्त होनेपर भी काश्मीरके लिये रवाना हो गये। परन्तु काश्मीर राज्यकी सीमाके भीतर प्रवेश करने पर काश्मीर सरकारने उनको आगे बढ़नेसे रोक दिया। नेहरूजी तो वहीं रुककर लड़ाईका नेतृत्व करना चाहते थे, किन्तु जब कांग्रेसके तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना आजादने तार भेजकर उन्हें तुरन्त दिल्ली लौटनेका आदेश दिया, तो कांग्रेसके एक अत्यन्त अनुशासन पालक सैनिक होनेके कारण अनिच्छा पूर्वक वहाँसे दिल्ली लौट आये। शेख अब्दुला पर मामला चलाया गया। श्री आसफअलीने उनकी ओरसे पैरवी की और पैरवीके सिल-सिलेमें जब नेहरूजी फिर काश्मीर पहुँचे, तब राज्यकी ओरसे कोई रोक-टोक नहीं हुई। शेख अब्दुलाको तीन

वर्षकी कैद और पांच सौ रुपये जुर्मानेकी सजा सुनायी गयी। तब तो बेगम अब्दुल्ला पर्देके बाहर आ गयीं और उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकताका दूने जोरोंसे प्रचार किया कि पीछे जब भारतमें साम्प्रदायिक हिंसा की आग बहुत बुरी तरहसे धधक उठी थी, और लीगी उपद्रवी काश्मीरको भी उसमें घसीटनेके लिये प्रयत्नशील हुए थे, तब भी वहां पूर्ण शांति बनी रही और दो राष्ट्रके लीगी सिद्धांतके फेरमें पड़नेको कोई काश्मीरी देशभक्त तैयार नहीं हुआ। हां, नेहरूजीकी सलाहसे नेशनल कानफ्रेंस आन्दोलन काश्मीर छोड़नेकी मांग छोड़कर फिर अपनी पुरानी मांग पर लौट गया, जो महाराजकी छत्रछायामें दायित्व पूर्ण शासनकी स्थापनाके लिये थी। १९४७ के अप्रेल-मईमें जब सत्ता हस्तांतरित करने द्वारा भारतके भाग्यका निर्णय होने जा रहा था, तब प्रधान मन्त्री काक से भारतीय कांग्रेसके नेताओंने और वैसे ही आन्दोलनसे तटस्थ काश्मीरकी कतिपय संस्थाओंने शेख अब्दुल्लाको छोड़ देनेका अनुरोध किया, पर व्यर्थ काक पर दूसरा ही भूत सवार था, वे सुनते तो कैसे ?

इसी बीच महात्मा गांधी १ अगस्तको काश्मीर गये। उन्होंने शेख अब्दुल्लाको छोड़ देनेका अनुरोध किया। वहांसे लौटते समय महात्माजीने रावलपिंडीके बाह· स्थानमें अपने वक्तव्यमें यह कहा था—"काश्मीरमें हिन्दू-मुसलमानका कोई सवाल नहीं है। भाषा और संस्कृतिसे वे सब एकसे लगते हैं और हैं भी। काश्मीरका शासन उनके ही हाथोंसे और उन्हींके इच्छानुसार होना चाहिये।

पीछे देशके विभाजनका निर्णय अपने समझौते द्वारा हो जानेके बाद काश्मीरकी अवस्थाने पलटा खाया। ११ अगस्त १६४७ को काश्मीरके महाराजने काकको हटा दिया। श्री गुलाम मुहम्मद बख्शी हिन्दुस्तानसे नेशनल कानफ्रेंसके आन्दोलनका संचालन कर रहे थे, और उनके नाम वारंट निकला हुआ था। वह वारंट रद्द कर दिया गया और शेख अब्दुल्ला भी छोड़ दिये गये। छूटनेके बाद ही शेख अब्दुल्लाने एक सभामें कहा कि काश्मीरकी प्रजा तो सर्वप्रथम स्वेच्छाचारी शासनसे मुक्ति चाहती है। काश्मीर हिन्दमें शामिल हो या पाकिस्तानमें, यह प्रश्न गौण है और जनता इस सम्बन्धमें निश्चय पीछे भी कर सकती है। १५ अगस्त १६४७को भारत संघ और पाकिस्तानका शासन क्रमशः कांग्रेस और मुसलिम लीगको सौंप दिया गया और सत्ता-हस्तांतरणकी शर्त्तोंके अनुसार देशी राज्यों परसे भी ब्रिटिश प्रभुशक्तिका नियंत्रण उठ गया, जिससे वे भी अपनी इच्छाके अनुसार निश्चय करनेको स्वतंत्र हो गये। अन्योंकी भांति काश्मीर राज्यके सामने भी यह प्रश्न था कि भारतमें सम्मि- हो या पाकिस्तानमें। सर्व प्रथम काश्मीरके महाराजने पाकि- स्तानके साथ १५ अगस्तसे पूर्व भी अवस्था बनाये रखनेके लिये समझौता किया, जो कि स्वाभाविक और अनिवार्य था, क्योंक वे सारे रास्ते पाकिस्तानमें ही पड़ गये थे, जिनसे होकर भारतके साथ राज्यका सारा व्यवहार चलता था। इसकी सूचना काश्मीर सरकारने भारतको भी तार भेजकर दी थी, पर पाकिस्तानी अधि-

कारियोंने काफी समय तक उसे रोक रखा। इसमें उनका उद्देश्य स्पष्ट ही यह जान पड़ता है कि जिससे भारत और काश्मीरके बीच संदेह और अविश्वास पैदा हो। जो हो, इस सकझौतेके पीछे दो ही तीन महीनेमें काश्मीर राज्यको पता चल गया कि पाकिस्तानसे उसकी पटरी बैठना कठिन है, क्योंकि पाकिस्तानका देन तो शीघ्रसे शीघ्र महाराजसे यह घोषणा करानेके लिये तुला हुआ था कि काश्मीर नियमानुसार पाकिस्तानमें सम्मिलित हो जाय। तानाशाही मिजाज वाले मि० जिन्नाको पूरा विश्वास था कि काक साहब और उनकी सलाहसे काम करनेवाले महाराज काश्मोरको पाकिस्तानमें सम्मिलित करनेके सिवा दूसरा कोई निश्चय तो कर ही नहीं सकते थे, क्योंकि नेशनल कानफरेंसका दमन करनेके समय उन्होंने मि० जिन्नाके आदर्शको मानने वाली मुसलिम कानफरेंसको मिला रखा था, इसीसे वे काश्मीरकी ओर से बिलकुल निश्चिन्तसे थे। हैदराबाद भी पाकिस्तानके चंगुलमें रहे और भूपाल तथा जूनागढ़के हिन्दू-जनसंख्या प्रधान राज्य भी अपने मुसलिम शासकोंके निश्चयानुसार, पाकिस्तानके होकर रह सकें। इस विचारसे मि० जिन्नाने आरम्भसे ही इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करना शुरू कर दिया था, कि देशी राज्योंको स्वेच्छा-नुसार किसी उपनिवेशमें सम्मिलित होने या स्वतंत्र रहनेका जो अधिकार मिला है, उसका प्रयोग उनके शासक ही कर सकते हैं, क्योंकि ब्रिटिश योजनामें देशी राज्यकी प्रजाका कोई अधिकार स्वीकार नहीं किया गया है। मि० जिन्नाका

सुर तो पीछे तब बदला है, जब उन्हें रंग-ढंगसे यह दिखाई पड़ने लगा कि जिस काश्मीरका पाकिस्तानमें मिलना वे ध्रुव समझे हुए थे, इसलिये उसकी ओरसे निश्चिन्त हो वे अध्रुव हैदराबाद, भूपाल और जूनागढ़को अपनी ओर खींचनेमें ही सारा बल लगा रहे थे, वह भी हाथसे निकला जा रहा है। तभी उन्होंने लोक-तंत्रवादका राग अलापना आरम्भ किया और काश्मीरकी मुस-लिम जनताको पाकिस्तानमें मिलनेके पक्षमें कह कर वे हिन्दू महाराजके इस राज्यको एक मुसलिम राज्य कहने और उस पर पाकिस्तानका जन्मसिद्ध अधिकार बताने लग गये।

काश्मीरकी ठीक-ठीक अवस्था समझनेके लिये हमने ऊपरकी पंक्तियोंमें संक्षेपसे उस पृष्ठभूमिका परिचय करा दिया था, जिसके आगे काश्मीरका प्रश्न ऐसा बन गया है कि हालमें जब पाकिस्तान के नये गवर्नर जेनरल ख्वाजा नजीमुद्दीन सीमाप्रांतके दौरेपर गये थे, तब उन्होंने यह कहा था कि यही एक प्रश्न अब ऐसा रह गया है कि यदि यह हल हो जाये, तो भारत और पाकिस्तानके बीच झगड़ेका कोई कारण ही न रह जाये। परन्तु प्रश्न हल हो तो क्योंकर, जब कि पाकिस्तान किसी भी अवस्थामें काश्मीरको छोड़नेको तैयार हो नहीं और काश्मीरकी जनता तथा महाराजने राज्यको नियमानुसार भारत संघमें सम्मिलित कर दिया है और हालमें राज्यके सभी भागोंके जनप्रतिनिधियोंने कानफरेंस करके यह घोषणा कर दी है कि काश्मीरका भारत संघमें निश्चय मिलने वाला निश्चय अन्तिम और पक्का है। इसके बाद तो अब काश्मीर

के निवासियोंका इस सम्बन्धमें मत संग्रह करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है।

आइये अब यह देखिये कि काश्मीरको किस अवस्थाओंमें भारत संघमें सम्मिलित होनेको वाध्य होना पड़ा, यद्यपि वहांके महाराज और लोकप्रिय नेता शेख अब्दुल्ला दोनों ही चाहते यह थे कि किसी अंतिम निश्चय पर पहुंचनेके पहले काफी समय तक यह विचार करना चाहिये कि काश्मीरका सर्वोत्तम हित किसके साथ रहनेमें होगा, सारे झगड़ेका मूल कारण यही हुआ कि शेख अब्दुल्ला तो यह चाहते थे कि काश्मीरी जनता स्वतंत्रतापूर्वक निष्पक्ष वातावरणमें यह निश्चय करे कि वह किस उपनिवेशमें मिले भी और इसके लिये कुछ समय तक प्रश्नको विचारार्थ स्थगित रखना चाहते थे, किन्तु तानाशाह मि० जिन्नाको जल्दी पड़ी थी और वे वहांकी जनसंख्यामें मुसलमानोंकी इतनी भारी अधिकता के कारण उसपर पाकिस्तानका जन्म सिद्ध अधिकार समझते थे। यद्यपि उनके लाख प्रयत्न करने पर भी काश्मीरकी जनताने कभी उनके दो राष्ट्रवाले सिद्धान्तको तनिक भी स्वीकार नहीं किया था। उन्होंने काश्मीरके महाराजको तानाशाही ढंगसे धमकाना शुरू किया और जब वे मि० जिन्नाकी धौंसमें नहीं आये, तब पाकिस्तानने काश्मीरके साथ किये हुए समझौतेको भङ्गकर वहांके लिये अत्यन्त आवश्यक जीवनोपयोगी पदार्थोंको भेजना बन्दकर दिया। इतना ही नहीं, उसने काश्मीर पर आक्रमण करनेके लिये अपनी सीमाके उस पारके लुटेरे कबीलेवालोंको तैयार किया और उन्हें

सब प्रकारकी सहायता पहुंचाते हुए उनकी मददसे काश्मीरपर बल पूर्वक अधिकार कर लेनेकी योजना बना डाली। उन जङ्गली जातियोंको भड़काने और उनमें जोश भरनेके उद्देश्यसे प्रसिद्ध यह किया गया कि मुसलिम राज्य पाकिस्तानने काश्मीरमें 'जेहाद' (धर्मयुद्ध) छेड़ दिया है और सीमाप्रान्तके प्रधान लीगी मिनिस्टर मियाँ अब्दुल क्यूम खाँने भी उन हूणोंके काश्मीर पर किये गये आक्रमणोंको उचित बताते हुए खुले शब्दोंमें उनका पूरा समर्थन किया था।

६ मार्च १९४८ को भारतकी पार्लमेंटमें प्रधान मंत्री नेहरूजीने काश्मीरके सम्बन्धमें जो महत्वपूर्ण श्वेतपत्र उपस्थित किया था, उसमें वहांकी सारी पूर्वपर घटनाओंका विशद और काफी विस्तार वर्णन है। उससे अधिक प्रामाणिक और कोई वर्णन हो नहीं सकता इसीसे यहाँ पर हम उसीके आवश्यक अंश दे देना उचित समझते हैं। भारतीय सेनाके कार्यालयके ब्रिटिश अफसर द्वारा हस्ताक्षर किये गये एक प्रश्नमें बताया गया है कि भारतके प्रधान सेनापतिको २४ अक्टूबरको यह खबर मिली कि मुजफ्फराबाद पर अक्रमण-कारियोंने कब्जा कर लिया है। अक्रमणसे अपने देशकी रक्षा करनेके लिये काश्मीर-नरेशके पास भारतसे सहायता मांगनेके सिवा दूसरा कोई उपाय ही नहीं गया, क्योंकि दूसरे पड़ोसी पाकि-स्तानने तो सारा खेल ही रचा था और आक्रमणकारी उसीकी भूमि से होकर तो काश्मीर पहुँचे थे और उन्हें पाकिस्तानसे इस आक्रमण में सभी प्रकारकी सहायता भी मिल रही थी, इसलिये उससे मदद

मांगनेका कोई प्रश्न ही नहीं रहा था। २६ अक्टूबरको काश्मीरके महाराजने सहायताके लिये भारत सरकारको पत्र लिखा। किन्तु वह तो तब तक कुछ कर नहीं सकती थी, जब तक काश्मीर कायदेसे भारत संघमें सम्मिलित न हो जाये। इसलिये २६ अक्टूबरकी रातमें भारतमें सम्मिलित होनेके समझौते पर महाराजने सही बनायी और नेहरू-सरकारने तुरन्त ही काश्मीर और वहांकी जनताकी बर्बर आक्रमणकारियोंसे रक्षाके लिये सेना भेजनेकी व्यवस्था की। काश्मीरकी सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी नेशनल कानफरेंसके नेता शेख अब्दुल्लाकी सलाह पर महाराजने यह काम किया, इसलिये स्पष्ट है कि भारत संघमें सम्मिलित होनेके पक्षमें राजा और प्रजा सभी थे। काश्मीरकी भारतमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना स्वीकार करनेके साथ ही नेहरू-सरकारने यह स्पष्ट कर दिया कि जब राज्यमें पूर्ण शांति स्थापित हो जायेगी, तब इस विषयमें वहांकी जनताका मत जाननेकी व्यवस्था की जायेगी। इस सम्बन्धकी सारी बातें पाकिस्तानके अधिकारियोंको भी बतायी जाती रही हैं। नेहरूजीने श्वेत पत्रमें भी अत्यन्त साफ शब्दोंमें यह कह दिया है—"अन्य स्थानोंकी भांति काश्मीरके विषयमें भी भारत सरकारकी राय यह रही है कि यदि किसी रियासतके भारत अथवा पाकिस्तानके साथ शामिल होनेमें कोई विवाद उठ खड़ा हो, तो उस समय जनताकी इच्छाको ही सर्वोपरि समझना चाहिये। इसलिये सरकारने अस्थायी रूपमें ही काश्मीरके प्रस्तावको स्वीकार किया कि काश्मीरको भारतके साथ शामिल कर
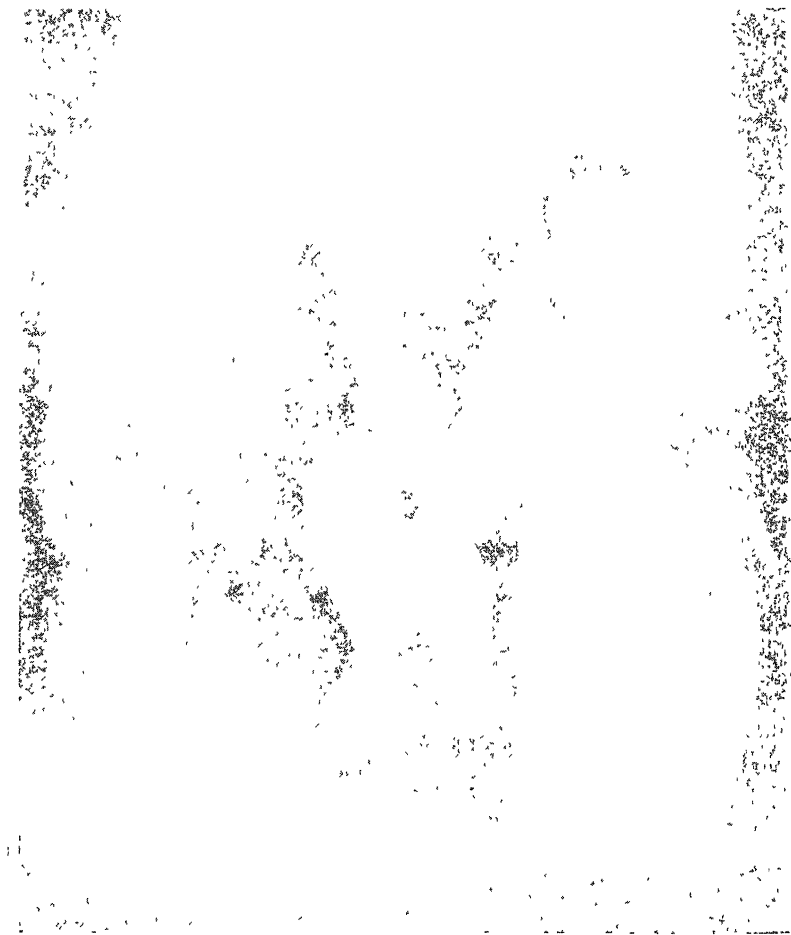
५० जवाहरलाल नेहरू, पुत्री इन्दिरा और नाती

लिया जाय, यदि रियासतकी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण राजनैतिक संस्थाने भी इसका समर्थन किया था। सम्मिलित होनेके प्रश्नका अन्तिम निर्णय स्वतन्त्र जनमतके आधारपर होना है, इस सम्बन्ध में तो किसी प्रकारका विवाद है ही नहीं। लेकिन जबतक आक्रमण-कारियोंके आक्रमण जारी हैं, तब तक जनमत लेना असम्भव है। भारतीय सेनाओंके रियासतमें रहनेका एकमात्र प्रयोजन यह है कि कबीलेवालोंके आक्रमणोंका वोट देनेवाली जनता पर किसी तरहका अनुचित दबाव न पड़े। और, अब क्योंकि रियासत भारतका एक अंग है, अतएव भारतीय सेनाओंका यह कानूनी और नैतिक कर्त्तव्य है कि वे इसकी रक्षा करें। जब आक्रमणकारी रियासत छोड़ जायँगे, साधारण स्थिति पैदा हो जायेगी और बाह्य आक्रमणका खतरा न रहेगा, तो काश्मीरमें नियुक्त भारतीय सेनाओंकी संख्या कम कर दी जायेगी। भारत सरकार कई बार यह स्पष्ट कर चुकी है कि रियासतके किसी भी निवासीको सजा नहीं दी जायेगी, चाहे उसके राजनीतिक विचार कुछ भी क्यों न हों और न किसी काश्मीरीको मत देनेसे ही वंचित किया जायेगा। आरम्भसे ही भारत सरकार अपने इन उद्देश्यों पर जोर देती आयी है। इसी प्रयोजनसे उसने पाकिस्तानके प्रतिनिधियोंको सम्पूर्ण समस्या पर विचार करनेके लिये कई बार निमन्त्रित किया। लेकिन जब पाकिस्तानके साथ सीधी बातचीत करनेमें असफल हुए, पाकिस्तानकी सहायतासे काश्मीर और जम्मू में आक्रमणकारियोंकी गति-विधि बढ़ने लगी, तो भारत सरकारको

अन्तिम उपायके रूपमें संयुक्त राष्ट्र संघकी सुरक्षा-कौंसिलसे अपील करनी पड़ी कि "वह पाकिस्तान सरकारसे आग्रह करे कि वह दोनों देशोंमें अशांति पैदा करनेकी नीतिको त्याग दे।" भारत सरकार ने सुरक्षा-कौंसिलको १ जनवरी १६४८ को एक पत्र लिखकर चार्टर की धारा ३५ के अनुसार उससे अनुरोध किया था।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रधान मन्त्री नेहरूजीने २७ अक्टूबरको अपनी सेना काश्मीर भेजनेका कार्यारम्भ किया और हवाई जहाजों द्वारा प्रथम दल श्रीनगर पहुंचा और पहुंचनेके बाद ही आक्रमणकारियोंसे वह लड़ने लग गया। उसी तारीखको शेख अब्दुल्लाके नेतृत्वमें काश्मीरमें अस्थायी सरकार स्थापित करनेके निश्चयकी भी घोषणा की गयी। काश्मीरके लिये सारे स्थलमार्ग पाकिस्तानके भीतरसे होनेके कारण और यथासम्भव शीघ्र आक्रमणकारियोंके राक्षसी अत्याचारोंसे काश्मीरियोंकी जान और मालकी रक्षाके विचारसे नेहरू-सरकारने हवाई जहाजोंसे सेना और सैन्य-सामग्री भेजनेकी व्यवस्था की। भारतके असैनिक हवाई जहाज बड़ी शीघ्रतासे इस कामके लिये एकत्र किये गये और २७ अक्टूबरको प्रातः कालसे ही श्रीनगरके लिये इन हवाई जहाजों का तांता बंध गया—कह सकते हैं कि खासा हवाई पुल खड़ा हो गया। जिस समय हवाई जहाजोंसे भारतीय रणबांकुरे वहां पहुंचे थे, आक्रमणकारी श्रीनगरसे कुल चार मील दूर रह गये थे। इस तरह जो हवाई पुल खड़ा किया गया, वह १७ नवम्बर तक रात दिन खूब जोरोंसे काममें लाया गया। इतने समयके भीतर

साठ लाख पौंड तौल की(एक पौंड आधा सेरका होता है) सामग्री काश्मीर और जम्मूमें पहुँचायी गयी। कुल मिलाकर छः लाख बीस हजार मीलकी उड़ान उन हवाई जहाजोंने उस समयमें भरी थी और वे कुल मिलाकर चार हजार घंटे तक उड़े थे। साढ़े सात सौ से अधिक बार वापसी उड़ानें भरी गयी थीं और इस काममें सरकारको तीस लाख रुपये खर्च करने पड़े थे। इस अत्यन्त आवश्यक कार्यके लिये काफी हवाई जहाजोंकी व्यवस्थाके लिये निश्चित रूपमें उड़नेवाले डकोटा विमानोंका ३० अक्टूबरसे १८ नवम्बर तक उड़ना बन्द कर दिया गया था। वैसे कम परिमाणमें तो हवाई जहाजों द्वारा होनेवाला यह काम जनवरी १९४८ तक जारी रखा गया था। घोर शीतके कारण ऋतु ऐसी कठिन हो रही थी कि बीच-बीचमें कई दिनोंके लिये यह हवाई कार्य स्थगित कर देना पड़ता था। भगवान्की ऐसी कृपा कि इतने कठिन कार्यमें लगे रहने पर भी सारे समयके भीतर किसी तरहकी भी दुर्घटना नहीं हुई।

जिस समय हमारी सेना श्रीनगरमें पहुँची थी, काश्मीरकी उस राजधानी पर किसी समय आक्रमण हो जानेका खतरा था। पाकिस्तानकी सीमाके उस पारसे जो आक्रमणकारी उसके पहले कई स्थलों पर राज्यकी सीमाके भीतर छिपकर घुस पड़े थे, वे एक प्रकारसे राजधानीके फाटक तक पहुंच चुके थे। वे पूर्णतया सुसज्जित और संगठित थे। वे ट्रक गाड़ियोंमें साज-सामानसे लैस होकर आये थे। उनके पास बन्दूकें, हथगोले, मार्टर तोपें

और मशीन तोपें थीं और वे गिरोहके गिरोहमें आये थे। इतनी लम्बी सीमा पर राज्यकी फौजें फैला कर रखी गयी थीं, इसलिये वे सर्वत्र ही विरल थीं। फिर भी उन्होंने वीरतासे आक्रमण-कारियोंका सामना किया, यद्यपि आक्रमणकारियोंने बहुत अधिक संख्यामें होनेके कारण पराभूत कर दिया था। इस तरह अपने रास्तोंको निष्कण्टक बनाते हुए वे बर्बर आक्रमणकारी आगे बढ़ते हुए श्रीनगरके निकट तक पहुचे थे। अवस्था ऐसी गम्भीर और अनिश्चित हो रही थी कि जब हमारा पहला हवाई जहाज दिल्लीसे श्रीनगरके लिये उड़ा था, तब यह भी निश्चित नहीं था कि श्रीनगर का हवाई-क्षेत्र सुरक्षित बचा है कि नहीं। हमारी हवाई सेनाकी सहायताने भारतीय सेनाको काफी सहायता पहुंचायी और वह ८ नवम्बरको बारमूला, १२ को महूरा और १४ नवम्बरको उरी पर कब्जा कर लेनेमें सफल हो गयी। फिर जम्मू राज्यकी ओर ध्यान दिया गया, जहाँ पूंछ, मीरपुर, मुजफ्फराबाद, मेटही, नौशेरा और झांगरमें राज्यकी सेनाएँ आक्रमणकारियोंके घेरेमें पड़ गयी थीं। गहरी बर्फके भीतर कठिन लड़ाइयां लड़ कर हमारी सेनाओंने अन्तमें दुश्मनोंके हाथसे बहुतसी जमीन छुड़ा ली। भारतीय हवाई सेनाके विमानोंने लड़ाईमें अपनी सेनाको सहायता पहुंचानेके साथ ही ऐसे स्थानोंसे वहांके निवासियोंको हटा कर सुरक्षित स्थानोंमें पहुँचानेका भी कार्य किया, जिनपर शत्रुके आक्रमणका खतरा निकट मालूम होता था। और, अब तो भारतीय सेनाओं की इतने दिनोंकी सफलताओंने पाकिस्तानमें ऐसी हड़कम्प पैदा

कर दी है कि वहांके अधिकारी अपने देश पर आक्रमणके खतरेका अनुमान कर अपनी सेनाकी शक्ति बढ़ानेके लिये बेतरह दौड़-धूप करनेमें लग गये हैं। वे पाकिस्तानियोंसे अधिकसे अधिक संख्या में पाकिस्तानके रक्षार्थ सेनामें भर्त्ती होनेकी अपीलें ही नहीं करते फिर रहे हैं, बल्कि यह भी कहनेमें हिचकिचाहट नहीं करते हैं कि पाकिस्तान अपनी आयका सबसे अधिक भाग अपनी सेना पर खर्च करने जा रहा है और इसके सामने उसे इस बातकी भी चिन्ता नहीं है कि जनताको खानेको भी मिलेगा या भूखों मरना होगा। साथ ही उन्होंने सुरक्षा-कौंसिलसे यह शिकायत की है कि भारतने कश्मीर-कमीशनसे जो वादा किया था, उसे तोड़कर भारी पैमाने पर आक्रमण कर रहा है और हालमें वह काश्मीरके भीतर और भी अधिक सेनाएँ भेज सैनिक शक्ति द्वारा राज्य पर अधिकार कर लेनेके प्रयत्नमें लग रहा है। उनकी इस शिकायतको निराधार बताते हुए भारतकी ओरसे उत्तर दिया गया है, वह तो अलग रहा, स्वयं नेहरूजी जब हालमें श्रीनगर गये थे, तब २१ नवम्बर १६४८ को वहां एक सार्वजनिक सभामें भाषण करते हुए उन्होंने यह कहा—"पाकिस्तानी पत्रोंका यह प्रचार बिलकुल निराधार है कि भारत पाकिस्तान पर हमला करना चाहता है। भारत पाकिस्तानपर कोई हमला नहीं करना चाहता, क्योंकि संघर्षसे कोई लाभ नहीं होगा। जब पाकिस्तानने काश्मीरपर हमला किया, तो अपने पड़ोसीकी रक्षा करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य हो गया। पाकिस्तानी पत्रोंके विचार

में काश्मीरमें भारतीय सेनाओंके जमा होनेका मतलब पाकिस्तान पर हमला करनेकी तैयारी करना है। पांडु रोगीकी आंखोंको हरएक चीज पीली दिखाई देती है। हम तो पाकिस्तान द्वारा प्रेरित आक्रमणकारियोंसे काश्मीरकी रक्षा कर रहे हैं।”

काश्मीरके भारत सङ्घमें सम्मिलित हो जाने और उसकी सहायताके लिये सेना भेजनेका काम जारी हो जानेके बाद २ नवम्बर को प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी नेहरूने रेडियोपर इस आशयकी बातें देशवासियोंको सुनायी थीं—“आज मैं काश्मीरकी विपदके विषयमें कुछ कहना चाहता हूं। हमारे पड़ोसी देशकी सरकारने, ऐसी भाषाका प्रयोग करते हुए, जो सरकारों और यहां तक कि जिम्मेदार लोगोंकी भाषा नहीं है, भारतीय संघमें काश्मीरके प्रवेश के सम्बन्धमें भारत सरकारपर धोखाधड़ी और हिंसाका अभियोग लगाया है। मैं वैसी भाषामें नहीं बोलूंगा; क्योंकि एक जिम्मेदार सरकार और जिम्मेदार लोगोंकी ओरसे बोल रहा हूं। बाहरी आक्रमणकारियोंके आक्रमणके कारण जम्मू और काश्मीर रियासत के बहुतसे भाग पहले ही रौंदे जा चुके हैं। आक्रमणकारी पूर्णतया शस्त्रास्त्रोंसे लैश थे और उन्होंने गांवों और शहरोंको खूब लूटा और नष्ट-भ्रष्ट किया है। उन्होंने बहुतसे लोगोंको मृत्युके घाट उतारा है। जब श्रीनगरके ऊपर भी विनाशकी विभीषिका मंडराने लगी, तब हमने सहायतार्थ सेना भेजी है। हम लोगोंने काश्मीरके सम्बन्धमें जो भी पग उठाया है, उसके परिणामोंको खूब सोच-समझकर ही। मुझे पूरा विश्वास है कि हमने जो कुछ किया है,

ठीक ही किया है। हम ऐसा न करते तो विश्वासघात और कायरताके दोषी ठहराये जाते और यह समझा जाता कि हमने तलवारके आगे और उसके फलस्वरूप होनेवाले अग्निकांडों, बलात्कार और जनसंहारके सामने घुटने टेक दिये। पिछले कुछ सप्ताहोंसे हमारे पास जम्मू प्रान्तके इलाकेमें आक्रमणकारी दलोंके घुस आनेके सम्बन्धमें समाचार पहुंच रहे थे। यह खबर भी मिली कि काश्मीरकी उस सीमाके पास, जो उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्तसे मिलती है, सशस्त्र आक्रमणकारी जमा हो रहे हैं। इसलिये हमारा चिन्तित होना स्वाभाविक था। न केवल इसलिये कि काश्मीर और उसके लोगोंके साथ हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है, बल्कि इसलिये भी कि काश्मीर एक सीमान्त देश है, जो बड़े-बड़े राष्ट्रकी सीमाओंसे मिला हुआ है। फिर भी हम किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना नहीं चाहते थे और न उसके लिये हमने कोई कारवाई ही की। यद्यपि जम्मूके कुछ हिस्से आक्रमणकारियों द्वारा रौंद डाले गये थे।

"कहा गया है कि जम्मूकी ओरसे पाकिस्तानकी सीमाके पार आक्रमण किये गये, जम्मूमें साम्प्रदायिक झगड़ोंके कारण मुसल-मानोंका बध किया गया और वे वहाँसे निकाल दिए गये। अगर सचमुच ऐसी कोई बात कहीं हुई हो, तो हम निश्चित और असंदिग्ध शब्दोंमें उसकी निन्दा करते हैं। मेरे पास जम्मू प्रांत के पन्द्रह गांवोंकी एक सूची है, जिन्हें पाकिस्तानके आक्रमण-कारियोंने तहस-नहस कर डाला है। भीम्बर, जो एक बड़ा

कस्बा था, लूटकर नष्ट कर डाला गया। अन्य शहरों पर भी घेरा डाल दिया गया है। पूंछ और मीरपुरके बहुतसे इलाकों पर आक्रमणकारियोंका कब्जा है। क्या इससे यह प्रकट होता है कि काश्मीरकी ओरसे पश्चिमी पञ्जाबपर आक्रमण किया गया था या पश्चिमी पञ्जाबकी ओरसे काश्मीर रियासतपर लगातार और सुसङ्गठित रूपसे आक्रमण किये गये। आक्रमणकारी आधुनिकतम हथियारोंसे सुसज्जित हैं। काश्मीरने हमसे हथियारके लिये प्रार्थना की। यद्यपि हमारे रियासती और रक्षा-विभागोंने इजाजत दे दी थी, फिर भी शस्त्रास्त्र भेजे नहीं गये। २४ अक्टूबरकी रातको एबटाबाद—मानशेराकी सड़ककी ओरसे एक और हमलेकी खबर मिली और यह कि शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित लोगोंकी सौसे अधिक मोटर, लारियाँ रियासतमें घुसी हैं। मुजफ्फराबादसे लूटकर उन्होंने जिला मजिस्ट्रेट समेत बहुत लोगोंको मृत्युके घाट उतार दिया।" आगे चलकर यह बताते हुए कि किस तरह काश्मीरका भारत संघमें प्रवेश हुआ और उसकी रक्षा के लिये हवाई जहाजोंसे सेनाएं भेजी गई और किस तरह उस श्रीनगरपर आक्रमणका खतर उपस्थित हो रहा था जो सारे काश्मीर को बिजली पहुँचानेवाले महोराके विशाल बिजलीघरके आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिये जानेसे अन्धकार में पड़ा था। नेहरूजीने यह कहा कि—'इतने पर भी तो श्रीनगरकी रक्षा कर ली गयी, वह एक चमत्कार ही हुआ है। आसन्न संकटको देखते हुए भी शहरके भीतर दुकानें खुली थीं और

नित्यकी भांति लोग काम काज कर रहे थे। इसका श्रेय शेख अब्दुल्ला और नेशनल कानफरेंसके उनके सहयोगियों तथा उनके निहत्थे मुसलमान, हिन्दू और सिख स्वयंसेवकोंको है, जिन्होंने स्थितिको संभाल लिया था। उन्होंने श्रीनगरमें व्यवस्था बना रखी और लोगोंको आतंकित नहीं होने दिया। उनके संगठनमें शक्ति थी, तभी ऐसा चमत्कार वे दिखा सके हैं। एक कारण यह भी था कि वे उन क्रूर आक्रमणकारियोंके हाथोंसे स्वदेशको बचानेके लिये दृढ़ निश्चय किये हुए थे। जो उनके देशको पदाक्रान्त कर रहे थे और पाकिस्तानमें शामिल करनेके लिये उसे आतंकित कर रहे थे। भविष्य चाहे जो हो, इन पिछले दिनोंमें काश्मीरके लोगोंने विलक्षण उत्साह, संगठन शक्ति तथा एकताका परिचय दिया है। भारतको काश्मीर वालोंकी इस साम्प्रदायिक एकतासे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। काश्मीरके महाराज बधाईके पात्र हैं कि ऐसे नाजुक मौके पर शासन व्यवस्था शेख अब्दुल्लाके हाथोंमें देनेका निर्णय किया है।

"हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि काश्मीरका यह संघर्ष आक्रमणकारीके विरुद्ध यहांकी जनताका है। हमारी सेनाएं वहां इस संघर्षमें जनताकी सहायताके लिये गयी हैं और जैसे ही आक्रमणकारी काश्मीरसे निकाल दिये जायँगे, वे वहाँ न रहेंगी और काश्मीरका भाग्य स्वयं वहांके लोगों पर छोड़ दिया जायेगा। हमें कितने ही संकटोंसे गुजरना पड़ा है और अब भी अंत हो नहीं गया है। आनेवाले संकटोंसे सफलतापूर्वक सामना करनेके लिये

हमें सर्व प्रथम भारतकी साम्प्रदायिक कलहका अंत कर देना होगा और देशकी स्वतंत्रताके लिये जो भी खतरा पैदा हो, उसका मुकाबला सब कोई मिलकर करनेको तैयार रहें। काश्मीर पर आक्रमण करनेवाले शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित हैं और उनका नेतृत्व योग्य व्यक्तियोंके हाथमें है। हमें पाकिस्तानकी सरकारसे यह पूछनेका हक है कि ये लोग कैसे और किस तरह उत्तर-पश्चिमसे सीमाप्रांत अथवा पश्चिमी पंजाबसे होकर आये हैं और कैसे इतनी अच्छी तरह शस्त्र-सज्जित हैं? क्या यह अन्तर्राष्ट्रीय कानूनकी अवहेलना और एक पड़ोसी राष्ट्रके प्रति शत्रुताकी कार्रवाई नहीं है? क्या पाकिस्तानकी सरकार इतनी कमजोर है कि वह एक अन्य देशपर आक्रमण करनेके लिये अपने प्रदेशसे होकर गुजरनेवाली सेनाको नहीं रोक सकती अथवा वह यह चाहती है कि ऐसा ही हो? हमने पाकिस्तानकी सरकारसे बारंबार आक्रमणकारियोंको आनेसे रोकने और जो आ गये हैं, उन्हें लौटा लेनेको कहा है। उसके लिये ऐसा करनेमें कठिनाई नहीं है। हमने काश्मीरकी जनताको आक्रमणकारियोंसे उसकी रक्षा करनेका बचन दिया है और अपने इस वचन पर दृढ़ रहेंगे।"

सुरक्षा-कौंसिलमें

भारत सरकारने पाकिस्तानसे बारंबार अपील की कि वह उन आक्रमणकारियोंको सहायता और प्रोत्साहन देनेसे बाज आये, जो पाकिस्तानके भीतर स्थित अड्डोंसे लड़नेको पहुंचा करते हैं, पर जब उसने उन अपीलों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, तब युद्ध

क्षेत्रका और अधिक विस्तार रोकनेके अभिप्रायसे भारत सरकारने वहांकी अवस्था संयुक्त राष्ट्र संघके सामने रखनेका निश्चय किया। १ जनवरी १९४८ को जो पत्र भारत सरकारने सुरक्षा-कौंसिलका ध्यान चार्टरकी धारा ३५ के अनुसार आकर्षित करनेको दिया, उसमें उससे यह निवेदन किया था कि कौंसिल खासकर पाकिस्तानकी सरकारसे कहे कि—(१) वह पाकिस्तानके सैनिक और असैनिक आदमियोंको काश्मीर राज्य पर होनेवाले आक्रमणमें भाग लेने या सहायता देनेसे रोके, (२) पाकिस्तानके अन्य जनोंसे कहे कि राज्यमें होनेवाली लड़ाईमें किसी प्रकारका भाग लेनेसे बाज रहनेको कहे। (३) (क) आक्रमणकारियोंको काश्मीरके विरुद्ध लड़ाई करनेके लिये न तो अपने प्रदेशमें घुसने दे और न उसका व्यवहार करने दे (ख) सैनिक या अन्य सामग्री उन्हें न दे (ग) ऐसी सब प्रकारकी सहायता देनेसे इनकार करे, जिससे लड़ाईके अधिक लम्बी चलनेकी संभावना हो। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सुरक्षा-कौंसिलने इस प्रश्नको ६ जनवरीकी अपनी कार्य सूचीमें रख लिया और चार्टरकी धारा ३१ के अनुसार भारत और पाकिस्तानके प्रतिनिधियोंको बिना वोटके अधिकारके वाद विवादमें भाग लेनेके लिये निमंत्रित किया। १७ जनवरीको उसने एक प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसमें भारत और पाकिस्तानसे यह अनुरोध किया गया कि वे अवस्थाको सुधारनेके लिये सारे उपाय करें और ऐसी बातें कहनेसे बचें, जिनसे अवस्थाके और भी बिगड़ जानेकी सम्भावना हो। इसका उपयुक्त उत्तर

भारत सरकारने १९ जनवरीको भेजा था। २० जनवरीको एक और प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें तीन मेम्बरोंका ऐसा कमीशन इसलिये नियुक्त किया गया कि कौंसिल द्वारा समय-समय पर निकाले जाने वाले आदेशोंके अनुसार काम करे। इस प्रस्तावके अनुसार भारत सरकारने अपनी ओरसे जेकोस्लोवकियाको मेम्बर चुना। पीछे कमीशनके सदस्योंकी संख्या बढ़ा कर पाँच कर दी गयी। अध्यक्ष द्वारा भारत और पाकिस्तानके प्रतिनिधियोंसे एक साथ या पृथक्-पृथक् कई बार निपटारेका मार्ग निकालनेके लिये बातचीत हुई। किन्तु दोनों उपनिवेशोंमें बड़ा भारी मतभेद बराबर बना रहा। तथापि कुछ प्रस्ताव उस अनियमित बातचीतके आधार पर अध्यक्ष द्वारा तैयार किये गये, जो ६ फरवरीको कौंसिल के सामने पेश किये गये। इनमेंसे कुछ ऐसे थे, जो भारतकी ओर से रखे हुए सुझाओंके विरुद्ध थे। इसलिये भारत सरकारने अपने प्रतिनिधि-दलके नेता श्री गोपाल स्वामी आयंगरके साथ सारी स्थिति पर विचार करनेकी आवश्यकता समझी। इसलिये काश्मीर की अवस्था पर विचार कौंसिलने स्थगित कर दिया, जिससे भारतीय प्रतिनिधि-दल नयी दिल्ली लौट कर अपनी सरकारके साथ उन प्रस्तावों पर विचार कर सके। भारतके अभियोगोंके उत्तरमें पाकिस्तानके परराष्ट्र मंत्रीने कई आरोप भारतके ऊपर लगाये थे, जो १५ जनवरीको कौंसिलके अध्यक्षको दिये हुए पत्रमें थे। मार्चके प्रथम सप्ताह तक उन प्रस्तावों पर अधिक दूर तक वाद-विवाद नहीं हो सका था, जब कि भारतीय प्रतिनिधि-दल

न्यूयार्क लौटा और काश्मीर पर फिर वाद-विवाद आरम्भ हुआ। फिर प्राइवेट तौर पर परामर्श होता रहा और चीनके प्रतिनिधिने जो मसौदा तैयार किया था, उसे इसका आधार बनाया गया। जैसा मसौदा बना था, वह अपने प्रारम्भिक रूपमें तो भारतीय प्रतिनिधि दलको अमान्य नहीं था, पर वाद-विवादके सिलसिलेमें उसमें काफी काट-छांट की गयी और अन्तमें वह बेलजियम, कनाडा, चीन, कोलम्बिया, ब्रिटेन और अमेरिका द्वारा संयुक्त रूपसे रखे हुए प्रस्तावके रूपमें ढाल कर २१ अप्रेलको कौंसिल द्वारा पास किया गया, यद्यपि भारतीय प्रतिनिधि-दलकी ओरसे उस पर अनेक आपत्तियाँ उपस्थित की गयीं। नेहरू-सरकारने ५ मईको कौंसिलके अध्यक्षके पास प्रस्तावके उत्तरमें एक पत्र भेजा। इसमें भारत सरकारने कहा था कि "हमारे लिये प्रस्तावके उन भागोंको कार्य रूप देना सम्भव नहीं है, जिनके विरुद्ध हमारे प्रतिनिधि-दल ने साफ शब्दोंमें आपत्ति की थी। उस आपत्तिकी पुष्टि भारत सरकार अपने प्रतिनिधियोंसे परामर्श करनेके बाद कर रही है। यदि कौंसिल इतने पर भी कमीशन भेजेगी, तो भारत सरकार उसके साथ बातचीत प्रसन्नतासे करेगी।" ३ जूनको एक और प्रस्ताव कौंसिलने पास किया, जिसके अनुसार कमीशनको विवाद-ग्रस्त क्षेत्रोंमें इसलिये जानेका अधिकार दिया गया कि, "वह उठाये हुए मामलोंका और अधिक अध्ययन कर जब उचित समझे तब कौंसिलको रिपोर्ट दे, जिन्हें पाकिस्तानके परराष्ट्र मंत्रीने १५ जनवरीके अपने पत्रमें उठाया है। ये मामले जूनागढ़ और भारत

के विरुद्ध पाकिस्तान द्वारा लगाये हुए असली प्रश्नके मूलोच्छेदके उद्देश्यसे हत्या करनेके अभियोगसे सम्बन्ध रखते हैं।

उपर्युक्त प्रस्ताव पास किये जाने पर ५ जूनको भारतके प्रधान मंत्री नेहरूजीने कौंसिलके अध्यक्षके पास एक पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने यह कहा कि "भारत सरकार कमीशनके कार्य-क्षेत्रके इस प्रकार बढ़ाये जानेका जोरोंसे प्रतिवाद करती है और यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि वह इसे नहीं मानती है।" पत्रमें नेहरूजीने यह भी सूचित कर दिया कि भारत सरकारने अपने ५ मईके पत्रमें जो स्थिति प्रकट की है, उसके आगे जानेमें वह असमर्थ है। "दूसरे शब्दोंमें, तब तक कमीशनके काश्मीर पर पास किये हुए प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके लिये आगे बढ़नेका कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता, जब तक भारत सरकार द्वारा उपस्थित की हुई आपत्तियों का समाधान संतोषजनक रूपमें न कर दिया जाये। यदि कमीशनको भारत आना है, तो हम पहलेसे यह जान लेना पसन्द करेंगे कि वह किस बात या किन बातों पर हमसे बातचीत करना चाहेगा।" इसके उत्तरमें कौंसिलके अध्यक्षसे इस आशयका आश्वासन नेहरूजीको प्राप्त हुआ कि, "३ जून वाला प्रस्ताव मध्यस्थता करने वाले कमीशनको केवल यह आदेश देता है कि वह और अधिक बातोंकी जानकारी प्राप्त करे, जो कि उसे ठीक जँचे" और वह कमीशनके कार्यकी वही व्यवस्था बनाये रखता है, जो २० जनवरीवाले प्रस्तावके पैरा 'डी' में निर्धारित है, जो जम्मू और काश्मीरकी अवस्थाको अन्य अवस्थाओंसे

प्रथम स्थान देती है।" इस पत्रमें भारत सरकारको यह भी सूचना दे दी गयी कि उसने जो पहलेसे यह सूचित किये जानेको लिखा है कि कमीशन किस बात या किन बातोंपर बातचीत करेगा, इसके विषयमें उसकी बात कमीशनके पास भेज दी गयी है, जो अब अनिवार्य है।

पीछे कमीशनने २३ जूनको भारत सरकारको तार भेज कर सूचित किया कि,—"कमीशन भारत उप-महादेशके लिये इस अत्यन्त सच्ची इच्छाके साथ रवाना हो रहा है कि वह जम्मू और काश्मीरकी अवस्थाका निपटारा करनेमें आपकी और पाकिस्तानकी सरकारकी सच्ची सेवा कर सके। अपनी अन्य चाहोंके विषयमें कमीशनने निश्चयका काम अपने लिये सुरक्षित रखा है।" २६ जूनको नेहरू-सरकारने यह उत्तर भेजा,—"भारत सरकार कमीशनसे, जब वह दिल्ली आयगा, प्रसन्नतापूर्वक बातचीत करेगी। वह कमीशनके प्रतिनिधियोंको अपने स्टाफ सहित टिकने और आफिस बनानेके लिये व्यवस्था करनेमें भी यथासंभव सहायता देगी। किन्तु अभी तक हमें यह नहीं बताया गया है कि किन बातों पर कमीशन हमारे साथ विचार करना चाहेगा और हमें प्रसन्नता है कि यदि यह सूचना शीघ्र हमें दे दी जाय।" इसका कमीशनके अध्यक्षने यह उत्तर भेजा,—"कमीशन भारत और पाकिस्तानके लिये इस विचारसे प्रस्थान कर रहा है कि जम्मू और काश्मीरकी अवस्थाका शान्तिपूर्वक निपटारा कर सके। अपने कार्यके सिलसिलेमें इसकी और क्या चाह होगी, इसे अपने ही

हाथमें सुरक्षित रखते हुए यह आपकी सरकारसे उन विभिन्न बातोंके सम्बन्धमें बातचीत करनेकी इच्छा रखता है, जिनका इस अवस्था पर प्रभाव हो सकता है।" पीछे कमीशन १० जुलाईको (१९४८) दिल्ली पहुँचा और तब तक फिर और कोई लिखापढ़ी नहीं हुई। दिल्ली पहुंचने पर भारत सरकारके उच्च अफसरोंसे परामर्श करनेके पश्चात् ३१ जुलाईको कराची गया। फिर कमीशनने किस तरह काश्मीरके विभिन्न भागों और रणक्षेत्रोंका निरीक्षण किया और यथासंभव अधिकसे अधिक जानकारी प्राप्त करनेके लिये दोनों देशोंको सरकारोंसे वह हफ्तों बातचीत और परामर्श करता रहा, उसका सविस्तर वर्णन करनेके लिये न तो यहां स्थान है और न प्रसंग ही। तब यह अवश्य उल्लेखनीय है कि कमीशनके इस देशमें आने पर पाकिस्तानकी सरकारने उसे सूचित किया कि आत्मरक्षाके विचारसे पाकिस्तानकी कुछ सेना काश्मीरके भीतर रखी गयी है, यह बड़े मार्केकी बात इसलिये है कि कौंसिलके सामने पाकिस्तानकी ओरसे बराबर ही यही कहा जाता रहा कि काश्मीर पर होने वाले आक्रमणोंमें पाकिस्तानका कोई हाथ नहीं है और न वह आक्रमणकारियोंको किसी प्रकारकी सहायता ही देता है। पाकिस्तानके नियमित और अनियमित सैनिक काश्मीरमें लड़ रहे हैं, यह अभियोग भी वह बराबर ही अस्वीकार करता रहा। फिर तो सारी अवस्था किस तरह बदल गयी, उसके ब्योरेमें न जाकर हम यहां कमीशनकी उस मध्यकालीन रिपोर्टका सारांश ही यहां दे देना चाहते हैं, जो

उसने सुरक्षा-कौंसिलको दी है और जिसका पहला भाग २२ नवम्बर १९४८ को कमीशनने पेरिसमें प्रकाशित किया था। उसीसे यह भी प्रकट हो जायगा कि जब कमीशनने लड़ाई बन्द करनेके लिये प्रस्ताव दोनोंके सामने रक्खा, तो भारत सरकारने तो उसे पूर्णरूपसे स्वीकार कर लिया था, पर पाकिस्तान सरकारने कई शर्तें पेश की थीं और इस तरह कमीशनका कार्य आगे बढ़ना असम्भव बना दिया था।

अपनी उक्त रिपोर्टमें कमीशनने उन कठिनाइयोंको विवाद रूपमें बताया हैं, जो उसके सामने आयीं। फिर रिपोर्टमें यह कहा गया है—जब हम प्रत्यक्ष स्थलपर पहुँचे, तो सुरक्षा-कौंसिलके प्रस्तावको कार्यान्वित करनेमें हमें ऐसी नयी समस्यासोंका सामना करना पड़ा, जो २१ अप्रेलको, जब कि सुरक्षा-कौंसिलने अपना प्रस्ताव पास किया था, मौजूद नहीं थीं। हमने नियमित पाकिस्तानी फौजों तथा पाकिस्तान राष्ट्रके आदमियोंको काश्मीरमें लड़ते देखा। प्रस्ताव पास करनेके समय सुरक्षा कौंसिलको इस बातका ज्ञान नहीं था। अतएव कमीशनके सामने पहला काम यह था कि वह पाकिस्तान सरकारको अपनी फौजों और आदमियोंको हटानेको कहे और इस प्रकार काश्मीरमें युद्ध बन्द हो। कोई भी निर्णय होने या सुरक्षा-कौंसिलके प्रस्तावके कार्यान्वित होनेके पूर्व युद्धका बन्द होना आवश्यक था। भारत सरकारने इस सम्बन्धमें कमीशनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, परन्तु पाकिस्तान सरकारने अनेक शर्त्तें लगायीं। यह आवश्यक था कि पहले पाकिस्तान अपनी सेनाओं

और उनके राष्ट्र जनोंको वहांसे हटाये और पीछे भारत सरकारसे अब धीरे धीरे अपनी सेनाएं हटानेको कहा जाये और भारत सरकार उसे घटाकर इतनी कर दे जितनी की शांति और कानूनकी रक्षा एवं राज्यकी सरकारकी शासन व्यवस्थाको बनाये रखनेके लिये आवश्यकता हो। फिर रिपोर्टमें यह बताया गया है कि पाकिस्तानने कमीशनके प्रस्तावको स्वीकार करनेके लिये ऐसी शर्तें लगायीं, जो प्रस्तावकी परिधिके बाहर थीं। इसके फलस्वरूप अविलम्ब युद्ध बन्द होना और काश्मीर प्रश्नके शांति पूर्ण हलके लिये सफल बात करना असम्भव हो गया। परन्तु भारत सरकार ने कमीशनके प्रस्तावको पूर्ण रूपसे स्वीकार कर लिया। रिपोर्टमें जनमत संग्रहके सम्बन्धमें बताया गया है कि भारतने इस बातपर जोर दिया कि जनमत-संग्रह करनेकी व्यवस्थाके पूर्व यह आवश्यक है कि युद्ध बन्द किया जाये। पाकिस्तानने कहा कि इस सम्बन्धमें कोई कार्रवाई करनेके पहले बाहरके सभी लोगोंको, जिनमें भारतीय सेनाएं सम्मिलित हों, वहांसे हटाया जाये, वहां समस्त मुसलमानों को फिरसे बसाया जाये तथा जम्मू और काश्मीरमें एक निष्पक्ष स्वतंत्र शासनकी स्थापना की जाये। यह बात दोनों पक्षोंने स्वीकार की है कि इस वर्ष जन-मत-संग्रहका आयोजन व्यवहारिक नहीं है। काश्मीर सरकार और आजाद प्रतिनिधियोंका यही मत था। रिपोर्टमें यह भी कहा गया है कि पाकिस्तानने इस बात पर जोर दिया है कि आजाद हिन्द सरकारके प्रतिनिधियोंसे भी बात करना जरूरी है। इस तथ्यसे कि आजाद पक्षकी ओरसे लड़नेवाली

सारी सेनाएं पाकिस्तानी सेनाके कमांडमें हैं, जैसा कि पाकिस्तानने स्वीकार किया है, कमीशनके सामने एक नयी स्थिति पैदा हो गयी।

काश्मीरकी समस्याके सम्बन्धमें हमारे प्रधान मन्त्री नेहरूजी को कितना अधिक ध्यान रहता है, यह उनके उन भाषणों और वक्तव्योंसे ही प्रकट होता है, जो वे समय समय पर और काफी शीघ्रतासे देते रहते हैं। उन सबोंको देनेसे एक भारी पोथी तैयार हो जायेगी। इन वक्तव्योंमें वे पाकिस्तानकी ओरसे कही जानेवाली मिथ्या बातोंका खण्डन करते हुए अपनी सरकारका ठीक ठीक दृष्टि कोण प्रकट किया करते है। जहांतक काश्मीर पर होनेवाले आक्रमणोंका सम्बन्ध है, घटनाओंके सम्बन्धकी बातें तो सभी वक्तव्यों में वही हुआ करती हैं। आक्रमणकारी हूणोंने काश्मीरकी स्त्रियों पर जैसे जैसे राक्षसी अत्याचार किये हैं, उनका वर्णन हमने जान बूझकर यहां नहीं किया है और नेहरूजीके वक्तव्यमें जितना उल्लेख है उसीसे संतोष कर लिया है। ७ सितम्बर १९४८ को भारतीय पार्लमेंटमें काश्मीरके सम्बन्धमें प्रधान मन्त्री नेहरूजीने जो वक्तव्य दिया, उसके आरम्भमें काश्मीर-कमीशन विषयक बातें बताते हुए उन्होंने यह कहा—"वास्तवमें सुरक्षा-कौंसिलके सामने हम बहुत सीधी सादी युक्ति लेकर पहुंचे, वह यह कि पाकिस्तानसे होकर आनेवाले इन आक्रमणकारियों द्वारा काश्मीरकी शांति भंग हुई है। हमने अपना पक्ष यथा संभव घटाकर रखा। हमने कहा कि यह तो मानना ही पड़ेगा कि पाकिस्तानसे होकर आनेवाले

लोग केवल पाकिस्तानको सहायता और सद्भावनासे ही काश्मीर आ सकते हैं। इसलिये कौंसिलसे हमने प्रार्थना की कि वह पाकिस्तानसे कहे कि वह इन आक्रमणकारियोंकी मदद न करे और न उन्हें इस तरहसे आनेकी इजाजत दे। पाकिस्तानने इस बातसे इनकार किया और सुरक्षा-कौंसिलमें जो लम्बी चौड़ी बहसें हुई, उनमें केवल वह इस बातसे बराबर इनकार करता रहा, बल्कि उसने काफी कटुता और रोष इस कारण प्रकट किया कि उसके विरुद्ध इस प्रकार दोषारोपण किया जा रहा है। अब उसके काश्मीरमें पाकिस्तानी सेनाके होनेकी बात स्वीकार करनेसे ही उसका वह इनकार गलत हो गया है। उसने कमीशनको दिये हुए अपने पत्रमें उन बातोंकी चर्चा की है, जिनके कारण उसे बाध्य होकर अपने सैनिक कई रक्षात्मक स्थानोंमें ले जाने पड़े। अब यह स्पष्ट हो गया कि कई महीने तक तो उसने यह बात स्वीकार की नहीं थी और जब उसका अपराध प्रमाणित हो जाता और छिपाया नहीं जा सकता है, तब वह अपने आक्रमण को स्वीकार कर लेता और इसके लिये कोई कारण बता देता है। अपने वक्तव्यके अनुसार पाकिस्तानने यह कार्रवाई गत अप्रेलमें शुरू की, पर उसकी सूचना न तो भारत सरकारको दी और न उस सुरक्षा-कौंसिलको ही, जिसके विचाराधीन काश्मीरका प्रश्न था और जो भारतको एक कमीशन भेजने पर विचार कर रहा था। कैसी विचित्र बात है यह !"

आगे चलकर नेहरूजीने कहा कि—"जब काश्मीरका प्रश्न

पहली बार हमारे सामने आया, तो अन्य प्रश्नोंकी भाँति इसमें भी मैंने महात्माजीसे सलाह ली। मैं कई बार उनके सामने गया और अपनी कठिनाइयां उनके सामने रखीं। जैसा आप जानते हैं, अहिंसाका वह पुजारी फौजी मामलोंमें उपयुक्त निर्देशक नहीं था और यही उसने कहा भी। किन्तु सभी प्रश्नोंके नैतिक पहलूके विषयमें वह उपयुक्त निर्देशक था इस मामलेमें मैं अपने या अपनी सरकारके दायित्वको कम करनेके उद्देश्यसे यहां महात्मा गांधीका नाम नहीं ले रहा हूँ। इसकी चर्चा करनेमें मेरा उद्देश्य यह बताना है कि इस प्रश्नके नैतिक पहलूने मुझे सदा चिन्तित रखा है। और विशेष कर ऐसे समय में जब कि भारतमें कई प्रकारकी घटनाएँ हो रही थी और जिनसे भारतके शुभ यश पर धब्बा लग गया था, मैं बहुत चिन्तित था कि कहीं हम कोई कदम न उठा बैठें। यह स्मरण रखना चाहिये कि पाकिस्तान द्वारा इस बातके स्वीकार कर लिये जानेसे और इस बातके प्रमाणित हो जानेसे कि काश्मीरमें पाकिस्तानकी सेना भारी संख्यामें लड़ रही है, और वास्तवमें तो वह दस महीनेसे लड़ रही है, सुरक्षा-कौंसिलके सामने पाकिस्तानका सारा मामला गिर जाता है। इसके बादकी सारी कारवाईको इसी दृष्टिकोणसे देखना चाहिये। स्पष्ट ही हम एक विलक्षण स्थितिमें पहुँच गये हैं। जो राष्ट्र अपनी स्वीकृतिसे आक्रमणकारी राष्ट्र सिद्ध हो चुका, उसने अब युद्ध बन्द करनेका प्रस्ताव भी अस्वीकार कर दिया है—वह अस्वीकार ही है, क्योंकि कमीशनने कह दिया था कि

उसका युद्ध रोको प्रस्ताव स्वीकार करनेमें शर्त्तें नहीं लगायी जा सकेंगी। शर्त्तें लगायी गयीं तो स्वीकार नहीं हुआ, वह तो अस्वीकार हुआ। जो हो, हमने कभी यह अनुभव इतने दिनोंके भीतर नहीं किया कि काश्मीरके सम्बन्धमें हमने कोई गलती की है, या कोई ऐसा कदम उठाया है, जिसे हम उचित नहीं मान सकते। इसी विश्वासके साथ हम आगे कार्रवाई करते रहेंगे। मुझे विश्वास है कि यदि हम सही राह पर रहें, और भटकें नहीं, तो हमारी विजय अवश्य होगी और कोई भी देश जो अपने मामलेको असत्यकी नींव पर खड़ा करेगा, सफल न हो सकेगा।"

२ अक्टूबर १६४८ को भारतके प्रधान मंत्री नेहरूजीने गांधी-जयन्ती दिवस वर राष्ट्रके नाम रेडियोसे जो सन्देश प्रचारित किया था, उसमें काश्मीरके सम्बन्धमें उन्होंने ये दिव्य विचार प्रकट किये थे—"कुछ लोग भारतको आक्रमणकारी देश बताते हैं। पर यह उनका भ्रम है। यदि भारत आक्रमणकारी बन जाये, तो उसकी सरकारमें मेरे जैसे व्यक्तियोंके लिये कोई स्थान न रह जायेगा। यदि हम बल-प्रयोग पर उतर आयें तो जिन सिद्धान्तोंकी हम दुहाई देते आये हैं और जिन आदर्शोंको गांधीजी ने हमें सिखाया है, उनके प्रति झूठे हो जायेंगे। विगत कुछ सप्ताहोंमें हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तानके कुछ समाचार-पत्र और नेता भारतके विरुद्ध ऐसा विषैला प्रचार कर रहे हैं, जिससे दोनों देशोंको भारी हानि होनेकी आशंका है। इस प्रचारका सत्यसे

सम्बन्ध नहीं है। यदि पाकिस्तानकी जनता निरन्तर ऐसा साहित्य पढ़ती रहेगी, तो स्वभावतः वह भारत-विरोधिनी हो जायेगी, इसका अन्तिम परिणाम उसके लिये अच्छा न होगा। इसका मुझे बड़ा दुःख है। मैं इन प्रचारकोंसे बड़ी नम्रतासे कहूंगा कि वे ऐसा प्रचार करके अपने देश तथा अपनी जनताका अहित न करें। मैं पाकिस्तानकी जनताको विश्वास दिलाता हूँ कि भारत किसी भी देश पर आक्रमणकी इच्छा नहीं रखता। पाकिस्तान तो भारतका पड़ोसी और इसीका एक अंग है, अतः भारत पाकिस्तान पर आक्रमण कैसे कर सकता है ? हम तो यह चाहते हैं कि पाकिस्तान सुख और शान्तिसे रहे, उन्नतिशील बने और हमारे साथ गहरे सम्बन्ध स्थापित करे। जो पाकिस्तान भारत पर शान्ति भंग करनेका दोष लगाता है, वह स्वयं अक्षम्य बल-प्रयोग का अपराधी है। उसने काश्मीर और भारतकी श न्ति भंग की और उसका हमने स्वाभिमानी देशकी भाँति उत्तर दिया। पाकिस्तान बहुत दिनों तक यह कहता रहा कि उसने काश्मीरमें सेनाएँ नहीं भेजीं, यहाँ तककी सुरक्षा-कौंसिलमें भी उसने भारतके विरुद्ध अभियोग लगा दिया। पर कहावत सच है कि झूठके पैर नहीं होते। अन्तमें उसे मानना पड़ा कि पाकिस्तानकी सेनाएँ भारतके विरुद्ध काश्मीरमें लड़ रही हैं। इतिहासमें शायद ही ऐसा कोई उदाहरण मिलेगा, जिसमें नितांत असत्य और कल्पनाके आधारपर कोई मामला खड़ा किया गया है। राष्ट्र-संघके कमीशनने काश्मीर में युद्ध बन्द करनेका प्रस्ताव किया। हमने उसे भी स्वीकार कर

लिया, पर पाकिस्तानने स्वीकार नहीं किया। अब मैं प्रधान मंत्रीकी हैसियतसे आपसे तथा पाकिस्तानकी जनतासे कहता हूं कि हम किसी प्रकार इस आक्रमणको सहन नहीं करेंगे। इससे काश्मीरकी स्वतन्त्रताको ही नहीं, भारतीय जनताके आत्म-सम्मान को भी ठेस पहुँचेगी। हमने काश्मीर और हैदराबादमें जो कुछ किया है, उसके लिये मुझे पश्चात्ताप नहीं है। यदि हम ऐसा न करते, तो हिंसा और दुःख और भी बढ़ जाते।"

हैदराबादमें नेहरूजीकी विजय

"हैदराबाद राज्यकी भौगोलिक स्थिति और देशकी आर्थिक स्थितिका अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि हैदराबाद स्वाधीन राज्य नहीं रह सकता। जब तक भारत स्वतंत्र है, हैदराबाद स्वतंत्र नहीं रह सकता। आज प्रश्न यह है कि या तो भारत स्वतंत्र और स्वाधीन रहेगा या हैदराबाद। इस समस्याका इसके सिवा दूसरा कोई हल नहीं है। इसलिये मेरे मतसे हैदराबादके लिये भारतमें शामिल होनेके सिवा और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। भारतमें शामिल होनेका अर्थ यह नहीं है कि हैदराबाद हिन्दका गुलाम हो जायेगा। देशके प्रत्येक भागमें प्रत्येक व्यक्तिको स्वतंत्रता देना हमारा उद्देश्य है। भारतमें शामिल होनेका अर्थ सङ्घमें समान रूपसे साझीदार होना है। हमें हैदराबादको भारतमें शामिल करनेके लिये सैनिक काररवाई करनेकी आवश्यकता नहीं है। फिर भी हमने अपनी सैनिक तैयारी पूरी कर ली है। इसका कारण यह है कि सीमापर और राज्यके भीतर जो दुर्घटनाएँ हो रही हैं, उन्हें भारत सरकार

निष्क्रिय दर्शककी तरह नहीं देख सकती। भारत सरकार इस-लिये चिन्तित है कि इन दुर्घटनाओंकी प्रतिक्रिया भारत सङ्घमें होगी। यदि राज्यमें शांति होती, तो हैदराबाद बिना बल-प्रयोग के ही भारतमें शामिल हो जाता। परन्तु राज्यमें अशान्ति होने के कारण समस्याका रूप ही बदल गया और भारत सरकारको कड़ी काररवाई करनी पड़ी। अब हैदराबादके सामने दो ही रास्ते हैं—या तो वह युद्ध करे या भारतमें शामिल हो जाये। हमने जो सिद्धांत जूनागढ़के लिये अपनाया है, वही हैदराबादके लिये भी लागू होगा। यह समझ लेना चाहिये कि या तो हैदरा-बादको भारतमें सम्मिलित होकर रहना पड़ेगा या उसे भारतके नकशेसे सदाके लिये मिट जाना पड़ेगा”—नेहरूजीका ब्राडकास्ट किया हुआ यह मार्मिक कथन कितना सत्य सिद्ध हुआ है, यह तो समय ही बतलायेगा, पर आज हैदराबादके भीतर प्रधान मन्त्री नेहरूजीकी नीतिकी पूर्ण विजय हुई है, यह सभीकी आंखोंके सामने है।

हैदराबादके सम्बन्धमें नेहरूजी और उनकी सरकारकी नीति के विस्तारमें जानेके पूर्व हम भारतके राष्ट्रपिता महात्मा गांधीका वह स्पष्ट मत यहां उद्धृत कर देना आवश्यक और प्रासंगिक समझते हैं, जो उन्होंने उसी समय प्रकट किया था, जब हैदराबाद के एक स्वतंत्र राज्यके रूपमें रहनेकी चर्चा जोरों पर थी। महात्माजीने तब कहा था—

“...हैदराबादके निजामकी बात लीजिये। कहा जाता है कि

मौका पाकर वे सारे हिन्दुस्तानको सर कर लेने वाले हैं। लेकिन कौन सर करेगा? वहांकी सारी प्रजा तो हिन्दू पड़ी है।.. हिन्दुस्तानमें कोई मुसलिम राजा यह नहीं कह सकता कि वह सब हिन्दुओंको मार डालेगा। अगर ऐसा कोई कहता है, तो उससे मैं पूछूंगा कि अब तक वह क्यों हिन्दुओंका राजा बनकर रहा? क्यों हिन्दू प्रजाका अन्न खाया? इसी प्रकार कोई राजा मुसलमान है, तो इसी आधारपर यह कहनेका हकदार नहीं हो जाता कि वह पाकिस्तानमें जा मिलेगा और न हिन्दू राजा हिन्दू होनेके नाते यह कह सकता है कि वह कांग्रेसका साथ देगा। प्रजा कहे वहीं उसे जाना होगा।...

"...सुना जाता है कि हैदराबाद भी वही (जैसा कि त्रावंकोर-नरेशके मन्त्री सर सी० पी० राम स्वामी ऐयरने घोषणाकी थी कि १५ अगस्त १९४७ से त्रावंकोर स्वतंत्र हो जायेगा और जो लोग यह पसन्द न करते हों, वे त्रावंकोर छोड़कर चले जायें) करने जा रहा है। वह (निजाम) कह रहे हैं कि हम दोनोंको देखेंगे, न इधर जायेंगे, न उधर। लेकिन निजाम स्वतंत्र होगा, तो किससे होगा? वहां नब्बे प्रतिशत तो हिन्दू हैं। अगर निजामकी स्वतंत्रता ऐसी नहीं है कि जिसमें वहांकी हिन्दू प्रजा अपनेको स्वतंत्र अनुभव कर सके, तो उनका राज्य नहीं रह सकता। आज समय बदल गया है। वे समयको पहचाने। मैं तो उनसे यह कहूंगा कि आप तख्तसे नीचे उतरिये और लोगोंके सेवक बनकर रहिये। आप शरीफ बनें और भारतमें बेकार फसाद न बढ़ायें।

"रियासतोंका हमसे अलग होना छोटी बात नहीं हैं। वह बहुत बड़ी बात है। जिनके दिलमें स्वतंत्र बननेकी बात है, वे अपने दिलमें सोचें कि अङ्गरेजी राज्यने उनका क्या भला किया है? विदेशी अंगरेजी राज्यके गुलाम होकर तो वे इतने वर्षों रहे, पर आज जब भारतीयोंके हाथमें—करोड़ोंवाली जनताके हाथमें बागडोर आ रही है, तो उनके अधीन वे नहीं रह सकते। सभी रियासतोंके दीवानोंसे मैं अदबसे कहूंगा कि अगर वे विधान-परिषद्में आनेके लिये राजाओंको नहीं समझाते, तो राजाओंके प्रति अभक्ति प्रकट करते हैं। हम राजाओंके दुश्मन बनना नहीं चाहते। वे स्वतंत्र रहना चाहें, तो रह सकते हैं। उन्हें हम कैद नहीं करेंगे। अगर यहां रहना चाहें, तो वे समझें कि उनकी प्रजा हमारे साथ है। वे अलग रहना चाहें, तो भले ही पेरिस या और कहीं चले जायें, यहां रहें तो अपनी प्रजाके सेवक बनकर ही रहें। पंचायती राजको समझें। यह मानो कि सभी मनुष्य बराबर हैं। अपने लिये यह न कहें कि मैं अकेला ही ऊँचा हूं। तब वे 'यावच्चद्र दिवाकरौ' बने रह सकते हैं। वे उसी तरह प्रजाकी सर्वसत्ता मानें, जिस तरह अंग्रेजोंकी सर्वसत्ता मानते थे। तभी वे अपने राजको स्वतंत्रतासे भोग सकते हैं। पर उस तरह नहीं, जैसे अंग्रेजोंकें राजमें प्रजाका मनमाना पैसा लूटते थे। प्रजाकी सेवामें अपनेको लगा दें और सच्चे मित्र बनें।"

जब १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र हो गया, तब यह देखकर सभी देशभक्तोंको बड़ी प्रसन्नता हुई कि उस समय तक

भारतकी रियासतोंमेंसे हैदराबाद, काश्मीर और जूनागढ़को छोड़कर बाकी सभी भारत संघमें सम्मिलित हो गयीं। यद्यपि पहले दक्षिणकी त्रावंकोर रियासत भी अपनेको पूर्ण स्वतंत्र बनानेके लिये काफी देर तक आग्रह करती रही और उसके दीवान सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर अपनी सारी विद्वत्ता त्रावंकोरके स्वतंत्रताके अधिकार पर ही लगाते रहे, किन्तु अन्तमें उस रियासतको भी भारत संघमें सम्मिलित होनेको तैयार होना पड़ा था। हैदराबादके निजामको इस बातका गर्व था कि वह सबसे बड़ी रियासत है और स्वतंत्र रहकर अपना काम चला सकती है, इसलिए वे स्वतंत्र रहनेके लिये ही तुल गये। जिस देशी रियासतोंके शासकोंने अपनी स्वतंत्रताके पक्षमें दावा किया, वे सभी अपने दावेका आधार ब्रिटिश सरकारकी उस घोषणाको बनाते थे, जिसके अनुसार उसने देशी राज्यों परसे सम्राट्के प्रभुत्वका अंत करते हुए देशी रियासतोंके शासकोंको उस तारीखसे स्वतंत्र हो गया कह दिया था। यह घोषणा ३ जून १९४७ को की गयी थी। ब्रिटिश सरकारकी ओरसे यह भी स्पष्ट किया ही जा चुका था कि सम्राट्का प्रभुत्व (पैरा माउंटसी) ऐसी चीज नहीं जो हस्तांतरित की जा सके, इसलिये उसके उठा लेने पर देशी रियासतें स्वतंत्र हो जायँगी। यद्यपि मंत्रिमंडलके मिशनकी योजनामें देशी रियासतोंसे यह अनुरोध किया गया था कि उन्हें किसी एक प्रस्तावित स्वाधीन उपनिवेशमें सम्मिलित हो जाना चाहिये। योजनामें यह भी सलाह दी गयी थी कि रियासतें वैदेशिक मामले,

रक्षा और यातायातको संघके हाथ सौंप शेष विषयों और अधिकारोंको अपने पास रख सकती हैं। किन्तु ब्रिटिश सरकारकी ये सिफारिशें केवल सलाहके रूपमें की गयी थीं और रियासती प्रजाकी तो उनमें कोई चर्चा तक नहीं थी। स्पष्ट है कि यदि हैदराबादकी भांति ही सभी देशी रियासतें सम्राट्का प्रभुत्व हट जानेके बाद अपनेको स्वतंत्र बनानेका ही निश्चय कर लेतीं, तो भारत अगणित टुकड़ोंमें बंट जाता, उसकी अर्थ व्यवस्था और एकता नष्ट हो जाती, सुरक्षा भंग होनेका भय प्रतिक्षण उपस्थित रहता और उसकी लोकतंत्रात्मक भावनाओंका उद्वेग दूषित हो जाता। फिर तो भारतकी दशा यूरोपके बालकन प्रदेशसे भी अधिक गयी-गुजरी हो जाती और प्रधान मंत्री नेहरूजीका यह कहना बिलकुल यथार्थ था कि अगणित खंडोंमें विभक्त स्वतंत्र भारत तो पराधीन भारतसे भी बुरी अवस्थाको प्राप्त हो जायगा। यही कारण है कि उन्होंने बहुत आरम्भ ही में अत्यन्त स्पष्ट शब्दमें यह कह दिया था कि स्वतंत्र भारत किसी अवस्थामें किसी भी देशी राज्यको पूर्ण स्वतंत्र नहीं होने देगा।

५ जुलाई १९४७ को भारत सरकारके रियासती विभागकी स्थापना हुई और सरदार पटेलके हाथमें उसका भार सौंपा गया। सरदारने रियासतोंके सम्बन्धमें अपनी नीतिकी घोषणा करनेके साथ ही उन रियासतोंको भारत संघमें सम्मिलित होनेके लिये तैयार करनेमें अपनी पूरी शक्ति लगा दी। यही कारण है कि इतने अल्पकालमें ही उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हो गयी। रियासती

विभागका काम संभालनेके बाद तुरन्त ही सरदारजीने नेहरू-सरकारकी नीति स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कर दी। उन्होंने कहा—"सम्राट्के प्रभुत्वसे मुक्त होनेकी नरेशोंकी इच्छा इसलिये तो ठीक है कि वे इस प्रकार एक विदेशी आधिपत्यसे मुक्ति पा जायँगे, किन्तु आधिपत्यसे इस मुक्तिका मतलब यह हर्गिज न होना चाहिये कि उसका प्रयोग भारतके सामान्य हितोंके विरुद्ध अथवा जन-कल्याणके प्रभुत्वके विरुद्ध किया जायेगा। साथ ही उन्होंने नरेशोंको यह आश्वासन भी दिया कि उनकी नीति रियासती सचिवालयके कार्योंका संचालन इस रीतिसे करनेकी कभी न रहेगी, जिससे यह प्रतीत हो कि एक पक्ष दूसरे पर आधिपत्य स्थापित करना चाहता है। यदि किसी प्रकारके आधिपत्यको स्थान भी मिलेगा, तो वह हमारे दोनों पक्षोंके हितों एवं कल्याणका ही आधिपत्य होगा।" उसके बीस दिन बाद २५ जुलाई १९४७ को वायसराय लार्ड माउंट बैटनने भी सरदार पटेलके कथन पर जोर देते हुए नरेशोंको सचेत किया और कहा कि—"उपनिवेश सरकारसे आप उसी तरह नाता नहीं तोड़ सकते, जिस प्रकार कि आप जनतासे नाता नहीं तोड़ सकते, जिसके कल्याणके आप उत्तरदायी हैं।" २७ अगस्त १९४७ को लार्ड माउंट बैटनने एक तार निजामको भेजा, जिसमें रियासती विभागके मंत्री द्वारा लार्ड माउंट बैटनके पास भेजे हुए पत्रके आधार पर यह कहा गया था—"यदि निजाम सरकार अब भी अपने लिये वह रास्ता निश्चित करनेमें असमर्थ है, जो एकमात्र रास्ता है, तो निजामको यह प्रश्न जनताकी

इच्छा पर छोड़ देनेके लिये तैयार होना चाहिये और उसका जो भी निर्णय हो, उसके अनुसार काम करें। इस तरह जन-मत-संग्रहका जो भी परिणाम होगा, उसे स्वीकार करनेको हम तैयार होंगे।" परन्तु सब कुछ कहा गया और समझाया गया, तो भी निजामकी सरकार भारत संघमें सम्मिलित होनेको तैयार नहीं हुई। अन्तमें एक समझौतेका ऐसा मसौदा तैयार हुआ, जिससे निज़ामके तत्कालीन प्रधान मन्त्री छतारीके नवाब तथा उनके साथ समझौतेकी बातचीतके लिये दिल्ली गये हुए निजामके अन्य प्रतिनिधि भी सहमत हो गये थे। परन्तु जब वे उस पर निज़ामकी सही बनवानेको हैदराबाद पहुंचे, तब इत्तहादुल मुसलमीन नामकी संस्था और उसकी रजाकार नामकी स्वयंसेवक-सेनाके सर्वेसर्वा सैयद कासिम रजवीके जोरोंसे विरोध करनेके कारण वह समझौता खटाईमें पड़ गया। उलटे छतारीके नवाबको पदत्याग करनेको बाध्य होना पड़ा और लायक अली प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ, जिसने कराचीसे लौटकर इस पद-भार को संभाला था। यद्यपि १५ अगस्तसे पूर्वको अवस्था ज्यों-की-त्यों बनाये रखनेके लिये समझौतेका वह मसौदा था, तो भी रजवी और पाकिस्तानका एजेंट लायक अली उसके विरुद्ध बने रहे। रज़वी भारत और हिन्दुओंके विरुद्ध बहुत ही विषैला और साम्प्रदायिकतासे भरा प्रचार कर रहा था और भारत सरकारको बड़ी-बड़ी धमकियां सुना रहा था, तो भी अन्तमें लायकअली सरकारको वह मसौदा स्वीकार करनेको

वाध्य होना पड़ा और उस पर २६ नवम्बर १६४७ को भारतके वायसरायके हैसियतसे लार्ड माउण्ट बैटनने और हैदराबादके निजामने सही बनायी थी, इसके अनुसार निजाम हैदराबादके वैदेशिक मामले, रक्षा और यातायातकी व्यवस्थाका भार एक वर्ष के लिये भारत संघको सौंप दिया। उसके बाद निजामने लार्ड माउण्ट बैटनको भेजे हुए अपने एक पत्रसे स्पष्ट शब्दोंमें यह स्वीकार किया था कि,—"पूर्वकी स्थिति बनाये रखनेके लिये यह समझौता करके मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं कि जब तक यह बना रहेगा, तब तकके लिये इन अधिकारोंको (एक स्वतंत्र और सर्वसत्ता सम्पन्न नृपतिके) कुछ महत्वपूर्ण विषयोंके सम्बन्धमें स्थगित कर रहा हूं।" परन्तु तो भी भारतसे स्वतंत्र रहनेके दावे पर निजाम और उनकी सरकार बराबर जोर देती रही। दूसरी ओर भारत सरकार इस समझौतेके लिये इस विचारसे तैयार हुई थी कि जिसमें शान्तिपूर्ण ढंगसे निजामको समझा कर भारत में सम्मिलित होनेको तैयार करनेको काफी समय मिल जाये, परन्तु जितने भी प्रयत्न स्थायी समझौतेके लिये हुए वे सभी विफल हो गये। इस विफलताका कारण जैसा कि प्रधान मंत्री नेहरूजी ने एक अवसर पर कहा था, बराबर यही होता रहा कि दिल्लीमें जब-जब समझौतेकी शर्तें निश्चित कर निजामके प्रतिनिधि हैदराबादमें निजामको अन्तिम स्वीकृत प्राप्त करनेको लौटते, तब-तब ही रजबीकी धमकियोंसे डर कर निजाम उन्हें अस्वीकार करते रहे। ऐसा एकसे अधिक बार हुआ है, यह भी नेहरूजीने कहा था।

पूर्वकी अवस्था बनाये रखनेके लिये समझौता तो भारत और हैदराबादके बीच हो गया, किन्तु रजबी और उसके रजाकारोंकी शरारतें उसके बाद दिनपर दिन बढ़ती ही गयीं। लायकअली सदासे रजवीके संगठनको आर्थिक सहायता देता रहा, इसलिये जब रजबीको उसे प्रधानमंत्री पद पर बैठानेमें सफलता प्राप्त हो गयी, तब तो 'सैयां भये कोतवाल अब डर काहेका' वाली लोकोक्ति चरितार्थ हुई और रजवी और उसके रजाकारोंको एकदम खुल खेलनेका मनचाहा अवसर ही मिल गया। कहनेका तो सभी दलोंके प्रतिनिधियोंका मन्त्रिमण्डल लायक अलीने बनाया था, उसमें अधिकांश तो उसीकी भांति रजबीके इत्तहाद दलके आदमी थे और जो अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधि थे, वे भी रजवी और लायक अलीके भयसे एकदम भीत थे, इसलिये उनके विरुद्ध कोई बात कहने या करनेका साहस कभी नहीं कर सकते थे। नेहरूजी तथा सरदार पटेलने आरम्भसे ही यह घोषितकर रखा था कि हैदराबादके लिये एकमात्र मार्ग भारत संघमें सम्मि-लित होना ही है और भारत उसकी पूर्ण स्वतंत्रता कभी स्वीकार नहीं कर सकता और नेहरूजी तो बारम्बार यह कह रहे थे कि या तो भारत स्वतंत्र रहेगा और या हैदराबाद, इसलिये लायक अलीकी सरकार भारतसे लड़नेके लिये भीतर ही भीतर जोरोंसे तैयारियाँ कर रही थी और चोरीसे हथियार खरीदे जाकर बाहरसे रियासतके भीतर लाये जा रहे थे और रजाकारोंकी शक्तिमें बेतरह वृद्धि की जा रही थी। निजाम तो वस्तुतः इन्हीं लोगोंके कैदी

बन गये थे, जैसा कि आत्म-समर्पणके पीछे उन्होंने स्वीकार भी किया है। आगेकी घटनाओंपर विचार करनेके पहले यह प्रासंगिक प्रतीत होता है कि रजाकारोंके सरदार रजवी, निजाम सरकारके प्रधान लायक अली तथा उसके अन्य इत्तहादी मंत्रियों की उक्तियोंके कुछ नमूने यहाँ दे दिये जायें। जब भारतके प्रधान मंत्री नेहरूजी इस बातपर जोर देते थे कि भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक—किसी भी दृष्टिसे हैदराबाद स्वतंत्र राज्य बननेकी योग्यता नहीं रखता, तब उधर हैदराबादकी शैतान मंडली भी उसी तरह हैदराबादको स्वतंत्र बनाये रखनेपर जोर ही नहीं देती थी, तरह तरहकी धमकियां भी भारतको सुना रही थी। पहले रजवी को ही ले लीजिये। इसने ३१ मार्चको (१९४८) रजाकारोंकी एक रैलीके समय अपने भाषणमें इस तरहकी बातें कहीं थीं—"हैदराबाद किसी भी अवस्थाका सामना करनेके लिये पूरे तौरपर हथियारोंसे लैस हैं। हैदराबाद एक इसलामी राज्य है। भारत संघ दक्षिणसे इस मुसलिम शासनको मिटा देनेके लिये प्रयत्नशील है। हैदराबादके मुसलमान याद रखो कि भारत उपनिवेशमें साढ़े चार करोड़ मुसलमान हैं, जो हमारी ओर देख रहे हैं कि हम इस इसलामी राज्यका झंडा ऊँचा करें। भारत संघ जब हमारे ऊपर आक्रमण करेगा, तो याद रखो कि भारतके साढ़े चार करोड़ मुसलमान बगावतका झंडा खड़ा कर देंगे। मेरे मुसलिम भाइयों, दक्षिणमें इसलामका भविष्य आप लोगोंके ऊपर ही निर्भर है। आप ही की और संघके भीतर रहने वाले हमारे वे भाई

देख रहे हैं, जो अत्याचारोंसे पीड़ित हैं, क्या आप उनको धोखा देंगे ? इसलिये मेरे मुसलमान भाइयों ! आगे बढ़ो और जब तक उद्देश्यकी सिद्धि न हो जाये, अपनी तलवारको म्यानमें न रखो। दुश्मन पर टूट पड़ो। उसे छोड़ो मत। उस अल्लाह के सिवा हमारा और कोई मित्र नहीं है, जिसने इस इस्लामी राज्य की रचना की है और जो हमारा साथ कभी नहीं छोड़ेगा। आइये हम अपने एक हाथमें कुरान और दूसरे हाथमें तलवार लेकर कूच करें और दुश्मनके टुकड़े-टुकड़े कर डालें और इस्लामका प्रभुत्व स्थापित करें। भारत संघ लड़नेको उत्सुक है। अगर हमारे ऊपर युद्ध लादा गया, तो अन्त तक हम लड़ेंगे। अगर संघ हमारे ऊपर हाथ छोड़ेगा, तो संघके भीतर मुसलमान विद्रोहका झंडा खड़ा कर देंगे। भारत संघके भीतर कहीं भी शान्ति न रहेगी। इस तरह भारत संघकी बेवकूफीसे जो आग लगेगी, वह अन्तमें संघको ही जला डालेगी। फिर कोई हिन्दू-शासन नहीं रहेगा और हिन्दू आधिपत्य समाप्त हो जायेगा तथा हिन्दू साम्राज्य मिट जायेगा। कभी पहले हिन्दू साम्राज्य नहीं रहा है और इंशा-अल्ला आगे भी कभी नहीं होगा।"

पीछे ३१ जुलाईको लायकअलीके स्थायी मंत्री यामिन जुबेरीने यह कहा था—"हिन्दू संघ हैदराबादसे लड़ाई चाहता है। तो भारत तैयार हो जाये। हैदराबादके पास न तो आदमियोंका अभाव है और न हथियारोंकी ही कोई कमी है। हम भारतको सबक सिखा देनेके लिये तैयार हैं। हम देश द्रोहियोंको बर्बाद कर देने

में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं करेंगे। प्रत्येक नागरिकका कर्त्तव्य है कि वह राजभक्त हो और अपनी जिम्मेदारियोंको समझे। अगर हिन्दू इस ख्यालमें हों कि चूंकि हैदराबादमें घुसने वाले हिन्दू संघके आदमी हैं, इसलिये उन्हें उनके विरुद्ध कुछ नहीं करना है, तो उन्हें यह समझ रखना चाहिये कि उनकी ऐसी निष्क्रियता राजभक्तिके विरुद्ध समझी जायेगी। एक आक्रमणकारी और एक अराजभक्तमें कुछ भी अन्तर नहीं है। पुलिसको चाहिये कि ऐसे अराजभक्तको देखते ही गोलीसे उड़ा दे और किसीके हुक्मकी राह न देखे। हमने गद्दारोंकी बहुत दिन बर्दास्त कर लिया, अब तो वे बिना किसी हिचकिचाहटके गोलीसे उड़ा दिये जायेंगे।"

जब प्रधान मंत्री नेहरूजीने देखा कि हैदराबाद किसी प्रकार भी रास्ते पर आनेको तैयार नहीं और अन्ततः उसके विरुद्ध सैनिक काररवाई करनी ही पड़ेगी, तब मद्रासमें उन्होंने अपने व्याख्यानमें जुलाई महीनेमें साफ शब्दोंमें यह कह दिया था कि हैदराबाद कोई स्वतंत्र राज्य नहीं है, इसलिये उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा जैसी कोई बात करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। उनके उस भाषणके उत्तरमें हैदराबादके प्रधान मंत्री लायक अलीने ३१ जुलाईको भौगिर स्थान पर अपने भाषणमें इस आशयकी बातें कही थीं—हैदराबाद लड़ाई-झगड़ा नहीं चाहता, लेकिन अगर उसे उसके लिये लाचार किया गया, तो वह किसी भी अवस्थामें सामना करनेके लिये तैयार है और किसी धमकी या पशुबलके

प्रयोगके आगे वह झुकेगा नहीं। हमारे राज्यके विरुद्ध अत्यंत कठोर आर्थिक कार्रवाइयाँ करके जब सन्तुष्ट नहीं हुए हैं, तो पं० जवाहरलाल नेहरूके मद्रासके अपने भाषणमें हैदराबादके विरुद्ध शस्त्र-बलके प्रयोगकी धमकी सुनायी है। हमारी समझमें पंडित नेहरूका यह तर्क कतई नहीं आया है कि हैदराबादको अवश्य भारत संघमें सम्मिलित होना होगा, नहीं तो उसका अस्तित्व ही नहीं रहेगा। नेहरूजीने तिरस्कारपूर्वक कहा है कि हैदराबादके विरुद्ध अगर सैनिक कार्रवाई की जायेगी, तो उसे युद्ध नाम नहीं दिया जा जा सकता। मेरा कहना है कि हैदराबाद लड़ाई नहीं चाहता और भारतके विरुद्ध इनकी किसी प्रकारकी योजना भी नहीं है। लेकिन बल प्रयोगके सामने यह झुकेगा नहीं, यह अपनी सारी शक्तिसे प्रतिशोध करेगा, चाहे वह शक्ति कितनी ही सीमित क्यों न हो, पंडित नेहरू चाहे अपने उस आक्रमणको युद्ध कहें या कोई दूसरा नाम दें। हां, अगर ऐसा कोई संघर्ष छिड़ा, तो कोई नहीं कह सकता कि उसका अन्त कहां होगा और उसके कैसे विपज्जनक परिणाम होंगे। आशा है कि भारतीय नेता सुबुद्धिसे काम लेंगे और आगसे खेलवाड़ करनेसे बचेंगे।"

पीछे जब लायक अलीकी सरकारने हैदराबादके प्रश्नको संयुक्त राष्ट्र संघकी सुरक्षा कौंसिलमें रखा, तब भी लायक अलीने गत ४ सितम्बरको राज्यकी व्यवस्था सभामें यह कहा था कि,—"अगर संयुक्त राष्ट्र हैदराबादकी दर्खास्त पर विचार करना स्वीकार न करेंगे, तो भी हमारी सरकार हैदराबादके स्वतन्त्र रहनेके दावेको

छोड़ेगी नहीं। भारतने यह सिद्ध करनेके लिये इतिहासके सारे पन्ने छान डाले और छोटीसे छोटी बात ढूँढ़ निकाली है कि हैदराबाद कभी स्वतन्त्र राज्य नहीं था और इसलिये कभी स्वतन्त्र होने का दावा नहीं कर सकता। वह भारत क्यों हैदराबादको स्वतंत्रता देनेसे इनकार करता है, जिसने स्वयं अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की है! हमें बराबर सैन्य-शक्तिका भय क्यों दिखाया जाता है? ऐसी परिस्थितिमें और खासकर जब भारतने भारत और हैदराबादके मतभेदोंको पंचायतके सामने रखनेसे इनकार कर दिया, यद्यपि पूर्वावस्था बनाये रखने वाले समझौतेमें उसकी व्यवस्था है, तब हैदराबादने अपना मामला संयुक्त राष्ट्र-संघके सामने रखनेका निश्चय किया, इस आशाके साथ कि वह संस्था शान्तिपूर्ण सुलझावका मार्ग निकलेगी।"

सच तो यह है कि जून महीनेमें (१९४८) नयी दिल्लीमें हैदराबादके प्रतिनिधियों और भारत सरकारके बीच दोनोंके भावी सम्बन्धोंका निश्चय करनेके लिये जो बातचीत चार दिनोंतक चली थी, उसके भंग हो जानेके बाद नेहरूजीने १७ जूनको प्रेस-कानफरेंस में साफ शब्दोंमें कह दिया था कि अब झगड़ेके शांति पूर्वक निपटाये जानेकी कुछ भी आशा नहीं रही है। बात यह हुई थी कि समझौतेके लिये ऐसे प्रस्ताव उस बातचीतके फलस्वरूप तैयार कर लिये गये थे, जिनसे हैदराबादके प्रतिनिधि सहमत हो गये थे, पर पीछे जब वे निजामके सामने रखे गये तो उन्होंने उन्हें अस्वीकार कर दिया। नेहरूजीने साफ कह दिया कि, "भारत उन प्रस्तावोंसे

और आगे जाने को कतई ही तैयार नहीं है और वह उन प्रस्तावों में किसी प्रकारका परिवर्त्तन करनेको तैयार नहीं होगा। ये समझौतेके मसौदे प्रस्ताव बने रहेंगे और निजाम जब और जैसे चाहें उस समझौते पर सही बना सकते हैं। जबतक वे सही नहीं बनाते, हम अपनी नीतिके अनुसार काम करते रहेंगे। हमारी वह नीति यह है कि अंत तक आर्थिक घेरा रखा जाय और सीमाको जकड़ बन्द किया जाये। हम इसके लिये प्रतीक्षा नहीं करेंगे और निजाम द्वारा समझौते पर सही बनायी जानेकी प्रतीक्षा नहीं कर रहे हैं। हम कुछ कारवाइयां कर रहे हैं, जो परिस्थितिके विचारसे आवश्यक जान पड़ती हैं। आज शामको मुझे निजाम का एक तार मिला है, जिससे कि बातचीत जारी रखनेकी इच्छा प्रकट की गयी है। मैं कहता हूँ कि अब और अधिक बात-चीतका कोई प्रश्न ही नहीं है और यह बात एकदम स्पष्ट की जा चुकी है। अगर समझौता नहीं होता और हैदराबाद भारत संघमें नहीं सम्मिलित होता और अवस्था ऐसी हो जाती है कि लड़ाई हो, तो ऐसी लड़ाईका जो परिणाम होगा, वह स्पष्ट है। एक ही परिणाम हो सकता है और मुझे निश्चय है कि वह परिणाम हैदराबादके अधिकारियोंकी पसन्दका नहीं होगा। अगर शांति-पूर्ण सुलझाव होना अब भी सम्भव है, तो हम उसे चाहते हैं।"

जो सर वाल्टर मांकटन निजामके वैधानिक सलाहकारकी हैसियत से सभी बातचीतमें भाग लेते रहे हैं, वे निजामको यह समझानेके लिये हैदराबाद पहुंचे थे कि समझौतेका जो मसौदा तैयार किया

गया है, वह ठीक और उचित है, पर शामको वहांसे लौट कर उन्होंने लार्ड माउंट बैटनको अपनी असफलताकी सूचना दी। नेहरूजीने बताया कि गवर्नर जेनरल लार्ड माउंट बैटनने भारत और हैदराबादके बीच शांतिपूर्ण निपटारेके लिये अपनी शक्ति भर प्रयत्न किया है।

१० अगस्त १९४८ को नेहरू-सरकारकी ओरसे भारतीय विधान-परिषद्के सामने जो श्वेतपत्र रखा गया, उसमें हैदराबादके सम्बन्धकी सारी बातों पर प्रकाश डाला गया था। उसमें साफ शब्दोंमें यह कह दिया गया था कि भारत सरकार हैदराबादके कुशासनके प्रवाहको असहाय होकर चुपचाप देखती नहीं रह सकती। यदि वहाँकी न्याय और व्यवस्थाकी स्थिति, जिसके अस्तव्यस्त होनेके लक्षण प्रकट होने लग गये हैं और भी बिगड़ती गयी और उससे भारतकी शान्ति और सुव्यवस्थाको खतरा उपस्थित हुआ तो भारत सरकारको निस्सन्देह हस्तक्षेप करना पड़ेगा। वायुयानोंके इस युगमें जब सामंतसाही और छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य समयके बिलकुल विपरीत प्रतीत होते हैं, देशकी सुरक्षाके लिये जिम्मेदार प्रभुशक्तिकी हैसियतसे भारत सरकार निजामके स्वतंत्रताके दावेको किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं कर सकती, विशेषकर जब इस दावेको जनताका समर्थन प्राप्त नहीं है। यह दावा तो केवल उस निजामकी ओरसे है, जिसके सम्बन्धमें १९२६ ई० में हैदराबाद-स्थिति तत्कालीन ब्रिटिश रेजीडेंटने कहा था कि,—"उसके भावसे स्पष्ट है कि यदि पूर्ण स्वतन्त्रताका उसका

स्वप्न पूरा हो जाय, तो इस बातकी बहुत कम आशा है कि वह प्रजाकी भलाईकी तनिक भी परवाह करेगा।" निजामके इस दावेका समर्थन कुछ चोटीके उसके सामंत कर रहे हैं। भारत और हैदराबादके गतिरोधको दूर करनेका केवल एक ही मार्ग है और वह यह कि राज्य भारत संघमें सम्मिलित हो जाय और उसका शासन-सूत्र जनताके हाथोंमें आ जाय। यदि इसके सिवा और कोई कामचलाऊ समझौता किया जायगा, तो वह पहला दबाव पड़ते ही टूट जायगा। निजाम पर यह भरोसा नहीं किया जा सकता कि वह उस समझौतेका सच्ची भावनासे पालन करेगा। इस प्रकारका कोई रास्ता पकड़ना डाकुओंके सामने सिर झुकाना, अन्य भारतीय राज्योंके साथ विश्वासघात करना और हैदराबादके लक्ष-लक्ष नर-नारियोंके हितोंको तिलाञ्जलि देना होगा।

नेहरूजीका वक्तव्य

७ सितम्बर १६४८ को प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालने भारतीय पार्लमेंटमें हैदराबादके सम्बन्धमें इस आशयका वक्तव्य दिया—"एक वर्षसे अधिक समयसे हम हैदराबादकी सरकारके साथ संतोषजनक और शान्तिपूर्ण समझौता करनेके लिये हृदयसे प्रयत्न करते रहे हैं। गत नवम्बरमें यथापूर्व समझौता हुआ था। हमें उसके बाद शीघ्र अन्तिम और संतोषजनक समझौता हो जाने की आशा थी। हमारी दृष्टिमें ऐसे समझौतेका आधार यही हो सकता है कि रियासतमें दायित्वपूर्ण शासन स्थापित किया जाये

और वह भारतमें सम्मिलित हो जाये। हमने हैदराबादके सामने यह प्रस्ताव रखा था कि वह महान् भारत राष्ट्रमें शामिल हो सम्मानित साझेदार बन जाये। हमें यह पूर्णतया स्पष्ट रहा है कि हैदराबाद प्रदेश, जो चारों ओरसे भारतसे घिरा हुआ है और जिसे शेष संसारके साथ सम्पर्क प्राप्त करनेका और कोई मार्ग नहीं है, उसे निश्चय ही भारतका एक अङ्ग बनना पड़ेगा। हैदराबाद और भारतके बीच किसी और प्रकारका सम्बन्ध सन्देहात्मक भावनाको जारी रखेगा और फलतः संघर्षकी आशंका सदा बनी रहेगी। कोई राज्य केवल स्वतंत्रताकी घोषणा कर देनेसे ही स्वतंत्र नहीं हो जाता। स्वतंत्रताका अर्थ यह होता है कि अन्य स्वतंत्र राज्योंके साथ किसी विशेष प्रकारके उसके सम्बन्ध हों और वे अन्य स्वतंत्र राज्य उसकी स्वतंत्रताको स्वीकार करें। भारत इस बातको कभी स्वीकार नहीं करेगा कि हैदराबाद किसी अन्य राष्ट्रके साथ स्वतंत्र सम्बन्ध रखे, क्योंकि इससे उसकी अपनी रक्षा खतरेमें पड़ जायेगी। ऐतिहासिक दृष्टिसे हैदराबाद कभी स्वतंत्र नहीं रहा है। विशेषतः वर्त्तमान परिस्थितियोंमें वह स्वतंत्र हा ही नहीं सकता।

"दुर्भाग्यवश समझौतेके लिये हमारे बार-बार किये गये प्रयत्न, जो एक दो बार प्रायः सफल हो गये थे, अन्तमें विफल ही रहे। कारण, हैदराबादमें कुछ ऐसी शक्तियां काम कर रही हैं, जिन्होंने भारतके साथ कोई समझौता न होने देनेका निश्चय कर रखा है। इन शक्तियोंका नेतृत्व गैर जिम्मेदार व्यक्तियोंके हाथमें है। ये

बराबर अधिक शक्ति सम्पन्न होती गयीं और अब सरकारपर पूरा नियंत्रण रखती है। रियासतके सारे साधन हर तरहसे युद्ध के लिये संगठित किये जाते रहे और किये जा रहे हैं। रियासती सेनामें वृद्धिकी गयी है और अनियमित सेनाओंको बड़ी शीघ्रताके साथ बढ़नेकी अनुमति दी गई है। विदेशोंसे शस्त्रास्त्र, गोला, बारूद आदि पदार्थ चोरीसे मंगाये गये हैं और चोरीका यह ढंग अब भी जारी है और इसमें बहुतसे विदेशी दुस्साहसी भाग लेते रहे हैं। भारत जैसी स्थितिका कोई भी अन्य देश अपनी सीमाओंके बीच स्थित राज्य द्वारा इस प्रकारकी युद्धकी तैयारियोंको सहन नहीं कर सकता था। फिर भी भारत सरकारने समझौतेकी आशासे बातचीत जारी रखी। सरकारने दूसरी कार्रवाई केवल यह की कि जहाँ तक इससे हो सका, इसने हैदराबादमें युद्ध सामग्रीके पहुंचनेकी रोक-थाम की। हैदराबादमें जो गैर सरकारी सेनाएँ खड़ी हो गयी हैं, विशेषकर रजाकार, वे निरन्तर अधिक आतङ्कपूर्ण और अत्याचारी बनती रही हैं और कभी कभी हैदराबादकी सीमाके आगे भारतकी सीमाके भीतर भी उन्होंने अपना आतंक फैयाया है। हैदराबादके भीतर बढ़ता हुआ यह आतङ्क और त्रास, जो उन मुसलमानों और गैर मुसलमानोंके विरुद्ध फैल रहा है, जो रजाकारोंके विरुद्ध हैं। मामला इस सीमाको पहुँच चुका है कि उसने एक बड़ी गंभीर स्थिति पैदाकर दी है और भारतके सीमावर्त्ती क्षेत्रोंमें और समस्त भारतमें इसकी प्रतिक्रिया हो रही है। इस समय हमारा तात्कालिक ध्यान अत्यन्त गंभीरताके

साथ हैदराबादमें शीघ्रताके साथ बढ़ती हुई अराजकता और हिंसा की ओर लगा हुआ है।"

"अब मैं रजाकारोंके अत्याचारोंका कुछ हाल बताता हूँ, क्योंकि पूरे विवरणमें जानेमें बहुत समय लगेगा। एक गाँवके निवासी, अपने साहसी मुखियाके नेतृत्वमें इन लुटेरोंका जमकर सामना किया। वे लोग जब अपनी गोली बारूद समाप्त हो जाने पर विरोध जारी न रख सके, तो उन्हें तलवारके घाट उतार दिया गया और गाँव जला डाला गया। मुखियाका सिर काटकर एक बाँसमें लगा इधर-उधर घुमाया गया। एक दूसरे गाँवमें पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंको एक जगह जमा कर रजाकारों और निजामके पुलिस वालोंने उन्हें गोलीसे उड़ा दिया। ग्रामवासियोंका एक दल बैल गाड़ियों पर बैठ भारतकी सीमाके भीतर शरण लेनेको जा रहा था। उस पर बड़ी पाशविकतासे हमला किया गया। पुरुष पीटे गये और स्त्रियोंका अपहरण किया गया। एक रेलगाड़ी रोक ली गयी। उसके यात्री लूटे गये और कई डब्बे फूंक दिये गये। रियासतके भीतर अपने केन्द्रको जाते समय हमारे सैनिकों पर आक्रमण किये गये हैं और सीमाके पासके हमारे गाँवों पर इन रजाकारोंके हमले होते रहे हैं. सो आपलोगोंको मालूम ही हो चुका है। कल जो समाचार मिले हैं, उनमें मालूम हुआ है कि रजाकारों और रियासती सेनाके दस्तानोंने बख्तरदार गाड़ियोंसे लैस होकर भारतीय सीमाके भीतर हमारे सैनिकों पर हमला किया। वे भगा दिये गये। एक बख्तरदार गाड़ी नष्ट कर दी गयी और एक

अफसर तथा पचीस सैनिक कैद किये गये। हैदराबादमें हिंसात्मक कारवाई शुरू होनेके समयसे अब तक रियासतके भीतर सत्तरसे अधिक गाँवों पर हमले हुए हैं, कोई डेढ़ सौ आक्रमण भारतकी भूमि पर हुए हैं, बहुतसी स्त्रियाँ भगायी जा चुकी हैं या उनके साथ बलात्कार किया गया है। बारह रेलगाड़ियों पर हमले हुए हैं और एक करोड़ रुपयेसे अधिककी सम्पत्ति लूटी गयी है। लाखों व्यक्तियोंने भाग कर भारतके सीमावर्त्ती प्रान्तोंमें शरण ली है। कोई सभ्य-सरकार भारतकी भौगोलिक सीमाके भीतर ऐसे अत्याचार होते नहीं देख सकती। यह कदापि नहीं हो सकता कि हैदराबादमें हत्या, अग्निकाण्ड, बलात्कार और लूट होती रहे और भारतमें साम्प्रदायिक भावनाएँ ठंडी पड़ी रहें या शान्ति बने रहे। आप लोग सोचें कि हमसे पहलेकी सरकारने ऐसी परिस्थिति में क्या कारवाई की होती। ऐसी बुरी अवस्था होनेसे उसने बहुत पहले ही हस्तक्षेप किया होता। हमने इस आशासे शान्ति धारण रखी कि शायद इन लोगोंमें समझ आ जाये और कोई शांति पूर्ण हल निकल आये। पर यह आशा व्यर्थ सिद्ध हुई और रियासत या उसकी सीमा पर ही नहीं, समस्त भारतमें शान्तिको खतरा पैदा हो गया। हमारे अति सहनशील होनेकी आलोचना की गयी है, जो कुछ ठीक भी है। पर हमने सदा इस सिद्धान्त पर चलनेका प्रयत्न किया है कि मुठभेड़ रोकनेसे और शान्तिपूर्ण उपायों से समझौता करनेमें कभी कोई बात न रखी जाये। इसके सिवा जिस मार्गका हम अवलम्बन करेंगे, उससे उन आदर्शों और

सिद्धान्तोंका विरोध होगा, जिनको हम अपने स्वतन्त्रता आन्दोलन के आरंभसे अन्त तक अपनाते रहे हैं। पर अपने उत्तरदायित्व और सत्यकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। इस समय सबसे प्रमुख समस्या हैदराबाद रियासतमें जीवन एवं सम्मानकी रक्षा तथा पाशविक आतंकवादकी समाप्ति करना है। अन्य प्रश्नों पर पीछे विचार किया जा सकता है।"

"हैदराबादकी सरकारने उस आतंकवादको दबानेमें अपनी अनिच्छा एवं असमर्थताका प्रत्यक्ष प्रमाण दे दिया है। इससे वहांके शांतिप्रिय नागरिकोंका जीवन इतना अरक्षित हो गया है कि वे वहांसे भारी संख्यामें भागकर सीमावर्त्ती प्रान्तों और रियासतोंमें आ रहे हैं। हम समझते हैं कि हैदराबादमें भीतरी शांति तब तक नहीं हो सकती जब तक हमारी सेना सिकंदराबादमें उसी प्रकार फिर तैनात न कर दी जाये, जिस प्रकार इस वर्षके आरंभमें वह वहांसे हटायी जानेके पहले तैनात थी। हाल ही में निजामके एक पत्रके उत्तरमें भारतके गवर्नरजेनरलने सिकंदराबादमें सेना रखनेका प्रस्ताव किया था। पर निजाम साहब लिखते हैं कि हैदराबादमें परिस्थिति सामान्य हो गयी है, इसलिये सेना रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। निजामका यह कथन सर्वविदित तथ्योंके सर्वथा विरुद्ध है। अतः हमने अंतिम बार निजामसे कहा है कि वे रजाकारोंकी सेनाको अविलम्ब भंग कर दें और सिकंदराबादमें हमारी उतनी सेनाको फिरसे वापस बुलानेके लिये सुविधाएं प्रदान करें, जितनी रियासतमें शांति और

सुव्यवस्था स्थापित करनेके लिये आवश्यक हो। हम वक्तव्य समाप्त करनेके पहले यह बता देना चाहते हैं कि हम हैदराबादकी समस्याको असाम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे देखते हैं और अपने देशवासियोंसे भी निवेदन करते हैं कि वे भी ऐसा ही इसे देखें। सिकंदराबादमें अपनी सेना इसलिये भेजना चाहते हैं कि वह रियासतकी समस्त हिन्दू, मुसलिम जनताकी समान रूपसे रक्षा करेगी। हमारी पुलिस या सेनाको कोई कार्रवाई करनी होगी तो उसे यह निश्चित और स्पष्ट आदेश दिया जायगा कि किसी भी ओरसे किया जानेवाला साम्प्रदायिक उपद्रव कड़ाईसे दबा दिया जाये। कई लाख आदमी हैदराबादसे पिछले महीनोंमें भागकर भारतमें विभिन्न स्थानोंपर पड़े हैं। मेरी राय है कि लोग हैदराबाद छोड़ें नहीं, वहीं रहें। जब किसी गंभीर परिस्थितिसे सामना करना है, तो डरकर भागना ठीक नहीं। जो व्यक्ति किसी खतरेसे बचकर भागनेकी कोशिश करता है, वही उस खतरेका सबसे पहले शिकार बनता है। अपने स्थान पर बना रहनेवाला उससे बच भी सकता है। देशमें गंभीर घटनाएं होनेवाली हैं, इसीसे सरकारने इतनी बारीकीसे इन मामलों पर विचार किया है। हमने सभी संभव परिणामों पर विचार कर लिया है।"

फिर सेना भेजनेका निश्चय

जिस दिन प्रधान मंत्री नेहरूजीने अपनी पार्लमेंटमें उपर्युक्त वक्तव्य दिया, उसी तारीखको (७ सितम्बर) रियासती सचिवालयके सेक्रेटरी श्री युक्त मेननने हैदराबादके प्रधान मंत्रीको एक

पत्र लिखा, जिसमें रजाकारोंके नित्य बढ़ते हुए उपद्रवोंकी चर्चा करते हुए कहा गया था कि इनसे भारतकी साम्प्रदायिक शांति खतरेमें पड़ गयी है। स्थिति इतनी गंभीर हो गयी है कि रजाकारोंके संगठन एवं हिंसा और पाशविकताके उनके आंदोलनको समाप्त करनेके लिये तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है। ३१ अगस्तको भारतके गवर्नरजेनरलने निजामको पत्र लिखकर तजबीज किया था कि शांति और व्यवस्थाके पुनः संस्थापनमें सहायता पहुंचानेके लिये सिकंदराबाद छावनीमें भारतीय सेना फिर तैयार कर दी जाये। निजामने इसे नहीं माना और कहा कि रियासतमें पूर्णतया साधारण स्थिति कायम है भारत सरकार स्थितिके सम्बन्धमें यह मत स्वीकार नहीं करती, क्योंकि यह वास्तविकताके विपरीत है। अभी भी सूचना मिली है कि भारतके विरुद्ध आक्रमण जारी है। इसलिए निजाम सरकारसे निवेदन है कि वह रजाकारोंके विघटन और रियासतसे होकर भारतीय सेनाके जानेकी व्यवस्था करे। हैदराबादके प्रधान मंत्री मीर लायकअलीने जवाबमें १० सितम्बरको पंडित नेहरूको जो पत्र भेजा, उसमें लिखा कि भारतीय पत्रोंके द्वेषपूर्ण प्रचारमें विश्वास कर भारत सरकारने हैदराबादके सामने ऐसी मांग रखी है, जो सर्वथा अनुचित और 'यथा पूर्व समझौतेके' के विरुद्ध है।

११ सितम्बरको नेहरू सरकारकी ओरसे लिखा गया कि आक्रमण सदा हैदराबादकी ओर हुआ है। इस समय रियासतमें चलनेवाला कानून जंगलका कानून है, जिसमें रजाकार और उनके साथी नाग-

रिकोंकी बहु संख्याका शिकार कर रहे हैं और उन लोगों पर अत्याचार कर रहे है, जो उनकी हलचलमें भाग नहीं ले रहे हैं। निजाम सरकार वास्तविक तथ्योंका सामना करना नहीं चाहती, न रजाकार संगठनको भंग करना चाहती है, यह स्पष्ट है, तब भारत सरकार कानून तथा व्यवस्थाकी रक्षाके लिये आवश्यक कारवाई करनेको स्वतन्त्र है। इसके वाद होनेवाले गंभीर परिणामों का उत्तरदायित्व अब हैदराबादकी सरकारके कन्धोंपर होगा। निजामने ६ सितम्बरको भारतके गवर्नर जेनरलके पास इस आशयका तार भेजा कि आप अपनी सरकार पर अपने उच्च पदका प्रभाव डालें, ताकि गत जूनके बाद बातचीतके समय व्यक्त किये गये हैदराबादके दृष्टिकोणके लिये स्थान निकले और पारस्परिक सद्भावका वातावरण उपस्थित हो। आशा है कि मेरी इस प्रार्थना पर आप मनसे विचार करेंगे और इस प्रकार हमारे परस्पर सम्बन्धोंके बीच गम्भीर एवं असुखकर बातोंके उत्पन्न होनेका अवसर न देंगे? गवर्नर जेनरलने १० सितम्बरको निजामको इस आशयका उत्तर भेजा। जबतक आप ३१ अगस्तके मेरे सुझावके अनुसारके काम करनेको तैयार नहीं होते, तबतक मेरे लिये ऐसा कोई रास्ता ढूढ़ निकालना असंभव प्रतीत होता है, जिसके द्वारा अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये आपकी सहायता कर सके। सार्वजनिक सुरक्षा और आत्म विश्वासका प्रश्न हमें सबसे पहले हल करना है और मुझे जरा भी संदेह नहीं कि मेरा सुझाव ही इसका सर्वोत्तम उपाय है। मेरी राय मान आप हमारी फौज

की तैनातीके लिये तैयार हों, तो अन्य प्रश्नों पर इसका तनिक भी असर न पड़ने दिया जायेगा। यदि आप भारत सरकारको अपनी ओरसे कोई कारवाई करनेको विवस करेंगे, तो इसका असर अन्य प्रश्नोंपर भी पड़ेगा और भी गम्भीर रूपमें।

नेहरूजीने एक अवसर पर यह कहा था—"स्वतन्त्र हैदराबाद भारतके लिये पूर्ण रूपसे खतरा है। हैदराबादका भारतके साथ सम्बन्ध होनेका अर्थ यह है कि हम उसे सम्मान और गौरव प्रदान करते हैं। तथा अपने देशकी स्वतन्त्रताका उसे जागीरदार बनाते हैं। भारत सरकार हैदराबादके आंतरिक मामलोंमें हस्त-क्षेप नहीं करना चाहती, किन्तु साथ ही वह यह भी चाहती है कि कोई बाहरी शक्ति वहां अपना पैर न जमाये। ऐसा करना भारतीय सुरक्षाके लिये चुनौती होगी। स्वतन्त्र हैदराबादकी बात व्यर्थ है। भारतकी मृत्युके बाद ही हैदराबाद स्वतन्त्र रह सकता है।" कहना नहीं होगा कि आरम्भसे ही अब तक उनकी नीतिका आधार यही चला आया है, इसीसे जब हैदराबादकी सरकार अपने मामलेको संयुक्त राष्ट्र संघमें रखने जारही थी, तभी भारतीय सेनाओंका हैदराबादके लिये कूच करनेका आदेश निकाला गया। लायक अली सरकारने मुईननवाज जंगके नेतृत्वमें एक प्रतिनिधि दल हैदराबादके मामलेकी पैरवी करनेके लिये राष्ट्र संघमें भेजा है। भेजनेके पहले भारत सरकारको लिखा कि दलकी यात्राके लिये विशेष सुविधाएँ कर दे। भारत सरकारने जबाव दिया कि साधारण यात्रीकी भांति वे लोग जा सकते है और पास पोर्टके

लिये प्रार्थना करेंगे, तो उस पर विचार किया जायेगा, पर और कोई सुविधा नहीं। अन्तमें प्रतिनिधि-दलके लोग शायद पाकिस्तान के पासपोर्ट पर पेरिस पहुंचे थे। सुरक्षा-कौंसिलसे जल्दीसे जल्दी प्रभाव पूर्ण कारवाई करनेकी अपीलकी जा रही थी, पर हैदराबाद में भारतीय सेनाके प्रवेशके पश्चात् ही वहां विचार आरम्भ हो सका। १३ सितम्बर १६४८ का सवेरा होनेके पहले रातके ४ बजे भारतीय सेनाओंको हैदराबादके भीतर प्रवेश कर सिकन्दराबादकी ओर आगे बढ़नेका आदेश निकाला गया। इन सेनाओंके प्रधान कमांडर मेजर जेनरल श्री राजेन्द्र सिंहजी नियुक्त किये गये थे, उन्होंने ऐसा चतुराईसे व्यूह-रचना की थी कि भारतीय सेनाओं को आगे बढ़नेमें कोई रुकावट नहीं हुई और कुल एक सौ नौ घंटेके भीतर ही निजाम और उनकी सेनाओंको आत्म समर्पण करनेको बाध्य हो जाना पड़ा। लायक अलीकी सरकारने पद त्याग कर दिया और निज़ामने स्वयं शासन भार संभाल लिया। ७ सितम्बर को २॥ बजे दिनको जेनरल राजेन्द्रसिंहने हैदराबादकी सेनाके प्रधान कमांडर जेनरल अल अद्रुससे आत्म-समर्पण की मांग की। निजामने युद्ध बन्द करनेकी आज्ञा दे दी और उनके सेनापतिने भारतके सेनापतिको नियमानुसार आत्म-समर्पण कर दिया। यह काम सिकन्दराबादके बाहर हुआ और १८ सितम्बरको सवेरे साढ़े आठ बजे भारतीय सेना सिकन्दराबादमें (सात मासके पश्चात्) पुनः प्रविष्ट हो गयीं।

प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलालने हैदराबादमें भारतीय सेनाओं

की विजयके उपलक्षमें प्रधान कमांडरके पास बधाईका तार भेजा। १८ सितम्बरको नेहरूजीने रातके ८॥ बजे रेडियो पर इस आशय का भाषण किया—'मैं हैदराबादके मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दोनों को बधाई देता हूं। इस देशके लोग आपसमें हथियारोंसे लड़ें, यह हमारे लिये दुःखकी बात थी। लेकिन प्रसन्नताकी बात है कि झगड़ा अब समाप्त हो गया है। हैदराबादके शासक-गुटने एक गलत मार्ग पकड़ा था और उसीसे यह झगड़ा पैदा हुआ। मुझे प्रसन्नता है कि निजामने यह मान लिया है कि उन्होंने गलती की और अब वे ठीक रास्ते पर आ गये हैं। इतने बिलम्ब से भी ठीक मार्ग ग्रहण करने पर वे हमारी बधाईके पात्र हैं। यदि यह मार्ग पहले ही ग्रहणकर लिया जाता, तो हम बहुतसी कठि-नाइयों और पेचीली बातोंसे बच सकते थे अब रजाकारोंके संगठन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है और उसे तोड़ा जा रहा है। बहुत दिनोंके सोच विचारके बाद हमने यह कारवाई करने का निश्चय किया था। हमारी सेनाके अफसरों और सैनिकोंने जिस चतुरता, धीरज और सज्जनतासे यह काम किया है, उसपर हमें प्रसन्नता है। सबसे अधिक खुशी तो इस बातसे है कि मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दोनों ही वर्गोंने पिछले छः दिनोंमें संयम अनुशासन और एकताका बहुत अच्छा परिचय दिया। इन दिनों में देशके इस कोनेसे उस कोने तक कहीं भी कोई साम्प्रदायिक दुर्घटना नहीं हुई। बहुतसे लोगोंने हमें साम्प्रदायिक उपद्रवोंकी चेतावनी दी थी। लेकिन हमारे लोगोंने इन भविष्य वक्ताओंको

झूठा साबित कर दिया है औप यह बता दिया है कि वे उत्साह, शांति और धीरजसे काम लेना जानते हैं। हम आशा करते हैं कि अब साम्प्रदायिक झगड़ेके बारेमें कभी भूलकर भी चर्चा नही करेंगे। हमें संयुक्त भारतको दृढ़तासे निर्माण करना चाहिये, जिसमें किसी भेद भावके सबको समान अधिकार और अवसर प्राप्त है।"

"हमें सफलताके गर्वसे फूलकर मदान्ध नहीं हो जाना चाहिये। मैं अवसर पर पाकिस्तानके लोगोंसे, जो कल तक इसी देशके लोग थे और जो अब भी हमारे इतने निकट हैं, अपील करता हूँ कि वे आशंका और सन्देहकी भावनाको दूर कर दें और शान्तिके कार्यों में हमारे साथ मिल-जुलकर काम करें। मैंने साफ-साफ कह ही दिया है कि हैदराबादके भविष्यका निर्णय वहांके लोग अपनी इच्छाके अनुसार करेंगे। मुझे विश्वास है कि हैदराबादका भविष्य भारतसे भविष्यसे सम्बद्ध है। इतिहास, भूगोल और सांस्कृतिक परम्परा इस बातके स्पष्ट प्रमाण है। अभी तो हैदराबाद हमारे फौजी कमाण्डरके अधीन रहेगा, क्योंकि शांतिमय स्थिति पैदा करनेके लिये बहुत काम करना पड़ेगा। इसके बाद विधान-परिषद् के चुनावके लिये प्रबन्ध किया जायेगा। यही परिषद् हैदराबाद के वैधानिक स्वरूपका निर्णय करेगी।"

सुरक्षा कौंसिलमें भारतकी ओरसे हैदराबादके सम्बन्धमें पैरवी करनेके लिये नेहरूजीने सर रामस्वामी मुदालियरको भेजा था। पहले-पहल कौंसिलमें १६ सितम्बर ४८ को प्रश्न पर विचार

आरंभ हुआ। सर रामस्वामीने हैदराबादके आरोपोंके उत्तरमें कहा था कि मेरी सरकारके विचारसे हैदराबादको इस कौंसिलके सामने प्रश्नको लानेका किसी प्रकार अधिकार नहीं है। वह एक राज्य नहीं है। वह स्वतन्त्र नहीं है। अपने इतिहासमें वह कभी स्वतन्त्र नहीं रहा है। न तो अति प्राचीन कालमें, न १९४७ के अगस्तके पहले और न ब्रिटिश सरकारके किसी कानून या घोषणाके भीतर ही इसे कभी स्वतन्त्र राज्यका दर्जा मिला था, जिससे अपने अधिकारके बल पर यह कौंसिलके सामने अपना मामला रखनेके लिये आनेकी क्षमता रखता हो। पीछे तो १८ सितम्बरको निजामने मामलेको उठा लेनेका आदेश निकाल उसे एकदम ही समाप्त कर डाला। फिर भी मुईनवाज तथा पाकिस्तान के प्रतिनिधि मि० जफरुल्ला खांने कई बार मामलेको फिर कौंसिलमें उठानेका प्रयत्न किया है। पर नेहरूजी जब पेरिससे भारत लौट रहे थे, तब उन्होंने साफ शब्दोंमें कह दिया कि भारत तो अब मामलेको समाप्त हुआ समझता है, इसलिये अब जो बात उठायी जायगी, उससे हमारा कोई वास्ता न होगा। हमारा प्रतिनिधि भी पेरिससे चला जा चुका है। संयुक्त-राष्ट्रसंघमें भारतके प्रतिनिधि-दलका नेतृत्व करने वाली श्रीमती विजयलक्ष्मीने भी कौंसिल को इसी आशयकी सूचना पत्र द्वारा दे चुकी हैं। नेहरू-सरकार की हैदराबाद वाली नीतिको यह सफलता भारतकी स्वतन्त्रता और संयुक्तीकरणके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

महात्मा गांधी और नेहरूजी

महात्मा गांधी और राष्ट्र-नायक पं० नेहरू—ये दो महान पुरुष न केवल भारतवर्षके अपितु संसारके उन महान नेताओं और शिक्षकोंमें माने गये हैं, जिन्होंने मानव-जातिको उपयोगी उपदेश और दिव्य सन्देश देकर लाभ पहुंचाया है। संसारके सभी सभ्य देशोंमें उनकी कीर्तिकी कुछ न कुछ चर्चा रहती है। भारतमें तो उन दोनोंके नाम सबकी जबानों पर रहते हैं। महात्माजीके विधानके पश्चात् तो भारतीय जनता नित्य यह सुननेके लिये उत्सुक रहती कि नेहरूजीने क्या कहा? बड़े-बड़े संघर्ष और कार्योंमें दोनोंका ऐसा घनिष्ठ सम्पर्क और सहयोग रहा है, जैसे दोनों एक दूसरेके लिये अनिवार्य रूपसे आवश्यक थे। दोनोंका एक-दूसरेके बिना काम ही न चल सकता था, दो महान हृदय सदा ही संयुक्त और अभिन्न थे।

पर उन दोनोंका दृष्टिकोण मनुष्य और जीवनके प्रति कुछ भिन्न था। समाज और संसारके हितके लिये उन दोनोंके लक्ष्य में यद्यपि समानता थी, तो भी उनकी विचार-प्रणालीमें कुछ
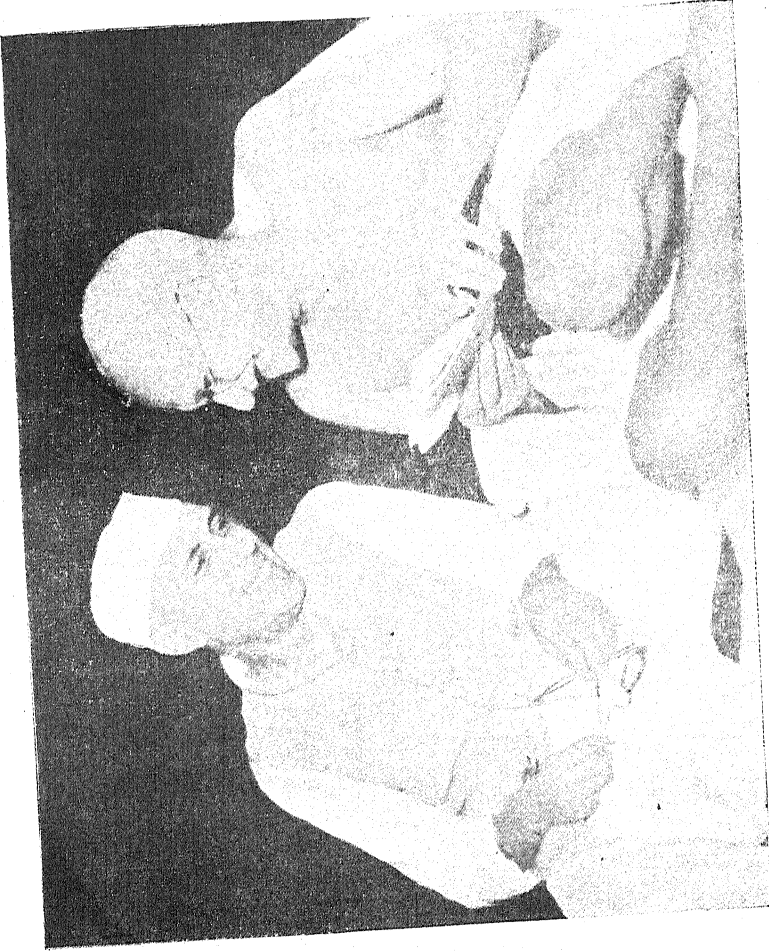
महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू

अन्तर था और अनेक समस्याओंके प्रति उनका आपसमें कुछ वास्तविक मतभेद भी रहता था। गांधीजीने नेहरूको समस्त कार्योंमें स्वतन्त्रता दे रखी थी और नेहरूने गांधीजीको अपने ऊपर पूर्ण अधिकार दे रखा था। दोनोंकी विचार-प्रणाली विभिन्न होते हुए भी दोनों सदा एक ही मंजिल पर पहुंचते थे। दोनोंके मनोवैज्ञानिक विश्लेषणमें कुछ विचित्रता होते हुए भी उनके विचारों और कार्योंमें एक अपूर्व मतैक्य तथा सामंजस्य रहता था।

भगवान श्रीकृष्णके समयमें अर्जुनके अतिरिक्त और भी कितने ही बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान और योद्धा थे, पर श्रीकृष्णके उपदेशोंका ठीक-ठीक तथ्य और तात्पर्य समझनेका सामर्थ्य केवल अर्जुनमें था। महात्मा गांधीके समयमें भी सरदार बल्लभ भाई पटेल, राजाजी (श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचार्य), डाक्टर राजेन्द्र-प्रसाद प्रभृति कितने ही श्रेष्ठ कर्णधार तथा महारथी रहे, पर तो भी गांधीजीको एक जवाहरलाल नेहरूकी ऐसी आवश्यकता थी, जो बिना नेहरूके पूरी नहीं हो सकती थी।

महात्मा गांधीने स्वयं एक बार अपने "हरिजन" पत्र (२५ जनवरी, १९४२) में नेहरूके सम्बन्धमें लिखा था :—

"हम दोनोंको अलग करनेके लिये मतभेदोंसे भी बढ़ कर कोई बहुत बड़ी बात होनी चाहिये। हम दोनों जबसे सहयोगी-कार्य-कर्ता हुए, तभीसे हमारे पारस्परिक मतभेद भी रहे, तो भी मैं कई वर्षों बराबर यह कहता रहा हूं, और अब भी कहता हूं कि मेरे बाद राजाजी नहीं, अपितु जवाहरलाल मेरे उत्तराधिकारी होंगे।

वह (जवाहर) कहते हैं कि वह मेरी भाषा नहीं समझते और उनकी भाषा मेरे लिये विदेशी है। यह बात सच हो सकती है और नहीं भी हो सकती। पर भाषा दिलोंको मिलानेमें बाधक नहीं है।

"और मैं यह जानता हूं कि जब मैं न रहूंगा, तो वह मेरी ही भाषा बोलेंगे।"

महात्मा गांधीने वर्षों पहले जवाहरलालजीके सम्बन्धमें यह लिखा था—"बहादुरीमें उससे बढ़कर कोई नहीं। देश-प्रममें उनसे बढ़कर कौन हो सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वे जल्दबाजी करनेवाले और गरम मिजाजके हैं। वर्त्तमान समयमें यह स्वभाव और भी गुण है। यदि उनमें योद्धाकी तेजी और उतावलापन है, तो साथ ही एक राजनीतिज्ञकी बुद्धि भी है। अनुशासनके प्रेमी होनेसे उन्होंने यह दिखा दिया है कि वे निरंतर अनुशासन-पालक बने रहते हैं, ऐसी अवस्थामें भी जब वैसा करना दुःखदाई मालूम होता है। निस्सन्देह वे ऐसे उग्र विचारके हैं, जो अपने चारों ओरके वातावरणसे बहुत आगेकी सोचते हैं। किन्तु वे इतने विनम्र और व्यवहारिक हैं कि इतना पग नहीं बढ़ाते कि बिगाड़ पैदा हो जाये। वे स्फटिकके समान निर्मल हैं और उनकी सच्चाई संदेहसे परे हैं। वे निर्भय एवं अनिंद्य वीर हैं। राष्ट्र उनके हाथमें सुरक्षित है।" एक और अवसरपर महात्माजीने कहा था कि, "जवाहरलाल नेहरू ऐसे हैं कि वे मुसकराते हुए फांसीपर चढ़ जा सकते हैं।" इतना होनेपर भी

दोनोंके विचारोंमें इतना अन्तर दिखाई देता था कि स्वयं नेहरूजी ने 'अपनी कहानी' में इस प्रकार लिखा है—"हिंसाको मैं अत्यन्त नापसन्द करता हूं, तो भी मेरे भीतर हिंसा भरी हुई है।" १९२४ इ० में गांधीजीकी रिहाईके बाद उनसे नेहरूजीकी जो बातचीत हुई थी, उससे वे उनके बहुत अधिक निकट नहीं पहुंच सके थे, यह स्वयं नेहरूजीने इस प्रकार लिखा है—'मैं कुछ निराश होकर लौटा, क्योंकि गांधीजीने मेरी एक भी शङ्काका समाधान नहीं किया था।" नेहरूजीने यहां तक लिखा है—"प्रायः प्रत्येक बातमें मेरा उनसे मतभेद रहता है। तो भी वे अनमोल हैं। मैं उनका अनुसरण करता हूं।"

हमारे वर्त्तमान राष्ट्रपति डा० पट्टाभि सीतारमैयाने १९४२ के अप्रेलमें महात्माजी और जवाहरलालजीके मतभेदका उल्लेख करते हुए यह लिखा था—"शारीरिक रचना, विश्वास और तर्क विद्यामें एक दूसरेसे पृथ्वीके दो ध्रुवोंका-सा अन्तर रखते हैं। तो भी वे दोनों मिल-जुलकर इक्कीस वर्षोंसे काम करते आ रहे हैं। बात यह है कि गांधी एक तत्वज्ञानी हैं, जब कि जवाहरलाल एक राज-नीतिक और सांसारिक पुरुष हैं। तो भी गांधी प्रेरणा हैं और जवाहरलाल साधन हैं। इसी प्रकार राजनीतिक पुरुष जवाहर-लालका गांधीसे मेल बैठाया जा सकता है। प्रत्येकको विदित है कि उनमेंसे एक आग है तो दूसरा पानी है लेकिन इन दोनों विपरीत गुणोंवालोंमें ही वास्तविक मेल बसता है। यदि जवाहर लाल विश्लेषण करते हैं, तो गांधी एकीकरण करते हैं। यदि

राजनीतिक पुरुष जवाहरलाल ऊँची उड़ान भरते हैं, तो गांधी आधारको बिस्तीर्ण बिना उनके भारको ठीक रखते हैं। जवाहर-लाल गतिके पक्षमें हैं, तो गांधी फैलावके पक्षपाती हैं। गांधी और जवाहर सगम गङ्गा यमुनाके सङ्गमकी नायीं हैं—एक अहिंसाके अपने निर्मल जलके साथ है और दूसरेमें रोष और क्रोध, तेहा और आवेगका गंदलापन है, लेकिन दोनों ही थोड़ी देरके लिये ही एक दूसरेसे अलग-अलग चलकर एक दूसरेसे मिल जाते हैं, जिससे कि चौड़ाई और गहराईका ऊंचाईके साथ, विज्ञानका तर्क शास्त्रके साथ, भौतिकताका आध्यात्मिकाके साथ और—क्या हम ऐसा कह सकते हैं?—हिंसाका अहिंसाके साथ मिलाप हो जाता है।"

जवाहरलालके जीवनकी सबसे बड़ी सफलता यही है कि उन्होंने महात्मा गांधी पर विजय प्राप्त की, और उन्होंने गांधीजीको घुमाकर अपने समाजवादी या साम्यवादी विचारोंके अनुकूल बना लिया था। गांधीजी यहां ही पूंजीपतियोंके मित्र रहे हों, पर निश्चय ही वे पूंजीवादके मित्र नहीं थे। जवाहरलालने अपने मृदु विवेक और सद्भावना पूर्ण तर्कसे जहां सहज ही में सफलता प्राप्त कर ली, वहां सुभाषचन्द्र बोस अपने अक्खड़पनके कारण निष्फल रहे। श्री बोस भी एक बहुत बड़े साम्यवादी थे, पर वे भ्रमवश बरावर यही समझते रहे कि महात्मा गांधी साम्यवादके विरोधी हैं। श्री बोस एक बार फ्रान्स गये और वहां वे इस युगके सर्वश्रेष्ठ फ्रेंच दार्शनिक श्री रोमां रोलांसे मिले। श्री रोमां

रोलां भी महात्मा गांधीके एक बहुत बड़े भक्त थे। दोनोंमें गांधीजीके सम्बन्धमें बातें होने लगीं। श्री सुभाष बोसने कुछ असन्तुष्ट भावसे कहा कि, "महात्मा गांधी समाजवादके विरोधी हैं।" इस पर रोमां रोलां कुछ चौंक उठे, और उन्होंने तुरन्त गांधीजीका एक वाक्य सुभाष बोसको दिखाया, जिसमें गांधीजीने 'समाजवादका समर्थन' किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि समाजवादी जवाहरलालका गांधीजीके हृदय और मस्तिष्क पर कितना बड़ा प्रभाव था।

अब हम तुलनात्मक समीक्षाके द्वारा इन दो महा पुरुषोंके गुनों और चमत्कार देखें। गांधीजी करोड़ों मनुष्योंके लिये एक महात्मा और साधुके रूपमें थे, और उनके चारों ओर प्राचीन परम्पराका कुछ धार्मिच वातावरण रहता। भगवद्भजन, राम धुन और राम राज्यका स्वप्न देखना उनका एक स्वाभाविक गुण था। उनकी राजनीति और अर्थ नितिमें सदा धर्म नीति मिश्रित रहती थी, और साधारण जनता उन्हें ईश्वरकी एक विभूति समझ कर उनके सामने नत मस्तक होती थी। महायुद्धके बाद भारत सचमुच महात्मा गांधीका भारत था।

गांधीजीके एक विश्वस्त शिष्य और सहयोगी होनेके कारण जवाहरलाल नेहरूने अपनी अनुपम योग्यतासे देशकी राजनीतिमें एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया। पर नेहरू उनके कोई सामान्य शिष्य ही न थे। भारतके लिये नेहरूकी सेवाएं अपूर्व हैं, और उनके विशुद्ध विवेक तथा मौलिक विचारोंसे राष्ट्रीय आन्दोलन पर

एक नया रंग आ गया था। नेहरूके विचार और विश्वास गांधीजीसे कहीं-कहीं भिन्न होते हुए भी अपना पृथक् महत्वपूर्ण स्थान रखते रहे, और भारतीय जनता उन विचारोंकी तरंगोंमें बहती हुई एक नया सुख-स्वप्न देखनेमें मग्न थी।

गांधीजी मुख्यतः एक धार्मिक मनुष्य थे, जिन्हें परिस्थितियों की विवशताने राजनीतिमें ढकेल दिया था। गांधीजीकी जड़ें वैदिक भारत—राम कृष्णके भारत—में थी और उनके रहन-सहन का ढंग प्राचीन ऋषियोंकी तरह था। गांधीजीकी शारीरिक आवश्यकताएँ बहुत ही कम थीं और बड़े-बड़े उद्योग-धन्धोंके बदले वे केवल तकली और चरखेके सहारे देशके असंख्य गांवोंको स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। उनका सब कार्य ईश्वर-प्रार्थनासे आरम्भ होता और प्रार्थना पर ही समाप्त होता था, जब कभी उन्हें सन्देह होता तो, वे अपनी ही अन्तरात्मा द्वारा ईश्वरकी आवाज सुनते, और कभी कभी दीर्घकाल तक उपवास करके अपनी आत्मशुद्धि करते थे। कभी अपने मित्र सम्बन्धियों, कभी दुराग्रही जनता या नरेशों और कभी नृशंस ब्रिटिश सरकार के अनाचारोंको दूर करने और उनके दिल पिघलानेके लिये वे अनशन व्रत करते थे और निश्चय ही उनके उस व्रतसे मित्र और शत्रु कांप उठते थे। वे अपने समस्त कार्योंमें सत्य, हिंसा और प्रेमके कठोरताके साथ अनुयायी थे और उन्हें विचारोंमें भी कभी क्रोध न आता था, और जो बातें क्रोध करनेकी होतीं उनपर वे स्वयं आत्म-दमन और प्रायश्चित्त करते थे। वे वास्तवमें गीताके "स्थितप्रज्ञ" थे।

नेहरूजीके विचारोंकी पृष्ठभूमि धार्मिक नहीं है। इनका भी जीवन गांधीजीके जीवनकी तरह अत्यन्त ही प्रचण्ड तूफानी आन्दोलोंके संघर्षमें रहा है, पर गांधीजीकी इन्होंने अन्तरात्माकी ध्वनि" या ईश्वरीय प्रेरणा" का कभी सहारा नहीं लिया, और न इनमें इतना धैर्य है कि ये इस लोककी बातोंको छोड़कर परलोककी बातों या आध्यात्मिक विचारोंमें निमग्न हों। यहांकी समस्याएँ ही नेहरूजोको व्यस्त रखनेके लिये पर्याप्त हैं। नेहरूजीको उस धार्मिक मनुष्यसे घृणा हैं, जो समाजकी आवश्यकताओंकी उपेक्षा कर केवल अपनी ही मुक्तिमें लगा रहता है। पर यह बात गांधीजो के लिये लागू नहीं है, क्योंकि वे धार्मिक और तपस्वी होनेपर भी उस महान लोक कल्याणके लिये चिन्तन करते थे, जिसके अनुयायी स्वयं नेहरूजो भी थे। नेहरूजोको प्राचीन परम्पराके धर्म और आध्यात्म्यमें एक तरहका अन्ध-विश्वास, कट्टरता, संदिग्ध मनोवृत्ति और दूसरोंका शोषण करनेकी प्रवृत्ति दिखाई देती है।

पर, साथ ही नेहरूजी यह भी स्वीकार करते हैं कि धर्मकी सत्ता में बहुसंख्यक मनुष्योंको एक समूह या समाजमें बांध रखनेकी शक्ति है। वे फ्रेंच दार्शनिक रोम्मा रोलांकी धर्म सम्बन्धी इस व्याख्याको मानते हैं—"सत्यकी खोजमें, समस्त कष्ट उठाकर और एक चित्त होकर ईमानदारीके साथ आत्म त्याग करनेके लिये तैयार रहो, मानव-प्रयत्नके एक अन्तिम उद्देश्यमें विश्वास रखो, जो वर्तमान समाज और समस्त मानव-जातिके जीवनसे भी अधिक

ऊँचा है।" इस पर नेहरू कहते हैं, कि "मैं यह ख्याल नहीं कर सकता कि मैं इन शर्त्तोंको पूरा कर सकता हूँ, पर इन शर्त्तों पर मैं धार्मिक-आत्माओंकी महान् सेनाका एक विनम्र अनुगामी बननेके लिये तैयार हूँ।" नेहरूके आन्तरिक भाव और विचारके अनुसार मानव-उन्नति, उज्ज्वल उद्देश्य एवं आदर्श, सत्कर्म और मनुष्यका भाग्य एक ईश्वरीय विश्वासके साथ आवद्ध हैं, और उद्देश्यमें यही विश्वास उन्हें समस्त परिस्थितियोंमें सम भावसे दृढ़ प्रतिज्ञा रखता है।

नेहरूजीके लिये प्राचीन भारतकी परम्परा या धार्मिक व्यवस्था कुछ विशेष महत्व नहीं रखती, क्योंकि उन्हें उसमें एक तरहका अंध विश्वास दिखाई देता है, और वे समझते हैं कि पुरानी रूढ़ियों को मानने वालोंमें नवीन उन्नतशील विचारोंको ग्रहण करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती। उनमें पूर्व और पश्चिमका सम्मिश्रण है, और शायद पूर्वसे अधिक उन्होंने पश्चिमको समझा है। उनका यह दृढ़ विश्वास है, कि यदि भारतको संसारकी उन्नतीशीलता अग्रगामी जातियोंके साथ आगे बढ़ना है, तो यहांकी पुरानी प्रतिक्रियावादी रूढ़ि, रीति और संस्कृति अवश्य दूर हो जानी चाहिये। नेहरूजी प्रायः अपने देशवासियोंकी भावना और विचार प्रणालीसे सहमत नहीं होते, यहां तक कि कभी कभी वे अपने घनिष्ट सहयोगियोंकी बातें भी नहीं मानते। पूर्व और पश्चिमके सम्मिश्रणने उन्हें एक विचित्र विचारशील प्राणी बना दिया है, और पग पग पर उनकी जिज्ञासा तथा अनुभूति अपने ही अंग पर होती है। वे यह नहीं

पूछते कि देश या संसारमें अबतक क्या होता आया है, पर वे इसके लिये चिन्तित रहते हैं कि लोक कल्याणके लिये क्या होना चाहिये और क्या होना उचित है। उनका यही मापदंड उनके समस्त कामों और उद्देश्योंके लिये है, और वे किसी भी परिस्थिति में उससे विचलित नही होते।

अपने पूर्व और पश्चिमके समिश्रणके सम्बन्धमें नेहरू लिखते हैं—"शायद मेरे विचार और जीवनको समझनेका ध्यान पूर्वकी अपेक्षा पश्चिमसे अधिक मिलता है, पर भारत मुझसे विविध तरीकोंसे लिपटा रहता है, जैसा वह अपने समस्त बच्चोंसे करता है और मेरी मानसिक चेतनाके पीछे सैकड़ों, या चाहे जो भी संख्या हो, पीढ़ियोंके ब्राह्मणत्वकी जातिगत स्मृतियां बनी रहती हैं। उनसे मेरे अन्दर एक तरहका आध्यात्मिक अकेलापन आता है, और मेरी यह भावना केवल सार्वजनिक कार्योंमें ही नहीं, बल्कि स्वयं जीवनमें रहती है। मैं पश्चिममें एक अजनबी और विदेशी हूं, और मैं वहांका नहीं हो सकता। पर अपने देशमें भी मेरी भावना एक निर्वासित की-सी रहती है।"

गांधीजीके सादे किसान-जीवनके प्रति नेहरूका कोई आकर्षण नहीं है। ये तो किसानोंको भी उस सादगीसे निकालना और उन्हें नागरिक संस्कृतिको सुविधा पहुंचाना चाहते हैं। सभ्यता और सुसंस्कृतिकी सुविधाओंसे रहित कृषक-जीवन इन्हें बहुत ही बुरा लगता है। ये लिखते हैं—"कुदाल हाथमें लिये मनुष्य क्या है? अनगिनत पीढ़ियोंसे वह दलित है। और उसका

शोषण किया गया है। वह उन पशुओंसे केवल कुछ थोड़ा अलग है, जो उसके साथ रहते हैं।"

नेहरूजा उद्योग-धन्धोंके द्वारा ग्रामीणोंकी दशा सुधारना और उनकी गरीबी दूर करना चाहते हैं। पर गांधीजी एक तरह गरीबीको बुरा नहीं समझते थे। यद्यपि ग्रामोण जीवन सुधारने और ग्रामीणोंमें चरखे तथा अन्य कला कौशलका प्रचार करनेमें उन्होंने अपना काफी समय दिया था। गांवोंका सादा जीवन उन्हें पसन्द था, और वे बड़े-बड़े उद्योग-धंधोंसे गांवोंको बचानेके लिये प्रयत्नशील थे। तो भी गांधीजी आम दीन जनताके नेता थे, और उन्होंने स्वयं दोनोंको तरह रहकर अपनेको जनतासे मिला दिया था। गांधीजीने लन्दनकी गोलमेज परिषद्में दीन जनताके लिये ही हिमायत की थी, और असंख्य दीनोंका जीवन सुधारनेमें ही उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया था। दृष्टिसे भी दीनता और गरीबीकी बहुत प्रशंसा की गई है, और गरीबोंको दान देनेका इस देशमें बहुत महात्म्य है। पर कल्पना कीजिये कि जब निर्बलता और गरीबी रहेगी ही नहीं, तब कौन किसको दान देगा और कौन लेगा?

नेहरूजीको गरीबीसे घृणा है और वे उसे एक अभिशाप समझकर उसका उन्मूलन करना चाहते हैं। वे कार्ल मार्क्सके साम्यवादी सिद्धान्तोंके प्रशंसक और अनुयायी हैं, और उनका विश्वास है कि वैज्ञानिक उद्योगीकरण तथा साम्यवादके द्वारा सबको गरीबी दूर की जा सकती है। जिन लोगोंको केवल पेट

भरनेके लिये परिश्रम करके दो पैसे कमानेकी चिन्ता है, वे बेचारे नैतिक सुधार, कला, सौन्दर्य और ऊँची बातोंको सोच ही कैसे सकते हैं? नेहरूजीकी चिन्ता उन दलित मनुष्योंके लिये है, जो गरीबी और रोगोंके शिकार हैं, जिनकी गर्दनें और पीठें झुकी हुई हैं और आत्माएं कुचली हुई हैं, जिन्हें जीवनमें मट्टी खोदने और कंकड़ कूटनेके सिवा और कोई आशा नहीं है, तब ये अभागे मनुष्य पूर्ण उन्नतशील कब और कैसे होंगे? मनुष्यके पतनके लिये मनुष्य ही ज़िम्मेदार है। सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन होने पर व्यक्तियों रहन-सहनमें परिवर्तन स्वयं ही होने लगेगा और तब व्यक्तिको आत्मोन्नतिका अवसर मिलेगा। आज कलके वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नतिके युगमें गरीबीको रहनेका कोई अधिकार नहीं है।

गांधीजी भारतके उस सामाजिक ढांचेको स्वीकार करते हैं, जो वर्ण व्यवस्थाके आधार पर बनाया गया है। पर इस व्यवस्थामें जो अनेक बुराइयाँ फैल गयी हैं, उन्हें भी गांधीजी अच्छी तरह जानते थे और उन पर उन्होंने मार्मिक प्रहार भी किये थे। वे अपने राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनके साथ उन बुराइयों की जनताको बारम्बार याद दिलाते और उन्हें मिटानेके लिये प्रोत्साहन देते थे। गांधीजी वर्ण व्यवस्थाको मानते, पर इस व्यवस्थाका जो दमन अछूतों और अन्त्यजों पर हुआ उससे गांधीजी का हृदय बहुत ही दुःखी रहता था। उन्होंने अछूतोंको अपना कर उन्हें 'हरिजन' कहा, और हरिजनोद्धारके लिये भी उन्होंने

ऐसा भरपूर प्रयत्न किया कि समस्त भारतीयोंका ध्यान उधर आकर्षित हो गया है। गांधीजी बुराइयोंको वर्ण व्यवस्थाका अंग नहीं मानते थे। इसलिये उनके प्रहार बुराइयों पर थे, न कि व्यवस्था पर। गांधीजी यह मानते थे कि हर मनुष्यमें एक विशेष प्रकारकी योग्यता और प्रतिभा होती है, जिसके कारण उसका किसी विशेष प्रकारके उद्यम या पेशेकी ओर झुकाव होता है, जिसे गीतामें "गुण, कर्म कहा है, और इस तरह पीढ़ी-दर-पीढ़ी से चले आने वाले उद्यम सामाजिक ढाँचेके अंग बन जाते हैं। गांधीजी वर्ण व्यवस्थाको लोकतंत्रवादके विरुद्ध नहीं समझते, और वे उसे मनुष्यकी उन्नतिके लिये साधन मानते थे।

पर दूसरी ओर नेहरूजी इस वर्ण व्यवस्थासे कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहते यद्यपि वे श्रेष्ठ ब्राह्मण कुलमें पैदा हुए हैं। वे इस व्यवस्थाको बहुत ही अनिष्टकारी और देशोन्नतिमें बाधक समझते हैं। यदि भारतकी उन्नति करनी है, तो यह व्यवस्था अवश्य दूर होनी चाहिये। गांधीजी व्यवस्थामें घुसी हुई बुराइयोंको दूर करनेके पक्षमें थे, पर नेहरूजी उस व्यवस्थाके ही विरोधी हैं, जिसने करोड़ों मनुष्योंको दलित अन्त्यज बना डाला था। इन दलितोंकी समस्याएँ केवल आर्थिक सुधारोंसे ही हल हो सकती हैं, और इसके लिये सामाजिक ढाँचेको नीचेसे ऊँचे तक सुधारना है। नेहरूजीको गांधीजीके उन उपायोंसे कोई दिलचस्पी न थी, जो व्यवस्थाकी बुराइयोंको दूर करनेके सम्बन्धमें थीं। गांधीजीको सुधारोंकी अन्तिम उपयोगितामें उत्साह था, पर इस उत्साहमें

नेहरूजीका कोई भाग न था। इस तरह गाँधीजी एक खरे भारतीय थे, और नेहरूजी आधुनिक युगके एक प्रगतिशील वैज्ञानिक साम्यवादी हैं, जो समाजके सम्पूर्ण ढाँचेमें आमूल परिवर्त्तन चाहते हैं। संशोधन या आमूल परिवर्त्तन—एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

गांधीजीके स्वप्नवाले भारतमें राजाओं, पूंजीपतियों जमीदारों, ऋण देनेवाले महाजनों और दीन हीन श्रमजीवियोंके लिये भी स्थान है। उनके विचारसे, यदि वे सचाईके साथ अपने-अपने कर्त्तव्योंका पालन करें, तो सब एक साथ शान्ति पूर्वक रह सकते हैं। राजाओं आदि धनियोंके लिये गांधीजीका यह तर्क रहा है कि वे गरीबोंके 'ट्रस्टी' (संरक्षक) की तरह रहें, अपने जीवनोंको पवित्र करें और धार्मिक भावनासे काम करें, तो ऐसा होना (सबका एक साथ रहना) सम्भव है। गाँधीजीने हिन्दू विश्व विद्यालयके उद्घाटनोत्सवके अवसर पर समवेत राजाओंको झिड़कते हुए कहा था—"आप लोग जाकर अपने ये हीरे जवाहिरात बेच डालिये!" राजाओंने शायद अपने हीरे जवाहिरात तो नहीं बेचे, पर उनमें कुछ उठकर वहांसे चले गये थे। इस घटना की गाँधीजीने कोई परवाह नहीं की, पर मानव जातिकी स्वाभाविक सद्भावनामें उनका इतना दृढ़ विश्वास था कि उन्हें गुम्मराह राजाओंका एक दिन स्वयं सुधारना संभव मालूम होता था। उनका यह विश्वास था कि सब मनुष्योंमें कुछ अच्छाई होती है, और सहानुभूतिपूर्ण सद्भावनाका स्पर्श मात्र उस अच्छाईको प्रकट और

व्यावहारिक कर देता है। गांधीजी कहते थे कि बड़े बड़े जमींदार भी अपनी जायदादोंके साथ रह सकते हैं बशर्ते कि वे दुर्व्यवहार छोड़कर सद् व्यवहार करने लगें। उन्होंने एक बार जमींदारोंको यह आश्वासन दिया था, कि 'मैं कभी आपके दर्जेमें परिवर्तन करनेको सलाह न दूंगा,' पर शर्त यही हैं कि जमीदारोंको अपना पुराना तरीका छोड़ना होगा।"

पर नेहरूजी अपनी सहानुभूतिका कोई भी अंश राजाओं या पूंजीपतियोंके लिये नष्ट नहीं करते। और, न उन्हें इसकी आशा रही है कि वह वे अपने पुराने तरीके बदलकर हीरे जवाहिरात गरीबों की सहायताके लिये दे डालेंगे। नेहरूजीके लिये राजा, नवाब, जमींदार आदि "मध्यकालीन युगकी स्वेच्छा चारिणीकी यादगार है, जो अपने निजी ऐश आरामके लिये दीन प्रजाका धन पानीकी तरह बहाते हैं। उन्हें अपनी प्रजाके सुख दुःखके लिये बिल्कुल चिन्ता नहीं होती। देशी राज्योंकी प्रजा ब्रिटिश-भारतकी प्रजा से अधिक पिछड़ी हुई है। नेहरू जीका तर्क है कि कोई व्यक्ति भले ही सुधारा जा सके, पर एक शक्ति प्राप्त पूरी श्रेणी कभी नहीं सुधर सकती। नेहरूजीको यह आशा भी नहीं रही है कि राजा और जमींदार लोग कभी गरीबोंके "संरक्षक" की तरह काम करेंगे, क्योंकि सच्चा संरक्षक बननेमें कुछ आत्म त्याग करना पड़ता है, और दूसरोंके लिये आत्म त्याग करना उन्होंने सीखा ही नहीं। नेहरूजीकी दृष्टिमें स्वेच्छाचारी राजाओं और जमींदारोंके लिये भावी भारतमें कोई स्थान नहीं है। आज अधिकारूढ़ नेहरू

जीके इन विचारोंमें निश्चय ही भारी परिवर्त्तन हो गया होगा, जब कि अपने सहकारी सरदार वल्लभ भाई पटेलके अथक परिश्रम के फलस्वरूप वे भारतके सभी राज्योंके शासकोंको भारत संघमें सम्मिलित करनेमें सफल हो चुके हैं।

अहिंसाके प्रश्नपर भी गांधीजी और नेहरूजी में काफी मतभेद रहा हैं। गांधीजीके लिये उद्देश्य प्राप्तिके निमित्त अहिंसा कोई उपाय नहीं, अपितु स्वयं उद्देश्य है। भारत भले ही लाखों वर्ष तक विदेशी दासतामें कष्ट भोगता रहे, पर गांधीजी हिंसाके द्वारा कभी उस दासतासे मुक्त होनेके पक्षमें नहीं थे। गांधीजोने एक बार लन्दनसे रेडियो द्वारा अमेरीकन जनताको अपना सन्देश सुनाते हुये कहा था—"भारतकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये एक भी हिंसात्मक कर्म करनेकी अपेक्षा मैं अनन्त काल तक ठहरा हुआ इन्तजार करूँगा।" एक अन्य अवसरपर उन्होंने कहा. कि "यदि भारतने तलवार उठायी, तो सम्भव है इससे वह क्षणिक विजय प्राप्त कर ले, पर तब भारत मेरे हृदयका अभिमान न रहगा। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि उसे संसारको एक सन्देश देना है, और वह सन्देश है अहिंसाका।" गांधीजीके मतानुसार हिंसात्मक दबाव उससे भी पतित बनाता है. जो हिंसा करता है, पर आत्मत्यागके साथ अहिंसात्मक दबाव ऊँचा उठाता है और वह उनपर भी असर डालता है जिनके विरुद्ध उसका उपयोग होता है।" गांधीजीने चालीस वर्ष तक मन, बचन और कर्मसे अहिंसा व्रतका पालन किया, और इसमें उन्हें अभूतपूर्व सफलता

मिली। एक अहिंसाके बलपर ब्रिटिश साम्राज्यवादसे अनेक लड़ाइयां लड़कर वे भारतीय जनताको स्वतंत्रताके लक्ष्यके निकट ले आये, और अन्तमें उसे प्राप्त करके ही रहे।

यह प्रायः सभी लागोंको याद होगा कि गांधीजीके सत्याग्रह संग्रामके समय जनताने कैसी अपूर्व अहिंसा और धीरता दिखायी थी। पुलिसकी लाठियों और गोलियोंकी वर्षामें भी सत्याग्रहियों की सेना विचलित न होती, यहां तक कि पंजाबके हिंसात्मक योद्धाओं सिखों और सीमान्तके पठानोंने भी गांधीजीका सिद्धांत स्वीकारकर अपनी छातियोंपर लाठियां और गोलियां खायी थीं। यह एक अपूर्व चमत्कार था, जिसपर ब्रिटिश शासक वर्ग भी स्तब्ध रह गया था। गांधीजीकी यह दृढ़ धारणा थी कि अहिंसा-त्मक उपायोंसे, किसी भी देशमें और किसी भी परिस्थितिमें सफलतापूर्वक काम लिया जा सकता है, पर शर्त यही कि अहिंसा सम्बन्धी सब शर्तें सत्याग्रही लोग पहले पूरी करें। हिटलरके क्रूर शासन कालमें जब जर्मनीमें यहूदियोंपर जघन्य अत्याचार हो रहे थे, तो उस समय गांधीजीने यहूदियोंको अहिंसात्मक असहयोग करनेका उपदेश दिया था। समालोचकोंने जब यहूदियोंकी निराशाजनक स्थितिकी ओर गांधीजीका ध्यान आकृष्ट किया तो गांधीजीने उन्हें अपने दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह संग्राम की याद दिलाई जब कि मुट्ठी भर भारतीयोंने वहां स्वेच्छाचारी शासनका सफलतापूर्वक सामना किया था। गांधीजी जर्मन नाजियोंके भीषण अत्याचारोंको अच्छी तरह जानते थे, तो भी

उन्हें अपनी अहिंसामें ऐसा अटल विश्वास था कि वे उसके द्वारा संसार भरके अनाचारोंको दूर करनेका दावा करते थे।

गांधीजीके अहिंसात्मक संग्राममें जवाहरलाल नेहरू यद्यपि एक प्रमुख योद्धा रहे हैं, पर नेहरूजीने अहिंसाको कभी धार्मिक सिद्धान्तके रूपमें नहीं ग्रहण किया। ब्रिटिश शासकोंसे लड़नेके लिये यह एक अच्छा नुसखा था, और नेहरूजीने भी इसी दृष्टिसे उसे अपना लिया था। पर यह निश्चय है कि यदि परिस्थितियों के कारण कभी हिंसा या शस्त्रोंसे युद्ध करनेका अवसर आया तो नेहरूजी तलवार उठानेमें कभी सङ्कोच न करेंगे. जैसा कि वे आजकल आततायी आक्रमणकारियोंके विरुद्ध काश्मीरमें कर रहे हैं और हैदराबादमें सफलता पूर्वक कर चुके हैं। हिंसा और अहिंसापर नेहरूजीका गांधीजीसे लम्बा वाद-विवाद हुआ था, पर अहिंसाकी पूर्ण उपयोगिताके सम्बन्धमें नेहरूजीके सन्देह दूर नहीं हुए। नेहरूजीका यह तर्क है कि वर्तमान समयकी सरकारें हिंसा और शस्त्रोंके बल पर कायम हुई हैं, और शस्त्र-बलको शस्त्र-बलसे परास्त किये बिना अत्याचारियों से कभी छुटकारा न मिलेगा। दूसरे, यदि यह मान भी लिया जाय कि बिना हिंसा या शस्त्र-बलका उपयोग किये देश स्वतन्त्र भी हो गया, तो भी विदेशी पड़ोसी राष्ट्रोंके हिंसात्मक आक्रमणका किस तरह निवारण किया जायेगा? यह विश्वास करना, कि साम्राज्यबादी शक्ति स्वयं अपनी इच्छासे अपना प्रभुत्व त्याग देगी, नेहरूजीकी सम्मतिमें, स्वयं अपनेको धोखा देना रहा है।

नेहरूजीका लक्ष्य, कार्ल मार्क्सकी तरह, "श्रेणी और वर्गविहीन समाजके लिये है, जिसमें सबको समान रूपसे उन्नति करनेके लिये अवसर मिलें और सबके समान आर्थिक न्याय हो। यह समाज एक सुव्यवस्थित योजनाके आधार पर बने, जिसमें मानव जातिकी आर्थिक और सांस्कृतिक मर्यादा ऊँची उठे, और अन्तमें एक विश्वव्यापी सुव्यवस्था स्थापित हो।" और नेहरूजी इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि—इस लक्ष्यके मार्गमें जो भी बाधाएँ हों, उन्हें यदि सम्भव हो तो मुलायमियतके साथ, नहीं आवश्यकता हो, तो बलपूर्वक दूर कर दिया जाय। पर वे बल-प्रयोग घृणा या निर्दयताकी भावनासे नहीं अपितु केवल बाधाओंके निवारणके लिये निष्पक्ष भावसे करना चाहते हैं।

गांधीजी और नेहरूजी दोनोंने एक साथ भारतीय स्वतन्त्रताके लिये घुल-मिलकर काम किया, पर यह स्वतन्त्रताकी भावना भी उन दोनोंकी समान न थी। गांधीजीने स्वतन्त्रताके लिये भारतमें अहिंसात्मक विद्रोहका ऐसा प्रबल आन्दोलन किया कि उससे ब्रिटिश साम्राज्यकी जड़ें हिल गयीं। पहले सन् १६१८—२१ में उन्होंने एक वर्षके भीतर स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी घोषणा की थी, पर जनता द्वारा अहिंसात्मक सत्याग्रहकी सब शर्तें न पूरी होनेसे वह लक्ष्य तब पूरा न हुआ। पर गांधीजी अपने ढंगसे लड़ाईमें बराबर लगे रहे, और स्वतन्त्रता या स्वराज्यके लिये जनता भी उनके साथ रही, पर आश्चर्य यह है कि गांधीजीने स्वराज्यकी कभी पूरी व्याख्या नहीं की। बड़े-बड़े नेता उनके पास पहुँच कर उनकी

व्याख्या समझनेका प्रयत्न करते, तब गांधीजी केवल इतना ही कहते कि—"मैं स्वतन्त्रताका सार तत्व चाहता हूं, उसका रूप चाहे जो हो।" प्रारंभमें वे भारतसे अंग्रेजोंको निकालना नहीं चाहते थे, बल्कि वे उनका हृदय परिवर्त्तन करना चाहते थे। गांधीजीके भारतमें कुछ शर्तोंपर सबके लिये स्थान है। गांधीजीने बहुत कुछ विचार करनेके बाद, और कुछ अनिच्छाके साथ भारतके लिये पूर्ण स्वतन्त्रताके प्रस्तावका समर्थन किया था। उन्होंने कहा था कि—भारतीय स्वतन्त्रताका तात्पर्य ब्रिटिश प्रभुत्वका अन्त हो जाता है, पर साथ ही उनकी यह भी धारणा थी कि—औपनिवेशिक स्वराज्य (डोमिनियन स्टेटस्) से उनका मतलब हल हो जायगा। गांधीजीके लिये दौड़नेकी अपेक्षा एक पग आगे बढ़ना तब पर्याप्त था। पीछे वे ही गांधीजी 'भारत छोड़ो' आन्दोलनके प्रवर्त्तक हुए और अन्तमें किस तरह अंग्रेज शासकोंको भारत छोड़नेको बाध्य कर दिया, यह सभीको विदित है

पर नेहरूजीकी स्थिति कुछ भिन्न रही है। उनकी स्वतन्त्रता की व्याख्या स्पष्ट रही है और कोई संदेहकी गुञ्जाइश नहीं रही है वे समस्त ब्रिटिश प्रभुत्व और विदेशी प्रभावसे भारतको मुक्त करना चाहते रहे हैं। इतना ही नहीं, वे कुछ इससे भी अधिक चाहते रहे हैं। वे चाहते रहे हैं,—"जनताका शासन, जनताके लिये, जनताके द्वारा।" उन्हें औपनिवेशिक स्वराज्य, जिम्मेदार सरकार आदिकी बातें बिलकुल नापसन्द रही है, क्योंकि उनका विश्वास रहा है कि उसका वही पुराना ढांचा होगा, जिसमें प्रत्यक्ष

या अप्रत्यक्ष रूपसे भारत ब्रिटिश साम्राज्यवादके रथके पहियेसे बंधा रहेगा। सर्वशक्तिमान्‌की कृपासे—जिसे नेहरूजी नियति कहेंगे—आज भारत पूर्ण स्वतंत्र प्रजातंत्रवादी राज्य बन रहा है।

उपर्युक्त तुलनासे किसीको यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि गांधीजी धीरे-धीरे चलने वाले कोई प्रतिक्रियावादी या सुधारवादी थे। वे इस युगके एक ऐसे अपूर्व क्रान्तिकारी हुए हैं कि उन्होंने बिना शस्त्र उठाये एक महान साम्राज्यको हिला दिया। पर उनकी राजनीति, मनोवृत्ति और कार्यपद्धति कुछ ऐसी विचित्र थी कि उससे न केवल पश्चिम वाले, बल्कि कितने ही भारतवासी और उनके खास सहयोगी भी, कुछ परेशान रहते थे। उनका राजनीतिक और आध्यात्मिक ज्ञान पराकाष्ठाको पहुँचा हुआ था और संसारके सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ और योगी-यती भी उनसे बातें करनेके बाद अपनेको तुच्छ समझने लगते थे। वे एक अदम्य साहसी और वीर पुरुष थे, भय तो वे जानते ही न थे और सदा निर्भीकता और दृढ़तासे काम करते थे, उनके हृदयकी शक्ति और कार्य करनेकी क्षमता ऐसी असाधारण थी कि वे दिन-रात अथक परिश्रमके साथ काम करते थे। देशके लिये सदा चिन्तन करना और देशोद्धारके प्रयत्नोंमें लगे रहना ही उनके जीवनका एकमात्र ध्येय था। इसलिये गांधीजीसे इतने मतभेद रहते हुए भी जवाहरलालजीसे बढ़ कर उनका कोई दूसरा भक्त न था। जवाहरलालजी किसी धर्म या ईश्वरकी पूजा नहीं करते, पर गांधीजीकी वे सचमुच जैसे पूजा करते थे। वे गांधीजीको बापू

(पिता) कहते थे और उनके मार्गमें जैसे अपनी आँखें बिछाये रहते थे।

जवाहरलालजीने अपने लेखों और भाषणोंमें गांधीजीकी जैसी स्तुति की है, वह श्रीकृष्णके लिये की गई अर्जुनकी स्तुतिके ही समान है। गांधीजीका नाम या खयाल आते ही जैसे नेहरूजी में विद्युत् प्रभाकी-सी चमक और स्फूर्ति आ जाती है। वे पग-पग पर उनकी सलाहें सुनते और जब कभी उन्हें कोई सन्देह होता, तो गांधीजीके पास दौड़ जाते थे। कितने ही उग्र देशभक्त और क्रान्तिकारी गांधीजीकी विचार-प्रणाली या कार्यपद्धतिसे बिलकुल सहमत नहीं थे और वे जब नेहरूजीके पास जाकर गांधीजीकी आलोचना करते और उन्हें प्रतिक्रियावादी बताते, तो नेहरूजी उन्हें डांट कर कहते कि,—"हममेंसे कितने ऐसे हैं, जिन्होंने गांधीजीसे बढ़ कर भारतीय स्वतन्त्रता और जनताकी समस्याओंको समझा है? हममेंसे वह कौन है, जिसने गांधीजी से बढ़ कर देशके लिये परिश्रम और आत्मत्याग किया है? हम उस मनुष्यको नहीं भूल सकते, जिसने देशको पतनके गर्तसे ऊपर उठाया है। गांधीजीके लिये एक भी हलका शब्द कहना सारे राष्ट्रका अपमान करना है। भारतीय भावना और महत्वाकांक्षा का उनसे बढ़ कर दूसरा और कोई प्रतिनिधि नहीं हुआ है। तुम उन्हें प्रतिक्रियावादी कहते हो, पर भारतमें उन्होंने जैसी अभूतपूर्व जाग्रति पैदा की, वैसी किसी भी क्रान्तिकारीने नहीं कर पायी। उन्होंने एक अध:पतित जनताको स्वाभिमान और चरित्रबल दिया

है और भारतकी समस्याको संसारकी समस्या बना दिया। गांधीजीके साथ निष्फल होना भी किसी अस्थायी लाभकी प्राप्तिसे अच्छा है।"

गांधीजीके बारेमें एक जगह नेहरूजीने कहा था, कि उनके नामका जनतापर जादू है। बहुसंख्यक मनुष्य उनकी बातें मंत्र मुग्ध होकर सुनते हैं। जब वे हमारे में प्रवेश करते हैं, तो अपने साथ एक विशुद्ध पवन लाते हैं, जिससे वहांका वातावरण नया और ताजा हो जाता है। गांधीजी बहुत ही कोमल और विनम्र हैं, पर उनमें पूर्ण प्रभुता और अधिकार है और उनके आदेश मानने पड़ते हैं। उन्होंने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी आन्तरिक शान्ति प्राप्त कर ली है, और यही शान्ति वे दूसरों को भी प्रदान करते हैं।"

गांधीजीसे अनेक विषयों पर मतभेद रहते हुए भी नेहरूजी उनके साथ इस तरह चिपके रहे, जैसे कोई बच्चा माताके साथ साथ रहता है। पर दूसरी ओर गांधीजी भी नेहरूजीके निर्णय और विचारोंका बहुत आदर करते थे। एक बार गांधीजीने जब राजनीतिसे कुछ दिनोंके लिये अवकाश ग्रहण किया तो उन्होंने एक वक्तव्यमें कहा था, कि—"राष्ट्रीय कांग्रेसके मामलोंमें जब कभी हमारे निर्णयोंमें कुछ भेद या संघर्ष दिखाई दे, तो नेहरूजीका निर्णय सबके लिये मान्य होना चाहिये।" गांधीजीके राजनीतिक गणितमें जवाहरलाल एक विशेष अंक रहे हैं, और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंकी नाप जोखमें गांधीजी उन्हींके मापदंडसे काम लेते थे।

महात्माजीका महाप्रयाण

अन्तिम बार जब महात्माजी दिल्ली पहुँचे थे, तब वहाँ महा भयंकर साम्प्रदायिक उपद्रवकी अग्नि प्रज्वलित हो चुकी थी। उसीको बुझानेके प्रयत्नमें उन्हें लग जाना पड़ा और 'कार्यं वा साधयामि, शरीरं वा पातयामि' के—जिसे महात्माजी 'करो या मरो' कहते थे अटल संकल्पके आथ वे वहीं टिक गये। पीछे तो राजधानीमें साम्प्रदायिक एकता और हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खोंमें मेल स्थापित करनेके लिये उन्होंने एक बार पुन: अपने अनशन अस्त्रका आश्रय भी उन्होंने ग्रहण किया था। जब वे अनशन कर बैठे तब यह किसने कल्पना की थी कि उस महान् आत्माके तपमय जीवनका यही अन्तिम व्रत होगा? जो महात्मा ऐसे गिरे हुए समयमें भी अपनी पूर्णायु भोगनेकी आशा और इच्छा प्रकट किया करते थे और एक सौ पचीस वर्षकी अवस्था तक इस धराधाममें बने रह कर दरिद्रनारायणकी सेवा करनेकी आकांक्षा प्रकट करते थे, उनकी एक सौ वर्षकी आयु पूरी भी न हो चुकनेका हृदय विदारक दृश्य दिल्लीकी उनकी इसी यात्राके समय

देखनेका दुर्भाग्य उनके देशवासियोंको प्राप्त होगा, ऐसी कल्पना कोई ऐसे महात्माके सम्बन्धमें कर ही कैसे सकता था, जो वास्तविक अर्थोंमें अजात शत्रु होता स्पष्ट रूपमें दिखाई देने लगा था ? यह एक प्रकट रहस्य है कि मुस्लिम लीगके अध्यक्षकी हैसियत से मि० जिन्नाने साम्प्रदायिकोंके भीतर अपने मिथ्या और घृणापूर्ण प्रचार द्वारा गांधीजीको 'इस्लामका सबसे बड़ा शत्रु' समझने की भावना कूट-कुट कर भर दी थी, किन्तु बिहारमें पीड़ित मुसलमानोंकी रक्षा और सहायताकी जैसी पूरी व्यवस्था करनेके पश्चात् कलकत्तेमें अपने अनशन द्वारा उन्होंने जिस तरह एक वर्षसे मारकाटमें लगे हुए हिन्दुओं और मुसलमानोंमें मेल पैदा कर दिया था, उससे कट्टर-से-कट्टर मुसलमानोंकी भी धारणा बदलने लग गयी थी। विचारोंमें क्रान्ति इतनी हो गयी थी कि जो मि० सुहावर्दी संयुक्त बंगालके लीगी प्रधान मंत्रीकी हैसियतसे महात्मा गांधीकी नोआखालीमें और अधिक उपस्थिति अवांछनीय बतानेमें नहीं हिचकिचाये थे, वे ही महात्माजीके सम्पर्कमें रह कर जब कलकत्तेमें उनका महान् चमत्कार देख चुके, तब उनके मुँहसे बरबस ही यह निकल पड़ा था कि "महात्मा गांधी वास्तवमें महात्मा हैं।" फिर तो वे महात्माजीके ऐसे भक्त और प्रशंसक बन गये थे कि दिल्ली में भी उनके साथ मिलकर हिन्दू-मुसलिम एकताके लिये प्रयत्नशील बननेको उत्सुक थे। जब दिल्लीमें महात्मा गांधीने वहाँके बेतरह घबराये हुए मुसलमानोंको अभयदान देते हुये उनको दिल्ली न

छोड़नेके लिये समझाने लगे थे और दिल्लीसे भाग गये हुए मुसलमानोंको लौटनेकी सुविधाएँ देनेके लिये उन्होंने सरकारको तैयार किया तथा अपने अनशन द्वारा उनकी कितनी ही मसजिदोंको पुनः उनके लिये खाली करानेकी व्यवस्था कर दी, तब तो राजधानी के सभी मुसलमान एक स्वरसे बोल उठे—'महात्मा गांधीके हाथमें और वैसे ही नेहरूजीके हाथमें हम लोग अपनेको पूर्ण सुरक्षित समझते हैं।' फिर तो केवल दिल्लीके मुसलमानों तक ही बात नहीं रह गयी, पाकिस्तानके भी मुसलमान और वैसे ही पाकिस्तानी अधिकारी भी महात्माजीके सम्बन्धमें बनायी हुई अपनी पूर्व धारणाको बदलने लग गये और उन्हें मुसलमानोंका शत्रु नहीं हित चिन्तक समझने लग गये। महात्माजीकी हत्या हो जानेके पश्चात् तो समस्त भारतके मुसलमान एक स्वरमें बोल उठे थे कि महात्मा गांधी भारतीय मुसलमानोंके सबसे बड़े हितषी और रक्षक थे और उनकी रक्षाके लिये ही उन्होंने अपनी जान दे दी।

यह सच है कि महात्मा गांधी जैसे-जैसे मुसलमानोंका विश्वास अधिकाधिक मात्रामें प्राप्त कर रहे थे, कुछ कट्टरपंथी साम्प्रदायिक हिन्दू उनसे बेतरह क्षुब्ध होने लग गये थे। अपना क्षोभ वे कुछ देर तक महात्माजीकी प्रार्थनाके समय प्रकट करते जाते थे, कुरानकी आयतें पढ़ी जाने पर वे आपत्ति कर महात्माजीकी प्रार्थनाको स्थगित कर देनेके लिये बाध्य कर देते किन्तु पीछे तो इस रूपमें भी विरोध-प्रदर्शन बन्द हो गया था। कुछ कट्टरपंथियोंने अनशनके समय भी महात्माजीको संतुष्ट करनेके

विरुद्ध आवाज उठायी थी, किन्तु पीछे यहां भी वे शांत हो गये थे और राजधानीमें हिन्दू-मुसल्मि-सिक्ख एकता स्थापित करनेका भार जिन प्रमुख पुरुषोंने अपने ऊपर लेकर महात्माजीको अनशन समाप्त कर देनेके लिये तैयार किया था, उनमें ऐसी संस्थाओंके भी प्रमुख व्यक्ति थे, जो महात्माजीकी मुसलमानोंको सन्तुष्ट करनेकी नीतिको एकदम नापसंद करते थे। किसो भी अवस्थामें यह कल्पना तो कोई कर ही नहीं सकता था कि जिस हिन्दू जाति और धर्मकी रक्षाके लिये महात्मा गांधीने इतना किया, जितना वर्त्तमान कालमें तो और किसीने कर नहीं पाया था, उसीकी हत्याकर डालनेका विचार किसी कुलागांरके मस्तिष्कमें उत्पन्न हो सकता है। महात्माजीकी हत्या तो की गयी ३० जनवरी १६४८ ई० की सन्ध्याको, पर एक घटना उनकी प्रार्थनाके समय ही उसके दस दिन पूर्व २० जनवरीको हो चुकी थी, जब प्राथना-स्थल के निकट ही एक विस्फोट हुआ था। उसके फलस्वरूप किसीके कुछ भी चोट नहीं आयी थी, इसलिये, और महात्मा गांधीके शांत रहनेके आदेशपर उपस्थित सभी लोगोंने बिना किसो गड़बड़के अपनी प्रार्थना जारी रखी थी। जब विस्फोट करनेवाला व्यक्ति घटनास्थल पर ही पकड़ा गया, तब अहिंसाके उस देवताने उसके प्रति दया दिखानेकी ही बात कही थी। उस घटनासे कितने ही लोगोंके कान खड़े हो गये थे और नेहरूजी, सरदार पटेल आदि उच्च अधिकारियोंको महात्माजीकी रक्षाके लिये और भी कड़ी व्यवस्था करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई थी। परन्तु

महात्माजीने उनका विचार पसन्द नहीं किया और उन लोगोंके मुंह यह कहकर बन्दकर दिये थे कि प्रभुको जबतक इस पार्थिव शरीरसे कार्य लेना है, तबतक इसका कोई कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकेगा। उन दिनों नेहरूजी, सरदार पटेल तथा अन्य मन्त्रीगण विशेष रूपसे प्रायः नित्यप्रति महात्माजीके पास अपने-अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें आवश्यक परामर्श करने और उनकी राय प्राप्त करनेके लिये जाया करते थे और जब अपनी अन्तिम प्रार्थना के लिये नियत समयसे कुछ देर बाद महात्माजी स्वस्थानसे प्रार्थना-स्थलके लिये चले थे, तब वे सरदार पटेलसे आवश्यक वार्त्तालाप करनेमें व्यस्त रहे थे और इसीसे उन्हें कुछ देर भी हो गयी थी। महात्माजीका यही अन्तिम वार्त्तालाप होगा और नित्यकी नायीं अपने रामसे वार्त्तालाप करनेके लिये जाकर आज वे राममें ही मिल जायंगे और फिर न लौटेंगे, तब भी यह किसीको क्या मालूम था? वे प्रार्थना-स्थलपर अपने स्थानकी ओर बढ़े जा रहे थे कि हत्यारा उनकी ओर बढ़ा और जैसा कि उसने स्वयं ही न्यायालयके सामने अपने बयानमें कहा है, महात्माजीकी देश-सेवाओं और देशोद्धारके कार्योंके विचारसे उसने उनपर फैर करनेके पहले उनके सामने सिर झुकाकर नमन किया था। उस नराधमने तड़ातड़ फैर करके महात्माजीको धराशायी कर दिया। फिर तो उस तपोधन महात्माकी मुट्ठीभर ठठरियोंको छोड़कर उनके प्राणपखेरूने उड़ जानेमें देर ही क्या लग सकती थी? गोलियां लगते ही महात्माके मुंहसे 'राम' ही शब्द निकला था।

दुर्घटनाकी सूचना पाते ही नेहरूजी आदि जो नेता जहां जिस अवस्थामें थे, वहींसे वे झटपट महात्माजीके पास पहुंचनेको दौड़ पड़े, किन्तु उनमेंसे जिनको उनकी सांस चलते हुए देखनेका अवसर मिल सका, वे भी फिर अपने अराध्य देवसे नहीं मिल सके, जो अपेक्षाकृत देरमें पहुंचे, उनका तो कहना ही क्या। नेहरूजीने तो महात्माजीके पंछी पौन द्वारा त्यागे हुए उस खाली पिंजरेके पास अपनेको इस भांति अनाथ अनुभव किया कि अन्य उपस्थित जनोंको रूंधे हुए गलेसे समझानेके प्रयत्नमें वे स्वयं सिसकियां भरते और अश्रुधारा बहाते देखे गये। बातकी बातमें राष्ट्रपिताके महाप्रयाणका हृदय-विदारक समाचार केवल इस देशके ही नहीं, अखिल विश्वके कोने-कोने तक विद्युत गतिसे पहुंच गया और उस विश्ववंद्यमहात्माके ऐसे आकस्मिक निधनपर सारे संसारमें शोक छा गया। महात्मा गांधीके महाप्रयाणपर समस्त संसारमें जिस प्रकार शोक मनाया गया और विश्वके सभी कोटि और वर्गोंके लोग—राजासे रंक तक जिस तरह शोक प्रकट करते देखे गये ऐसा तो इस युगमें और किसी भी पुरुषके लिये कभी नहीं देखा गया। भारत तो अपनेको अनाथ हो गया समझ ही लिया, मि० जिन्नाके पाकिस्तानमें भी कोई भी एक ऐसा आदमी नहीं दिखाई पड़ता था, जो सुनते ही रो न पड़ा हो और भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशोंके सभी मुसलमानों ने एक स्वरसे कह दिया कि महात्माजीके इस तरह उठ जानेसे भारतीय मुसलमानोंका सबसे बड़ा हितैषी और रक्षक सदाके लिये

चला गया। राष्ट्रपिताके आकस्मिक निधनके कारण भारतवासियों पर हुए वज्रपातके उस शोकपूर्ण अवसरपर हमारे चरित्रनायक पं० जवाहरलाल नेहरूके शोकाकुल हृदयसे जो थोड़ेसे शब्द निकले थे वे नीचे दिये जाते हैं :—

रेडियो पर बोलते हुए नेहरूजीने कहा—"आज हमारे जीवन का प्रकाश बुझ गया। चारों ओर अंधेरा छा रहा है। समझमें नहीं आता कि क्या कहूं और कैसे कहूं। मैंने अभी कहा है कि प्रकाश बुझ गया है, अन्धेरा छा गया है। लेकिन यह कहना इसलिये गलत है कि पूज्य बापूने इस देशको जो प्रकाश दिखाया है, वह कोई साधारण प्रकाश नहीं। पिछले इन सभी वर्षोंमें यह देश उसी प्रकाशसे प्रकाशित हो उठा था और सभी आगामी बहुत वर्षों तक उससे यह प्रकाशित होता रहेगा। आजसे हजार वर्ष बाद भी वह प्रकाश इसमें दिखाई देता रहेगा और उससे इस देशके असंख्य हृदयोंको सान्त्वना प्राप्त होती रहेगी। यह प्रकाश वर्त्तमान समयकी अपेक्षा किसी और बातका भी द्योतक है। यह प्रकाश सत्यका अमर सत्यका प्रतीक है। यह हमें उचित मार्गका दिखाने वाला, भूलोंसे उबारने वाला और इस प्रचीन देशको स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाला है। हमारे प्यारे नेता, हमारे 'बापू,' जिन्हें हम इस नामसे पुकारा करते थे, हमारे राष्ट्रपिता अब नहीं रहे। अब हम उनके निकट सलाह रखनेके लिये कैसे दौड़ेंगे और क्यों कर सान्त्वना प्राप्त करेंगे? यह न केवल मेरे लिये, बल्कि इस देशके कोटि-कोटि

लोगोंके लिये भयंकर आघात-स्वरूप है। बापूके उठ जानेके समय आज मैं या दूसरा कोई व्यक्ति आपको तसल्ली नहीं दे सकता।

"यह शोकप्रद घटना ऐसे समयमें हुई है, जब उन्हें अभी और भी बहुत-सा कार्य करना था। हम कभी यह सोच भी नहीं सकते थे कि अब उनकी आवश्यकता हमें नहीं रह गयी है और उन्होंने अपना काम पूरा कर लिया है। लेकिन अब खास कर ऐसे विकट समयमें, जब कि हमारे सामने इतनी अधिक कठिनाइयां उपस्थित हैं, उनका हमारे बीचमें न रहना अत्यधिक असहनीय है। एक पागल आदमीने उनके जीवनका अन्त कर डाला, क्योंकि जिसने यह जघन्य-कृत्य किया है, मैं तो उसे पागल ही कह कह सकता हूँ। पिछले महीनों और वर्षोंमें इस देशमें काफी जहर फैला हुआ था और जहरका प्रभाव लोगोंके मस्तिष्क पर पड़ा है। हमें अपने सामने उपस्थित सभी खतरोंका सामना पागलपन के साथ नहीं, बल्कि ऐसे ढंगसे करना चाहिये, जिस तरहसे सामना करना हमें हमारे प्रिय नेताने सिखाया है। अब हमें पहली बात जो स्मरण रखनी है, वह यह है कि हम किसी व्यक्तिके लिये नाराजीके कारण कोई अनुचित बात न करें। हमें साहस और दृढ़ता पूर्वक काम करना चाहिये। हमारे सामने जो खतरा उपस्थित हुआ है, उसका दृढ़ संकल्पके साथ सामना करना चाहिये। हमारे राष्ट्र-पुरुषने, हमारे महान् नेताने जो आदेश हमें दिये हैं, उन्हें अमलमें लानेका हमें दृढ़ संकल्प करना चाहिये।

हमें सदा यह समझ रखना है कि उनकी आत्मा हमें अब भी देख रही है और हमें कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये, जिससे उनकी आत्माको दुःख पहुंचे। यदि हमने कोई ओछा व्यवहार किया या हिंसात्मक कार्य किया, तो उनकी आत्माके लिये उससे अधिक अरुचिकर कोई दूसरी बात नहीं हो सकती। इसलिये हमें ऐसी कोई बात कदापि नहीं करनी चाहिये। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम कमजोर बनें, बल्कि हमें उन कठिनाइयों का सामना बल पूर्वक और एक होकर करना चाहिये।

"हमें आपसमें एकता करनी चाहिये और पूज्य बापूके इस निधनसे जो यह भारी क्षति हुई है उसका ध्यान रखते हुए अपने सभी छोटे-मोटे झगड़ों और बाधाओं तथा कठिनाइयोंका अन्त कर देना चाहिये। यह भारी क्षति हमारे लिये यह संकेत है कि हम जीवनकी बड़ी बातोंको स्मरण रखें और छोटी बातोंको भूल जायें, जिनका हमारे पास खजाना है। उन्होंने अपनी मृत्युसे हमें जीवनकी बड़ी बातोंके लिये, सत्यके लिये प्रेरणा दी है और अगर हमने उन पर ध्यान दिया, तो इससे भारतका भला होगा।"

पं० जवाहरलालजीने भारतीय पार्लमेंटमें महात्मा गांधीके लिये अत्यन्त मार्मिक शब्दोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा था—"हमारी शान चली गयी। जो सूर्य हमारे देशको उष्णता तथा प्रकाश प्रदान करता था, वह अस्त हो गया। हम शीत और अन्धकारमें कांप रहे हैं। फिर भी हमें अपने भीतर इस प्रकारका भाव नहीं ले आना है। जब हम अपने हृदयको

देखते हैं, तो अब भी उसमें वह प्रज्वलित अग्नि पाते हैं, जिसे वे सुलगा गये हैं, और यदि वह अग्नि बनी रही, तो हमारे देशमें अन्धकार नहीं होगा। उनका स्मरण कर उनके मार्गका अनुसरण कर हम अपने प्रयत्नोंसे इस देशको पुनः प्रकाश युक्त करेंगे। हमारी सरकारने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि घृणा और हिंसा को निर्मूल किया जायेगा।

महात्मा गांधीकी हत्याका यह काण्ड केवल एक पागल आदमी का नहीं है। यह तो घृणा और हिंसाके किसी ऐसे वातावरणका परिणाम है, जो इस देशके भीतर पिछले कई महीनों और वर्षोंसे व्याप्त हो रहा है और खास कर गत कुछ महीनों से। उस वातावरणसे हम लोग घिरे हुए हैं और यदि हमें वह काम पूरा करना है, जिसे महात्मा गांधी हमारे सामने छोड़ गये हैं, तो हमें उस वातावरणका सामना करना होगा, उसके विरुद्ध लड़ाई लड़नी होगी, उसे दूर करना होगा और हिंसा एवं घृणाको निर्मूल करना होगा। जहांतक इस सरकार का सम्बन्ध है, कोई प्रयास उठा नहीं रखेगी, क्योंकि यदि हम इन बुराइयोंका मूलोच्छेदन नहीं करते, यदि अपनी कमजोरी या किसी अन्य सरकारसे इस हिंसा और मौखिक रूपसे अथवा लेखनी द्वारा फैलती हुई इस घृणाको रोकनेके लिये प्रभाव पूर्ण उपाय नहीं करते, तो हम निसन्देह इस सरकारमें रहने योग्य नहीं है और न उस महान् दिवंगत आत्माके अनुयायी होने योग्य तथा प्रशंसा करने योग्य ही है।

"इस सभामें यह प्रथा रही है कि दिवंगत प्रमुख आत्माओंके प्रति सम्मान प्रकट किया जाता है। मुझे स्वयं अपने मनमें इस बातका पूरा निश्चय नहीं है कि यहाँ इस अवसर पर मेरे लिये या किसी अन्यके लिये कुछ अधिक कहना ठीक है, क्योंकि मुझसे निजी तौरपर और भारत सरकारके प्रधानके नाते इस बातकी बड़ी लज्जा है कि हम अपनी सबसे बड़ी निधिकी रक्षा नहीं कर सके। हम पिछले महीनोंमें कितने ही निरपराध पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ रहे हैं, यह बात हम सबोंके लिये बड़ी लज्जा की है। यह महान् व्यक्ति जिसे हम सब अपरिमित सम्मान और प्रेम करते थे, केवल इसलिये जाता रहा कि हम उसकी रक्षाका पर्याप्त प्रबन्ध नहीं कर सके। यह मेरे लिये एक भारतीयके नाते बड़ी लज्जाकी बात है कि एक भारतीयने ही उस महान् विभूति पर हाथ उठाया। एक हिन्दू की हैसियतसे भी मेरे लिये बड़ी शर्मकी बात है कि एक हिन्दूने यह कृत्य किया है और यह कृत्य इस युगके सबसे बड़े भारतीय और सबसे बड़े हिन्दूके साथ किया गया है। लोगोंकी प्रशंसा हम कुछ चुने हुए शब्दोंमें करते हैं और उनकी महत्ताकी माप हमारे पास होती है, परन्तु गांधीजीकी प्रशंसा हम कैसे करेंगे और उनकी महत्ताकी माप कैसे करेंगे, क्योंकि वे उस साधारण मिट्टीके बने नहीं थे, जिससे हम सब लोग बने हैं। वे आये और काफी समय तक जीवित रहे तथा चले गये। उनके लिये हमारी किसी प्रशंसा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन्होंने अपने जीवन कालमें ही

उससे अधिक प्रशंसा प्राप्त कर ली थी, जितनी इतिहासमें किसी जीवित मनुष्यको मिली है या जितनी उनकी मृत्युके समयसे अब तकमें समयमें मिली है। समस्त संसारने उनके प्रति सम्मान प्रकट किया है और अब हम सब उसमें और क्या जोड़ सकते है? हम लोग जो कि उनके बच्चे रहे हैं, और शायद उनके शरीरसे उत्पन्न बच्चोंसे भी अधिक निकट बच्चे रहे हैं, उनकी कैसे प्रशंसा कर सकते हैं ?

"जो हमारी शान थी, वह चली गयी और जो सूर्य हमारे जीवन को प्रकाशमय बना रहा था, वह अस्त हो गया और हम शीतमें कांप रहे हैं। जो शान हमने उनके जीवनके समय में देखी है, उससे तथा अपने दैवी प्रकाशसे उन्होंने हममेंसे बहुतों को प्रकाशित किया है। उस प्रकाश पूर्ण अग्निकी कुछ चिनगारियां हमने ग्रहण की है, उनसे हमें बल प्राप्त हुआ है और हम उनके ढंग पर कुछ हद तक चले हैं, इसलिये यदि हम उनकी प्रशंसा करते हैं, तो अपनी ही प्रशंसा करते हैं। महापुरुषों और प्रमुख व्यक्तियोंके स्मारक कांसे और संगमरमरकी मूर्त्तियों द्वारा स्थापित किये जाते हैं। परन्तु इस दैवी ज्योतिसे मनुष्यने अपने जीवन में ही करोड़ों आदमियोंके हृदय मन्दिरमें अपनी स्मृति बना ली थी। उनका नाम न केवल राजमहलों और कुछ चुने हुए स्थानों तथा असेम्बलियों में ही, बल्कि घर-घर और साधारण झोपड़ों तक पहुंचा था। गांधीजीने अपने जीवनके पिछले तीस वर्षोंमें इस देशका बहुत कुछ निर्माण किया था और सर्वोच्च

श्रेणीका त्याग, जिसकी समता संसारके किसी भी भागमें नहीं मिल सकती। यद्यपि उनके विनम्र मुखसे मुस्कराहट कभी नहीं हटी और उन्होंने एक भी कठोर शब्द कभी किसीसे नहीं कहा, फिर भी उन्होंने इस युगके अपने लोगोंकी त्रुटियोंके लिये कष्ट सहे और वे कष्ट केवल इसलिये सहे कि जो रास्ता उन्होंने दिखाया उससे हम हट गये और अन्तमें उन्हींके एक बच्चेका हाथ उनकी ओर उठा।

"महात्मा गांधी प्राचीन भारतके और यदि मैं कहूं तो भावी भारतके भी सबसे बड़े प्रतीक थे। प्राचीन और भावी भारतके बीच वर्त्तमानके खतरनाक किनारे पर हम खड़े हैं। यह खतरा उस समय और बढ़ जाता है। जब विश्वास की कमी हममें आती है, जब नैराश्य हमारे सामनेमें आता है और जब हम देखते हैं कि जो बड़ी बड़ी बातें हम कह रहे थे, वे अवास्तविक बन रही है और हमारा जीवन भिन्न दिशाकी ओर जा रहा है। फिर भी मेरा विश्वास है कि कदाचित् यह समय शीघ्र ही व्यतीत हो जायेगा। वह ईश्वरीय दूत अपने जीवन कालमें जैसा महान् रहा है। अपनी मृत्युसे उससे भी अधिक महान् हो गया है। हम सदैव उसके लिये शोकाकुल होंगे, क्योंकि हम मनुष्य ही हैं और अपने प्रिय स्वामी को भूल नहीं सकते। पर मैं जानता हूं कि वे यह नहीं चाहते थे कि हम उनके लिये शोक करें। उनके नेत्रोंमें आंसू कभी उनके अत्यन्त प्रिय और निकटवर्त्तीके चले जाने पर भी नहीं आया,

केवल उसके महान् कार्य करनेकी दृढ़ता अवश्य आयी। अतः यदि हम उनके लिये केवल शोक मनायेंगे, तो वे अप्रसन्न होंगे। उनके प्रति हमारा ठीक सम्मान यही हागा कि जिस कायंको इतनी दूर लाकर वे पूरा किये बिना छोड़ गये हैं, उसे पूरा करनेकी हम प्रतिज्ञा करें और उसे पूरा करनेमें हम अपना जीवन समर्पित कर दें।"

बापूका स्मरण

२ अक्तूबर बापूका जन्म दिवस है। इस वर्ष (१६४८) के हमारे अभाग्यसे हमारे बीच नहीं रह गये, तो भी रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमीकी भांति गांधी जयन्ती देश-भरमें यथोचित ढंगसे मनायी गयी। राष्ट्रपतिका वियाग हुए अभी कुल आठ ही महीने तो बीते थे, इसलिये अभी तो लोग ३० जनवरीवाली घटनाको भूल नहीं पाये—यदि कभी उसे वे भूल भी सकते हैं। इस गांधी जयंतीके अवसर पर नेहरूजीने नयी दिल्लीसे रेडियो पर राष्ट्रके नाम यह संदेश ब्राडकास्ट किया—

"आजका दिन उस महान् आत्माकी स्मृतिसे पवित्र है, जिसे हम राष्ट्रपिता कहते हैं। आज मैं भारतके प्रधान मंत्रीकी हैसियतसे न बोलकर जवाहरलालजीकी हैसियतसे बोलूंगा, जो आप ही के समान भारतकी स्वतंत्रताके लम्बे पथका एक पथिक रहा है और जिसे अपने गुरुके साथ रहकर भारत एवं सत्यकी सेवाका पाठ पढ़नेका विशेष सौभाग्य प्राप्त रहा है। गांधीजीने जो मौलिक उपदेश हमें दिये हैं, उन्हींके सम्बन्धमें दो-चार शब्द मैं आपसे

कहूंगा। गांधीजीने हमें सिखाया है कि केवल व्यक्तिगत जीवनमें ही नहीं, एवं राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें भी हमें सत्यसे कभी नहीं डिगना चाहिये। उनका कहना था कि घृणा और हिंसासे केवल घृणा और हिंसाको ही प्रोत्साहन मिलता है। गांधीजीके उपदेश आज भी काम कर रहे हैं और भारतको उसी दिशामें ले जा रहे हैं, जिस दिशामें वे ले जाना चाहते थे। परन्तु साथ ही असत्य, हिंसा और संकीर्णताकी कुत्सित शक्तियां भी अपना काम कर रही हैं। दोनोंमें उसी प्रकार युद्ध छिड़ा हुआ है, जिस प्रकार संसारमें धर्म और पापकी शक्तियोंमें सदा युद्ध होता रहता है।

मुझे अपने देशका, अपनी राष्ट्रीय बपौतीका और बहुत-सी दूसरी चीजोंका गर्व है। परन्तु मुझे अपने राष्ट्रसे इस कारण प्रेम नहीं है कि यह आकारमें बड़ा है और न इसीसे कि यह अतीतमें महान् रह चुका है। यह प्रेम तो इस कारण है कि यह ऊंचे आदर्शोंवाला देश है और सत्य पर आरूढ़ है। यदि आप महात्मा गांधीके बताये हुए आदर्शोंपर चलना चाहते हैं, तो उन सब वृत्तियोंको दूर करनेका प्रयत्न कीजिये, जो राष्ट्रको निर्बल बनाती हैं, चाहे वे प्रवृत्तियां साम्प्रदायिकता विषयक हों, चाहे पृथकता सम्बन्धी और चाहे धर्मान्धता. प्रान्तीयता और वर्गवाद विषयक।

"हम अनेक बार कह चुके हैं कि इस देशके भीतर साम्प्रदायिक भावना सहन नहीं की जायेगी, और हम इस देशको एक ऐसा स्वतंत्र असाम्प्रदायिक राज बनाना चाहते हैं, जिसमें सबके अधिकार समान होंगे। फिर भी कुछ लोग साम्प्रदायिकता एवं

पृथकताकी बातें किया करते हैं। इसका विरोध करना चाहिये। इसी प्रकार प्रान्तीयताका भी विरोध करना चाहिये। कुछ लोग भारतको आक्रमणकारी देश बताते हैं। परन्तु यह उनका भ्रम है। यदि भारत आक्रमणकारी बन जाये तो दूसरी सरकारमें मुझ जैसे व्यक्तियोंके लिये कोई स्थान न रह जायेगा। यदि हम बलप्रयोग पर उतर आयें, तो जिन सिद्धान्तोंकी हम दुहाई देते आये हैं और जिन आदर्शोंको गांधीजीने हमें सिखाया है, उनके प्रति झूठे हो जायँगे। विगत कुछ सप्ताहोंसे हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तानके समाचार पत्र और नेता भारतके विरुद्ध ऐसा विषैला प्रचार कर रहे हैं, जिससे दोनों देशोंको भारी हानि होनेकी आशंका है। इस प्रचारका सत्यसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि पाकिस्तानकी जनता निरन्तर ऐसा साहित्य पढ़ती रहेगी, तो स्वभावतः वह भारत-विरोधिनी हो जायेगी, और इसका अन्तिम परिणाम उसके लिये अच्छा न होगा। इसका मुझे बड़ा दुःख है। मैं इन प्रचारकोंसे बड़ी नम्रतासे कहूंगा कि ऐसा प्रचार करके अपने देश तथा अपनी जनताका अहित न करें।” इसके बाद काश्मीर और हैदराबादमें बरती जानेवाली भारत सरकारकी नीतिका समर्थन करते हुए नेहरूजीने अन्तमें यह कहा कि दूसरे देशोंमें चाहे कुछ भी होता रहे, हमें शान्त रहना चाहिये और गांधीजीके उपदेशों पर चलते रहनेका प्रयत्न करना चाहिये।

स्वतन्त्र भारतके प्रधान मंत्री

नेहरूजीकी यूरोप-यात्रा

लन्दनमें ब्रिटिश कामनवेल्थके प्रधान मंत्रियोंकी एक कानफरेंसका आयोजन किया गया था। अब वह ब्रिटिश कामनवेल्थ (ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल) बिना किसी प्रकारकी कानूनी कार्रवाईके ही स्वयं ब्रिटिश सरकार द्वारा ही केवल कामन-वेल्थ (राष्ट्र-मंडल) नामसे व्यवहृत होने लगा है। इस राष्ट्र-मंडल की कानफरेंसके लिये भारतके प्रधान मंत्री नेहरूजीको भी निमंत्रण मिला और उन्होंने उसे स्वीकार भी कर लिया था। यद्यपि देश की विकट परिस्थितियोंके कारण उनका थोड़ी देरके लिये भी इसके बाहर जाना देखनेमें अवांछनीय-सा प्रतीत होता था, फिर भी उन्होंने ऐसे अमूल्य अवसरसे अपनेको वंचित रखना ठीक नहीं समझा, जब कि राष्ट्रमंडलके उन समस्त राज्योंके प्रधान मंत्रियोंसे घनिष्ठता स्थापित करनेके साथ ही उन्हें भारतका संदेशा सुनाने की सुविधा तो मिलती ही थी, भारतके शत्रुओंने काश्मीर और हैदराबादके सम्बन्धमें भारत सरकारकी नीतिको लेकर विदेशोंमें जो मिथ्या और घृणित प्रचार आरंभ कर रखा था, उसका भंडा-

फोड़ करनेके लिये भी उपयुक्त क्षेत्रकी उपलब्धि संभव थी। विश्व-वंद्य महात्मा गांधीके उत्तराधिकारी और महान भारत-राष्ट्रके प्रधान मंत्री नेहरूजीके मुखसे भारतका संदेशा सुननेके लिये विश्व के प्रायः सभी भागोंके नेता उत्सुक भी थे और वे सब उन्हीं दिनों पैरिसमें होने वाले संयुक्त राष्ट्रसंघकी जनरल असेम्बली और उसकी सुरक्षा-कौंसिलके अधिवेशनोंके लिये वहां एकत्र भी थे। संयोगवश उन्हीं दिनों सुरक्षा-कौंसिलमें हैदराबादका प्रश्न भी उपस्थित तथा और उसे लेकर कौंसिलके भीतर और बाहर भी निजामकी थैली पर हाथ साफ करने वाले असत्यके प्रचारकोंने खासी धमाचौकड़ी मचा रखी थी। ऐसे समयमें नेहरूजीकी वहां उपस्थिति मात्रसे असत्यके बादलोंका एकदम फट जाना निश्चित था—जैसा कि उनकी इस यूरोप-यात्राके अन्तमें देखा भी गया। इस प्रकार नेहरूजीका उस समय भारतसे बाहर जाने का निश्चय सवथा सामयिक, उचित और एक अंशमें आवश्यक भी था।

नेहरूजीने ६ अक्टूबर १९४८ को भारतसे प्रस्थान किया था, किन्तु उसके कई दिन पहले ही उन्होंने अपने दिव्य विचार स्वदेश में ही प्रकट कर दिये थे, जिससे उनकी यात्राकी उपयोगिता समझनेमें उनके देशवासियोंको निश्चय ही बड़ी सहायता मिल सकती थी। नयी दिल्लीमें गांधी-जयन्तीके सम्बन्धमें हुई एक सार्वजानक सभामें नेहरूजीने संयुक्त राष्ट्रसंघमें भारतका विश्वास व्यक्त करते हुए यह कहा,—"यद्यपि उसमें निर्बलताएँ बहुत

हैं, तो भी हम विश्वशान्तिकी अपनी आशाओंकी पूर्त्तिके लिये केवल संयुक्त राष्ट्रसंघ पर ही भरोसा कर सकते हैं। जब मैं पेरिस जाऊँगा, तो राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंको भारतकी ओरसे यही संदेशा सुनाऊँगा। हम संयुक्त राष्ट्रसंघका सम्मान करते और चाहते हैं कि अन्य राष्ट्र भी ऐसा ही करें, क्योंकि यह संस्था एक महान् आदर्शके आधार पर स्थापित हुई है। लोगोंको इसकी आलोचना नहीं करनी चाहिये, इसे मजबूत बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। इस संघकी स्थापना उच्च सिद्धान्तों पर की गई थी, किन्तु अब कुछ लोग यह सन्देह करने लग गये हैं कि यह उनके अनुसार बन सकेगा कि नहीं। ऐसे लोगोंको समझना चाहिये कि जब इसके सामने ऐसी समस्याएँ सुलझानेके लिये उपस्थित होती हैं, जो पेचीले ढंगकी है, जिनका प्रभाव करोड़ों आदमियोंके जीवन पर होता है और दर्जनों देशोंके हितोंसे वे सम्बन्ध रखती हैं, तब संयुक्त राष्ट्रसंघका कार्य स्वभावतः कठिन होना ही है। लोग इसकी आलोचना किया करते हैं, किन्तु वह आलोचना पूर्णतया उचित नहीं है। उन्हें निराश नहीं होना चाहिये, बल्कि संस्थामें विश्वास रखते हुए संघके संतोषजनक रूपसे काम करनेमें असफल होनेके लिये किसी एक देशको दोष देनेके कार्यसे विरत होना चाहिये। हम संयुक्त राष्ट्रसंघका सम्मान करते हैं, यद्यपि इसने कुछ ऐसी बातें की हैं, जिन्हें हम पूर्णतया पसन्द नहीं करते हैं। हमने इसके सामने काश्मीरका जो प्रश्न उपस्थित किया था, उसका हल इसने सन्तोषयोग्य ढंगसे नहीं किया है। किन्तु इससे इसके

प्रति हमारा सम्मान घटा नहीं है और इसके आदर्शोंमें हमारे विश्वासमें भी कमी नहीं आयी है। हमें इस संयुक्त राष्ट्रकी शक्ति दृढ़ करनी है, क्योंकि यदि हम वास्तवमें विश्वशान्तिके पक्षपाती हैं, तो इसके सिवा हम और कुछ नहीं कर सकते। मैं पेरिसमें उपस्थित विश्वके प्रतिनिधियोंको बताऊंगा कि भारत सच्चे दिलसे शान्ति चाहता है और इसके लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी संस्थाकी नितांत आवश्यकता है। उन लोगोंको मेरा यही संदेश होगा।"

नेहरूजीने श्रोताओंको स्मरण कराया कि—"किस तरह लगभग मैं तीस वर्ष पूर्व महात्मा गांधीने भयके विरुद्ध धर्मयुद्ध छेड़ा था और कहा कि किसी राष्ट्रके लिये सबसे बड़ा खतरा बेहूदा और निराधार भय होता है। यदि हम निर्भय होंगे तो निश्चय ही उन्नति करेंगे। पारस्परिक अविश्वास और भयने देशके भीतर कैसा अहितकारी वातावरण पैदाकर दिया है। हैदराबादका प्रश्न देशके भीतर किसी प्रकारका साम्प्रदायिक उपद्रव हुए बिना ही जिस तरह हलकर डाला गया है, इससे वातावरण साफ हो गया है और निश्चित रूपसे यह सिद्ध हो गया है कि देशवासियोंका दृष्टिकोण ठीक है। काश्मीरके सम्बन्धमें पाकिस्तानके राजनीतिक जनों और समाचारपत्रोंकी ओरसे लगाया जानेवाला यह आरोप मिथ्या है कि भारतका उनके देशपर आक्रमण करनेका विचार है। मैं साफ शब्दोंमें और अन्तिम रूपमें यह कह देना चाहता हूं कि भारतका पाकिस्तानपर आक्रमण करनेका कोई विचार नहीं है।

दो बातें स्पष्टतया समझ रखनी चाहिये। एक तो यह कि भारत किसी भी अवस्थामें एक भी कबीलेवालेको काश्मीरके भीतर नहीं बना रहने देगा और दूसरी यह कि भारत किसी भी आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेके लिये काफी मजबूत है।"

अपने इस भाषणमें ही नेहरूजीने यह भी प्रकट कर दिया कि लन्दनमें राष्ट्रमंडलके प्रधान मंत्रियोंकी कानफरेंसमें कार्य पूर्ण करनेके पश्चात् मैं पेरिस भी जाऊँगा, जहाँ इस समय संयुक्त राष्ट्र संघका अधिवेशन हो रहा है।

१ अक्टूबरको नेहरूजीने श्रीनगरमें अपने भाषणमें जहां यह कहा कि भारतका पाकिस्तानपर आक्रमणका कुछ भी विचार नहीं है, वहां यह भी कहा कि भारत उन नदियोंका बहाव भी रोकनेका कोई विचार नहीं रखता है, जो काश्मीरसे निकलकर पंजाबमें बहती हैं। दूसरी ओर यदि पाकिस्तानके लोग यह सोचते हैं कि दस या सौ वर्षोंमें उनके उद्योग काश्मीरमें सफल होंगे, तो गलती कर रहे हैं। काश्मीरमें लड़नेवाली पाकिस्तानकी सेनाएँ आक्रमण करनेवाली हैं। पाकिस्तानपर आक्रमण हम करते, तो कानूनन और सैनिक दृष्टिसे वैसा करनेका हमें अधिकार है। हमने इसलिये आक्रमण नहीं किया कि हम युद्धक्षेत्रका विस्तार नहीं करना चाहते।

लन्दनमें भारतके हाई कमिश्नर श्रीयुक्त मेननने २१ सितम्बर को सरकारी तौरपर यह घोषणा कर दी थी कि भारतके प्रधान

मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू अक्टूबरके प्रथम सप्ताहमें ब्रिटिश सरकारके अतिथि बनकर लन्दन पधारेंगे और अगले महीनेमें यहां होनेवाली राष्ट्रमण्डलके प्रधान मंत्रियोंकी कानफरेंसमें भारत का प्रतिनिधित्व करेंगे।

भारतसे प्रस्थान

प्रधान मन्त्री नेहरूजी स्पेशल हवाई जहाज द्वारा दिल्लीसे ५ अक्टूबर मङ्गलवारको दिनके तीसरे पहर लन्दन जानेके लिये बम्बईको रवाना हुए। पालमके हवाई अड्डेपर गवर्नर-जेनरल चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य, उप-प्रधान मंत्री सरदार पटेल, अन्य मन्त्रीगण तथा कई देशोंके राजदूत और कुछ प्रमुख कांग्रेस-जन उन्हें बिदा करनेके लिये एकत्र हुए थे। हवाई जहाजके उड़नेके ठीक पहले नेहरूजीने उसपर सवार हो उच्च स्वरमें 'जय हिन्द' कहा। नेहरूजीके साथ परराष्ट्र विभाग सचिवालयके सेक्रेटरी-जनरल सर गिरिजाशंकर बाजपेयी और नेहरूजीके निजी सेक्रेटरी श्री मथाई भी थे। लन्दनमें १२ अक्टूबरसे आरम्भ होनेवाली प्रधान मन्त्रियोंकी कानफरेंसमें सम्मिलित होने के लिये नेहरूजीके नेतृत्वमें भारतका जो प्रतिनिधि-दल गया था, वह उसमें सम्मिलित होनेवाले राष्ट्रमण्डलके प्रायः सभी राज्योंके प्रतिनिधि दलोंसे छोटा था। संध्याको नेहरूजी सदलबल बम्बई पहुंच गये। वहां सांताक्रूज हवाई अड्डेपर बम्बईके प्रधान मन्त्री तथा नगरके प्रमुख पुरुष, सरकारी अफसर और शहर कांग्रेस

कमेटीके पदाधिकारी स्वागतार्थ उपस्थित थे। नेहरूजीकी बहिन श्रीमती कृष्णा हथीसिंह भी वहाँ विद्यमान थीं। हवाई जहाजसे उतरकर वे अपनी बहिनके घर गये, जहाँ कुछ घंटे वितानेके बाद नेहरूजी लन्दन जानेके लिये रातमें साढ़े बारह बजे फिर हवाई जहाजपर सवार हुए। उसी हवाई जहाजसे सीलोनके प्रधान मन्त्री श्री सेनानायक भी लन्दन गये। वे जब बम्बईमें पहुंचे थे, तब उन्होंने नेहरूजीके साथ यात्रा करनेके संयोगको अपने लिये सौभाग्यकी बात कहा और लन्दनवाली कानफरेंसमें हम दोनों बिना किसी मतभेदके मिलकर काम करेंगे। आपने वहां नेहरूजीके साथ ही ठहरनेका भी विचार प्रकट किया था।

काहरामें—नेहरूजीका हवाई जहाज ६ अक्टूबरको फारुकके हवाई क्षेत्रमें उतरा तब नेहरूजीने आध घण्टे तक अरब संघके सेक्रेटरी—जेनरल अजाम पाशासे बातचीत की। वहांपर भारतीय राजदूत डा० सैयद हुसेन और मिश्रके परराष्ट्र विभागका एक प्रतिनिधि उपस्थित थे। काहरासे उड़नेके पूर्व नेहरूजीने पत्र-प्रतिनिधियोंसे कहा कि जब मैं नवम्बरके आरम्भमें भारतको लौटूंगा, तब संभव है कि अजाम पाशाके निमंत्रणपर काहरामें भी रुकूं। उन्होंने यह भी कहा कि फिलस्तीनके सम्बन्धमें भारतका मत सदा यह रहा है कि स्वायत्त शासन-प्राप्त क्षेत्रोंका एक संघ बनाकर ही यह प्रश्न हल किया जा सकता है भोजन कर लेनेके उपरान्त नेहरूजी 'राजपूत प्रिंसेस' नामक अपने हवाई जहाजपर फिर सदलबल सवार होकर लन्दनके लिये उड़े।

लन्दनमें स्वागत

७ अक्टूबरको रातके ठीक ग्यारह बजे नेहरूजीका हवाई जहाज लन्दनके हवाई अड्डेपर पहुंच गया। नेहरूजी उस समय भी अपनी भारतीय पोशाकमें थे। वे हवाई जहाजसे अपनी सहज मुसक्यानके साथ जब उतरने लगे तब सिनेमावालोंने फोटो लेनेके लिये बिजलीके बहुत तेज प्रकाश द्वारा रातका दिन बना डाला। 'जयहिन्द' और 'पंडितजीकी जय' के नारे लगाये गये और नेहरूजीको उत्कृष्ट पुष्पोंसे बनी पुष्पकी मालाएं पहनायी गयीं। नेहरूजीका हवाई अड्डे पर धूमधामी स्वागत करनेके लिये वहांके भारतीयोंने विराट् आयोजन किया था। किन्तु पीछे उन लोगों को सूचित कर दिया गया कि नेहरूजीकी सुरक्षाके लिये ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो विशेष आयोजन किये गये हैं, उनके कारण तीससे अधिक आदमी हवाई अड्डेके खास घेरेके भीतर नहीं जाने पायेंगे, जहांपर पंडितजीका सरकारकी ओरसे स्वागत किया जायेगा इससे लोगोंको भारी निराशा हुई, जिससे लन्दनके बाहरसे जो लोग उड़कर वहाँ पहुँचनेको थे, वे भी नहीं पहुँच सके। असंख्य पुष्प मालाओंके लिये जो आर्डर दिये गये थे, उन्हें भी रद्द कर देना पड़ा था। विमानसे उतरने पर भारतीय हाई कमिश्नर श्री युक्त मेनन और राष्ट्रमंडल-सम्पर्क विभागके ब्रिटिश मंत्री मि० नोएल बेकरने पंडितजीके स्वागतार्थ निर्मित मेहराबके नीचे हार्दिक स्वागत किया। वहांपर बहुतसे भारतीय भी एकत्र थे, जिन्होंने हाथ

जोड़कर नेहरूजीका अभिवादन किया। नेहरूजीकी बहिन श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित पेरिससे उड़कर जेनेवा इसलिये पहुंची थीं, जिससे लन्दनसे जाते हुए अपने भ्रातासे भेंट कर सकें। पत्र-प्रतिनिधियोंसे नेहरूजीने कहा—"अभी यह तो नहीं कहा जा सकता कि भारत क्या या कब प्रजातंत्र बनने जा रहा है, पर यह स्पष्ट है कि हम इंगलैंडके साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखना चाहते हैं। वैसे ही स्पष्ट यह भी है कि इस विषयमें निर्णय भारतकी विधान-परिषद् कुछ महीनोंके भीतर ही करेगी। भारत इगलैंडके समीप रहते हुए पूर्णतया सर्वसत्ता सम्पन्न और स्वतन्त्र होना चाहता है।" हवाई-क्षेत्रसे ही रेडियो पर बहुत ही संक्षेपमें बोलते हुए नेहरूजीने कहा कि "एक लम्बे अर्सेके बाद फिर यहां लन्दन आनेमें मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। मैंने गत वर्ष ही मित्रोंसे मिलनेके लिये यहां आनेके लिये प्रयत्न किये, पर वे सफल नहीं हो सके। अब त्रित्रोंसे मिलूंगा और विविध विषयों पर उनसे बातें होगी। भारत और इंगलंडके बीच मित्रताके जो बन्धन हैं, मैं उनमे वृद्धि करनेकी आशा करता हूं और वैसे ही यह आशा भी है कि इंगलैंडमें जब तक ठहरूँगा, विभिन्न अवसरों पर बहुत कुछ कहूंगा।" फिर नेहरूजीने हिन्दुस्तानीमें एक छोटा सन्देशा दिया, जिसका अन्त 'जयहिन्द' के साथ किया।

नेहरूजी-एटली मिलन—७ अक्टूबरको दिनमें नेहरूजी ब्रिटेनके प्रधान मंत्री मि० एटलीसे उनके लन्दनवाले सरकारी घर पर १० डाउनिंग स्ट्रीटमें मिले और वहीं जलपान किया। १९४६

के दिसम्बरमें जब नेहरूजी ब्रिटेनके हाथसे भारतके हाथमें सत्ता सौंपी जानेके विषयमें बातचीत करनेके लिये पंडितजी लन्दन उड़कर गये थे. उसके पीछे तो मि० एटलीसे भारतके प्रधान मंत्रीकी हैसिततसे उनका यह प्रथम ही मिलन था। वहांपर ब्रिटिश पर-राष्ट्र मंत्री मि० बेविन, मि० नोएल बेकर; लार्ड लिस्टोवेल प्रभृत कई अन्य ब्रिटिश मन्त्री भी उपस्थित थे। मि० एटलीके साथ जल-पानके समय मि० एटलीकी स्त्रीके सिवा और कोई नहीं था। दोनों प्रधान मन्त्रियोंमें तीन घंटे तक वार्त्तालाप होता रहा। वहांसे मोटर द्वारा नेहरूजी इण्डिया हाउस पहुंचे, जहां महात्मा गांधीके चित्रों, लेखों, फोटो आदिकी एक प्रदर्शिनीका निरीक्षण किया और फिर हाई कमिश्नर मि० मेननके साथ चाय पी। दिनमें नेहरूजीके पास कितने ही स्वागत-संदेशे पहुँचे तथा मित्रोंने उनसे भेंट की।

लाड माउंट बैटनके अतिथि—रातमें नेहरूजी लार्ड और लेडी माउंट बैटनके साथ लन्दनसे उनके देहातवाले ब्राडलैंड्सको रवाना हुए, जो हैंप शायरमें स्थित है। यहीं पर नेहरूजीने कई दिन विश्राम किया। २० अक्टूबरको लार्ड माउंटने अपने अतिथि नेहरूजी और श्रीमती विजय लक्ष्मीको चाय पार्टी दी, जिसमें ब्रिटिश कोष-मन्त्री सर स्टेफर्ड क्रिप्स और श्री युक्त मेनन भी सम्मिलित हुए जो मोटर द्वारा उस दिन लन्दनसे वहां पहुँचे थे।

प्रधान मंत्री सम्मेलनमें

११ अक्तूबरको १०॥ बजे दिनको लन्दनमें राष्ट्र मंडलके प्रधान मंत्रियोंका सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इसमें ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० एटली, भारतके प्रधान मंत्री नेहरूजी, पाकिस्तानके मि० लियाकतअली खां, न्यूजीलैंडके मि० पीटर फ्रेजर, सीलोनके मि० सेनानायक, दक्षिण रोडेशियाके सर गोडफ्रे हगिंस, आस्ट्रेलियाके पर राष्ट्र मत्री डा० एवाल, और दक्षिण अफ्रीकाके मि० लौ उपस्थित थे। कनाडाके प्रधान मंत्री बीमार हो जानेके कारण नहीं शामिल हो सके, नेहरूजीके सर गिरिजाशंकर बाजपेयीके साथ पहुंचते ही तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच उनका स्वागत किया गया। मि० एटलीने राष्ट्र मंडलके प्रधान मंत्रियोंका स्वागत करते हुए जो ब्राड-कास्ट किया उसमें कहा कि यह तो पारिवारिक सम्मेलन है, जिसके भीतर तीन नये उपनिवेश भारत, पाकिस्तान और सीलोनके प्रधान मंत्रियोंका हम हृदयसे स्वागत करते हैं। इस कानफरेंसका मुख्य उद्देश्य उन मुख्य बातों पर आपसमें विचारोंका आदान-प्रदान करना है, जो राष्ट्र मंडलके सभी देशोंसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं। यहां पर हम लोग आपसमें बातचीत करनेको एकत्र हुए हैं, जिससे एक दूसरेकी समस्याओंको अधिक अच्छी तरह समझ सकें और यह देख सकें कि दूसरेके किस प्रकार सहायक बन सकते हैं। लम्बे चौड़े प्रस्ताव यहां नहीं पास किये जायँगे। इसलिये आपसमें अनियमित ढंगसे बातचीत करनेमें ही अधिकांश समय व्यतीत होगा। हम लोगोंका एक ही उद्देश्य

है और वह है शांतिकी स्थापना तथा अपने देशवासियोंकों समृद्धि निर्माण करना। हम सबोंका लोकतंत्र और स्वतंत्रतामें एक समान विश्वास होनेसे हमारे कार्यमें बड़ी सहायता मिलती है। हमारा राष्ट्र मंडल स्वतंत्र, समान और सर्वसत्ता सम्पन्न राष्ट्रोंका है, जो स्वतंत्रतापूर्वक एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं और समान आदर्शोंसे अनुप्राणित हैं।

भारतके प्रधान मंत्री नेहरूजीने अपने संक्षिप्त भाषणमें कहा—"कि यह प्रथम ही अवसर है कि स्वतंत्र भारतके प्रतिनिधिको इसमें भाग लनेका अधिकार मिला है। किसी राष्ट्रकी समस्याएँ अन्योंसे अलग नहीं की जा सकतीं। भारत राष्ट्रमंडलके अन्य राष्ट्रोंके साथ सहयोग करनेको उत्सुक है। मैं यहांके मित्रता और सहयोगके वातावरणसे बहुत प्रभावित हूं और इसे मैं तार्किक वाद-विवादसे अधिक महत्वका समझता हूं।"

स्वागत-समारोहमें

नेहरूजीके स्वागतार्थ कितने ही स्थलों पर जो समारोह हुए और उनके बीच उन्होंने जो दिव्य विचार प्रकट किये, वे उनकी इस यूरोप-यात्राके प्रमुख कार्य समझे जायँगे। सर्व प्रथम सार्वजनिक आयोजन लन्दनके किंग्सवे हालमें १२ अक्तूबरको भूतपूर्व भारतमंत्री और भारतमें १९४६ में आये हुए ब्रिटिश मंत्रिमंडलके प्रधान लार्ड पेथिक लारेंसकी अध्यक्षतामें किया गया था। इसमें प्रो० हेरल्ड लस्की, लेडी माउंट बैटन प्रभृति प्रमुख जनोंके अतिरिक्त

भारतकी स्वतंत्रताके समर्थक कितने ही स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। लार्ड पेथिक लारेंसने अपने भाषणमें कहा कि,—"पंडित नेहरूजीसे मेरी पुरानी मित्रता है। मैं नेहरूजीको भारतका प्रधान मंत्री बना हुआ कई कारणोंसे देखना चाहता था। इनके पास ऐसा विशाल हृदय है, जो मनुष्य द्वारा पृथक् किये हुओंके बीचकी खाईके लिये पुलका काम करता है। मैं जानता हूं कि नेहरूजी अन्य किसी भी आदमीसे अधिक पूर्व और पश्चिमको मिलाते हैं, यह उस आदमीकी प्रधान विशेषता है, जो सर्व प्रथम अपने देशके भाग्य-निर्माणका पथ-प्रदर्शक होगा।" नेहरूजीने कहा कि,—"ब्रिटिश सरकारने लार्ड माउंटबैटनको भारतका अन्तिम वायसराय चुनकर असाधारण बुद्धिमानीका काम किया था। वे भारतमें ब्रिटिश नीतिको कार्यान्वित करनेके लिये बहुत ही उपयुक्त व्यक्ति थे। उपद्रवके दिनोंमें लेडी माउंटबैटन एक कैंपसे दूसरे कैंपमें जा जाकर शरणार्थियोंको सहायता और शान्त्वना प्रदान करती रहती थीं। भारतमें ऐसे बहुत ही कम आदमी हैं, जिनमें लेडी माउंट-बैटनके समान लोगोंका प्रेम हो। मैं भारतवासियों और ब्रिटेनके निवांसियोंके बीच घनिष्टतम सहयोग चाहता हूं। हमारी स्वतंत्रताके आन्दोलनके निर्माता महात्मा गांधी थे। मैंने उसमें काफी बड़ा भाग लिया है, पर और भी बहुतसे लोगोंने उसमें भाग लिया था, जिसमें कुछको तो आप लोग जानते भी नहीं हैं। इसलिये जब भारतके पिछले वर्षोंकी बात सोचते हैं, तो आप महात्माजीका ही ध्यान करते हैं। पिछले वर्ष हमें भारी भयंकरताओं

के बीचसे होकर गुजरना पड़ा है और यदि गांधीजी न होते तो मैं उनसे पार हो जिंदा बचा रहता भी कि नहीं, मुझे ठीकसे यह नहीं मालूम पड़ता है। तो भी हम एक राष्ट्रके रूपमें जीवित रहे। भारतके साथ एक बड़े ही विकट समयमें व्यवहार करनेमें ब्रिटेनकी वर्त्तमान सरकारने जैसे साहस और दूरदर्शितासे काम लिया, उसके लिये मैं यहां पर खुले शब्दोंमें उसे बधाई देता हूं। उस साहस और दूरदर्शिताका फल यह हुआ है कि पीढ़ियोंसे जिन लोगोंको स्वतन्त्रताके लिये कठिन लड़ाई करनी पड़ी थी, उस झगड़ेका ध्यान असाधारण शीघ्रतासे लुप्त हो गया।"

बादशाहके भोजमें—बादशाह जार्जने १३ अक्टूबरकी रातमें अपने बकिंधम राजप्रसादमें प्रधान मंत्रियोंकी कानफरेंसमें समवेत प्रधान मंत्रियों और उनके प्रतिनिधियोंके सम्मानमें एक भोज दिया। नेहरूजी भी उसमें सम्मिलित हुए। बादशाहने अतिथियोंका स्वागत करते हुए ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलको 'राष्ट्रोंकी बिरादरी' कहा। उन्होंने यह भी कहा कि, "मैं भारत, पाकिस्तान और सीलोनके प्रधान मंत्रियोंका स्वागत विशेष रूपेण करता हूँ, जो हमारे राष्ट्रोंकी बिरादरीका आपसकी बातचीतमें प्रथम बार ही भाग ले रहे हैं।"

१३ अक्टूबरकी रातमें नेहरूजीने डोरचेस्टर होटलमें बीमार पड़े हुए कनाडाके प्रधान मंत्री मि० मेकेंजी किंगसे भेंट की और घंटे भर उनसे बातचीत करते रहे। इस बातचीतमें राष्ट्र-मण्डल विषयक मामलोंमें विचारोंका आदान-प्रदान हुआ। वहांसे लौटने

पर नेहरूजीने अपने होटलमें दक्षिण अफ्रिकाके भारतीय नेता मि० पाढू तथा अन्तमें और कई समागत सज्जनोंसे भेंट की। मि० पाटूसे दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतियोंके अभाव-अभियोगों के सम्बन्धमें बातें हुईं। १४ अक्टूबरको सबेरे नेहरूजीने होटलके अपने कमरेमें आस्ट्रेलियाके दो अतिथियोंको जलपान कराया, जिनमें एम एवाट थे। उन्हें भारतीय चपाती तथा अन्य प्रकारके व्यंजन खिलाये। वे लोग बड़े प्रसन्न हुए। नेहरूजीने उनसे एक घंटेसे ऊपर बातचीत की थी। मि० वेल्सफोर्डसे मिल कर नेहरूजी बड़े प्रसन्न हुए। वेल्सफोर्डने एक लेखमें लिखा है कि नेहरूजीको पूर्व और पश्चिममें मध्यस्थता कर मानव जातिके लिये शान्ति भी करनी चाहिये।

पेरिसमें—१५ अक्टूबरको तीसरे पहर नेहरूजी पेरिस पहुँचे। उनके साथ श्री बाजपेयी और श्री मथाई भी थे। नेहरूजीने विश्वके कितने ही प्रमुख पुरुषोंसे अपनी दो दिनकी पेरिस-यात्रामें भेंट की और उनसे सीधा सम्पर्क स्थापित किया। ये सब लोग राष्ट्रसंघकी असेम्बलीमें सम्मिलित होनेके लिये उस समय पेरिसमें उपस्थित थे। नेहरूजीने १५ और १६ अक्टूबरको अमेरिकाके स्टेट सेक्रेटरी मि० मार्शल, सोवियट रूसके उप-परराष्ट्र मंत्री मौ० विशिन्सकी, फ्रांसके राष्ट्रपति विनसेंट आरियल, फ्रांसके परराष्ट्र मंत्री राबर्ट शुमन और चीनके परराष्ट्र मंत्री डा० वांगशोह-चीहसे उनके स्थानों पर जा-जाकर भेंट की और उनसे विभिन्न विषयों पर प्रेमपूर्ण वार्त्तालाप किया। १७ अक्टूबरको रूसी दूतावासमें

मेंटरी एसोसियेशन द्वारा आयोजित समारोहमें सम्मिलित हुए, जो प्रधानमन्त्रियोंके स्वागतार्थ किया गया था। १६ अक्टूबरको इण्डिया हाउसमें भारतीय विद्यार्थियोंकी ओरसे नेहरूजीका शानदार स्वागत हुआ। ब्रिटेनकी सभी युनिवर्सिटियोंके भारतीय विद्यार्थी अपने प्रधान मन्त्रीके स्वागतार्थ दूर-दूरसे पहुँचे थे। उन्हें सम्बोधित कर नेहरूजीने जो भाषण किया, उसमें कहा कि—"भारत में हमारे सामने बहुत बड़ा काम है। हममें से जो लोग गत डेढ़ वर्षसे शासनका भार संभाले हुए हैं, उन्हें बहुत कठिन समयों से सामना करना पड़ा है। इसमें सन्देह नहीं कि हमने गलतियां की हैं और भयंकर भूलें भी, लेकिन हमने बहुत-सी सफलताएँ भी प्राप्त की हैं। हम सदा अपनी त्रुटियोंका विचार करते रहें और सन्तोष करके न बैठ जायें, लेकिन हमें अपनी सफलताओंको भी नगण्य नहीं समझना चाहिये। कितने ही कारणोंसे, जो ऐतिहासिक तथा अन्य प्रकारके हैं, भारतमें अनुशासनका कुछ अभाव है। वह समय निकट आ रहा है, जब यह भार आप लोगों जैसे युवकोंके कन्धों पर डालना होगा। भारतके विशाल ढांचेमें भाग लेना और नवीन भारतका निर्माण करना—यह भारी कठिन कार्य है, जिसमें लगना सभीका कर्त्तव्य है। अभी बहुत कुछ करना बाकी है, यद्यपि कितने ही प्रकारसे हम आगे बढ़े हैं। जो भी काम किया जाये, उससे खीझना नहीं चाहिये। लोग जिस तरह छोटी बातोंमें अपनी योग्यताका परिचय देते हैं, मुख्यकर उसीसे उनके सम्बन्धमें निर्णय किया जाता है। जो

भी काम आ पड़े—चाहे लिफाफे पर टिकट लगानेका ही क्यों न हो, उसे महत्वशून्य कदापि न समझिये। जो आदमी ऐसे कामको महत्वशून्य समझ कर उनकी उपेक्षा करता है वह अपने जीवन भरमें अपनेको महत्वशून्य बना लेता है। भारतमें हमें भारी काम करनेको है, जो तभी किया जा सकेगा, जब सब लोग एक साथ बल लगायें। मैं नहीं समझता कि सबके विचार एक ही होने चाहिये, किन्तु लक्ष्य और उद्देश्य सबका एक होना चाहिये। यदि एक लक्ष्य रख कर हम सब मिलकर काम करें, तो उसे पूरा कर लेंगे।"

पाकिस्तानसे समझौतेका प्रयत्न—२० अक्टूबरकी रातमें ब्रिटिश प्रधान मंत्रीके सरकारी वासस्थानमें नेहरूजी और मि० लियाकत अली दोनों ही को मि० एटलीने बुलाया था। रातमें मि० एटलीने दोनोंको भोजनके लिये निमंत्रित किया, तो भारत और पाकिस्तानके प्रधान मंत्री लन्दन आनेके बाद पहली ही बार मिले। पारस्परिक समस्याओं पर दोनोंमें अत्यन्त मित्रतापूर्ण ढंगसे बातचीत होती रही। बात बिलकुल खुले दिलसे हुई और कोई बात लिखी-पढ़ी नहीं गई। मि० एटलीने भी उसमें भाग लिया और काश्मीरके सम्बन्धमें खास तौर पर समझौतेके लिये रास्ता निकालनेका प्रयत्न किया गया। २१ अक्टूबरकी रातमें फिर दोनों प्रधान मंत्री मि० एटलीके स्थान पर मिले और एक घंटे तक तीनों प्रधान मंत्रियोंमें वार्त्तालाप हुआ। चौबीस घंटेके भीतर यह दूसरी मुलाकात उन लोगोंकी थी। दोनों ही बार

ब्रिटिश पर राष्ट्र मंत्री मि० बेविन भी उपस्थित थे। परन्तु समझौतेका कोई मार्ग नहीं निकाला जा सका।

२१ अक्टूबरको इण्डिया हाउसमें श्री मेनन द्वारा आयोजित स्वागत समारोहके अवसरपर उन्नीस हजार श्रोताओंके समक्ष अपने भाषणमें नेहरूजीने कहा कि,—"युद्ध छिड़नेकी कोई संभावना मुझे नहीं मालूम पड़ती है। मैं समझता हूं कि अन्तमें संसारको महात्मा गांधीका अहिंसाका सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ेगा। हमलोगोंको राजनीतिक क्षेत्रमें कभी-कभी बड़ी बुराईके मुकाबले छोटी बुराईको स्वीकार करना पड़ता है। हमें समझौता करना पड़ता है। हमें जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई है, इससे भारतके निवासियों और ब्रिटेनवालोंके बीच मनोवैज्ञानिक सम्बन्धोंमें बड़े महत्वका परिवर्त्तन हुआ है। फिर भी बहुतसे भारतीय अपने पुराने विचारोंको नहीं त्याग सके हैं। इसी तरह इङ्गलैंडमें भी बहुतसे ऐसे आदमी हैं, जो स्वतंत्र और स्वाधीन भारतका विचार नापसन्द करते हैं और कभी-कभी वे अपनी अत्यन्त अप्रसन्नता प्रकट करनेसे अपनेको नहीं रोक पाते हैं। परन्तु मैं समझता हूं कि यह अवस्था बूढ़ोंकी है। महात्मा गांधी सदा इस बातपर जोर दिया करते थे कि भारत एक पद्धतिके विरुद्ध लड़ रहा है, एक देशके निवासियोंके विरुद्ध नहीं। महात्माजी ऐसे पुरुष थे, जो अपने मार्गसे हटनेका नाम नहीं जानते थे, ऐसे आदमीका अन्त साधारणतः पत्थरोंसे मारे जाने या मृत्युके घाट उतारे जानेसे ही हुआ करता है। महात्मा गांधीका अन्त शायद उनके

योग्य ही हुआ है। वह सिद्ध जीवनका सिद्धके अनुकूल ही अन्त है।"

कानफरेंसकी समाप्ति—२२ अक्टूबरको राष्ट्र मण्डलके प्रधान मन्त्रियोंकी कानफरेंस ग्यारह दिनके बाद समाप्त हो गयी। २६ अक्टूबरको लन्दनसे नेहरूजीने इस कानफरेंसके सम्बन्धमें ब्राडकास्ट करते हुए इस आशयकी बातें कही थीं—"यहां सम्भव है कि हम सभी बातोंमें सहमत न रहे हों, लेकिन यह आश्चर्य जनक बात है कि केवल उद्देश्योंके सन्बन्धमें ही नही, बल्कि ग्रहण किये जानेवाले ढंगोंके विषयमें भी हम लोगोंमें बहुत अधिक अंशोंमें मतैक्य रहा। मैं इस बार बहुत वर्षोंके बाद इंगलैंड आया हूं और जहां कहीं पहुँचा हूँ, वहीं स्वागत और मित्रता ही मिली है। इसके लिये मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। ब्रिटेनका पुराना औपनिवेशिक स्वराज्य, कमशः वदलकर स्वतंत्र देशोंका एक मण्डल बन गया है। जो पहले उपनिवेश थे, उनमेंसे भी बहुतसे अब स्वतन्त्र हो गये हैं। कुछ अभी स्वतन्त्र होनेको हैं। मैं आशा करता हूं कि यह परिवर्त्तन शीघ्र पूरा होगा, जिससे यह वास्तविक अर्थोंमें स्वतन्त्र देशोंका राष्ट्र मण्डल बन जायेगा। भारतके सम्बन्धमें यह और भी अधिक मार्केका परिवर्त्तन है, क्योंकि इसका प्रभाव बड़ी विशाल जन संख्या पर ही नहीं हुआ है और इसके लिये कई पीढ़ियोंसे हम लड़ते रहे हैं। इससे प्रकट होता है कि जब ठीकसे पग उठाया जाता है। तो उसके परिणाम तेजीसे प्रकट होते हैं। आज भारतमें इंगलैंडके विरुद्ध बहुत ही कम दुर्भाव

रह गया है, यद्यपि अतीतमें वह अत्यधिक था। मैं समझता हूँ कि जो थोड़ा बचा होगा, वह भी शीघ्र ही जाता रहेगा, जब हम अपने सामनेके भारी कार्योंमें सहयोग पूर्वक मिलकर आगे बढ़ेंगे। मैं यहांपर प्रधान मन्त्रियोंके सम्मेलनके लिये आया था और अन्य उपनिवेशोंसे आये हुए बहुतसे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञोंसे मिलनेका मुझे अवसर मिला है। हमने आपसमें मिलकर एक दूसरेको समझा है और प्रत्येकको दूसरेकी कुछ कठिनाईयोंका पता चला है। राष्ट्र मण्डलका लक्ष्य आखिर वही तो हो सकता है, जो संयुक्त राष्ट्र संघके चार्टरमें बताया गया है, यानी शांतिकी स्थापना, झगड़ेको रोकना और सारे संसारमें मानवीय अधिकारोंकी स्थापना करना। यदि राष्ट्र मण्डल इसे केवल अपने क्षेत्रमें ही करनेमें सफल नहीं होता, बल्कि अधिक विस्तृत क्षेत्र विश्वमें भी, तो यह मण्डल विश्वके लिये सर्वोत्तम दृष्टान्त उपस्थित करेगा। मैं एक बार फिर ब्रिटेन की जनता और उसकी सरकारके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं।"

"ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० एटलीने पार्लमेंटमें प्रधान मन्त्रियों की कानफरेंसके सम्बन्धमें बताया था कि उसमें कोई ऐसा निश्चय नहीं हुआ है, जिससे किंगकी पदवी बदलनेके लिये कोई कानून बनानेकी आवश्यकता हो। राष्ट्र मंडलके भीतर व्यापारके प्रश्न पर बहुत पूरा विचार हुआ है। रक्षा और राष्ट्र मण्डलके परामर्श के सम्बन्धमें कतिपय प्रस्तावों पर विचार हुआ है, पर वे गवर्नमेंटों के पास स्वीकृति पानेके लिये भेजे गये हैं। यथा समयमें इस सभाको उनकी जानकारी कराऊँगा। लेकिन अभी वे गोपनीय

हैं। सबोंकी यह उत्कट इच्छा देखी गयी है कि जितना अधिक सम्भव हो उतना आपसमें परामर्श हो।"

२३ अक्टूबरको नेहरूजी पुनः लार्ड माउंट बेटनके देहातवाले घर आइलैंडमें आराम करनेके लिये पहुंच गये। पन्द्रह दिनोंतक लन्दनमें प्रधान मन्त्रियोंकी कानफरेंस तथा विभिन्न समारोहोंके सिलसिलेमें प्रतिदिन अठारह अठारह घंटे व्यस्त रहना पड़ा।

फिर पेरिसमें

२६ अक्टूबरको नेहरूजी लन्दनसे दूसरी बार वायुयान द्वारा पेरिस गये। लन्दनके हवाई अड्डेपर उन्हें विदा करनेके लिये लार्ड माउंट बेटन, मि० नोएल बेकर, श्री युक्त मेनन प्रभृति महानुभाव उपस्थित थे। नेहरूजी मंगल वारको वहां पहुंचे और शुक्रवार को उनका भाषण सुननेके लिये राष्ट्र संघकी असेम्बलीका असाधारण अधिवेशन होनेवाला था। परन्तु एक तो असेम्बलीके अध्यक्ष डा० एवाट लन्दनमें बीमार पड़नेके कारण लौटकर पेरिस पहुंचे नहीं थे और कोई कोई ऐसा कहते देखे गये कि जब भारतके प्रधान मन्त्री नेहरूजी और पाकिस्तानके प्रधान मन्त्री मि० लियाकत अली दोनों ही पेरिसमें उपस्थित हैं, तब नेहरूजीके भाषणके लिये विशेष व्यवस्था की जाती है, तो मि० लियाकत अलीके भी की जानी चाहिये। जो हो, विभिन्न देशोंके राजनीतिज्ञ तो संसारके सबसे बड़े राजनीतिज्ञ और विश्ववन्द्य महात्मा गांधीके उत्तराधिकारी, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पं० जवाहरलाल नेहरूके श्रीमुखसे

कुछ उपदेश सुननेको लालायित थे, इसलिये जब शुक्रवारको उनके भाषणके लिये व्यवस्था होनेमें अड़चन पैदा हो गयी, तब सबोंको भारी निराशा हुई क्योंकि नेहरूजीका भारतके लिये प्रस्थान करने का निश्चित प्रोग्राम बन जानेसे और अधिक समय नहीं रह गया था।

२७ अक्टूबरको नेहरूजीके स्थान पर ब्रिटिश पर राष्ट्र मन्त्री मि० बेविन मिलनेको गये। लन्दनकी कानफरेंसके समय दोनों की भेंट वहां कई बार हो चुकी थी। दोनोंमें एक घंटेसे अधिक तक बातचीत होती रही। अन्य कई देशोंके प्रमुख पुरुषोंसे भी नेहरूजीकी उस दिन मुलाकात हुई थी। २८ अक्टूबरको नेहरूजी बहुत अधिक व्यस्त रहे। सवेरे पेरिसमें रहनेवाले भारतीयोंसे मिले। श्रीमती रूजवेल्टके साथ जलपान किया और सन्ध्याको अमरीकाकी रिपबलिकन पार्टीके नेता मि० डुलेजसे उन्होंने बातचीत की। २६ और ३० अक्टूबरको नेहरूजीने एशियाके देशोंके पर‌राष्ट्र-मन्त्रियोंके साथ जलपान किया। इन अवसरों पर उन लोगोंने दिल्लीमें हुए एशिया सम्मेलनमें भारतके नेतृत्वकी सराहना की। २६ अक्टूबरको जलपानमें सम्मिलित होनेवाले देशोंके प्रतिनिधियोंमें चीन, फिलिपाइन, बर्मा, स्याम, तुर्की, ईरान और अफगानिस्तानके भी थे। ३० को सऊदी अरब, लेवनन, सीरिया और ईरानके प्रतिनिधियोंने नेहरूजीके साथ जलपान किया। दूसरा एशिया सम्मेलनकी योजना पर इन नेताओंमें विचार-विमर्श हुआ। अमरीकाके प्रसिद्ध ईसाई धर्म-प्रचारक

स्टेलनीजोन्सने अपनी पुस्तक 'महात्मा गांधी' में नेहरूजीको वर्त्तमान कालका विश्वका सर्वश्रेष्ठ मानव लिखा है।

३१ अक्टूबरको फ्रांसकी इंडियन एसोसिएशनका आतिथ्य ग्रहण करते हुए नेहरूजीने अपने संक्षिप्त भाषणमें कहा कि–"मैं यूरोप और अमेरिकाके राजनीतिज्ञोंसे अनुरोध करूँगा कि वे वास्तविकता की दृष्टिसे सारी बातें देखें। साधारणतः यूरोप और अमेरिकाके सम्बन्धके मामलों ही में रस लेते दिखाई देते हैं। यूरोप विश्वका अत्यन्त महत्वपूर्ण और आवश्यक भाग है सही, किन्तु वही तो समग्र संसार नहीं है, पर यह तथ्य साधारणतया भुला दिया जाता है। यह गत दो सौ वर्षोंमें भुला दिया गया, जिसका कारण यह हुआ कि एक अर्थमें यूरोपका ही शेष सारे संसार पर प्राधान्य था। प्राधान्यका वह युग अब समाप्त हो गया है और जहां कहीं अब भी अवशिष्ट है, वह भी बहुत शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा। लेकिन मेरी समझसे इस तथ्यके परिणाम अमेरिका व यूरोपके लोगोंके दिमागोंमें नहीं बैठे हैं। जो कुछ हुआ है, उसका महत्व अभी पूरी तरहसे उनकी समझमें नहीं आया है। यही कारण है कि विश्व या विश्व-समस्याओं पर विचार करनेमें उनका दृष्टि-विन्दु गलत होता है। यूरोपमें जो कुछ होता है, उसका एशिया पर प्रभाव पड़ेगा और जो कुछ एशियामें होता है, उसका यूरोप पर। एशिया आज बदल चुका है। हिन्दुस्तान विविध सस्याओं और कठिनाइयोंसे भरा हुआ है। लेकिन तो भी यह ऐसा देश है, जो जीवनी शक्तिसे भरा हुआ है। यह बहुत प्राचीन

देश है, किन्तु यौवन-शक्तिसे परिपूर्ण है। हिन्दुस्तानने अनेक भूलें कीं और ठोकरें खा कर गिरा भी। लेकिन फिर उठ कर आगे बढ़नेकी ताकत उसमें थी। महात्मा गांधीके नेतृत्वमें गत बीस-तीस वर्षोंमें हिन्दुस्तानने हर गलतीके बाद उसने और आगे बढ़नेकी शिक्षा ग्रहण कर ली, निस्सन्देह इसके अनेक कारण हैं। लेकिन मुख्य कारण वह तरीका है, जिसको गांधीजीने अंग्रेजी राज्यके विरुद्ध लड़नेके लिये प्रकट किया। यह ऐसा है कि चाहे सफल हो या न हो, लेकिन हटाया नहीं जा सकता, इसलिये अन्त में उसकी सफलता निश्चित है। हालके वर्षोंमें विश्वको महायुद्धोंमें पड़ना पढ़ा, तो भी उनसे उसने एक प्रकारसे कुछ भी नहीं सीखा है। इससे प्रकट होता है कि मानव मस्तिष्क या यों कहिये कि वे मस्तिष्क कितने पिछड़े हुए हैं, जिनका हमारे राजनीतिक भाग्योंपर प्राधान्य है। आजकी राजनीतिमें जो कुछ हो रहा है, वह यह है कि गलत और बुरे कर्म करनेमें प्रतिद्वन्दिता चल रही है। प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया निश्चित है और यदि वह प्रतिक्रिया बुरी है, तो उसके परिणाम भी बुरे होंगे। कभी-कभी यह जनना बहुत कठिन होता है कि क्या ठीक है और क्या नहीं, और कभी-कभी हमें दो बुराइयोंमेंसे किसी एकको चुनना पड़ता है। मानव-जातिके इस सङ्कट कालमें यह स्मरण रखना ठीक होगा कि घृणा और हिंसा तथा गलत काम करनेसे लाभ नहीं होता। इसका प्रतिफल प्राप्त होता है। हो सकता है कि आज संसार जिन सङ्कटोंसे होकर गुजर रहा है, ये अतीतमें संग्रह की हुई घृणा और हिंसाके परिणाम हो।"

१ नवम्बरको रूसके उप-परराष्ट्र सचिव मो० विशिंस्कीने रूसी दूतावासमें नेहरूजीको निजी तौर पर जलपान कराया, जहां दोनों राजनीतिज्ञोंमें मित्रतापूर्ण वार्त्तालाप हुआ।

राष्ट्र-संघकी असेम्बलीमें भाषण

पेरिससे नेहरूजीका प्रस्थान २ नवम्बरकी रात्रिमें निश्चित हो चुका है, परन्तु विश्वके राजनीतिज्ञ आपका सन्देशा सुननेके लिये अत्यन्त उत्सुक हैं, इसलिये अब इस अन्तिम घड़ीमें भी इसके लिये घोर प्रयत्न किये जा रहे हैं कि संघकी असेम्बलीमें आपका भाषण कराया जाय। परन्तु नेहरूजी अरब लीगका निमन्त्रण पहले ही से स्वीकार कर चुके हैं और उन्हें नयी दिल्ली भी यथा-सम्भव शीघ्र पहुंचना है, इसलिये वे अपना प्रोग्राम बदलेंगे, इसकी सम्भावना बिल्कुल नहीं पायी जाती। परन्तु ३ नवम्बरको असेम्बलीकी बैठक होनी है, जिसमें सर्वप्रथम मेक्सिकोके इस प्रस्ताव पर बिचार होना है कि बड़ी शक्तियां अपने मतभेदोंको मिटा देनेके लिये फिरसे प्रयत्न करें और इस विषय पर बिचार होनेके समय यदि नेहरूजीका भाषण हो सके, तो बहुत ही उपयुक्त होगा, ऐसा विचार कितनों ही के हृदयमें पैदा हो रहा है। वैसे नेहरूजी जो सन्देशा विश्वको दे सकते हैं, वह उन्होंने फ्रांसकी इंडियस एसोसियेशनके समारोहके अवसर पर सार रूपमें सुना ही चुके हैं, इसलिये वे तो एक प्रकारसे अपना काम इस सम्बन्धमें पूरा कर ही चुके हैं। लेकिन उनके भाषणके लिये सभी सामान जुट गया स्पष्ट दिखाई दे रहा है। संयोगवश उस हवाई जहाजके

रवाना होनेका समय टल गया, जिससे वे प्रस्थान करने वाले थे और इसका कारण तूफान था, जिसके मारे उसके पेरिसके अड्डे पर पहुँचनेमें बहुत अधिक देर हो गयी। उधर असेम्बलीके अध्यक्ष डा० एवाट भी १ नवम्बरकी रातमें लन्दनसे पेरिस लौट आये थे। बात यह हुई थी कि जैसे ही नेहरूजी पेरिस पहुंचे थे, प्रायः ठाक उसीके बाद ही डा० एवाटको लन्दन जाना पड़ा था, जहाँ उन्हें इनफ्लुएंजा हो गया, जिसके कारण उन्हें इतनी देर तक वहाँ रूक जाना पड़ा था। डा० एवाटकी प्रबल इच्छा रही है कि असेम्बलीमें नेहरूजीका भाषण हो, इसलिये पेरिस पहुँचनेके पश्चात् उन्होंने २ नवम्बरको नेहरूजीसे सम्पर्क स्थापित कर साग्रह अनुरोध किया कि वे अपनी यात्रा स्थगित कर दें और अन्तमें नेहरूजीको भी उनका अनुरोध स्वीकार कर लेना पड़ा। इस प्रकार लोगोंकी इच्छा पूरी हुई और ३ नवम्बरको संयुक्तराष्ट्र-संघकी असेम्बलीमें समवेत विश्वके समस्त देशोंके राजनीतिज्ञोंको नेहरूजी का दिव्य सन्देश सुननेका सुअवसर प्राप्त हुआ।

संयुक्त राष्ट्र संघकी असेम्बलीके अध्यक्ष आस्ट्रेलियन परराष्ट्र मंत्री डा० एवाटका निमंत्रण स्वीकारकर भारतके प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी नेहरूका भाषण ३ नवम्बरको संघकी असेम्बलीमें उस समय हुआ, जब मेक्सिकोके उस प्रस्ताव पर बादविवाद हो चुका, जिसमें बड़े राज्योंसे अपील की गयी थी कि वे अपने मतभेद मिटानेके लिये फिरसे नये प्रयत्न करें। नेहरूजीने अपना भाषण इस प्रकार आरम्भ किया—

"इस असेम्बलीके समक्ष बोलनेके लिये मुझे जो अवसर दिया गया है, इसके लिये मैं कृतज्ञ हूं। आज मैं इस अवसर पर कुछ घबराहट अनुभव कर रहा हूं। कारण, यह असेम्बली विश्वकी जनताका प्रतिनिधित्व करती हैं और हम लोग जो यहां उपस्थित हैं, चाहे बड़े पुरुष या स्त्री हों या छोटे, एक महान् कार्यका प्रतिनिधित्व करते हैं और उस कार्यकी महत्ताका कुछ दायित्व जब हम पर पड़ता है, तब हमें वह हमारी वास्तविक स्थितिसे बड़ा बना देता हैं। हम लोग कठिन और पेचीली समस्याओं पर विचार कर रहे हैं। मैं इस अवसर पर उन बड़ी समस्याओं पर कुछ कहनेका साहस नहीं करूंगा, जो हमारे सानने उपस्थित हैं। आपके ऊपर विश्वका बड़ा भारी भार है, लेकिन मुझे बहुधा आश्चर्य होता है कि इन समस्याओं पर जब हम विचार करते हैं, तब ठीकसे विचार करते हैं कि नहीं।

"आपका उद्देश्य स्पष्ट है, किन्तु उस उद्देश्य पर दृष्टि रखनेमें हम बहुधा छोटी-छोटी बातोंमें फंसकर इधर-उधर हो जाते हैं और वास्तविक लक्ष्यको भूल जाते हैं। कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि वास्तविक उद्देश्य हमसे ओझल हो गया है और हम छोटे उद्देश्यों पर आ गये हैं। मैं जिस देशका निवासी हूं, उसने लम्बे संघर्षके पश्चात् स्वतंत्रता प्राप्त की है, यद्यपि वह संघर्ष शांतिपूण रहा है। उस लम्बे संघर्षमें हमारे महान् नेताने हमें सिखाया था कि हमें अपने उद्देश्यको ही नहीं, बल्कि उस उद्देश्यकी प्राप्तिके साधनोंको भी कभी नहीं भूलना चाहिये। उन्होंने सदा ही इस बात पर

जोर दिया कि केवल यही पर्याप्त नहीं कि उद्देश्य अच्छा हो, बल्कि उसी प्रकार उस उद्देश्य तक पहुंचनेके साधन भी अच्छे होने चाहिये। हमें यह याद रखना चाहिये कि यदि हमारे नेत्र रक्त-रंजित रहेंगे और हमारे मस्तिष्कमें भावावेशके बादल छाये रहेंगे, तो हम अच्छेसे अच्छे उद्देश्यको भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। इसलिये यह सोचनेकी अपेक्षा कि हमारा उद्देश्य क्या है, यह सोचना आवश्यक हो जाता है कि हम कर क्या रहे हैं।

"यह संघ दो महायुद्धोंके पश्चात् और उनके परिणाम स्वरूप बना है। उन युद्धोंसे क्या शिक्षा मिली है? निश्चय ही यह कि घृणा और हिंसासे आप अशान्ति नहीं स्थापित कर सकेंगे। इतिहास और उन दोनों महायुद्धोंसे, जिन्होंने मानव जातिको मटियामेट कर डाला है, हमें यही सीख मिली है कि घृणा और हिंसासे केवल घृणा और हिंसा मिलेगी। हम घृणा और हिंसाके घेरेमें पड़ गये हैं। अत्यन्त चमकीले-भड़कीले वादविवादसे हम उस घेरेसे नहीं निकल सकते। उससे निकलनेके लिये हमें दूसरे मार्ग और साधन अपनाने होंगे। यदि आप इसी घेरेमें बने रहे, तो उसके फलस्वरूप सम्पूर्ण संसारकी अत्यधिक बर्बादी ही नहीं होगी, बल्कि कोई भी राष्ट्र अथवा राष्ट्रोंका कोई भी गुट अपने उद्देश्य न प्राप्त कर सकेगा।

"तब हम कैसे आगे बढ़ें? हो सकता है कि यह घृणा, पक्षपात और भय अपने हृदयसे निकाल देना कठिन हो, लेकिन जब तक हम इन्हें नहीं निकालेंगे, कदापि सफल न होंगे। हम यूरोपीय

विश्वास है कि कमसे कम देखे जा सकनेवाले भविष्यमें युद्ध नहीं होने जा रहा है, तो यह भय क्यों हो? हम प्रत्येक आक्रमणका सामना करनेको तैयार हों, जिससे कोई देश या समाज मूर्खतासे कुचाल न चल सकें। संयुक्त राष्ट्रसंघका अस्तित्व ही उसीके लिये है, किन्तु प्रत्येकको कार्य या शब्दमें आक्रमणकी भावना हटानी चाहिये। मुझे भय है कि वाद-विवादमें हममेंसे बहुत कम लोग ही इससे बचते हैं।

"मुझे इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि यह असेम्बली हमारी समस्याओंको सुलझायेगी। मुझे भविष्यका कुछ भी भय नहीं है। यद्यपि भारतकी सैन्यशक्ति बहुत बड़ी नहीं है, तो भी मैं संसारकी बड़ीसे बड़ी शक्तियोंकी स्थल सेनाओं, जल सेनाओं और एटम बमोंसे नहीं डरता हूं। शस्त्रास्त्रोंकी शक्तिकी अपेक्षा एक और भी शक्ति है। मेरे गुरुने मुझे यही पाठ पढ़ाया है। हम एक शक्तिशाली देश और शक्ति सम्पन्न साम्राज्य के विरुद्ध निहत्थे खड़े हुए थे। हमने अपनी स्वतंत्रता अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण साधनोंसे प्राप्त की, क्योंकि उस सारे समयके भीतर हमने निश्चयकर रखा था। बुराईके सामने झुकेंगे नहीं, चाहे जो हो जाये और न परिणामोंका ही भय करेंगे। मैं यह नहीं जानता कि वह शिक्षा इतनी समस्याएं रखनेवाले सारे संसारके लिये लागू हो सकती है कि नहीं, लेकिन उसके मूल सिद्धान्तोंका प्रयोग निश्चय ही किया जा सकता है।

"मैं तंतीस करोड़वाली जनताका प्रतिनिधि हूं। भारत स्वतंत्र

होनेके एक वर्ष पश्चात् अब तेजीसे आगे बढ़ना चाहता है और वह अपनी रचना और अपना निर्माण इस प्रकार करना चाहता है, जिससे वह शांति और संसारके कल्याणके लिये एक शक्ति बने। मेक्सिकोका जो प्रस्ताव असेम्बलीने अभी पास किया है, उसमें बड़े राज्योंसे अपने मतभेद मिटा देने और स्थायी शान्तिकी वृद्धि करनेका अनुरोध किया गया है। यदि उसका पालन किया जाये, तो शान्ति और अपने सामनेकी समस्याओंको सुलझानेमें असेम्बलीको बड़ी सहायता मिलेगी।"

राष्ट्रसंघकी असेंबलीमें नेहरूजीका भाषण बड़े ही ध्यानसे सुना गया और उसकी समाप्तिपर विश्वके सभी प्रसिद्ध नेता वाह-वाह करते देखे गये। सच तो यह है कि अपनी यूरोप यात्रामें जो कोई भी उनके सम्पर्कमें आया, वही उनका प्रशंसक बन गया। यहाँ तक कि बादशाह जार्ज षष्ठने उनसे मिलनेके पश्चात् लार्ड माउण्ट बैटनको एक पत्रमें लिखा था कि, मैं नेहरूजीके व्यक्तित्वसे बहुत प्रभावित हुआ। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि किसी राजनीतिज्ञके सम्बन्धमें इङ्गलैंडके नरेशने इस तरहका विचार इसके पूर्व और कभी नहीं प्रकट किया था।

भारतको वापसी

काहिरामें—३ नवम्बरको ही नौ बजे रात नेहरूजी वायुयान द्वारा पेरिससे मिश्रकी राजधानी काहराके लिये रवाना हो गये। अब लीगका निमंत्रण स्वीकार करते हुए उन्होंने वापसी यात्राके

बीच वहां दो-तीन दिन ठहरनेका वचन दे दिया था। ४ नवम्बर को प्रातःकाल वे सकुशल काहरा पहुंच गये। पाकिस्तानके प्रधान मंत्री लियाकत अली खां वहां पहले ही पहुंचे हुए थे। दोनों ही अरब संघके मेहमान थे और एक होटलमें उनके ठहरनेकी भी व्यवस्था थी। नेहरूजीके विचार सुननेके लिये जो प्रेस-कानफरेंस हुई, उसमें नेहरूजीने प्रश्नोंके उत्तर देते हुए कहा,—"मैं नहीं समझता कि निकट भविष्यमें कोई युद्ध छिड़नेकी सम्भावना है। सर्वत्र शान्तिके पक्षकी बातें पायी जाती हैं। यद्यपि संसार अत्यन्त कठिन राजनीतिक संकटसे होकर गुजर रहा है, जिससे साधारणतया युद्ध छिड़ जाता है, पर सर्वत्र शान्तिके पक्षकी बातें देखी जाती हैं। विश्वकी समस्या एशियाके बाहर रहनेकी अवस्थामें नहीं सुलझायी जा सकती। यदि हिंद-एशियामें दूसरे देशको दासत्वमें रखने वाली शक्ति द्वारा और भी अधिक आक्रमणकी कोई कार्रवाई की गयी, तो भारत और विश्वमें उसकी भयंकर प्रतिक्रिया होगी। वहांसे साम्राज्यवाद और आधिपत्यका पूर्ण रूपसे मिटना आवश्यक है। पूर्वके देशोंके निवासियों और उनके नेताओंको एक दूसरेसे मिलना चाहिये और एक दूसरेको जानना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि मध्य-पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीचके सम्बन्ध प्रेमपूर्वक बढ़ेंगे, जिससे हम लोग आगे उपस्थित होने वाली भावी कठिनाइयोंका सामना करनेमें समर्थ हों।"

रातको मिश्रके प्रधान मंत्री नोकराशी पाशाने नेहरूजीको भोज दिया। अरब लीगकी ओरसे नेहरूजी और मि० लियाकत अली

के स्वागतार्थ जो समारोह किया गया था, उसके बीच इन दोनों प्रधान मंत्रियोंने हाथ मिला कर एक दूसरेका अभिवादन किया। मिश्रके शाह फारुकने नेहरूजीका स्वागत किया और नेहरूजीने अरब लीगके सेक्रेटरी जनरल अब्दुल रहमान अजामपाशासे मिल कर एक घंटा बातचीत की। इस तरह अनेक प्रमुख पुरुषों और नेताओंसे मिलनेके बाद ५ नवम्बरको सबेरे वे फारुक हवाई अड्डे से भारतके लिये उड़े। उसी समय मि० लियाकत अली भी एक अलग विमानसे कराचीके लिये रवाना हुए।

दिल्लीमें—बम्बई होते हुए नेहरूजी ६ नवम्बर दोपहरको दिल्ली के पालम हवाई अड्डे पर पहुंचे, जहां उनका स्वागत करनेके लिये गवर्नर-जनरल श्री राजगोपालाचार्य, उप-प्रधान मंत्री सरदार पटेल तथा मंत्रिमंडलके अन्य मंत्रीगण और उक्त सरकारी अफसर उपस्थित थे। जयपुर कांग्रेसके लिये निर्वाचित अध्यक्ष डा० पट्टाभि सीतारमैया भी वहां उपस्थित थे, जिनके कांग्रेसका अध्यक्ष निर्वाचित होने पर नेहरूजीने उन्हें बधाई दी। हवाई जहाजसे उतरने के पश्चात् नेहरूजी दस मिनट वहां ठहरनेके बाद गवर्नर-जेनरल की मोटरमें उनके तथा सरदार पटेलके साथ सवार होकर वहांसे रवाना हो गए। अपने प्रधान मन्त्रीको एक महीने बाद अपने बीच पाकर लोगोंके हर्षकी कोई सीमा ही नहीं थी। ७ नवम्बरको नेहरूजीने विधान-परिषद्में कांग्रेस पार्टीकी विशेष बैठकमें लन्दन और पेरिसमें किये हुए अपने कार्योंका वर्णन किया। यह बैठक डा० पट्टाभिकी अध्यक्षतामें हुई थी और डेढ़सौके लगभग कांग्रेसी

सदस्य उपस्थित थे। उन्होंने बताया कि न तो प्रधान मंत्रियोंकी कानफरेंसमें और नहीं ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० एटलीके बातचीत करने ही में कोई बात ऐसी कही गई है, जिससे यह कहा जा सके कि ब्रिटेनके साथ भारतके सम्बन्ध भविष्यमें क्या होंगे, इस विषयमें उसके प्रधान मंत्रीने कोई वचनबद्ध होने वाली बात कह दी है। ७ नवम्बरको नेहरूजीने दिल्लीके एक समाचार-पत्रकी रजत-जयन्ती के अवसर पर अपने ये विचार प्रकट किये, —"स्वतंत्र भारतमें पत्र लोगोंके मस्तिष्कको द्वेषरहित बनानेमें बड़ा काम कर सकते हैं, लेकिन उन्हें चाहिये कि लोगोंको समझानेके पहले सब बातें स्वयं समझ लें। विदेशोंमें मैंने भारतका जितना अधिक सम्मान पाया, उसे देख कर मुझे आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। यह सम्मान गांधीजीके कारण है, हमारे शोरगुलके कारण नहीं। हमारा युग बड़े परिवर्त्तनका युग है, प्रायः ऐसा होता है कि युग बदल जाता है, किन्तु लोग नहीं बदलते। फ्रांसकी क्रांतिके बाद यही हुआ था। उस क्रांतिके आदर्श यूरोपके आगे बढ़ जाने पर भी सौ वर्ष तक कायम रहे। स्वतन्त्रताके मौलिक सिद्धान्त अपरिवर्त्तित रहने चाहियें। किन्तु कुछ नये प्रश्न संसारके सामने आगये हैं, जिनका हमारे पास कोई उत्तर नहीं है। भारतका उदाहरण इसके विपरीत है। भारत बदल सकता है, किन्तु भारतीयोंके विचार अपरिवर्त्तित रह सकते हैं। इसलिये हमें सब प्रश्नोंका अध्ययन सावधानीसे करना चाहिये। समाचार पत्र कई बार कुछ बातोंके सम्बन्धमें अपना विचार प्रकट नहीं कर पाते। वे

जो कुछ कहते हैं, कई बार घटनाओंसे गलत सिद्ध हो जाता है। जैसे, पत्रोंने लिखा कि अमेरिकाके राष्ट्रपतिके चुनावमें डीवी जीतेगा, किन्तु हुआ बिल्कुल विपरीत। समाचार पत्रोंको लोगोंको धोखा नहीं देना चाहिये।

८ नवम्बरको विधान-परिषद्की बैठकमें नेहरूजीने अपनी यूरोप-यात्राके सम्बन्धमें भाषण करते हुए बताया कि मैंने ब्रिटेन और भारतके भावी सम्बन्धोंके विषयमें जितनी बातचीत की, उसमें यह कहता रहा कि मैं अपने देश तथा अपनी सरकारकी ओरसे कोई निश्चित वादा नहीं कर सकता। यह ऐसा विषय है, जिसके सम्बन्धमें विधान-परिषद् ही निर्णय कर सकती है। मैंने यह बात साफ शब्दोंमें कह दी थी। साथ ही मैंने विधान-परिषद् द्वारा स्वीकृत उद्देश्य-प्रस्तावकी ओर भी इङ्गलैंडके राजनीतिज्ञोंका ध्यान आकर्षित कर दिया था। मैंने कहा था कि इस प्रस्तावको भी विधान-परिषद् चाहे तो बदल सकती है। इस मामलेमें ही नहीं। और सब विषयोंमें भी परिषद् स्वाधीन है और स्वेच्छासे कोई भी निर्णय करनेके लिये स्वतंत्र है। फिर भी उसने अपने आपको तथा मसविदा-समितिको उक्त हिदायत दी थी। जब तक प्रस्ताव कायम है, तब तक हमारा विधान उसीको सामने रखते हुए तैयार किया जाना चाहिये। विधान विषयक स्थिति को स्पष्ट करते हुए मैंने यह भी कहा था कि हम लोग अन्य सब देशोंके साथ भी मैत्रीसे रहना चाहते हैं। हम इङ्गलैंड और राष्ट्रमण्डलके साथ भी मैत्रीसे रहेंगे। यह चीज किस तरह हो

जकती है, इसपर विचार किया जाना चाहिये। अन्तिम निर्णय हमारे यहां हमारी विधान-परिषद तथा भारतके लोगों और सरकारको करना है। बस इस समय मैं इतना ही कहूंगा। कारण यह है कि आगे चलकर शायद परिषद्को इस मामलेमें और निश्चित रूपमें विचार करना पड़े। यह मामला हमारे सामने चाहे किसी भी रूपमें क्यों न पेश किया जाये, मैं तो यह कहूंगा कि आजकल हम जिस विधाम पर विचार-विनियम कर रहे हैं, उसका इस मामलेसे कोई सम्बन्ध नहीं है। हम लोग एक सर्वतंत्र स्वतंत्र प्रजातंत्र अथवा अपने शब्दोंमें एक लोकतंत्री देशके लिये विधान तैयार कर रहे हैं। हमें इस मामलेमें विचार करना होगा। इसका हमारे विधान पर किसी प्रकारका प्रभाव न पड़ेगा। कारण यह है कि इस विधानको जनताके प्रतिनिधि तैयार कर रहे हैं, इसलिये यह देशकी जनताकी इस इच्छाका परिचायक होगा कि हमारे देशका शासन कैसे चलाया जाये। हमें भाषाके आधार पर प्रान्तों तथा राष्ट्र भाषाके प्रश्न पर बहुत अधिक विवादमें नहीं पड़ना चाहिये। भाषागत प्रान्तोंके सम्बन्धमें मुझे बहुत दिनोंसे ऐसा दिखाई दे रहा है कि भारतके विभिन्न प्रान्तोंका इस तरह संगठन किया जाना चाहिये, जो वहांके लोगोंकी सांस्कृतिक, भौगोलिक और आर्थिक परिस्थितियों अथवा उनकी इच्छाओंके अनुकूल हो। हम इस सम्बन्धमें बहुत दिन पहले ही फैसला कर चुके हैं। मेरा खयाल है कि केवल भाषाके आधार पर प्रान्त रहनेसे भी हमारा काम न चलेगा।

निस्सन्देह यह एक विचारणीय प्रश्न है और इस पर विचार किया जाना चाहिये। लेकिन कभी-कभी हमें इससे अधिक आवश्यक और विचारणीय विषयों पर विचार करना पड़ा है। जो कुछ हमारे पास है, उसे भंग करने और नये सिरेसे बनानेमें पहले हमें कई बार सोचना होगा, मैं तो इस परिषद्से कहूंगा कि यह प्रश्न ऐसा नहीं है कि इस पर फौरनसे पेश्तर कोई फैसला कर ही लिया जाये। यह तो एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर एकदम शांत वातावरणमें विचार किया जाना चाहिये। लेकिन दुर्भाग्यकी बात है कि इस विषयमें काफी क्रोध और गरमीसे काम लिया जा रहा है। क्रोध और गरमीसे तो बुद्धि तमसावृत्त हो जाती है। अतएव मैं इस सभासे निवेदन करूंगा कि वह इस विषय पर तभी विचार करे, जब यह उचित समझे।

भाषाके विषयमें भी मैं यही दलीलें देता हूं। यह स्पष्ट है कि एक स्वतंत्र देशको अपनी ही भाषाका व्यवहार करना चाहिये। लेकिन दुर्भाग्यसे जब मैं और मेरे साथी दूसरे महानुभाव विदेशी भाषाका प्रयोग कर रहे हैं, तो इससे पता चलता है कि कहीं न कहीं कोई कमी अवश्य है। हमें यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिये, लेकिन उसमें परिवर्त्तनका आग्रह करते हुए हमारे बहुत अधिक विवादमें पड़ने अथवा समूचे विधानको स्वीकृत करनेमें देर करनेकी आवश्यकता नहीं। एक व्यक्ति अथवा राष्ट्रके जीवनमें भाषाका बहुत बड़ा स्थान है। इसलिये हमें इस पर अभी और विचार करना होगा। हमें लोगों पर कोई ऐसी चीज थोपनी नहीं

होगो, जो उनकी इच्छाके प्रतिकूल हो। इसकी प्रतिक्रिया उलटी होगी।

यहां इस सभामें विधानके मसौदे पर वाद-विवाद हो रहा था और मुझे बीचमें बोलना पड़ रहा है। आजसे लगभग दो वर्ष पहले मैंने यहां उद्देश्य प्रस्ताव उपस्थित किया था। उस प्रस्तावमें बतलाया गया है कि भारतीय जनताकी भावना क्या है। आज हमें अपना विधान बनाते समय उस प्रस्तावका ध्यान रखना होगा। उस प्रस्तावमें बता दिया गया है कि हमारे विधानकी आधार भूत बातें क्या होनी चाहियें। आखिर विधान है किस चिड़ियाका नाम ? शासन-प्रणाली और लोगोंकी जीवन-प्रणाली को कानूनी रूप दे देना ही तो विधान है। इसलिये हमारे विधान से जनताकी आकांक्षाओंकी पूर्ति अवश्य हो जानी चाहिये। जबसे उक्त प्रस्ताव पास हुआ है, तबसे और भी कई प्रश्न उठाये गये हैं। वे महत्वपूर्ण न हों ऐसी बात भी नहीं है। लेकिन हमें तो अपेक्षा-कृत अधिक महत्वके प्रश्नको पहले लेना होगा। यदि हमने दूसरे दर्जेकी चीजोंको पहला स्थान दे दिया, तो प्रथम दर्जेकी चीजें नष्ट हो जायँगी।

कुछ आधारभूत बातें उपस्थित करनेको मुझे वाद विवादमें हस्तक्षेप करना पड़ा है। पिछले दिनोंमें बाहर चला गया था। वहां मैं विभिन्न देशोंके लोगों और राजनीतिज्ञोंसे मिला। मुझे अपने इस प्यारे देशको दूरसे बैठकर देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ यह ठीक है कि जो लोग चीजोंको दूरसे बैठकर देखते हैं, उन्हें इस

देशकी बहुतसी चीजें नहीं दीख पड़तीं। लेकिन यह भी ठीक है कि जो लोग यहां रह रहे हैं और सदा कुछ कठिनाइयों और समस्याओंमें घिरे रहते हैं, वे समूचे चित्रको नहीं देख सकते। इसीसे हमारे यहां कई परिवर्त्तन हो गये, लेकिन हम उन्हें देख नहीं सके। इसलिये हमें यहांकी उलझनोंसे बाहर होकर जरा दूरसे तथा दूसरोंकी आंखोंसे अपने देशको देखना चाहिये। मुझे ऐसा अवसर मिला और मैंने अपने देशको दूरसे बैठकर देखा।

जिस देशके लिये हम यह विधान बनाने जा रहे हैं, उसके दो टुकड़े कर दिये गये। उसके बाद जो कुछ हुआ, वह आज भी हमारे दिमागमें ताजा है और बहुत समय तक रहेगा। फिर भी हिन्दुस्तानकी शक्ति और स्वतन्त्रता बढ़ी है और हिन्दुस्तानका यह विकास, इसका एक स्वतन्त्र देशके रूपमें उदित होना इस पीढ़ीकी एक महत्वपूर्ण घटना है। यह केवल हमारे लिये और इस देशमें रहनेवाले हमारे करोड़ों भाइयों और बहिनोंके लिये ही नहीं, बल्कि एशियाके लिये और समस्त संसारके लिये एक महत्वकी बात है। अब सारा संसार इस बातको स्वीकार करने लगा है और मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि एशिया और संसारमें हिन्दुस्तानका बड़ा नाम होगा। हो सकता है कि कुछ लोग और कुछ देश अपने स्वार्थके कारण इसे पसन्द न करें, किन्तु मुख्य बात यह है कि हिन्दुस्तानमें एक महान् परिवर्तन हो गया है और यह दीर्घकालीन दासताके बाद स्वतन्त्र देश बन गया है। यह एक ऐसी बात है कि जिससे इतिहास बदल जाता है और जो इतिहास

को बदल रही है। यह कहां तक बदलेगा, यह हम पर-विधान-परिषद्‌के सदस्यों पर निर्भर है।

स्वतन्त्रताके साथ-साथ दायित्व भी आ जाते हैं। दायित्वके बिना स्वतन्त्रता नामकी कोई वस्तु ही नहीं, इसलिये हमें इन दायित्वोंका पूरा-पूरा ध्यान रखना है। स्वतन्त्र हो जानेके कारण हिन्दुस्तानको इस दुनियाकी राजनीतिमें एक बहुत बड़ा भाग लेना है। इसलिये अगर हम छोटे-छोटे झगड़ोंमें पड़े रहेंगे, तो सम्भव है कि हम भूल जायँ कि हमारे दायित्व क्या हैं। इस अवसर पर हम संकीर्ण मनोवृत्तिके नहीं बन सकते। यदि हमने ऐसा किया, तो उससे देशका बड़ा अहित होगा। मैं चाहता हूँ कि हम इसी दृष्टिकोणको सामने रखकर विधान पर विचार करें और अपने सामने आधारभूत प्रस्तावको रखें, जिसमें हमने स्वतन्त्र जनतन्त्री राष्ट्रकी स्थापनाका निश्चय किया था। बहुसंख्यक जातिके मुकाबले अल्प संख्यक जातियोंको संरक्षण दिये जायं, मैं ऐसी तमाम मांगों के विरुद्ध हूँ। मेरा खयाल है कि बहुसंख्यक जातिका यह कर्त्तव्य है कि वह अल्पसंख्यक जातिके लोगोंके दिलोंमें किसी तरहका संदेह न रहने दे और पद दलित जातियां अपनी इच्छाके अनुसार अपनी उन्नति कर सकें।

यूरोप-यात्रसे लौटनेके बाद १२ नवम्बरको नेहरूजीने पत्र-प्रतिनिधियोंकी प्रथम कानफरेंस की, जिसमें लन्दन कानफरेंसके सम्बन्धमें बातें बताते हुए उन्होंने विविध समस्याओंके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट किये। नेहरूजीने इस आशयकी बातें कहीं—

"ऐतिहासिक प्रगतियोंका ध्यान रखते हुए भारतको एक 'पूर्णतया स्वतन्त्र सर्वसत्ता-संघ जन-प्रजातन्त्र' बनता है, और इसलिये उसके सम्बन्धका प्रश्न सीमित हैं। आजके संसारमें सम्पर्क और सम्बन्ध तोड़ना तथा अलग रहना वांछनीय नहीं है। संयुक्त-राष्ट्रोंसे सम्बन्ध रखनेके अतिरिक्त राष्ट्र-मण्डलके सदस्य देशोंमें सम्पर्क जारी है। जिससे लाभ और हानि दोनों हैं, लेकिन यह सम्पर्क ऐसा है जिससे सब सम्बद्ध देशोंको पारस्परिक लाभ पहुँच सकते हैं, बशर्त्ते कि इसे इस नये दृष्टिकोणसे देखा जाये। मैंने लन्दनमें जो विचार-विनिमय किया, उसके परिणाम स्वरूप और नियमित बातचीत होगी और जब कोई निश्चित बात सामने आयगी, तब उस पर सरकार और विधान-परिषद् नियमित रूपसे विचार करेगी।

"आप लोगोंसे लन्दनकी कानफरंसके सन्वन्धमें उससे अधिक और कुछ नहीं कहना है, जो कि अब तक मैं कह चुका हूँ। कानफरेंसमें अनेक मामले और एशिया तथा दक्षिण-पूर्वी एशियाकी समस्याएँ थीं। परन्तु किसी विषयपर कोई फैसला नहीं किया गया। कानफरेंसने राष्ट्र-मण्डलके साथ भारतके भावी सम्बन्धों पर कोई विचार नहीं किया। मेरे विचारसे राष्ट्र-मण्डल एक ऐसी चीज है, जो इतिहासके लिये अज्ञात है। यह एक अत्यन्त लचीली और परिवर्त्तनशील संस्था है। मेरे विचारमें राष्ट्र-मण्डलकी धारणा युद्धके विरुद्ध और शान्तिके लिये है, हलांकि यह युद्धमें फँस सकता है।

नेहरूजीकी ६० वीं वर्षगांठ

१४ नवम्बर पं० जवाहरलालजी नेहरूका जन्म दिवस है। इस वर्ष इस तारीखको वे उनसठ वर्षके पूरे हो चुके और अब साठवेंमें चल रहे हैं। राष्ट्रने अपने राष्ट्रनायक नेहरूजी की वर्ष-गांठ इस बार विशेष उत्साह और उमङ्गके साथ मनायी। यह स्वाभाविक था, क्योंकि अभी कई दिन पहले ही तो वे अपनी उस यूरोप-यात्रासे लौटकर स्वदेश पहुंचे थे, जिसे उनकी विजय-यात्रा या दिग्विजय-यात्रा कहना भी अनुपयुक्त न होगा। कारण, वे इस यात्राके मध्य जहां गये, वहां ही दर्शनार्थियोंकी भीड़ भारत के या यों कहिये कि सम्पूर्ण एशियाके महान् नेताका हार्दिक स्वागत करनेके लिये एकत्र मिलती थी और जिस किसीसे भी मिलने और बातचीत करनेका संयोग उपस्थित हुआ, उसे ही उन्होंने अपना बना लिया। पेरिसमें उन दिनों विश्वके सभी देशोंके नेता और महान् राजनीतिज्ञ राष्ट्रसंघकी असेम्बलीकी बैठकों के कारण उसी तरह उपस्थित थे जैसे लन्दनमें प्रधान मन्त्रियोंकी

कानफरेंसके लिये राष्ट्रमण्डलके सभी राष्ट्रोंके प्रधान नेता समवेत थे। अब तक यह असाधारण सम्मान नेहरूजीके सिवा और किसी देशके नेताको कभी नहीं प्राप्त हुआ कि राष्ट्रसंघके इतने बड़े-बड़े धुरन्धर राजनीतिज्ञ अपनी असेंबलीके भीतर उनका उपदेश सुननेको इस तरह लालायित हों। इस प्रकार संसारके सभी राजनीतिज्ञोंने प्रकारान्तरसे यह स्वीकार कर लिया कि लार्ड माउण्ट बैटनके इस कथनमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं कि पं० जवाहरलाल नेहरू संसारमें आज सबसे बड़े राजनीतिज्ञ हैं। ऐसी महत्वपूर्ण विजय-यात्राके पश्चात् सानन्द एवं सकुशल स्वदेश लौटनेवाले अपने महान् नेताका हार्दिक स्वागत करनेके लिये कई दिनोंके भीतर ही पड़नेवाली उसकी वर्ष-गांठसे अधिक उपयुक्त भला और कौन-सा अवसर हो सकता था?

इस तरह पूर्ण सफल यात्राके पश्चात् नेहरूजीकी वर्षगांठ ठीक वैसे ही उत्साहसे मनायी गयी; जिस तरह उसका मनाना उचित था। वैसे तो देशभरमें इस अवसरपर जनताकी ओरसे आनन्दोत्सव मनाये गये और नेहरूजीके दीर्घजीवनके लिये जगदीश्वरसे प्रार्थनाएं की गयीं। यह उत्सव मनानेमें देशके सभी वर्गों, सम्प्रदायों और जातियोंने सहर्ष योगदान दिया, यह नेहरूजीकी लोकप्रियताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस वषगांठसे सम्बन्ध रखनेवाले कतिपय महत्त्वपूर्ण आयोजनों और नेहरूजीको मिले हुए संदेशोंका संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जाता है—

सरकार द्वारा बधाई

सबसे अधिक महत्वका आयोजन वह था, जो विधान-परिषद्के कांग्रेसी सदस्योंकी ओरसे किया गया था। यह अपने नेताके लिये एक पार्टीके रूपमें था और कोई बाहरी आदमीको इसके लिये निमंत्रित नहीं किया गया था, इस तरह यह एक प्रकारसे परिवारिक पार्टी थी। उपस्थित जनोंकी ओरसे बोलनेको जब सरदार पटेल खड़े हुए और उन्होंने नेहरूजीका गुण-गान किया, तब उनके हृदयसे निकलनेवाले एक-एक शब्दसे सभी लोग अतिशय प्रभावित हुये। सरदारने कहा—"हमारे महान नेता गांधीजी अपने निर्णयमें भूल न करनेके लिये सुप्रसिद्ध थे। उन्होंने नेहरूजीको अपना आध्यात्मिक उत्तराधिकारी बताया था। महात्माजीकी मृत्यु हो जानेके समयसे हमने देख लिया कि हमारे नेताका निर्णय ठीक था। पण्डित नेहरूने सङ्कट कालमें देशका नेतृत्व किया और अपने महान् नेतृत्व द्वारा भारतकी प्रतिष्ठा बढ़ायी है। हमारी कामना है कि हमारा यह नेता बहुत वर्षों तक इसी प्रकार नेतृत्व करता रहे।" उत्तरमें नेहरूजीने कहा कि—"जिस तरह राजनीतिक पार्टियां साधारणतः संयुक्त होती हैं, कांग्रेस जो कांग्रेस पार्टी अधिक उत्तम रीतिसे संयुक्त एवं सङ्गठित है, इसका कारण यह है कि हम सबोंने मिलकर कष्ट झेले हैं। हमें इस पार्टीके लिये भारी अभिमान है। सरदार पटेल शक्तिके पुंज हैं। यदि सरदार पटेल यहां न होते, तो पता नहीं कि हमारे देशपर

क्या बीतती । "संक्षिप्त भाषणके उपरान्त सरदार पटेलने नेहरूजी को पुष्पमाला पहिनायी और छातीसे लगाया।

जवाहरलालजी भारत हैं

जयपुर कांग्रेसके निर्वाचित अध्यक्ष डा० पट्टाभि सीतारमैयाने नेहरूजीके सम्बन्धमें अपना यह मत प्रकट किया था—"जवाहरलालजी न केवल भारतके, बल्कि (पृथ्वी) के दोनों गोलार्द्धोंके युग-पुरुष हैं। यदि भारतने अचानक ही अमेरिका, रूस और ब्रिटेनके बाद विश्वमें अपना स्थान बना लिया है, तो इसका श्रेय उनके दृष्टिकोण, निष्पक्षता और चातुर्यको है। ब्रिटेन भारतकी मैत्रीका इच्छुक है। राष्ट्र-मण्डलको एक नया रूप दिया जा रहा है, जिससे भारत उसमें सम्मिलित हो सके। इसका कारण यह है कि भारतके विना राष्ट्र-मंडल केवल एक मजाक होगा और जवाहरलालजी भारत हैं।"

काश्मीर भारत है

दिल्लीके काश्मीरियोंकी काश्मीर एसोसियेशनने नेहरूजीको चाँदीका एक डिब्बा और काश्मीरकी बनी हुई वस्तुएँ भेंट कीं। नेहरूजीने इस अवसर पर अपने संक्षिप्त भाषणमें शेख अब्दुल्लाके इस दावेको दोहराया कि—"काश्मीरकी लड़ाई दो आदर्शोंके बीच है। भारतीय सेना काश्मीरमें दो राष्ट्र वाले उस सिद्धान्तके विरुद्ध लड़ने गयी है, जिस पर पाकिस्तानकी नींव रखी गयी है। काश्मीर

के प्रश्न पर भारतकी स्थिति नैतिक दृष्टिसे भी बहुत मजबूत है। महात्मा गांधीका युद्धमें विश्वास नहीं था, परन्तु उन्होंने कभी यह नहीं कहा कि काश्मीरकी रक्षा करनेके लिये भारतीय सेनाको वहां भेजनेमें भारत सरकारने गलती की। प्रत्युत गांधीजी यह समझते थे कि काश्मीरकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य था। मैं काश्मीरके इस कथनसे सहमत नहीं हूं कि काश्मीरके बिना पाकिस्तान कायम नहीं रह सकता। काश्मीरके बिना तो पाकिस्तान कायम रह सकता है, मगर काश्मीरका पाकिस्तानके साथ मिल जानेसे आर्थिक विनाश हो जाता। काश्मीरको भारतसे पृथक् सोचना बिल्कुल गलत है। काश्मीर भारत है और भारत काश्मीर है। मेरा काश्मीर और इलाहाबाद दोनोंसे बहुत निकट सम्बन्ध है और मैं दोनोंके बीच एक संयोजक सूत्र हूं।"

मार्शल स्टेलिनका सन्देश

सेवियट रूसके सर्वेसर्वा मार्शल जोजफ स्टेलिनने भारतके प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरूजीकी वर्षगांठ पर सीधे नेहरूजी के पास रूसी भाषामें शुभ कामनाका संदेश भेजा, जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—"श्री प्रधान मंत्री जी, मैं प्रार्थना करता हूं कि अपनी वर्षगांठके अवसर पर आप मेरी शुभ कामना स्वीकार करें।— जे० स्टेलिन"

पं० जवाहरलालजीने स्टेलिनके संदेशका उत्तर हिन्दीमें, किन्तु रोमन अक्षरोंमें लिखकर भेजा, जो इस प्रकार है—"जनाबे आला,

आपका शुभ संदेश मुझको मिला और उससे मुझे खुशी हुई। उसके लिये आपको धन्यवाद देता हूं। मैं आपको और आपके महान् देशके लिये अपनी शुभ-कामनाएं भेजता हूं।"

निष्पक्ष नेहरूजी

पं० नेहरूजी प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता पूर्ण धार्मिक सिद्धान्तोंसे परे हैं। परमात्मा उन्हें दीर्घजीवी बनायें, जिससे वे भारतका नेतृत्व कर उसे सर्वोच्च पद पर पहुंचायें और केवल अपने ही देशकी नहीं, बल्कि समस्त मानवजातिकी सेवा करनेमें समर्थ हों।—मौलाना मुहम्मद उस्मान (अध्यक्ष कलकत्ता जमीयतुल उलेमा)

प्रियदर्शी नेहरूजी

प्रयागके प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) नामक ऐतिहासिक दुर्गमें नेहरू जीका जन्म दिवस मनाते हुए एक प्रस्ताव पास कर यह कहा गया कि भारतके प्रधान मन्त्री नेहरूजीको 'प्रियदर्शी' की उपाधिसे अलंकृत किया जाये। (यह उपाधि सम्राट् अशोकको दी गयी थी)

नेहरूजी द्वारा धन्यवाद

भारतके गवर्नर जेनरल, सभी प्रन्तके गवर्नरों तथा प्रधान मन्त्रियों और अन्य प्रमुख पुरुषोंकी ओरसे ही नहीं, विदेशोंसे बहु संख्यक सन्देशें अपनी इस वर्षगांठके अवसर पर नेहरूजीको प्राप्त हुए थे। उनके उत्तरमें नेहरूजीने इस प्रकार धन्यवाद दिया है—

"असंख्य मित्र तथा साथी, ज्ञात और अज्ञात लोगोंने मेरे जन्म दिवसके अवसर पर मुझे शुभ कामनाएं भेजी हैं। जन्म दिवस के लिये अब खुशी मनानेका अवसर नहीं रह गया है और अच्छा हो कि उसका स्मरण मुझे न होने पाये। किन्तु अपने लोगोंने मुझ पर जो स्नेह और सद्भावना की वर्षा की है, उसके लिये मैं उनका हृदयसे आभारी हूँ तथा उनके शुभ सन्देशोंके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। कोई मनुष्य इस प्रकारकी आशाओंके अनुसार जीवित नहीं रह सकता और मैं ऐसा नहीं हूँ कि स्वयं इतने दिन तक जीवित रहनेकी सोचूं। इस अत्यधिक स्नेह और विश्वासके सामने मैं अपनेको बहुत ही झुका हुआ पा रहा हूँ। मै केवल इतनी आशा करता हूं कि जबतक मेरे शरीर तथा मस्तिष्कमें कोई शक्ति शेष रहेगी, इस स्नेहपूर्ण सद्भावनाके साथ विश्वासघात नहीं करूँगा।"

नेहरूजी जिन्दाबाद !